अष्टादशस्मृति

[भाषा टीका सहित]

मूल लेखक

पं० मिहिर चन्द

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

11ए/यू०ए० जवाहर नगर, दिल्ली-7

This book has been brought out with the financial assistance from the Govt. of India, Ministry of Human Resource Development.

(If any defect is found in this book please return per V.P.P. for postage to the Publisher for free exchange.

© NAG PUBLISHERS

1. 11A/U.A., Jawahar Nagar, Delhi-110007
2. 8A/U.A. 3, Jawahar Nagar, Delhi-110007
3. Jalalpur Mafi (Chunar-Mirzapur) U P.

ISBN-81-7081-200-3

1990

Price Rs 300-00.

PRINTED IN INDIA

Published by Nag Sharan Singh For Nag Publishers, 11A/U.A. 3 Jawaharnagar, Delhi-7 and

Printed at : A.R. Printers, D-102, New Seelampur Delhi-110053

प्रस्तावना

संसार की परम्पराओं में से प्रकाश और अन्धकार, विकास और संकोच की दो अनादिधारायें निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। संसार को सागर कहा जाय तो ज्वार और भाटारूपी लीला स्वत: इस लीला के कार्य और कारण बन रही है। समुद्र के अतिरिक्त जैसे ज्वार-भाटा कोई वस्तु नहीं है नाम ज्वार-भाटा है; उथल-पुथल इनका स्वरूप भी है, परन्तु वस्तुत: समुद्र ही ज्वारभाटा है; बनने और बिगड़नेवाला संसार वास्तव में कोई सत्य वस्तु नहीं है उसकी, आधाररूपी आत्मतत्त्व मे प्रतीति मात्र है। अत: इसके बिगड़ने और बनने में धीर व्यक्ति अधीर नहीं होते हैं। "धीरस्तत्र न मुह्यति"।

संसार की प्रतीति दिन-रात से होती है। दिन-रात का कारण एकमात्र प्रकाशवान् सूर्य है, सूर्य का प्रकाश ही चुम्बकीय आकर्षण है, यही जड़-चैतन्य संसार का प्रधान तत्त्व है। इस संसार में आदि-काल से दो प्रकार की शक्ति-विद्या-अविद्या, ज्ञान-अज्ञान, दैवी-आसुरी का क्रम चल रहा है। सृष्टि क्या है? इसकी रचना-शक्ति की वास्तविकता पर न केवल भारतवर्ष में अपितु विश्व में अनेक दार्शनिक गवेषणायें सम्प्रदायानुसार चली आ रही हैं। जहाँ तक इन्द्रियों की प्रत्यक्षता में सृष्टि का कार्य है वहां तक विज्ञान और उसके आगे दार्शनिक विचार धारायें बड़े वेग से प्रवाहित हो रही हैं।

दर्शन और विज्ञान के परिशीलन करने से ज्ञात हुआ है कि आधिभौतिक संसार भोग प्रधान है, इसको ही आसुरी सर्ग भी कहा है। दूसरी सृष्टि ज्ञान प्रधान है, इसे दैवी संसार कहा है। आसुरी संसार के भौतिक दार्शनिक विचार और पुरुषार्थ, भौतिक आमोद-प्रमोद एवं भौतिक देह के भोगों तक ही सीमित हैं। इसका उदाहरण संसार की व्यावहारिक क्षमता, नैतिक, पुरुषार्थ और दक्षता से स्पष्ट है।

यह विचार-धारा संसार में अशान्ति, संघर्ष, अदीर्घजीवन एवं पारस्परिक द्रोह और असमानता की द्योतक है। इसे जड़वाद की विचार-धारा कह सकते हैं।

दूसरी ज्ञानवती धारा है जिसके द्वारा सत्य और शान्ति का अनुभव होता है। इस धारा के लोग दार्शनिक औपनिषद निष्ठावाले होते हैं। यह ज्ञानवती धारा मनुष्य मात्र में ही नहीं बल्कि जीव मात्र में समानता की जनयित्री सत्य की निष्ठात्मक ब्रह्मनिष्ठावाली है। उपनिषद् गीता द्वारा इसी ज्ञानवती धारा की झलक मिलती है।

संसार का कारण क्या है ? इसमें भिन्न-भिन्न दर्शनों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की रचना, समीक्षा और मीमांसा बताई है। परन्तु वे सब प्राय: प्रत्यक्षवाद पर आश्रित हैं। संसार का यथार्थ कारण अज्ञान ही है इसी के होने से इसकी प्रतीति होती है। अज्ञान जब ज्ञान में समा जाता है तब इसकी प्रतीति नहीं रहती है। मरुभूमि में जिस प्रकार काल्पनिक जल की वीचि तरङ्गों के रूप में प्रतीति होती है और कार्य काल में सत्य का ज्ञान हो जाता है ये वीचि तरङ्ग मरुभूमि का ही नाच है और कुछ भी नहीं। इसी प्रकार यह सारा संसार उसी ज्ञान का चमत्कार है। जितनी भी वस्तु होती है उनका सम्बन्ध तीन भावों से होता है ; जन्म, स्थिति और लय। इस संसार के प्रादुर्भाव होने के साथ-साथ ऋषि, मुनि, देव, गन्धर्व, आदि जगत का आविर्भाव हुआ। इस आविर्भाव, स्थिति एवं तिरोभाव को स्मृति शास्त्र ने सुचारु रूप से वर्णन किया है। स्मृति शब्द का अर्थ होता है स्मरण। ऋषियों ने आकाशमण्डल में आदि अव्यक्त नाद की रेखा तरङ्गों को लहराते-लहराते योगबल से देखा। उन लहरों से अक्षर और शब्द जो बने वह ईश्वरीय अनुशासनात्मक भगवद्-वाक्य थे। इसीको दर्शन शास्त्रों में शब्द प्रमाण कहा है। इसी को साहित्यकारों ने ईश्वर के वाक्य कहकर प्रशस्ति गाई है।

उस अव्यक्त नाद की स्मरण शक्ति से ऋषियों ने इस भूमण्डल की मर्यादा, नैतिकता, सांस्कृतिकता एवं व्यावहारिकता का जो विस्तारपूर्वक वर्णन किया है उसे स्मृति नाम दिया गया है। सम्पूर्ण स्मृतियों का तात्पर्य यह है कि चैतन्य जब शरीर में प्रवेश करता है तो अपने स्वरूप को भूल जाता है जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में

सांसारिक प्रायः जाग्रत् व्यवहार को भूल जाता है। सृष्टि में विकृति से तथा आसुरी प्रवाह से बचाने के लिये महर्षियों ने अपने संस्मरण को मानव जगत् में भेजा कि इसके अनुसार संसार के जीवन को शान्तिमय बनाकर अन्त में सत्य की प्राप्ति हो जाय और इस बालुका-भित्ति की रचना के टूटने पर शोक एवं खेद न हो।

स्मृति शास्त्रों में मुख्य तीन विषयों का निर्णय किया गया है; आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त। सब से प्रथम आचार को लीजिये आचार ही सांस्कृतिक जीवनी है। आचार प्रकरण में—गर्भाधान से विवाह काल तक के संस्कार और उनकी शिक्षा, अनुशासन, जिससे मनुष्यता का विकाश हो, प्रतिपादित है।

संस्कारों के होने से ही सांस्कृतिक जीवनी होती है जो सस्कारों के महत्त्व तथा विज्ञान द्वारा संस्कारों से बौद्धिक, मानसिक आवरण का क्षरण होकर उनका विकाश नही जानते है उसे सांस्कृतिक जीवन नही कहते है। संस्कृति एकमात्र स्मृति शास्त्रों से ही ज्ञात होगी। स्मृति शास्त्रो के ज्ञान और तदनुशासित संस्कारों के बिना सांस्कृतिक जीवन नहीं होता है।

कुछ लोग सभ्यता को संस्कृति कहते हैं यह उनकी भूल है सभ्यता तो नैतिक जीवन की देन है।

आचार प्रकरण में वर्णाश्रम नियम और सत्व, रज, तम इन तीन गुणों के तारतम्य से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार श्रेणियों में मनुष्य जाति को विभक्त किया है। उसके अनुसार उनके कर्म जिस कर्म में जिसकी क्षमता है उसे वह कर्म करने का अधिकार दिया गया है, जिससे सृष्टिक्रम सुचारु रूप से चले। इनमें किसी रूप में उच्च-नीच का भेद नही है। कोई छोटा बड़ा नहीं है। जो ज्ञान देता है उसकी सब प्रतिष्ठा करते हैं, परन्तु चारों वर्ण समान हैं और सब जातियों का आधारभूत धर्म आत्मनिष्ठा समान है।

इसी प्रकार छूतपात का विचार है। अज्ञान को छूत कहा है, षोड़श संस्कारों में जब तक उपनयन संस्कार न हो तब तक बालक से छूतपात होती है। वह उपनयन के बाद ही दैव और पितृकर्म करने

का अधिकारी होता है। उपनयन संस्कार में "धियो योनः प्रचोदयात्" यह शिक्षा दी जाती है कि हे भगवन् हमारी बुद्धि का विकाश कीजिये।

तथाकथित शूद्र जाति को और सस्कारों से वञ्चित रखने का तात्पर्य यह नहीं है कि वह छोटी जाति है अपितु सब वर्णों की सेवा करने से उस पर दुबारा यह संस्कारों का भार सौंपना (लादना) नैतिकता नहीं है। सेवा के लिये श्रीमद्भगवद्गीता में आता है—"सर्वभूतहिते रताः।" जो व्यक्ति सर्वभूत के हितरूपी कर्म में अर्थात् सेवा में लगा है उसके लिये और कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं। इसीलिये सभी शास्त्रों मे सेवा की उच्चता की प्रशंसा की गई है। "सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः" सेवारूपी परम धर्म जिसे आत्मधर्म कहते हैं ऐसे निष्ठावान् व्यक्तियों पर और-और कर्मों का बोझा लादना समुचित नही। "सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः" ऐसे सम्पूर्ण कर्म की उच्चता प्राणीमात्र की सेवा करने पर परिसमाप्त है। आज कालक्रम से जिस सेवा कर्म को गीता वेदादि शास्त्रों ने परमोच्च कर्त्तव्य माना है उस महनीय गौरवास्पद कर्तव्य को करने वाले व्यक्तियों को निम्न वर्ग मे मानना यह उन लोगों का दम्भ एवं आत्म धर्म का तिरस्कार है। हमारा यह परम सौभाग्य होना चाहिये कि उनके तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति हम असहिष्णु होकर उन्हें प्रोत्साहन दें और जिन वर्णों की वह सेवा करता है उनके यज्ञादि कर्मों का फल तो उन्हें बिना यज्ञ किये ही मिल जाता है। जैसे, कोई यज्ञार्थ धन या सेवा देता है उसे भी यज्ञ का फल मिलता है।

शूद्रत्व की परिभाषा ब्रह्मसूत्र में आयी है—"सुगतस्य तदनादरश्रवणात् तद्रवणाच्च" अर्थात् जो अनित्य वस्तु के लिये शोक करता है, वह शूद्र है।

ब्रह्मज्ञानी चाहे किसी भी वर्ण में हो वह सदैव पूज्य है। ब्राह्मण तभी पूज्य होते थे जब उन्हें ब्रह्मज्ञान होता था।

देखिये रैदासजी चमार जाति में होते हुए भी एवं कबीर जी जुलाहा जाति में होते हुए भी सब के पूज्य हुए। इसी प्रकार

सनकादि क्षत्रिय और जाजलि तथा सजन कसाई आदि ब्रह्मज्ञान से पूज्य हुए। यह उन लोगों का भ्रम मात्र है जिन्होंने शास्त्र के तत्व को न जाना कि शूद्र से अङ्ग स्पर्श वर्जित है। मैल को धोना शुद्धता है शारीरिक, मानसिक और कायिक मल और घर के मैल को धोना मनुष्यता का प्रतीक है। जिस व्यक्ति में मनुष्यता न हो उससे छूतपात करने का विधान इसलिये रक्खा गया है जैसे कि संक्रामक (Infectious) रोगाक्रान्त व्यक्ति से बचने का विधान है। अस्पृश्यता शब्द का प्रचलन संक्रामक रोगों के सम्बन्ध से हुआ है। आयुर्वेद शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक में आया है—

कुष्ठज्वरञ्च शोषञ्च नेत्राभिष्यन्दमेव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्तिनरान्नरम्॥
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात्।

इस प्रकार जिन भावों से संक्रामकता होती है उसे अस्पृश्यता कहते हैं। इस रोगरूपी अस्पृश्यता के संक्रमण न होने देने के उपाय अत्यावश्यक है, चाहे फिर वह मानसिक हो या दैहिक हो।

संसर्गश्चापि तैः सह (याज्ञवल्क्य स्मृति)।

अस्पृश्यता का संक्रमण विकार से, काल से एवं स्वभाव से होता है।

जैसे, वैद्यक शास्त्र के अनुसार रोगों के संक्रमण होने से एवं धर्म शास्त्रों के अनुसार पापियों के साथ रहने से अस्पृश्यता होती हैं, व्यवहार में तो और भी अधिक रूप में यह स्पष्ट है। देखिये, रजस्वला अस्पृश्य होती है—"प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीयेऽरजकी तथा" आदि। सभी के जनन मृतकाशौच में अस्पृश्यता रहती है। नित्य शौचादि से निवृत्त होने पर हाथ धोने के पूर्व व्यक्ति अस्पृश्य है। लेकिन जब उनके रोग दूर हो जाते हैं अथवा समय की अवधि निकल जाती है और पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है तो वे फिर शुद्ध हो जाते हैं।

अतः अस्पृश्यता नित्य वस्तु नहीं है देश, काल एवं अवस्थाभेदेन स्पृश्यता अस्पृश्यता बन जाती है और अस्पृश्यता स्पृश्यता बन जाती है। यह तो हुई शारीरिक रोगों की अस्पृश्यता के सम्बन्ध की बात।

जिस प्रकार शारीरिक अस्पृश्यता है उसी प्रकार मानसिक रोग हैं। मानसिक अस्पृश्यता मानसिक मल से होती हैं फिर वह मल चाहे किसी भी जाति में क्यों न हो। जिसके मानसिक मल है तो वह अस्पृश्य एवं जिसके वह दूर हो जाते हैं वह स्पृश्य है। शास्त्र के सन्तुलन में शारीरिक अस्पृश्यता से मानसिक अस्पृश्यता कहीं अधिक गम्भीर है। शरीर के रोग इसी देह के साथ रहते हैं मानसिक रोग तो जन्म-जन्मान्तर तक चलते हैं। सस्कार इन सब को दूर करने के लिये विशेष विधि है जिसका उद्देश्य मानव-जीवन को सफल बनाना है। इस प्रकार सब प्रकार का मैलापन दूर करना स्मृति का सिद्धान्त है। लिखा भी है—"पाप्मा च मलमुच्यते"। सब मनुष्य समान है, अपने-अपने गुण के अनुसार कर्म करने पर सब मुक्ति के पात्र हो जाते हैं। प्रकृति नटी की महती प्रसार योजना में छोटे-बड़े का भेद कहीं नहीं है।

आचाराध्याय में, सदाचार शिष्टाचार को लेकर सब संस्कार बताये हैं। इन सस्कारों के यथाविधि यथासमय करने से बैजिक एवं गार्भिक मल के धुलने से मन्त्रों द्वारा बौद्धिक विकाश एवं मनोबल प्राप्त होता है। शिष्टाचार के साथ-साथ नैतिक, सामाजिक जीवनी का भी विस्तार से निरूपण किया गया है।

द्वितीय प्रकरण व्यवहार का है। इसमें व्यावहारिक जीवनी पर जो गतिरोध आ जाता है उसको उचित रीति पर सञ्चालन के लिये राजशासन, शासक और शास्त्र के नैतिक व्यवहाररूपी कर्म को भी धर्म कहकर उसका विस्तार किया गया है।

तीसरे प्रायश्चित प्रकरण में पापों के प्रायश्चित्त, पाप करने से नारकीय गति का विवरण जिससे जनता अपराध करने से हट जाय और सत्य का आश्रय ले सके यह बताया गया है। प्रायश्चित्ताध्याय में कामज, क्रोधज, अज्ञानज, पाप, अतिपाप, उपपातक, अतिदेश, संकरीकरण एवं मलिनीकरण को दिखाकर उन-उन पापकर्मों के प्रायश्चित्त की विधियाँ बताई है। अन्त में, संन्यास धर्म में संसार की अनित्यता एवं भगवान् की सत्यता बताकर मानव-जगत को सन्मार्ग पर चलने की रुचि प्रदर्शित की है।

इस प्रकार प्रायः सब स्मृतियों का ध्येय है कि मनुष्य सांस्कृतिक जीवन का विकाश कर नैतिक, धार्मिक, व्यावहारिक, एवं सामाजिक जीवन का श्रेय प्राप्त करे। "अभ्युदय निः श्रेयस" का यह अनुपम योग एवं व्यवस्था है।

प्रायः सम्पूर्ण स्मृतिकारों ने सबसे प्रथम सांस्कृतिक जीवनी की जड़ आचार को माना है। उनका मत है कि कितनी भी विद्याओं का ज्ञाता मनुष्य क्यों न हो परन्तु यदि वह आचारहीन है तो विद्वानों की गणना के योग्य नहीं हो सकता है।

श्रेष्ठ पुरुषों के अनुशासन को आचरण बताकर स्मृतियों में आचार प्रकरण में आचार-सदाचार का निरूपण किया गया है। ज्येष्ठ और श्रेष्ठ के लक्षण भी छान्दोग्य में किये है। श्रेष्ठ पुरुषों का अनुगमन स्वभावतः उनके अनुगामियों का पथ होता है। "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः" श्रेष्ठ कहने योग्य जो व्यक्ति हो जाय उसको अपने आचरण पर बड़ी सावधानी से ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि दूसरे-दूसरे लोग उसके आचरण का अनुकरण करते है। इसमें यदि जरा-सी भी असावधानी या इन्द्रिय लोलुपता एवं मानाभिमान से त्रुटि रह गई तो उसके अनुकरण करनेवाले समुदाय का श्रेय तथा अश्रेय का वह ही इस संसार और भगवान् के सामने उत्तरदायी है जो उस समुदाय में श्रेष्ठ कहा जाता हो।

यद्यपि सांस्कृतिक जीवन बनाना सब स्मृतिकारों का परम ध्येय है और सांस्कृतिक जीवनी को ही धर्म माना भी है। तो भी इस सांस्कृतिक जीवनी के रक्षकस्तम्भ आचार, धर्म, नैतिकता तथा व्यवहार ही मुख्यरूपेण हैं।

कुछ स्मृतिकारों का विचार है कि जब मानवता धर्म और सत्य में रहती थी तब व्यवहार (दण्डनीति) की आवश्यकता नहीं थी। व्यवहार तो राज्यशासन में तब से आया जब से सत्य का ह्रास और भोगों की अभिरुचि का प्रवाह सीमा को अतिक्रमण कर गया। राज्यशासन में व्यवहार का स्थान साक्षी, दण्डधर्म आदि हैं। दाय को तो धर्म माना गया है। दाय धर्म वैदिक काल में एक रेखा पर है, परन्तु स्मृति ग्रन्थों में दाय भी व्यवहार प्रकरण में रक्खा गया

लेन-देन, पूंजीकर, राज्यकर आदि सब व्यवहार दण्डनीति के अन्तर्गत है।

मनु याज्ञवल्क्य आदि कुछ स्मृतिकारों ने प्रथम आचार उसके अनन्तर व्यवहार तथा दुष्टकर्मों के दण्ड एवं प्रायश्चित्त की व्यवस्था की है; उन महर्षियों के बताये मार्ग पर चलने को भी धर्म कहा है। जैसे—संस्कार-धर्म, राजधर्म, दण्डधर्म, और प्रायश्चित्त धर्म। जिस मर्यादा को उन त्रिकालज्ञ तपोनिष्ठ ऋषि मुनियों ने अपने समाधिस्थ विचार से संसार के सञ्चालन के लिये बताया है, उसे भी धर्म के नाम से माना गया है। स्मृतियां कुछ श्लोकों में हैं एवं कुछ सूत्रों में। भारतीय व्यवहार, राजदण्ड का मापदण्ड मनु याज्ञवल्क्य से लिया गया है।

कुछ स्मृतिकारों ने जैसे, आश्वलायन, व्यास, बौधायन आदि ने केवल वर्णाश्रमधर्म और प्रायश्चित्त को ही अधिक गौरव माना है। शातातप आदि ने रोग-मुक्ति का उपाय और हारीत, पाराशर आदि ने इस युग में कृषि कर्म करना उससे उपजीवन सभ्यता का निरुपद्रव जीवनोपाय बताया है। स्मृतियों के विचार करने से स्मार्त धर्म का आधार कृषि कर्म मुख्य है। जिस देश में कृषि कर्म तथा काले रंग का मृग होता है वहीं के लिये यज्ञों का विधान बताया है।

हारीत आदि कुछ स्मृतियों में देवोपासना, देवोत्सव आदि का विधान और इष्टापूर्त का विस्तार है। इन सबका अभिप्राय उच्च भावना द्वारा ईश्वर परायणता का है। किसी स्मृति ने आचार को, किसी ने व्यवहार-दण्डनीति को किसी ने प्रायश्चित्त आदि को, प्राथमिकता दी है। यह सब कालभेद से उपपादन है। स्मार्त सिद्धान्त सब को सांस्कृतिक जीवन की प्रेरणा देता है। संसार में वर्बरता, विभीषिका और पारस्परिक विरोध का प्रधान कारण ईश्वर के अस्तित्व को न मानने से रागद्वेष काम क्रोध की स्वच्छन्द गति ही है। प्राणी मात्र अपनी-अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने को तब ही दौड़ते है जब उनको किसी का भय नहीं होता है। वेदों में कहा गया है—"भीषास्मात् तपति सूर्य," भगवान् के भय से सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारा एवं मृत्यु आदि अपनी-अपनी मर्यादा पर चलते है। अव्यक्त

भगवान् का ज्ञान स्मृतियों द्वारा होता है, जो वस्तु हमारी आंख या कान आदि ज्ञानेन्द्रिय का विषय नहीं है और उस वस्तु की स्थिति है तो उसका ज्ञान हमें शब्द प्रमाण लेख द्वारा ही होता है। उस लेख को शास्त्रीय कहते हैं जिससे ईश्वर का ज्ञान हो। जिसका ईश्वर पर विश्वास नहीं है वह व्यक्ति सांसारिक कार्य में किसी का भी विश्वासपात्र होने का अधिकारी नहीं है। ईश्वर के भय से लोग छिपकर पाप करने में डरते हैं। राजदण्ड का भय तो तब है जब कोई साक्षी के द्वारा उस दोष या अपराध को प्रकट कर सके। अतः राजशासन के लिये ईश्वर का भय सब से प्रथम होना चाहिये।

धर्मशास्त्रों में आनेवाले शब्दों का हमें उनके आधारभूत व्युत्पत्तिलभ्य व्यापक भावों को ध्यान में रखकर अभिप्राय समझना चाहिये। शब्दानुशासन के लौकिक और वैदिक क्रम को ध्यान देकर हमें प्रकरण सङ्गत अर्थ का व्यापक रूप में प्रकाश करना चाहिये। इन अथाह ज्ञान की राशि स्मृति शास्त्रों का अभिप्राय केवल बहुश्रुत पारदर्शी विद्वान् ही जान सकते है। ब्रह्मपुराण के २४२ अध्याय में इस पर व्यापक प्रकाश डाला है।

यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः।
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा ॥१५॥
भारं स वहते तस्त ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥१६॥
अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि वादं यः कुरुते नरः।
लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापो नरकं व्रजेत् ॥१८॥

जो वेदों तथा शास्त्रों में केवल ग्रन्थ का अभ्यासी है और ग्रन्थों के अर्थतत्त्व को नहीं जानता उसका वह अभ्यास वृथा है। वह केवल भार को वहन करता है जो महानुभाव ग्रन्थ के अर्थ-तत्त्व को जानते है उनका ग्रन्थाध्ययन सफल है। जो व्यक्ति ग्रन्थों के तत्त्व को जाने विना लोभ से अथवा दम्भ से व्यर्थ का विवाद एवं कलह करते हैं वे नरकगामी होते हैं।

अतः शास्त्रीय व्यापक अर्थ को ग्रहण कर संकुचित अर्थ से सदा बचने का हमें प्रयत्न करना चाहिए इसी से विश्व का मार्ग प्रदर्शन हो सकता है।

निरुक्त के निघण्टु द्वारा वेदादि शास्त्रों के गम्भीर अभिप्राय के जानने में सहायता मिलेगी ऐसी मान्यता है। वेदादि शास्त्रों की कुञ्जी निरुक्त के अभाव से बन्द तालों में छिपी-सी पड़ी है।

वेद ब्रह्माण्ड के समष्टिगत तत्त्व को हमें आदिष्ट करते हैं; धर्म शास्त्र व्यवहार और परमार्थ का हमें समवेत ज्ञान कराते हैं। आज सही चाभी से ही इस अक्षयभण्डार को खोलकर हमारे शुभ-मङ्गल की कामना करने वाले महर्षियों के हार्द को समझना हमारा कर्तव्य है इसी में सब का कल्याण है। यहां यह ध्यान मे रखना चाहिये कि इनमें निबद्ध ज्ञानराशि "सर्वभूतहिते रताः" ऋषियों की साधना है उन्हें उनके व्यापक रूप मे देख अपने पढ़ने एवं कर्तव्य-पालन से पूर्ण सहायता मिल सकती है।

इस आशा पर सुलभ्य और दुर्लभ्य १८ स्मृतियों का संग्रह कर भाषा टीका के साथ प्रकाशित किया गया है जिससे अपनी प्रधान भाषा के द्वारा इस संदर्भ का रहस्य प्रत्येक आसानी से प्रकट हो जायें।

विषय-सूची

१. अत्रि संहिता — १-६१

धर्मशास्त्रोपदेश, शुद्धि प्रकरण, प्रायश्चित, दान-फल; श्राद्ध-फल, निन्द्य ब्राह्मण, धर्म फल ।

२. विष्णु प्रोक्त धर्म — ६२-६९

विष्णु भगवान् द्वारा निर्धारितधर्मशास्त्र ।

३. हारीत-स्मृति — ८०-११३

वर्णाश्रम धर्म, चतुर्वर्ण धर्म ब्रह्मचर्याश्रम धर्म, गृहस्थाश्रम धर्म, वाणप्रस्थाश्रम धर्म, सन्यास आश्रमधर्म, योग ।

४ औशनस-स्मृति — ११४-१२३

ब्रह्मचारी धर्म, श्राद्ध-अशौच, प्रेतकर्म, प्रायश्चित ।

५. आङ्गिरस-स्मृति — १२४-१३६

प्रायश्चित का विधानपानी पीना, अच्छिष्ट भोजन, वस्त्र-धारण भोजन, दान, प्रायश्चित ।

६. संवर्त-स्मृति — १३७-१७१

ब्रह्मचर्य वर्णन, धर्म वर्णन, कन्या-विवाह वर्णन, अशौच-वर्णन, पाप-प्रायश्चित, गोदान-माहात्म्य, दिनचर्या वर्णन, वानप्रस्थ, यति-धर्म, पाप-प्रायश्चित, सुरापान, जीवहत्या, अगम्यागमन, अभक्ष्य-भक्ष्य, प्रायश्चित, उपवास-व्रत, ब्राह्मण-भोजन, गायत्री, प्राणायामादि ।

७. लघु यम स्मृति — १७२-१८७

नाना विध प्रायश्चित वर्णन, यज्ञ, तालाब, कूप आदि निर्माण-विधान ।

८. आपस्तम्ब स्मृति — १८८-२२०

गोरोधनादि विषय, गोहत्या, शुद्धि, अशुद्धि, वस्त्र-धारण, रजस्वला, विवाह, कन्या रजोदर्शन, सुरादि सेवन, दूषित अन्न-भोजन, मोक्षाधिकारणामभिधान आदि ।

९. बृहस्पति-स्मृति २२१-२३३

सुवर्ण-दान, पृथ्वी-दान, गोचर्म-लक्षण, नील वृषभ लक्षण, निन्दा-वर्णन, भूमिहरण-फल, तडागादि निर्माण।

१०. कात्यायन स्मृति २३४-३१८

यज्ञोपवीत कर्म, नित्यनैमित्तिक कर्म, श्राद्ध प्रकरण, शमी, गर्भ-काष्ठ-पीपल आदि के वर्णन, स्नान, संध्योपासन, तर्पण, पंच महायज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, श्राद्ध-वर्णन, विवाहाग्नि होम विधान, वर्णन, स्त्रीधर्म-वर्णन, मृतदाह संस्कार, प्रायश्चित आदि।

११. पराशर स्मृति ३१९-४१५

धर्मोपदेश, आचार-धर्म, गृहस्थाश्रम-धर्म, अशौच व्यवस्था वर्णन, अनेक विध प्रकरण प्रायश्चित, श्रोताग्नि होत्र-संस्कार, प्राणि-हत्य प्रायश्चित वर्णन, ब्राह्मण महत्व वर्णन, द्रव्य-शुद्धि, स्त्री शुद्धि, धर्माचरण, निन्द्य ब्राह्मण, अगम्यागमन, अभक्ष्य-भक्ष्य, प्रायश्चित-शुद्धि वर्णन, अगम्यागमन, अभक्ष्य-भक्ष्य प्रायश्चित, शुद्धि वर्णन।

१२. व्यास स्मृति ४१६-४५३

वर्ण विभाए, अनुलोमों और प्रतिलोमो की भिन्न जाति की की संज्ञा, कर्म, संस्कार, विवाह, गृहस्थ धर्म, स्त्री-धर्म, गृहस्थ के नित्य नैमित्तिक कर्म, तीर्थ-धर्म, दान-धर्म, सांस्कृतिक जीवन।

१३. शंख स्मृति ४५४-५१३

चातुर्वर्ण्य के पृथक-पृथक कर्म; गर्भाधान से उपनयन तक संस्कार, ब्रह्मचर्य, विवाह-संस्कार, पंच महायज्ञ, वानप्रस्थ धर्म, प्राणायाम, ध्यान, स्नान, तर्पण, श्राद्ध, अशौच, द्रव्य शुद्धि, मृन्मयादि-पात्र शुद्धि, पापों के प्रायश्चित।

१४. लिखितस्मृति ५१४-५२८

इष्टकर्म, पूर्त कर्म, बलि वैश्वदेव-अतिथि पूजन, सांस्कृतिक जीवन, अशौच वर्णन।

/१५. दक्ष-स्मृति ५२९-५६१

आश्रम वर्णन, दिनचर्या कर्म, वैदिक कर्म, गृहस्थाश्रम, नव कर्म, स्त्री-धर्म, शौच, अशौच, समाधि योग, इन्द्रिय निग्रह, अध्यात्म योग साधन द्वैतानुभावयोग-साधन।

१६. गौतम स्मृति ५६२-६२६

आचार वर्णन, ब्रह्मचारी वर्णन, विवाह प्रकरण, गृहस्थाश्रम, आपद धर्म, संस्कार, कर्तव्याकर्तव्य, राजधर्म, दण्डविधान, अशौच, श्राद्ध, अनाध्याय, भक्ष्याभक्ष्य, पापों के कर्म फल, सम्पति विभाग।

/१७. शातातप स्मृति ६२७-६५७

अकृत प्रायश्चित, पूर्वजन्माकृत प्रायश्चित, ब्राह्मण महत्व, कुष्ठ निवारण, सर्व पाप प्रायश्चित, प्रकीर्ण रोगों का प्रायश्चित, कुल-ध्वंश, मधु-तेल-धातु चोरी, अगम्यागम्य प्रायश्चित, अनुचित व्यवहार अमित प्रायश्चित।

१८. बुद्ध स्मृति ६५८-६६४

चातुर्वर्ण्य धर्म वर्णन—चारों वर्णों का सक्षेप से धर्म वर्णन।

महर्ष्यत्रि प्रणीता

अत्रि-संहिता

हुताग्निहोत्रमासीनमत्रिं वेदविदां वरम् ।
सर्वशास्त्रविधिज्ञातमृषिभिश्च नमस्कृतम् ॥१

नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रूवन् ।
हितार्थं सर्वलोकानां भगवन्! कथयस्व नः ॥२

अग्निहोत्री, वेद के ज्ञाताओं में उत्तम और सम्पूर्ण शास्त्रों की विधि के ज्ञाता और ऋषियों द्वारा नमस्कृत, बैठे हुए अत्रिजी को वे समस्त ऋषि नमस्कार करके यह वचन बोले कि हे भगवन! संपूर्ण लोकों के हित के लिए हमें आप उपदेश दें।

अत्रिरुवाच

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम्
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्ट यथाश्रुतं ॥३

अत्रि बोले कि—हे वेद और शास्त्र के तत्त्व (अर्थ के) जाननेवालो! जो प्रश्न आपने किया है उसका उत्तर मैं अपने ज्ञानानुसार दूंगा।

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान् देवान् प्रणम्य च।
जपत्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतम्: ॥४

सर्वपापहरं नित्यं सर्वसंशयनाशनम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामत्रिः शास्त्रमकल्पयत् ॥५

संपूर्ण तीर्थों में आचमन करके, सपूर्ण देवताओं को नमस्कार करके और सब सूक्तों को जप कर, संपूर्ण शास्त्रों के अनुसार, समस्त पापों का हरने वाले, उत्तम, और संपूर्ण संशयों को दूर करने वाले, चारो वर्णों के लिए हितकारी शास्त्र को अत्रि ऋषि ने रचा ॥

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ।
सर्वैपापैः प्रमुच्यंते श्रुत्वेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥६

जो जगत् में पापों के कर्ता हैं, और जो धर्म को दूषित करनेवाले हैं वे सब इस उत्तम शास्त्र को सुनकर सब पापों से छूट जाते हैं ॥

तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सद्वृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥७

अतः वेद के ज्ञाता इस शास्त्र को बड़े यत्न से पढ़ें और इसे उत्तम आचरण करनेवाले शिष्यों को पढ़ावें ॥

अकुलीने ह्यसद्वृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ।
एतेष्वेव न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥८

बुरे कुल में उत्पन्न और दुराचारी, मूर्ख, शूद्र, और दुष्ट द्विज को ब्राह्मण इस शास्त्र का ज्ञान न प्रदान करें ॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा ह्यनृणी भवेत् ॥९

जो गुरु एक भी अक्षर का ज्ञान शिष्य को देता है पृथिवी पर ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है जिसे देकर वह गुरु का अनृणी हो सके (अर्थात् बदला दे सके) ॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ।
शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपिजायते ॥१०

एक अक्षर के भी ज्ञान देनेवाले को जो गुरु नहीं मानता वह सौ जन्म कुत्ते की योनि में पड़कर चांडालों में जन्मता है ॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चित् शास्त्रंचैवावमन्यते ।
स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥११

जो कोई वेद और शास्त्र को जानकर उनका अपमान करता है वह शीघ्र ही इक्कीस जन्मों तक पशु होता है ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोऽपि मानवाः ।
प्रिया भवंति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥१२

अपने-अपने कर्मों को करते हुए और दूर रहते हुए भी मनुष्य अपने कर्म मे स्थित लोकप्रिय होते हैं ॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेतिवृत्तयः ॥१३

ब्राह्मण के कर्म ये हैं —यज्ञ करना, दान देना, पढ़ना और तप करना, तथा दान लेना, पढ़ाना और यज्ञ कराना, ये तीन ब्राह्मण की आजीविका के साधन हैं ॥

क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ।

शस्त्रोप जीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥१४॥

यज्ञ करना, दान देना, पढ़ना, और तप करना, क्षत्रियो के कर्म हैं और शस्त्र से आजीविका कमाना और भूतों की रक्षा ये दो वृत्तियाँ हैं ।

दानमध्ययन वार्ता यजनं चेति वै विशः ।

शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥१५॥

दान देना, पढ़ना, खेती, गौओ की रक्षा, व्यवहार, यज्ञ करना, वैश्य के कर्म है और खेती, गौओं की रक्षा, व्यवहार तीनों वर्णों की सेवा, और कारीगरी, ये शूद्र के कर्म हैं ।

मयैष धर्मोऽभिहित संस्थिता यत्रवर्णिनः ।

बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥१६॥

जिस कर्म में चारों वर्ण स्थित हुए इस लोक में बड़े मान को प्राप्त हो कर परलोक में परमगति को प्राप्त होते है—इसका मैंने वर्णन किया है ।

ये व्यपेताः स्वधर्मेभ्य पर धर्मे व्यवस्थिताः ।

तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥१७॥

जो अपने धर्म का पालन नहीं करते हे और पर-धर्म में तत्पर हैं उनको दण्डित करने वाला राजा स्वर्गलोक में पूजा जाता है ।

आत्मोये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ।

परधर्मो भवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥१८॥

अपने धर्म में टिका हुआ शूद्र भी स्वर्ग को भोगता है पर-धर्म इस प्रकार त्यागने योग्य है जैसे श्रेष्ठरूप वाली पराई स्त्री ।

बध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ।

ततो राष्ट्रस्य हंताऽसौ यथावह्नेश्च वै जलम् ॥१९॥

जप और होम में रत शूद्र राजा के मारने द्वारा योग्य है क्यों कि वह राजा के देश का इस प्रकार नाश करने वाला है जैसे अग्नि का जल ।

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ।
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥२०॥

प्रतिग्रह, पढ़ाना, निषिद्ध वस्तु का बेचना, और यज्ञ कराना इन चारों से क्षत्रिय और वैश्य का पतित होना कहा गया है ।

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥२१॥

मांस, लाख, और लवण इन के बेचने से ब्राह्मण शीघ्र ही पतित और दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है ।

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभुक्तं प्रदं बुधैः ॥२२॥

व्रत-हीन और अनपढ़ ब्राह्मण जिसमें भिक्षा मांगते फिरते हैं उस ग्राम को राजा वह दंड दे जो चोरी की वस्तु के भोगने वाले को मिलता है ।

विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ।
तेऽप्यनावृष्टिमिच्छंति महद्वा जायते भयम् ॥२३॥

जिन देशों में विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों को मूर्ख भोगते हैं वे देश भी वृष्टि के अभाव से युक्त होते हैं अथवा उनमें महान् भय उत्पन्न होता है ।

ब्राह्मणान् वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ।
तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्र तान्पूजयेन्नृपः ॥ २४ ॥

वेद के जानने वाले और संपूर्ण शास्त्रों में कुशल ब्राह्मणों की पूजा जिस देश में राजा करता है वहां मेघ बरसता है ॥

त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोऽग्नयः ।
एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ २५ ॥

तीनों लोक, तीनों वेद और तीनों अग्नियों की रक्षा के लिये सबसे पहिले ब्राह्मण रचे गये हैं ॥

उभे संध्ये समाधाय मौनं कुर्वन्ति ये द्विजाः ।
दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥२६ ॥

जो दोनों संध्याओं के समय ध्यान लगा कर मौन धारण करते हैं वे द्विज देवताओं के हजार वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजा को प्राप्त होते हैं ॥

य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणं ।
यशः स्वर्ग नृपत्व च पुनः कोषं समृद्धयेत् ।। २७ ।।

जो राजा इस प्रकार गुण और दोष की परीक्षा करता है वह यश, स्वर्ग, राज्य, और कोष (खजाने) का फिर संचय करता है।

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षाः पचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ।२८।

दुष्ट को दंड, श्रेष्ठ जन की पूजा, न्याय से कोष का बढ़ाना, अभ्यागतों के प्रति पक्षपात का न होना और अपने देश की रक्षा, ये पांच यज्ञ राजाओं के कहे गये हैं।

यत् प्रजापालाने पुण्यं प्राप्नुवंतीह पार्थिवाः ।
न तु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवति द्विजोत्तमाः ।। २९ ।।

प्रजा-पालन से, इस लोक में जिस पुण्य को राजा प्राप्त होते हैं, हे द्विजों मे उत्तम! उस पुण्य को ये हजार यज्ञ कर के भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।।

अलाभे देवखातानां ह्रदेषु सरसु च ।
उद्धृत्य चतुरः पिंडान् पारके स्नानमाचरेत् ।।३०।।

देवताओं द्वारा खोदे गये तीर्थो (गंगा आदि) के अलाभ में पराये कुओं अथवा तालाबों मे मिट्टी के चार पिंड (डेले) निकाल कर स्नान करें।

वसाशुक्रमसृङ्भज्जा मूत्रविणकर्णविण्णखाः ।
श्लेष्मास्थि दूषिकाः स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ।।३१।।

षण्णा षण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ।
मृद्वारिभिश्च पूर्वेषामुत्तरेषां तु वारिणा ।।३२।।

मनुष्यों के बारह मल—वसा, वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कान का मैल, नख, कफ, हाड, नेत्रों का मल, पसीना है। इनमें छःछः की शुद्धि क्रम से बुद्धिमानों ने इस प्रकार कही गई है। पहिले छओं की मिट्टी और जल से शुद्धि होती है और पिछले छओं की केवल जल से शुद्धि होती है।

शौचं मंगलमायासंअनसूयाऽस्पृहा दमः ।
लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ।।३३।।

पवित्रता, मंगल, परिश्रम करना, दूसरे के गुणों में दोषों को न देखना, कामना न करना, इन्द्रियों को विषयों से रोकना, दान देना, और दया—ये ब्राह्मण के लक्षण हैं ।

न गुणान् गुणिनोहंति स्तौति चान्यान् गुणानपि ।
न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ।।३४।।

गुणवाले के गुणों को नष्ट न करना, इतर के गुणों की स्तुति करना, और इतर के दोषों की हँसी न करना—यह अनसूया है ।

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिदितै. ।
आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ।।३५।।

अभक्ष्य वस्तु का त्याग और सज्जनो का संग और उत्तम आचरणों में टिकना—इसे शौच कहते हैं ।

प्रशस्ताचरण नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ।
एतद्धि मंगल प्रोक्तं ऋषिभिर्धर्मदर्शिभिः ।।३६।।

प्रतिदिन उत्तम आचरण करना और निंदित आचरण का त्याग, इसे धर्मवित् ऋषियों ने मगल कहा है ।

शरीरं पीड्यते येन शुभेन त्वशुभेन वा ।
अत्यंतं तन्न कुर्वीत आयासः स उच्यते ।।३७।।

जिस शुभ अथवा अशुभ कर्म से शरीर पीड़ित हो उसे कभी न करना—आयास कहते है ।

यथोत्पन्नेन कर्तव्य संतोषः सर्ववस्तुषु ।
न स्पृहेत् परदारेषु साऽस्पृहा परिकीर्त्तिता ।।३८।।

अकस्मात् मिली हुई समस्त वस्तुओं में संतोष करना और पराई स्त्रियों की इच्छा न करना, अस्पृहा कहते हैं ।

वाह्यमध्यात्मिकं वाऽपि दुःखमुत्पाद्यते परैः ।
न कुप्यति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ।।३९।।

शत्रु द्वारा उत्पन्न बाह्य या मानसिक दुःख को प्राप्त कर जो क्रोध न करना और हिंसा न करना है उसे दम कहा गया है ।।

अहन्यहनि दातव्यमदीनेनान्तरात्मना ।
स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्याभिधीयते ।।४०

प्रसन्न अन्तःकरण से प्रति दिन यत्नपूर्वक (अन्नादि का) दिया जाना दान कहलाता है।

परस्मिन् बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ।
आत्मवद्वर्त्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्त्तिता ।।४१।।

पराये, अपने कुटुंबी, मित्र, द्वेष(बैर) के कर्त्ता, शत्रु—इन सबमें अपने समान जो बर्ताव करना है उसे दया कहते हैं ।

यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोऽपिभवेद्द्विजः ।
स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ।।४२।।

जो गृहस्थ द्विज इन लक्षणों से युक्त होता है वह उत्तम स्थान (वैकुंठ) को जाता है और फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होता है ।

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ।।४३।।

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों की रक्षा, अतिथि का सत्कार, बलिवैश्वदेव—इन्हें इष्ट कहते हैं।

वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ।।४४।।

बावली, कूप, तालाब, देवताओं के मंदिर, अन्न का दान, आराम (बाग), इन्हें पूर्त कहते हैं ।

इष्टं पूर्त्तं प्रकर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ।
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्त्तेन मोक्षमवाप्नुयात् ।।४५।।

ब्राह्मणों को इष्ट और पूर्त करने चाहिए क्योंकि इष्ट से स्वर्ग मिलता है और पूर्त से मोक्ष प्राप्त होता है ।

इष्टापूर्त्तौ द्विजातीनां सामान्यौ धर्मसाधनौ ।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्त्ते धर्मे न वैदिके ।।४६।।

इष्ट और पूर्त ये दोनों द्विजातिओं (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के सामान्य क्षत्रिय धर्म हैं और शूद्र (केवल) पूर्त धर्म का अधिकारी है वेदोक्त धर्म का नहीं ।

यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्व्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥४७॥

बुद्धिमान् मनुष्य यमों का निरंतर पालन न करे और नियमों को नित्य न सेवे क्योंकि यमों का पालन न करता हुआ और केवल नियमों का ही पालन करता हुआ पतित होता है ।

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्य्यं मार्दवं च यमा दश ॥४८॥

अक्रूरता, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दान, नम्रता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुर-वाणी, कोमल स्वभाव—ये दश यम हैं ।

शौचमिज्या तपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः ।
व्रतमौनोपवासाश्च स्नानञ्च नियमा दश ॥४९॥

शौच, यज्ञ, तप, दान, वेद का पढ़ना, लिंग, इंद्रिय को रोकना, व्रत, मौन, उपवास, स्नान—ये दश नियम हैं ।

प्रतिकृति कुशमयी तीर्थवारिषु मज्जयेत् ।
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभाग लभेत सः ॥ ५० ॥

जो कुशा की प्रतिनिधि (प्रतिमा) को लेकर तीर्थ के जलो में स्नान करता है उस मनुष्य को स्नान का फल का आठवां भाग प्राप्त होता है ।

मातर पितरं वाऽपि भ्रातारं सुहृदं गुरुम् ।
यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशफलं भवेत् ॥५१॥

माता, पिता, भ्राता, गुरु इनमें से जिस के उद्देश्य (नाम) से गोता लगाता है उसको बारहवां भाग मिलता है ।

अपुत्रेणैव कर्त्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ।
पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात् प्रयत्नतः ॥५२॥

जिस के पुत्र न हो उसको ही पिंड और जलदान के हेतु बड़े प्रयत्न पूर्वक किसी से पुत्र का प्रतिनिधि (दत्तक पुत्र) प्राप्त करना चाहिए ।

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ।
ऋणमस्मिन् संनयति अमृतत्व च गच्छति ॥५३॥

यदि पैदा हुए और जीते पुत्र के मुख को पिता देख लेता है तो उस पुत्र को ऋण सौंप कर पिता पितरों के ऋण से छूटता है और मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ।

जातमात्रेण पुत्रेण पितृणामनृणी पिता ।
तदह्नि शुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ॥५४॥

उत्पन्न हुए पुत्र से ही पिता पितरों का अनृणी होता है और उसी दिन शुद्ध हो जाता है क्योंकि वह पुत्र पिता की नरक से रक्षा करता है ।

जायंते बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गया व्रजेत् ।
यजते चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥५५॥

बहुत पुत्रों के मध्य में यदि एक भी पुत्र गयाजी को जाय अथवा नीले बैल से वृषोत्सर्ग करे तो वह मानो अश्वमेध यज्ञ करता है ।

कांक्षंति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ।
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥५६॥

अन्य-अन्य नरकों से डरते हुए पितर यह इच्छा करते हैं कि जो पुत्र गया को जायेगा, वह हमारा रक्षक होगा ।

फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
गयाशीर्षं पदाऽऽक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ५७ ॥

फल्गुतीर्थ में स्नान और गदाधर देवता के दर्शन कर के और गयासुर के शिर पर चरण रखकर ब्रह्महत्या से भी मनुष्य छूट जाता है ।

महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत् पितृदेवताः ।
अक्षयान् लभते लोकान् कुलं चैव समुद्धरेत् ॥५८॥

जो महानदी में स्नान कर के पितृ और देवताओं का तर्पण करता है वह अक्षय लोकों को प्राप्त होता है और अपने कुल का उद्धार करता है ।

शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोग(भोज्य) विवर्जिते ।
आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥५९॥

यदि भक्ष्य और भोज्यहीन देश में शंका उत्पन्न हो जाय तो भोजन की शुद्धि के विषय में मुझ से सुनो ।

अक्षारलवणं भैक्षं (रौक्षं) पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्च्चसम् ।
त्रिरात्रं शखपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥६०॥

यदि ब्राह्मण क्षार रहित अन्न अथवा लवण अथवा रूखा अन्न खाये तो कांति की दाता ब्राह्मी अथवा शंखपुष्पी औषधि को दूध के संग तीन रात्रि तक पीये ।

मद्यभांडाद् द्विजः कश्चिदज्ञानात् पिबते जलम् ।
प्रायश्चित्तं कथं तस्य मुच्यते केन कर्मणा ॥६१॥

मदिरा के पात्र में यदि कोई द्विज अज्ञान से जलपान कर ले तो उसका कैसे प्रायश्चित्त हो और वह किस कर्म के करने से दोष से छूटे ?

पलासबिल्वपत्राणि कुशान् पद्मान्युदुम्बरम् ।
काथयित्वा पिबेदापास्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥६२॥

वह ढाक और बेल के पत्ते और कुश, कमल, गूलर, इनके काथ के जल को तीन रात्र पीने से शुद्ध हो जाता है ।

सायं प्रातस्तु यः सन्ध्यां प्रमादाद्विक्रमेत् सकृत् ।
गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत् स्नात्वा समाहितः ॥६३॥

सायंकाल अथवा प्रातः काल प्रमाद से संध्यावंदन को त्यागने वाला, स्नान करके और सावधान होकर एक सहस्र गायत्री जप करे ।

शोकाक्रांतोऽथवा श्रान्तः स्थितः जपाद्बहिः ।
ब्रह्मकूर्च्चं चरेद्भक्त्या दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥६४॥

रोग के कारण से जो स्नान न कर सके और स्नान करके जो जप न कर सके वह मनुष्य भक्तिपूर्वक ब्रह्मकूर्च कर और दान देकर शुद्ध होता है ।

गवां शृंगोदके स्नात्वा महानद्युपसंगमे ।
समुद्रदर्शनेनैव व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् ॥६५॥

जिस मनुष्य को सांप ने काटा हो वह गौओं के सींगों के जल में अथवा बड़ी नदी (गंगा, यमुना आदि) के संगम में स्नान करके अथवा समुद्र के दर्शन से शुद्ध होता है ।

वृकश्वानशृगालैस्तु यदि दष्टश्च ब्राह्मणः ।
हिरण्योदकसमिश्रं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥६६॥

भेड़िया, कुत्ता और गीदड़ जिस ब्राह्मण को काटे वह सोने के जल से मिले घी को खाकर शुद्ध होता है ।

ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ।
उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥६७॥

जिस ब्राह्मणी को कुतिया, गीदड़ी, भेड़िया काटे तो वह उदय हुए ग्रह नक्षत्रों को देखकर शीघ्र ही शुद्ध हो जाती है ।

सव्रतश्च शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ।
सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ।।६८।।

व्रती ब्राह्मण कुत्ते के काटने से तीन दिन तक उपवास करे और घृत सहित जौ से तैयार वस्तु को खाकर शेष व्रत को समाप्त करे ।

मोहात् प्रमादात् सलोभाद् व्रतभंगं तु कारयेत् ।
त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत पुनरेव व्रती भवेत् ।।६९।।

मोह अथवा प्रमाद से अथवा लोभ से जो किसी के व्रत को भंग करता है वह तीन रात्र में शुद्ध होता है और फिर व्रतवाला हो जाता है ।

ब्राह्मणान्न यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ।
दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ।।७०।।

जो ब्राह्मण अज्ञान से ब्राह्मणों के उच्छिष्ट को खा ले तो वह दो दिन तक गायत्री का जप करके शुद्ध होता है ।

क्षत्रियान्न यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतोद्विज. ।
त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ।।७१।।

क्षत्रिय अथवा वैश्य के उच्छिष्ट को जो ब्राह्मण अज्ञान से भक्षण कर ले तो तीन रात्र गायत्री के जप से शुद्ध होता है ।

अभोज्यान्न यथा भुक्त्वातु (भुक्तान्न) यथा
स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा ।
जग्ध्वा मांसभक्ष्यन्तु सप्तरात्रं यवान् पिवेत ।।७२।।

भक्षण के अयोग्य अन्न को अथवा स्त्री और शूद्र के उच्छिष्ट अन्न को अथवा प्रत्यक्ष में मांस को खाकर ब्राह्मण सात दिन तक जौ को पीयें ।

शुना चैव तु सस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ।
तदुच्छिष्टन्तु संप्राश्य षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ।।७३।।

कुत्ते से स्पृष्ट व्यक्ति के लिए स्नान-शुद्धि का विधान किया गया है। यदि वह उसके उच्छिष्ट का भक्षण करे तो छः मास तक कृच्छ्र (नामक प्रायश्चित) करे ।।

असंस्पृष्टेन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ।
तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात् षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ।।७४।।

स्पर्श करने के अयोग्य का जो मनुष्य स्पर्श करे तो वह स्नान से ही शुद्ध होता है और उसके उच्छिष्ट को खाकर छः महीने तक कृच्छ्र करे ।

अज्ञानात् प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हंति त्रयो वर्णा द्विजातय. ।।७५ ।।

अज्ञान से विष्ठा अथवा मूत्र अथवा मदिरा जिसमें मिली हो— इनको खाकर तीनों द्विजाति वर्ण फिर सस्कार के योग्य होते है ।

वपनं मेखला दडो भैक्षचर्यव्रतानि च ।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ।।७६।।

मुंडन, मेखला, दंड, भिक्षाटन और व्रत ये सब (जो यज्ञोपवीत के समय होते है) द्विजातियों के निवृत्त (नष्ट) हो जाते हैं फिर संस्कार के योग्य होते है ।

गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ।
प्रायोज्यं मृण्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ।।७७।।

जिसके घर के भीतर शव (मुर्दा) पड़ा है ऐसे घर की शुद्धि कहता हूं—(उसके लोग) मिट्टी के पात्रों को वरते और शुद्ध (अन्य के बनाये) अन्न का भक्षण करे ।

गृहान्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ।
गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाघ्रापयेत् पुनः ।।७८।।

घर से बाहर शव को निकालकर गोबर से घर को लिपाये और गोबर से लिपा कर बकरी से सुंघाये (बकरी का मुख शुद्ध होता है) ।

ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तु पूत तु हिरण्यकुशवारिभिः ।
तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुद्ध्यते नात्र संशयः ।।७९।।

वेद के मंत्रों से पवित्र किया गया घर फिर वेद मत्र और सोने और कुशाओं के जल के द्वारा छिड़काव करने से शुद्ध होता है इस में संशय नहीं है ।

राज्ञाऽन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः ।
पुनः कुर्वीत सस्कारं पश्चात् कृच्छ्त्रयञ्चरेत् ।।८०।।

राजा अथवा इतर अथवा चांडाल यदि द्विजको धर्म से विचलित करे तो फिर वह द्विज पुनः संस्कार और तीन कृच्छ्र करे ।

शुना चैव तु संस्पृष्ठस्तस्य स्नानं विधीयते ।
तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत् ।।८१।।

जिसको कुत्ते ने छू लिया हो वह स्नान करे और कुत्ते के जूठे को खाले तो छः मास तक कृच्छ्र करे ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ।
प्रायश्चित्त पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ।।८२।।

इससे आगे सूतक-निर्णय तथा और उसके आगे प्रायश्चित्त (पापकी शुद्धि) कहूंगा ।

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनै. ।।८३।।

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और वेद पाठी भी हो वह एक दिनमे शुद्ध होता है और जो केवल वेद पाठी ही हो वह तीन दिन में और गुणहीन ब्राह्मण दश दिन में शुद्ध होता है ।

व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ।
राज्ञस्तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति ब्राह्मणाः ।।८४।।

व्रतवाला अथवा शास्त्र के अनुसार पवित्र अथवा जो अग्नि होत्र करता हो और राजा इनको और जिस के सूतक को ब्राह्मण न चाहे उसको सूतक नहीं लगता ।

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ।।८५।।

ब्राह्मण दश रात में और क्षत्रिय बारह दिनमें और वैश्य पंद्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध हो जाता है ।

सपिंडानांतु सर्वेषा गोत्रजः साप्तपौरुषः ।
पिंडांश्चोदकदान च शावाशौचं तथाऽनुगम् ।।८६।।

संपूर्ण सपिंडों के मध्य में सात पीढी तक गोत्रज होता है उसको पिंडों के दान का और जलदान का और शव के आशौच का अधिकार है ।

चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षडहःपंचमे तथा ।
षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात् सप्तमे त्र्यहमेव वा ।।८७।।

चौथी पीढ़ी तक दश रात्र, और पाँचवीं पीढ़ी में छः दिन, और छठी पीढ़ी में तीन रात्र, और सातवीं में तीन दिन अशौच होता है ।

अष्टमे दिनमेकन्तु नवमे प्रहरद्वयम् ।
दशमे स्नानमात्रेण सूतके तु शुचिर्भवेत ।।८८।।

सूतक में आठवें दिन एक प्रहर तक और नौवे दिन दो प्रहर (शुद्धि होती है) और दसवे दिन स्नान मात्र से ही शुद्धि होती है ।

मृतसूतके तु दासीना पत्नीनां चानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम् ।।८९।।

मरे के सूतक में दासी और अनुलोम (पति से नीचे वर्ण की) पत्नियों की पति के तुल्य शौच होता है और पति के मरने पर अपनी योनि (जाति के अनुसार) का शौच होता है ।

शवस्पृष्टतृतीयस्तु सचैलः स्नानमाचरेत् ।
चतुर्थे सप्तभैक्ष्यं स्यादेष शावविधि स्मृतः ।।९०

जिस तीसरी पीढ़ी के मनुष्य ने शव का स्पर्श किया हो वह सचैल स्नान करे और चौथी पीढ़ी का मनुष्य सात घर की भिक्षा का भक्षण करे—यह शव (मुर्दे) के सूतक की विधि शास्त्र में कही गयी है ।

एकत्र संस्कृतानां तु मातृणामेकभोजिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौच विभक्तानां पृथक्पृथक् ।।९१।।

जिनका संस्कार एक बार हुआ है और जो एक ही स्थान पर नित्य भोजन करती हों ऐसी माताओं को पति की जाति के अनुसार शौच होता है और जो पृथक्-पृथक रहती हों तो अपनी-अपनी जाति का शौच होता है ।

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं यद्यान्नं मृतसूतके ।
पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चाद्रायणं चरेत् ।।९२।।

ऊंटनी और भेड़ का दूध और पकान्न और पाचक (रसोईया) का अन्न और नव श्राद्ध (जो मृत के ग्याहरवें दिन होता है) इनको खाकर चाद्रायण व्रत करे ।

सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः ।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ।।९३।।

जो मनुष्य अधर्म के लिये सूतक का अन्न खाता है वह तीन रात्र उपवास करे और एक रात्र जल मे स्थित रहे ।

महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ।
होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥९४॥

मृतक और जन्म के सूतक में महायज्ञ की विधि न करें किन्तु उस समय शुष्क अन्न अथवा फल से होम करें।

बालस्त्वतर्दशाहेतु पंचत्व यदि गच्छति ।
सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥९५॥

यदि बालक दश दिन के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो शीघ्र हीं शुद्धि हो जाती है। मरण और जन्म के दोनों सूतक नहीं होते।

कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिंडमेव च ।
स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥९६॥

मुंडन करने के बाद यदि बालक मरे तो पिंड और जल का दान और स्वधाकार और नाम का उच्चारण करे।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव मंत्रे पूर्वकृते तथा ।
यज्ञे विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥९७॥

ब्रह्मचारी, संन्यासी, और जिसने सूतक से पहिले मंत्र के जप का प्रारभ कर दिया हो और विवाह के समय में उसकी उसी समय शुद्धि हो जाती है।

विवाहोत्सवयज्ञेष्वनन्तरामृतसूतके ।
पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ॥९८॥

विवाह, उत्सव और यज्ञ के बीच में जो मरण अथवा जन्म सूतक हो जाय तो पूर्व से संकल्प किये पदार्थ के खाने का दोष नहीं होता है यह अत्रि ऋषि ने कहा है।

मृतसजननादूर्द्ध सूतकादौ विधीयते ।
स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाञ्चेन्न सस्पृशेत् ॥९९॥

मृत बालक के जन्म के पश्चात् सूतक आदि (मृताशौच जनाना शौच) में जल का स्पर्श और विष्णु का नाम लेकर आचमन करने से शुद्धि हो जाती है यदि वह सूतिका का स्पर्श न करे।

पंचमेऽहनि विज्ञेयं संस्पर्शं क्षत्रियस्य तु ।
सप्तमेऽहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥१००॥

पाँचवे दिन क्षत्रिय का और सातवें दिन वैश्य का स्पर्श करना बुद्धिमानों को जानना चाहिए।

दशमेऽहनि शूद्रस्य कर्त्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ।
मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात् सूतके मृतके तथा ।।१०१।।

दसवें दिन शूद्र का स्पर्श बुद्धिमान करे और मरण और जन्म सूतक में में एक महिने में अपनी (शूद्र की) शुद्धि होती है ।

व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ।।१०२।।

व्यसनासक्तचितस्य पराधीनस्य नित्यशः ।
स्वाध्यायव्रतहीनस्य सततं सूतकं भवेत् ।।१०३।।

रोगी, कदर्य, (जो सदा ऋणी रहे,) क्रिया से हीन, मूर्ख, विशेषकर स्त्री ने जिसे जीता हो, व्यसन (जआ आदि) मे जिसका चित्त आसक्त हो और जो नित्य पराधीन हो, जो कभी भी श्राद्ध को न त्यागता हो —इन मनुष्यों को तब तक सूतक है जबतक शव की भस्म (राख) न हो जाय ।

द्वे कृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्याद्दातुः सांतपनं स्मृतम् ।।१०४।।

परिवित्ति(जिसने बड़े भाई से पहले विवाह किया हो) को दो कृच्छ्र और कन्या को कृच्छ्र, अति कृच्छ्र लड़की की माता को और कन्या के दाता को सांतपन, करना चाहिए ।

कुब्जवामनखञ्जेषु गर्हितेऽथ जडेषु च ।
जात्यंधवधिरे मूके न दोषः परिवेदने ।।१०५।।

जो कूबड़ा, बौना, षंढ (जो स्त्री के भोगने में असमर्थ हो) तोतला, बावला, जन्म से अंधा, बहरा, गूंगा हो उसके परिवेदन (इनसे पहले छोटे भाई के विवाह करने) में दोष नहीं है ।

क्लीवे देशांतरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ।
योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ।।१०६।।

नपुसक, परदेशी, पतित, संन्यासी, योगशास्त्र में तत्पर, इनके भी परिवेदन में दोष नहीं है ।

पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ।
नाग्निहोत्राधिकारोऽस्ति न दोषः परिवेदने ॥१०७॥

जिसका पिता, पितामह अथवा अपना बड़ा भाई अग्निहोत्र का अधिकारी हो उसे ज्येष्ठ भाई से पहिले विवाह करने में दोष नहीं है।

भार्यामरणपक्षे वा देशांतरगतेऽपि वा ।
अधिकारी भवेत् पुत्रस्तथा पातकसंयुक्ते ॥१०८॥

स्त्री के मरने पर अथवा परदेश में जाने पर अथवा पातक लगने पर पुत्र अग्निहोत्र आदि कर्मों का अधिकारी होता है ।

ज्येष्ठो भ्राता यदा नष्टो नित्यं रोगसमन्वितः ।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥१०९॥

यदि ज्येष्ठ भाई मर गया हो अथवा सदा रोगी रहता हो तो उसकी आज्ञा से छोटा भाई शंख ऋषि के वचन के अनुसार विवाह करले ।

नाग्नयः परिविंदंति न वेदा न तपांसि च ।
न च श्राद्धं कनिष्ठो वै बिना चैवाभ्यनुज्ञया ॥११०॥

छोटे भाई ज्येष्ठ भाई की आज्ञा के बिना न अग्निहोत्र कर सकते हैं, न वेद पढ़ सकते हैं, न तप कर सकते हैं, और न श्राद्ध कर सकते हैं ।

तस्माद्धर्मं सदा कुर्यात् श्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥१११॥

अतः वेद और स्मृतियों में वर्णित नित्य (संध्या आदि) नैमित्तिक (जात कर्म आदि) काम्य (यज्ञ आदि) कर्मों को और जो स्वर्ग प्राप्ति का साधन (दान आदि) हों उन्हें सदा करे ।

एकैकं वर्द्धयेन्नित्य शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ।
अमावास्या न भुंजीत एष चांद्रायणोविधिः ॥११२॥

शुक्लपक्ष में एक-एक ग्रास बढ़ाना और कृष्णपक्ष में एक-एक ग्रास घटाना और अमावास्या को भोजन सर्वथा न करना—य. चांद्रायण व्रत की विधि है ।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥११३॥
इत्येतत् कथितं पूर्वैर्महापातकनाशनम् ।

पहिले तीन दिन तक एक-एक ग्रास का भोजन करना और अगले तीन दिन में सर्वथा भोजन न करना इसे अतिकृच्छ्र कहते हैं। पूर्व ऋषियों ने यह महापातक के नाश करनेवाला प्रायश्चित कहा है।

वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥११४॥
न स्पृशंतीह पापानि महापातकजान्यपि ।

वेदों के अभ्यास में तत्पर और कृश और पांच यज्ञों के कर्मों में रत को इस लोक में महापातक से पैदा हुए पाप भी स्पर्श नहीं करते।

वायुभक्षो दिवा तिष्ठेद्रात्रिं चैवाप्सु सूर्यदृक् ॥११५॥
जपत्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मबधादृते ।

दिन में वायु भक्षण करके और रात्रि को जलों में बैठकर समय व्यतीत करके; सूर्य को देखता हुआ जो एक हजार गायत्री का जप करता है उसकी ब्रह्महत्या से इतर सब पापों से शुद्धि होती है।

पद्मोडुम्बरविल्वैश्च कुशाश्वत्थपलाशयोः ॥११६॥
एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ।

कमल, गूलर, बेल, कुश, पीपल और ढाक के जलको पीकर दिनको व्यतीत करना, इसे पर्णकृच्छ्र कहते हैं।

पंचगव्यं च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्घृतं ॥११७॥
जग्ध्वा परेह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सातपनं स्मृतम् ।

पंचगव्य अथवा पंचगव्य के पृथक्-पृथक द्रव्य—गौ का दूध, वही, मूत्र, गोबर, घी—इनको प्रथम दिन खाकर उपवास करना चाहिए, इसे सांतपनकृच्छ्र कहते हैं।

पृथक्सांतपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥११८॥
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनं स्मृतम् ।

सांतपन कृच्छ के पंचगव्य आदि पदार्थों को खाकर छः दिन व्यतीत करे और एक दिन उपवास करे। यह सात दिन का महासांतपन कृच्छ्र कहा गया है।

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥११९॥
त्र्यहं परंच नाश्नीयात् प्राजापत्योविधि स्मृतः ।

तीन दिन सायंकाल को और तीन दिन प्रातः काल को भोजन करे और तीन दिन जो बिना माँगे मिले उसका भोजन करे और पिछले तीन दिनों में सर्वथा भोजन न करे—यह प्राजापत्य की विधि कही गयी है।

सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥१२०॥
अयाचितैश्चतुर्विंश परेऽह्न्यशनं स्मृतम् ।

सायंकाल बारह ग्रास और प्रात. काल पंद्रह ग्रास लेना अथवा बिना याचना के चौबीस ग्रास खाने को श्रेष्ठ ऋषियों ने अनशन व्रत कहा है।

कुक्कुटांडप्रमाणं स्याद्यावद्यस्य मुखं विशेत्॥१२१
एतद्ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम् ।

मुर्गे के अंडे के समान जिसका प्रमाण हो अथवा जितना इसके मुख में जा सके। शुद्धि के लिए इसे ग्रास जाने और यही देह की शुद्धि करने वाला है।

त्र्यहमुष्णं पिवेदापस्त्र्यहमुष्णं पिवेत्पयः ।१२२॥
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ।
पलमेकं तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ।
षट्पलानि पिवेदापस्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ॥१२३॥

तीन दिन उष्ण जल पीये और तीन दिन उष्ण दूध पीये। तीन दिन उष्ण घी पीये, तीन दिन वायु का भक्षण करे, छः पल जल पीये और तीन पल दूध पीये और एक पल घी पीये -- इसे तप्त कृच्छ्र कहते हैं।

दध्ना च त्रिदिनं भुंक्ते त्र्यहं भुक्ते च सर्पिषा ॥१२४॥
क्षीरेण तु त्र्यहं भुंक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ।
त्रिपलं दधिक्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ॥१२५॥
एतदेव व्रत पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ।

और तीन दिन घी का, तीन दिन दही का भोजन करे तीन दिन दूध को और तीन दिन वायु का भक्षण करे, दही और दूध तीन-तीन पल और घी का एक पल भोजन करे। यही पवित्र और वेदोक्त कृच्छ्र कहा गया है।

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥१२६॥
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितः ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥१२७॥

एक बार दिन में भोजन करने से अथवा रात्रि को ही भोजन करने से अथवा बिना माँगे पदार्थ के भोजन करने से और एक उपवास करने से पाद कृच्छ्र कहा गया है। दूध को ही पीकर इक्कीस दिन बिताने से कृच्छ्राति-कृच्छ्र कहा गया है।

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः ।
पिण्याकदधिशक्तूनां ग्रासश्च प्रतिवासरम् ॥१२८॥
एकैकमुपवासः स्यात् सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्त्तितः ।

बारह दिन के उपवास को पराक व्रत कहा गया है। खल, कच्चामठा, जल, सत्तू, इनको क्रम से एक-एक दिन खाना, एक उपवास करना, इसे सौम्य कृच्छ्र कहते हैं।

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥१२९॥
तुलापुरुषइत्येष ज्ञेयः पंचदशाह्निकः ।
कपिलागोस्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिवेत् ॥१३०॥
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ।
निशायां भोजन चैवं तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥१३१॥

इन पांचों में से एक- एक के तीन रात्रि तक क्रम से अभ्यास करने से, यह पंद्रह दिन का तुलापुरुष होता है दुही हुई कपिला गौ के धारोष्ण अर्थात् स्वाभाविक उष्ण दूध को जो पीता है, यह व्यासजी का रचा (किया) कृच्छ्र, चांडाल को भी शुद्ध करता है। रात्रि में ही भोजन करने को नक्त कहते हैं।

अनादिष्टेषु पापेषु चांद्रायण मथोदितम् ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥१३२॥

यत्फलं समवाप्नोति तथा कृच्छ्रैस्तपोधनः ।
वेदाभ्यासरत. क्षांतो नित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥१३३॥

अनादिष्ट पापों (जिनका शास्त्र में प्रायश्चित्त नहीं है) की शुद्धि के लिए चांद्रायण कहा गया है । दूनी दक्षिणा वाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने से मनुष्य जिन फलों को प्राप्त होता है उन्हीं फलो को कृच्छ्रों के करने से, हे तपस्वियो ! प्राप्त होता है और वेद के पढ़ने वाले और दुर्बल और नित्य शास्त्र के पढ़ने वाले को भी वही फल मिलता है ।

शौचाचार समायुक्तो गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ।
उक्तमेतद्द्विजातीनां महर्षे ! श्रूयतामिति ॥१३४॥

जो गृहस्थ मिट्टी और जल से शौच को करता है वह पापों से छूट जाता है । हे महान् ऋषियों ! आप द्विजातियों के इस धर्म के विषय में सुनो ।

अत: परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ।
जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥१३५॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ।

इससे आगे स्त्री और शूद्रों के पतित होने के कारणों को कहता हूं । जप, तप, तीर्थों की यात्रा, सन्यास, मंत्र को सिद्ध करना, और देवता की आराधना—ये छः कर्म स्त्री और शूद्रों के पतित करने के हेतु हैं ।

जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥१३६॥
आयुष्यं हरते भर्तु: सा नारी नरकं व्रजेत् ।
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥१३७॥

जो स्त्री पति के जीते हुए उपवास व्रत करती है वह स्त्री अपने पति की अवस्था को हरती है और स्वयं नरक को जाती है । यदि स्त्री को तीर्थ के स्नान की इच्छा हो तो अपने पति के चरणों को धोकर पीये ।

शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पद ।
जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥१३८॥

शिव अथवा विष्णु के पद को अर्थात् कैलाश और वैकुंठ को वह स्त्री प्राप्त होती है जो पति के जीते हुए वाम अंग में और पति के मरने पर दक्षिण अंग में स्थित होती है ।

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ।
सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वश्च तथांगिराः ॥१३९॥

श्राद्ध, यज्ञ तथा विवाह में सदा पत्नी दक्षिण की ओर बैठती है। चंद्रमा, गंधर्व और अंगिरा (बृहस्पति) ने उन स्त्रियों को शौच (शुद्धता) दिया है।

पावकः सर्वमेध्यं च मेध्य वै योषितां सदा ।
जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥१४०॥

अग्नि से सब अंगों की पवित्रता दी है। इसीसे स्त्रियां सदा पवित्र है। जन्म से ब्राह्मण संज्ञा और संस्कार से द्विज संज्ञा होती है।

विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ।
वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थञ्च निषेवते ॥१४१॥
तदासौ वेदवित् प्रोक्तो वचनंतस्य पावनम् ।
एकोऽपि वेदविद्धर्म यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ॥१४२॥
स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ।
पावका इव दीप्यते तपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥१४३॥

विद्या के पढ़ने से विप्र संज्ञा और जन्म, यज्ञोपवीत और विद्या से श्रोत्रिय संज्ञा होती है। जो वेद और शास्त्र को पढ़े और शास्त्र के अर्थ को बताये, उस समय इस ब्राह्मण को वेदवित् (वेद जाननेवाला) कहते हैं, उसका वचन पवित्र करने वाला होता है। एक भी वेद के जानने वाला, द्विजों में उत्तम, जिस धर्म का निर्णय करदे, वही परम धर्म जानना चाहिए और मूर्खों के दश सहस्रों के दश सहस्र जिसे कहें वह धर्म नही जानना चाहिए। जप और होम करने से द्विजों में उत्तम अग्नि के समान चमकते है।

प्रतिग्रहेण नश्यंति वारिणा इव पावकः ।
तान् प्रतिग्रहजान् दोषान् प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥१४४॥
नाशयंति हि विद्वांसो वायुर्मेघानिवाम्बरे ।

और द्विजों में उत्तम ! वे प्रतिग्रह लेने से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे जल से अग्नि, और प्रतिग्रह से उत्पन्न हुए उन दोषो को द्विजों में उत्तम प्राणायामों से इस प्रकार नष्ट करते है जैसे आकाश में मेघों को वायु।

भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥१४५॥
लक्ष्मीर्बलं यशस्तेज आयुश्चैव प्रहीयते ।

यदि भोजन करने के अनंतर ब्राह्मण आर्द्र (गीले) हाथ रखे लक्ष्मी, बल, यश, तेज, और अवस्था—ये पांचों उसके नष्ट हो जाते हैं।

यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥१४६॥
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।

यदि वह भोजन के स्थान आसन पर बैठा हुआ अर्थात् भोजन करता हुआ अन्न को छूले तो वह उस अन्न को न खाये और खाये तो चांद्रायण व्रत करे।

पात्रोपरिस्थितं पात्रं यः संस्थाप्य उपस्पृशेत् ॥१४७॥
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।
न देवास्तृप्तिमायांति दातुर्भवति निष्फलं ॥१४८॥

पात्र के ऊपर रखे हुए पात्र का जो स्पर्श करले अर्थात् उस पात्र के अन्न को छूले, उसके भी अन्न का भक्षण न करे और भक्षण करले तो चांद्रायण व्रत करे। उस के देवता भी तृप्त नहीं होते हैं और दाता का दान भी निष्फल होता है।

हस्तं प्रक्षाल्यस्त्वापः पिवेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ।
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥१४९॥

जो द्विजों में उत्तम भोजन करने के अनंतर हाथों को धोकर उसी जल को पीता है उस श्राद्ध के अन्न को मानो राक्षसों ने खाया हो और उसके पितर निराश हो जाते हैं॥

नास्ति वेदात् पर शास्त्र नास्ति मातुः परो गुरुः ।
नास्ति दानात् परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥१५०॥

इस लोक और परलोक में वेद से बढ़कर शास्त्र नहीं और माता से बढ़कर गुरु नहीं और दान से बढ़कर मित्र भी नहीं है।

अपात्रे ह्यपि यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।
हव्यं देवा न गृह्णंति कव्यं च पितरस्तथा ॥१५१॥

कुपात्र को दिया गया दान सात पीढ़ी तक दग्ध (नष्ट) करता है कुपात्र को दिये हव्य को देवता, और कव्य को पितर ग्रहण नहीं करते हैं (जो देवताओं को दिया जाता है उसे हव्य, और जो पितरों को दिया जाता है उसे कव्य कहते हैं)।

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ।
श्वानविष्ठासमं भोक्तुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥१५२॥

लोहे के पात्र से जो अन्न परोसा जाता है उस अन्न को भोजन करने वाला कुत्ते के विष्ठा के तुल्य खाता है और उस अन्न का दाता नरक को प्राप्त करेगा ।

पित्तलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ।
न दद्याद्वामहस्तेन शायसेन कदाचन ॥१५३॥

देने के योग्य अन्न को बुद्धिमान् पुरुष पीतल और लोहे के पात्र में रखकर और बायें हाथ से, कदाचित् भी न परोसे।

मृण्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितृन् ।
अन्नदाता च भोक्ता च तावेव नरकं व्रजेत् ॥१५४॥

मिट्टी के पात्रों में जो अपने पितरो को भोजन कराता है उस अन्न के देने वाला और भोजन करने वाला दोनों नरक मे जायेंगे ।

अभावे मृण्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैं द्विजैः ।
तेषां वचः प्रमाण स्यात् यदन्न चातिरिक्तकम् ॥१५५॥
सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ।
भिक्षादातुर्न धर्मोऽस्ति भिक्षुर्भुंक्ते तु किल्विषम् ॥१५६॥

और जो शास्त्रोक्त पात्र न मिले तो उन्ही ब्राह्मणों की आज्ञा से मिट्टी के पात्र से ही अन्न को परोसे क्योंकि उनका वचन प्रमाण है, और जो अन्न ब्राह्मणों के भोजन से बचे, उस अन्न को यदि सोने, लोहे, तांबे, कांस्य, चांदी के पात्र में भिखारी को दे तो पाप का भोक्ता होता है ।

न च कांस्येषु भुंजीयादापद्यपि कदाचन ।
मलाशाःसर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥१५७॥

संन्यासी कदाचित् विपत्ति में भी कांस्य के पात्र में भोजन न करें क्योंकि जो संन्यासी कांस्य के पात्र में भोजन करने वाले हैं वे संपूर्ण मल को खाने वाले हैं ।

कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ।
कास्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात् किल्विषं तयोः ॥१५८॥

यदि कांस्य का पात्र हो और गृहस्थ का हो और उस पात्र में संन्यासी भोजन करे तो उन दोनो के दोष को संन्यासी प्राप्त होता है ।

अत्राप्युदाहरन्ति

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ।
भुजन् भिक्षुर्न दुष्येत दुष्येच्चैव परिग्रहात् ॥१५९॥

इस विषय में अन्य ऋषि भी कहते हैं कि सोने, लोहे, कांस्य, ताबे तथा चाँदी के पात्रो में भोजन करता हुआ संन्यासी, जिस पदार्थ को इनमें ग्रहण करे वह पदार्थ, तथा पात्र दोनों निषिद्ध हैं ।

यतिहस्ते जलं दद्यात् भिक्षा दद्यात्पुनर्जलम् ।
तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥१६०॥

प्रथम संन्यासी के हाथ मे जल दे फिर भिक्षा दे और फिर जल दे, इस प्रकार से वह भिक्षा का अन्न मेरु पर्वत के समान और वह जल समुद्र के समान है ।

चरेन्माधुकरी वृत्ति अपि म्लेच्छकुलादपि ।
एकान्नं नैव भोक्तव्यं वृहस्पतिसमो यदि ॥१६१॥

संन्यासी म्लेच्छों के कुल में से मधुकर की वृत्ति (जैसे भंवरा सब फूलों के थोड़े-थोड़े रस को लेता है और उन्हें नष्ट नहीं करता) से निर्वाह करे, चाहे वह देने वाला वृहस्पति के समान ही क्यो न हो ।

अनापदि चरेद्यस्तु सिद्ध भैक्षं गृहे वसन् ।
दशरात्रं पिवेद्वज्रमापस्तु त्र्यहमेव च ॥१६२॥

जो संन्यासी बिना आपत्ति के समय घर में रहता हुआ सिद्ध (बनी बनाई) भिक्षा को खाता है वह दश रात्र तक वज्र को पीये और तीन दिन जल पीये (तब शुद्ध होता है) ।

गोमूत्रेण तु समिश्रं यावकं घृतपाचितम् ।
एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवानत्रिरब्रवीत् ॥१६३॥

गो मूत्र से मिश्रित जौ के चून को घी में पकाये जाने पर जो खाद्य होता है उसे वज्र कहते हैं, यह भगवान् अत्रि ने कहा है ।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ।।१६४।।

ब्रह्मचारी, संन्यासी, विद्यार्थी, गुरु को पालना करनेवाला, मार्ग में चलने वाला, और आजीविका रहित ये छः भिक्षुक कहे गये हैं।

षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेव च स्त्रियम् ।
आ दंतजननादूर्ध्वमेष धर्मो विधीयते ।।१६५।।

गर्भवती स्त्री के संग यदि छठे महीने तक मनुष्य रमण करे और यदि बालक के दांत निकलने के बाद रमण करे तो इस प्रकार धर्म नष्ट नहीं होता है।

ब्रह्महा प्रथमं चैव द्वितीये गुरुतल्पगः ।
तृतीयन्तु सुरापोऽय चतुर्थं स्तेयमुच्यते ।।१६५।।

बालक जन्म के उपरोक्त पहले मास में (रमण करने से) ब्रह्महत्या का, दूसरे मास में गुरु की शय्या में गमन करने का, तीसरे मास में मदिरा पान का, चौथे मास में चोरी करने का दोष लगता है।

आपो वस्त्रं तिलान् भूमि गंधं वासयते तथा ।
पापानां चैव संसर्गः पंचमं पातकं महत् ।।१६६।।

बिना रंगा वस्त्र, तिल, भूमि का संग्रह, सुगन्ध का लगाना, पापियों का संसर्ग, ये पांच बड़े पातक सन्यासी के हैं।

एषामेव विशुद्ध्यर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ।
त्रीणिवर्षाण्यकामश्चेद्ब्रह्महत्या पृथक् पृथक् ।।१६७।।

इनकी शुद्धि के लिए क्रम से तीन वर्ष तक कृच्छ्र करे और यदि कृच्छ्र करने की इच्छा न हो तो पृथक्-पृथक् ब्रह्म हत्या का पाप लगता है।

अर्द्धंतु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ।
षड्भागो द्वादशश्चैव विट्शूद्रयोस्तथा भवेत् ।।१६८।।

क्षत्रिय को आधा, वैश्य को छठा और शूद्र को बारहवां भाग ब्रह्महत्या का लगता है।

त्रीन् मासान् नक्तमश्नीयाद् भूमौ शयनमेव च ।
स्त्रीघातः शुद्ध्यतेऽप्येवं चरेत्कृच्छ्राब्दमेव च ।।१६९।।

जिसने स्त्री की हत्या की हो वह मनुष्य तीन मास तक रात्रि में ही भोजन करे और पृथ्वी पर सोये और एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे इस प्रकार करने से वह शुद्ध होता है।

रजकः शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ।
एतेषा यस्तु भुक्ते वै द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ।।१७०।।

धोबी, नट, बांसो से आजीविका कमाने वाले, इनके अन्न का जो द्विज भक्षण करता है वह चाद्रायण व्रत करे ।

सर्वांत्यजाना गमने भोजने संप्रवेशने ।
पराकेण विशुद्धिः स्याद् भगवानत्रिरब्रवीत् ।।१७१।।

संपूर्ण अंत्यजों के संग गमन (जाना) और भोजन करने के लिए सग बैठने पर पराक व्रत से शुद्धि होती है यह भगवान अत्रि ने कहा है ।

चांडालभांडे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ।
गोमूत्रयावकाहारः सप्तषट्त्रिशद्हान्यपि ।।१७२।।

चांडाल के पात्र में जो जल है उसे पीकर द्विजों में उत्तम ४३ दिन तक गोमूत्र और जौ को खाकर शुद्ध होता है ।

संस्पृष्ट यस्तु पक्वान्नमंत्यजैर्वाऽप्युदक्यया ।
अज्ञानाद् ब्राह्मणोऽश्नीयात् प्राजापत्यार्द्धमाचरेत् ।।१७३।।

अंत्यजा अथवा ऋतुवाली (स्त्री) के स्पर्श किये हुए पक्वान्न को यदि अज्ञान से ब्राह्मण भक्षण करले तो आधे प्राजापत्य व्रत को करे ।

चांडालान्न यदा भुंक्ते चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः ।
चांद्रायण चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् ।।१७३।।
षट्रात्रमाचरेद्वैश्यः पंचगव्यं तथैव च ।
त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दान दत्वा विशुद्ध्यति ।।१७५।।

यदि चांडाल के अन्न को चारों वर्णों के लोग खालें तो उनका क्रम से यह प्रायश्चित है कि ब्राह्मण चांद्रायणव्रत, और क्षत्रिय सांतपन करे छः दिन तक वैश्य पांचगव्य का भक्षण करे और शूद्र तीन दिन तक वैसा करके और शूद्र दान देकर भी शुद्ध हो जाता है ।

ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसस्पृशः ।
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ भवेत् ॥१७६॥

जो ब्राह्मण वृक्ष के ऊपर चढ़ा हो और चांडाल उस वृक्ष के मूल को (जड़) छू रहा हो और ब्राह्मण उस वृक्ष के फल को खा रहा हो तो ऐसी अवस्था में प्रायश्चित कैसे हो ?

ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।
नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥१७७॥

ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर वस्त्रों सहित स्नान करके और दिन में उपवास करके रात्रि को भोजन करके और घृत को खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है ।

एकवृक्षसमारूढश्चांडालो ब्राह्मणस्तथा ।
फलान्यत्ति स्थितं तत्र प्रायश्चित्तं कथ भवेत् ॥१७८॥

यदि चांडाल तथा ब्राह्मण एक वृक्ष पर चढ़े हुए वृक्ष के फलों को खा रहे हों तो वहा प्रायश्चित कैसे हो ?

ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासः स्नानमाचरेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥१७९॥

ब्राह्मणों की आज्ञा से सचैलस्नान करके, और एक रात्रि तथा दिन उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ।

एकशाखासमारूढश्चांडालो ब्राह्मणो यदा ।
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ भवेत् ॥१८०॥

यदि एक ही शाखा पर चढ़े हुए ब्राह्मण और चांडाल फलों को खा रहे हों तो ऐसे स्थल में प्रायश्चित कैसे हो ?

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।
स्त्रिया म्लेच्छस्य संपर्कात् शुद्धिः सातपने तथा ॥१८१॥
तप्तकृच्छ्र पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाऽभिधीयते ।

वह तीन रात्रि तक उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है और म्लेच्छ की स्त्री के साथ संग करने पर सांतपन कृच्छ्र करने से उसकी शुद्धि होती है । फिर तप्त कृच्छ्र करे यह शुद्धि शास्त्र में कही गयी है ।

सम्वर्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य सगताम् ।।१८२।।
सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ।
केशकीटनखस्नायु अस्थिकंटकमेव च ।।१८३।।
स्नात्वा नद्युदके स्नात्वा घृत प्राश्य विशुद्ध्यति ।

म्लेच्छ ने किया है संग जिसका ऐसी अपनी भार्या के संग भोग करके ऐसे रहना चाहिए, वह सचैल स्नान करे और केवल घृत का भक्षण करे। कीट, नख स्नायु, अस्थि (हाड) काटे—इनका स्पर्श करके वह नदी के जल में स्नान औ· घृत का शुद्ध होता है।

सगृहीतामपत्यार्थमन्यैरपि तथा पुन. ।।१८४।।
चांडालम्लेच्छश्वपचकपालव्रतधारिण: ।
अकामत्त· स्त्रियो गत्वा पराकेण विशुद्ध्यति ।।१८५।।

संतान के लिये इतर मनुष्यो से ग्रहण की गई स्त्री को और इसी प्रकार चांडाल, म्लेच्छ, श्वपच, कपालव्रत के धारण करने वाले (अघोरी) की इच्छा के बिना इनकी स्त्रियों के साथ संग करके पराक व्रत से विशेषकर शुद्धि होती है।

कामतस्तु प्रसूतो वा तत्समो नात्र संशय: ।
स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ।।१८६।।

इच्छा से पूर्वोक्त स्त्रियों के साथ संग करके अथवा संतान के उत्पन्न होने पर ये पुत्रादि उन स्त्रियों के ही समान जाति वाले होते है इसमें संशय नहीं है क्योंकि वह पुरुष ही गर्भ रूप होकर उत्पन्न होता है।

तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विण्मूत्र कुरुते द्विज: ।
तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चांडालं स्पृशते द्विज. ।।१८७
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।

जो द्विज तेल अथवा घृत से उबटना करके शौच को जाता है अथवा लघुशंका करता है अथवा चांडाल का स्पर्श करता है वह दिन रात्रि का एक उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है।

मत्स्यास्थिजवुकास्थीनि नखशुक्तिकपर्द्दिका: ।।१८८

होमतप्तघृतं पीत्वा तत्क्षणादेव नश्यति ।

मत्स्य की और गीदड़ की अस्थि, नख, सींपी, और कोड़ी—इनके स्पर्श से जो दोष होता है वह होम के उष्ण घी के पीने से उसी क्षण नष्ट हो जाता है ।

गोकुले कदुशालायां तैलचक्रेक्षुचक्रयोः ।।१९०।।
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ।
न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणोऽवेदकर्मणा ।।१९१।।

गौओं के कुल, कंदुशाला (भाड़) में, तेल निकालने के (कोल्हू) में और गन्ने ` यंत्र (कोल्हू) में, स्त्रियों और रोग की अवस्था में शुद्धता का विचार नहीं करना चाहिए अर्थात् ये सर्वदा शुद्ध है । स्त्री जारपने से और ब्राह्मण वेदोक्त कर्म (हिंसा आदि) के करने से दूषित नही होते है ।

नाऽऽपो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ।
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववह्निभि ।।१९२।।
भुंजते मानवाः पश्चान्न ता दुष्यति कर्हिचित् ।

मूत्र और विष्ठा के पड़ने से जल (ताडग आदि) और कर्म किया है जिस में ऐसी अग्नि आदि दूषित नहीं होते हैं । प्रथम स्त्रियां, चंद्रमा, गंधर्व, अग्नि, इन देवताओं ने भोगी इनके बाद मनुष्य इनको भोगते हैं और कभी भी यह स्त्री दूषित नहीं होती है ।

असवर्णैस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते ।।१९३।।
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्धर्म न मुंचति ।
विमुक्ते तु ततःशल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ।।१९४।।
तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं कांचनं यथा ।

यदि असवर्ण (भिन्न जाति का) गर्भ स्त्री की योनि में सींचा जाये तो, वह स्त्री तब तक अशुद्ध होती है जब तक गर्भ को न त्यागे और गर्भ त्याग कर दु:खकी निवृत्ति होने पर यदि रज दिखाई दे (मासिक धर्म हो) तब वह स्त्री इस प्रकार शुद्ध होती है जैसा निर्मल सोना ।

स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ।।१९५।।
बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथाऽपि वा ।
न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ।।१९६।।

ऋतुकाल उपासीत पुण्यकालेन शुद्ध्यति ।

जो स्वयं किसी मनुष्य के समीप प्राप्त हुई हो अथवा किसी ने छल ली हो अथवा बल अथवा चोरी से भोगी गई हो, ऐसी दूषित स्त्री का त्याग न करे क्योंकि स्त्री की इच्छा के अनुसार यह नहीं किया गया है । ऋतु के समय (रजके दीखने) से १६ सोलह दिन तक उस स्त्री का संग और फिर वह रज के समय शुद्ध हो जाती है ।

रजकश्चर्मकारश्च नटी बुरुड एव च ।।१९७।।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ।
एषां गत्वा स्त्रियो मोहाद् भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।।१९८।।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्देवद्वयम् ।

धोबी, चमार, नट, बुरट (जो बांस की डलियां बनाते हैं), धीमर, मव, कलाल, भील, ये सात अंत्यज कहे गये हैं । इन जातियोंकी स्त्रियों को भोग कर और इन जातियों में भोजन करके और इन से प्रतिग्रह (दान) को लेकर यदि जान बूझकर पूर्वोक्त तीनों कर्म किये गये हों तो एक वर्ष तक कृच्छ्र और अज्ञान से दो वर्ष तक कृच्छ्र करे ।

सकृद्भुक्त्वा तु या नारी म्लेच्छैर्या पापकर्मभिः।।१९९।।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत् ऋतुप्रस्रवणेन तु ।

जो स्त्री म्लेच्छ पापकर्मियों से एक बार भोगी हो, व्रत से और ऋतु (मासिक धर्म) के होने से शुद्ध होती है ।

बलाद्धृता स्वयं वाऽपि परप्रेरितया यदि ।।२००।।
सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।

वह स्त्री प्राजापत्य बल से पकड़ी गई अथवा स्वयं गई हो अथवा किसी के कहने से गई हो और एक बार ही भोगी हो तो(वह स्त्री) प्राजापत्य व्रत करने से शुद्ध होती है ।

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ।।२०१।।
न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन ।

जिन स्त्रियों ने बहुत दिनों के तप (व्रत)का प्रारंभ किया हो और उनको यदि मासिक धर्म हो जाय तो उससे उन स्त्रियों का वह व्रत कदाचित् भी नष्ट नहीं होगा ।

मद्यसस्पृष्टकु भेषु यत्तोय पिबति द्विजः ॥२०२॥
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत् पुनः सस्कारमर्हति ।

मदिरा का स्पर्श जिसमें हुआ हो ऐसे घड़े के जल को यदि द्विज पीले तो चौथाई कृच्छ्र करने से शुद्ध होता है और फिर संस्कार के योग्य होता है ।

अन्त्यजस्य तु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥२०३॥
उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ।

अंत्यजों के जो वृक्ष हों और उन पर बहुत फल पुष्प आते हों, तो उन वृक्षों के पुष्प और फलों के भोगने का दोष नहीं है ।

चांडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥२०४॥
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत आपस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ।

चांडाल के स्पर्श किये हुए जल को जो द्विज पीता है, कृच्छ्र से शुद्ध होता है— यह आपस्तंब मुनि ने कहा है ।

श्लेष्मोपानहविण्मूत्रस्त्रीरजोमद्यमेव च ॥२०५॥
एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ।

कफ, विष्ठा, मूत्र, स्त्री का रज, और मदिरा, इनसे भ्रष्ट हुए कूप के जल को पीकर कैसे विधि करे ?

एकं द्व्यहं त्र्यहंचैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥२०६॥
प्रायश्चितं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ।
सद्यो वांते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥२०७॥

ब्राह्मण एक दिन, क्षत्रिय दो दिन, वैश्य तीन दिन व्रत करने से शुद्ध होते हैं । फिर प्रायश्चित यह है कि शूद्रनक्त (रात्रि को ही भोजन) करे और उसी समय सचैल स्नान करे ।

पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् ।
शिरःकंठोरुपादांश्च सुरया यस्तु लिप्यते ॥२०८॥
दशषट्त्रितयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ।

पर्युषित (बासी) उक्त कूप का जल हो तो एक रात दिन, और अधिक हो तो तीन दिन उपवास करे । शिर, कंठ, जांघ, पैर इनको जो मदिरा से लीप ले तो दश, छः, तीन या एक दिन उपवास करे ।

अत्राप्युदाहरंति

प्रमादान्मद्यप सुरां सकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ।
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥२०९॥

इस विषय में अन्य ऋषि भी कहते हैं कि प्रमाद से मदिरा के पीने वाले, द्विजों में उत्तम मनुष्य एक बार भी सुरा पीकर गोमूत्र और जौ को खाता हुआ दशरात्र में शुद्ध होता है ।

मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ।
न देवा भुंजते तत्र न पिवंति हविर्जलम् ॥२१०॥

द्विजों में उत्तम ! मदिरा पीने वाले और निषाद के यहां भोजन करने वाले भी गोमूत्र और जौ को खाते हुआ दशरात्र में शुद्ध होता है । और उनके यहां देवता हवि (साकल्प) को नहीं खाते और न जल पीते हैं ।

चितिभ्रष्टा तु या नारी ऋतु भ्रष्टा च व्याधितः ।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणान् भोजयेद्दश ॥२११।

जो स्त्री चिति (ज्ञान) से भ्रष्ट (बावली) और व्याधि के द्वारा मासिक धर्म से भ्रष्ट हो गई हो वह स्त्री प्राजापत्यव्रत और ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्ध होती है ।

ये च प्रव्रजिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलावहाः ॥२१२॥
अनाशकान्निवर्त्तते चिकीर्षंति गृहस्थितिम् ।
धारयेत् त्रीणि कृच्छ्राणि चाद्रायणमथापि वा ॥२१३॥
जातकर्मादिक प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ।

जो ब्राह्मण संन्यास की अग्नि और जल में बहते हुए अर्थात् संन्यासियों के धर्म में आरूढ हुए संन्यासी हो गए हैं और फिर अशक्ति (असामर्थ्य) से संन्यासी के धर्म से निवृत्त होते हैं और घर मे स्थिति की इच्छा करते हैं वे तीन कृच्छ्र अथवा चांद्रायण व्रत को धारण कर और जो जात कर्म आदि संस्कार शास्त्र में कहे गये है उनके फिर करने के योग्य होते हैं ।

नाशौचं नोदकं नाश्रु नीपवादानुकंपने ॥२१४॥
ब्रह्मदंडहतानां तु न कार्यं कटधारणम् ।

स्नेहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ।।२१५।।
गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकं विशोधनम् ।

मृतक की पिंजरी का उठाना, इनका संग न करे। जिनको ब्राह्मण ने शाप दिया हो, और जो स्नेह कर के किसी भय से पूर्वोक्त शौच आदि को करते हैं, शौच और जल का दान, शीघ्र निंदा, दया गोमूत्र और जौ को खाते हुए उनका एक कृच्छ्र से शुद्धि होती है।

वृद्धःशौचस्मृतेर्लुप्तःप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ।।२१६।।
आत्मान घात्मयेद्यस्तुभृग्वग्न्यनशनाबुभिः ।
तस्य त्रिरात्रमाशौच द्वितीये त्वस्थिसंचयम् ।।२१७।।

जो पुरुष वृद्ध हो और अशुद्ध हो और जिसकी स्मरण शक्ति का लोप हो गया हो और वैद्यों की चिकित्सा भी जिसने त्याग दी हो, और वह पशु (वृष आदि), अग्नि, भोजन का त्याग, और जल, इनसे अपने आत्मघात करे तो उस मनुष्य का अशौच (सूतक) तीन रात्र का होता है और दूसरे दिन अस्थि सचय होता है ।

तृतीये तूदक कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ।
यस्यैकाऽपि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ।।२१८।।
मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः ।
अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ।।२१९।।
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ।
अष्टागव धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ।।२२०।।

तीसरे दिन जलदान करके चौथे दिन श्राद्ध करे। जिसके घर में एक भी गौ बछड़े वाली अर्थात् दूध देती न हो उसके घर मंगल कहां ? और अंधकार का नाश कहां ? बहुत दूध निकालने और बहुत जोतने और नाक के छेदने से, नदी अथवा पर्वत में रोकने से जो पशु की मृत्यु हो जाये तो जितना उसे मारने का प्रायश्चित कहा गया है उसका चौथाई प्रायश्चित करे। आठ बैल वाला हल धर्म का है और छ. बैल का हल व्यवहार का है ।

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गवबध्यकृत् ।
द्विगवं वाहयेत्पाद मध्याह्नं तु चतुर्गवम् ।।२२१।।

चार बैल वाला हल नृशंसों (हत्यारों) का है और दो बैल का हल तो बैलो को मारने वाला है। दो बैलों के हल को (प्रात काल) चौथाई दिन मे और चार बैल के हल को मध्याह्न तक (आधे दिन) चलाये।

षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिःस्मृतः।
काष्ठलोष्ट्रशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सांतपनचरेत् ॥२२२॥

छः बैल के हल को तीन पाव (छः पहर) चलाये और आठ बैल के हल को संपूर्ण दिन चलाना धर्म-शास्त्र मे कहा गया है। लकड़ी, ढेला, पत्थर, इनसे जो गौ की हत्या करे, वह सांतपन कृच्छ्र करे।

प्राजापत्यं चरेन्मृत्सा अतिकृच्छ्रं तु आयसैः।
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥२२३॥
अनुडुत्सहितांगां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्।

मुष्टि (मुक्के) से जो गोहत्या करे वह प्राजापत्य व्रत करे और लोहे के शस्त्रों से जो करे वह अतिकृच्छव्रत करे और प्रायश्चित करने के अनंतर ब्राह्मणों को भोजन कराये। और बैल सहित एक गौ दक्षिणा ब्राह्मण को दे।

शरभोष्ट्रहयान्नागानसिंहशार्दूलगर्दभान् ।२२४॥
हत्वा च शूद्रहत्यायाःप्रायश्चित्तं विधीयते।
मार्जारगोधानकुलमंडूकाश्च पतत्रिणः ॥२२५॥
हत्वा त्र्यहं पिवेत्क्षीरं कृच्छ्रं वापादिकं चरेत्।

शरभ ऊंट, घोड़ा, हाथी, सिंह, शार्दूल, और, इनकी हत्या करके शूद्र की हत्या का जो प्रायश्चित है उसे करे। विलाव, गोह, नेवले, मेंडक, पक्षी, को मार कर तीन दीन तक दूध पीये और मारने पर जो कृच्छ्र कहा गया है उसे करे।

चांडालस्य चसंस्मृष्ठं विण्मूत्रस्पृष्टमेव वा ॥२२६॥
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादभुक्तोच्छिष्ट समाचरेत्।

चांडाल से स्पर्श किये गये और विष्ठा और मूत्र से उच्छिष्ट को खाकर, तीन रात्रि विशुद्ध होकर उच्छिष्ट भक्षण में जो प्रायश्चित है उसे करे।

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥२२७॥
उद्धरेत्षट्शतं पूर्णं पंचगव्येन शुद्ध्यति।
अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्वानादिदूषिते ॥२२८॥

उद्धरेदुदकं सर्वंशोधनं परिमार्जनम् ।।२२९।।

अशुद्ध पदार्थ से दूषित हुए बावड़ी, कूप और ताल इन का शोधन यह है कि भरे हुए छ सौ (६००) घड़े निकाले और पंचगव्य से (मनुष्य) शुद्ध होते हैं। अस्थि, चर्म जिन में पड़ गये हों और गधे, कुत्ते से जो दूषित हो गए हों तो संपूर्ण जल निकालने और इन्हें स्वच्छ (सफा) करे।

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यंत्राकरे कारुकशिल्पिहस्ते ।
स्त्रीबालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि।।२३०

गौ को जिस पात्र में दुहते हों उसका और चामके पात्र का जो जल है, और यंत्र का और बढ़ई, कारीगर और वस्त्र के काढने वाले के हाथ का जो जल है, स्त्री, बालक, और वृद्ध के आचरित (छूए हुऐ) और प्रत्यक्ष न देखे गये जो जल हैं वे संपूर्ण शुद्ध है।

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेनानिवेशे भवनस्य दाहे ।
आरब्धयज्ञेषु महोत्सवेषु तथैव दोषा न विकल्पनीयाः ।।२३१।।

परन्तु परकोटाकी रोक में, विषम (संकट के) देश में, सेना के स्थान में, भवन में, अग्नि लगने के समय, असंपूर्ण यज्ञ, बड़े उत्सवों में दोषों की शंका नहीं करनी चाहिए।

प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च ।
श्वपाकचांडालपरिग्रहे तु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ।।२३२।।

प्याउओं में, वन में, हरट के कूप में, द्रोणी (एक जल का बडा पात्र जो कुएँ के पास रक्खा रहता है) में और कोश (हौद) से निकला जल—ये सब जल शुद्ध हैं। श्वपाक (जो कुत्ते को खाते हैं) और चांडाल, इन के घर जल पी कर पंचगव्य पीने से शुद्धि होती है।

रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात् कुंभे सांतपनं तथा ।।२३३।।
विलन्नभिन्नशवं यत् स्यादज्ञानादुदकं पिबेत ।
प्रायश्चित्तं चरेत् पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ।।२३४।।

वीर्य, विष्ठा, मूत्र, इनका जिस में स्पर्श हो ऐसे कूप के जल को यदि पीले तो त्रिरात्र में शुद्धि होती है और वीर्य, विष्ठा, मूत्र जिसमें मिले हैं उस घड़े के जल को जो पीता वह सांतपन व्रत से शुद्ध होता है। शव (मुर्दे) से

जल मलीन हो जाय तो अज्ञान से उस जलको पीकर द्विजों में उत्तम ! तप्त कृच्छ्र प्रायश्चित करे।

उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीर मानुषीक्षीरमेव च ।
प्रायश्चित्तं चरेत् पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥२३५॥

ऊंटनी, गधी और किसी स्त्री के दूध को पीकर द्विजों में उत्तम तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित करे।

वर्णवाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तम ।
पंचरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥२३६॥
शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थ महीगतम् ।
चर्मभांडैस्तु धाराभिस्तथा यंत्रोद्धृत जलम् ॥२३७॥

यदि उच्छिष्ट, द्विजों में उत्तम, को वर्ण वाह्य (यवन आदि) स्पर्श करें तो पांच रात्र तक उपवास करके पचगव्य पीने से शुद्ध होते हैं। जिस जल से गौ तृप्त हो सके ऐसा पृथ्वी पर टिका निर्मल जल शुद्ध है। चमड़े के पात्र का जल धारा पड़ने से और यंत्र से निकाला जल शुद्ध है।

चंडालेन तु संस्पृष्टः (ष्टे) स्नानमेव विधीयते ।
उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥२३८॥

चांडाल के स्पर्श से स्नान मात्र करे। यदि उच्छिष्ट को चांडाल स्पर्श करे तो तीन रात्र में शुद्ध होता है।

आकराहृतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ।
आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम् ॥२३९॥

आकर (खान) से निकली वस्तु कभी भी अशुद्ध नहीं होती है। संपूर्ण आकर, मदिरा के स्थान को छोड़कर शुद्ध है।

भ्रष्टाभ्रष्टयवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ।
खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्भ्रष्टतरं शुचिः ॥२४०॥

भुने हुए जौ और चने भी शुद्ध कहे गये हैं। खजूर और कपूर और जो भुना पदार्थ हो वह शुद्ध है।

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ।
गोकुलेकदुशालाया तैलयंत्रेक्षुयंत्रयोः ।

अदुष्टा॰ सततं धारावातोद्धूताश्च रेणवः ॥२४१॥

स्त्रियां बिना आचरण किये शौच विचारने योग्य नहीं है ।

गौओं के कुल मे, कंदुशाला (भाड) में, तेल और ईख के कोल्हू में शुद्धि का विचार नहीं । निरंतर पड़ती हुई धारा और वायु से उड़ी रेणु (धूल) ये भी पवित्र हैं।

बहूनामेव(क) लग्नानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ।
अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथंचन ॥२४२॥

एक वस्त्र आदि पर बैठे हुए मनुष्यों के मध्य में जो एक अशुद्ध हो जाय तो एक ही अशुद्ध होता है इतर मनुष्य कदाचित् भी अशुद्ध नहीं होते हैं ।

एकपंक्त्युपविष्टाना भोजनेषु पृथक् पृथक् ।
यद्येको लभते नीली सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ॥२४३॥

भोजन करने के समय एक पंक्ति मे पृथक-पृथक बैठे हुए मनुष्यो के बीच में यदि एक मनुष्य के देह में नीली का स्पर्श हो जाय तो वे सब अशुद्ध होते हैं ।

यस्य पटे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ।
त्रिरात्र तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिन॰ ॥२४४॥

और पूर्वोक्त एक पंक्ति में बैठे हुओं के बीच मे जिस के वस्त्र अथवा पट वस्त्र (डुपट्टा) पर नील का रंग दीख जाय तो उसे तीन रात्रका उपवास और शेष मनुष्यों को एक-एक उपवास करना चाहिए ।

आदित्येऽस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि ।
भगवन् ! केन शुद्धि॰ स्यात्ततो ब्रूहि तपोधन ॥२४५॥

सूर्य के छिपने के अनंतर रात्रि में यदि स्पर्श करने के अयोग्य वस्तु का स्पर्श कर ले तो हे भगवन् ! किससे शुद्धि हो उस शुद्धि के विषय में कहिए ।

आदित्येऽस्तमिते रात्रौ स्पृशन् हीनं दिवा जलम् ।
तेनैव सर्वं शुद्धिः स्यात् शवस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥२४६॥

सूर्य के छिपने के अनंतर रात्रि में स्पर्श हीन निर्मल जो दिन का जल हो उसी से शुद्धि होती है किन्तु जिसने शव का स्पर्श किया हो उसकी शुद्धि नहीं होती है।

देशंकालं वयः शक्ति पापं चावेक्ष्येत्त (श्ययत्न) त॰ ।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्य स्याद्यस्य चोक्ता न निष्कृतिः॥२४७॥

और देश, समय, सामर्थ्य और पाप को भी यथार्थ देखकर उस पाप के प्रायश्चित की कल्पना करले जिस पाप का प्रायश्चित शास्त्र में नहीं कहा गया हो।

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु अस्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते ॥२४८॥

देवताओं की यात्रा, विवाह, यज्ञ का प्रकरण, और संपूर्ण उत्सवों में स्पर्श करने के योग्य और अयोग्य नही होता है।

आलनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधिसक्तवः।
स्नेहपक्वं च तक्रं च शूद्रास्यापि न दूष्यति ॥२४९॥

आल, नाल (चने आदि की खटाई) दूध, कंदुक (भाड़) दही, सक्तु, स्नेह (घी, तेल) से पका हुआ पदार्थ, और मठा, ये शूद्र के भी दूषित नहीं हैं।

आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः।
अंत्यभाडस्थिता एते निष्क्रांताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥२५०॥

गीला मांस, घृत, तेल, फल से उत्पन्न हुए स्नेह—अंत्यज के पात्र में स्थित भी, ये निकालने से शुद्ध हो जाते हैं।

अज्ञानात् पिवते तोयं ब्राह्मण शूद्रजातिषु।
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पचगव्येन शुद्ध्यति ॥२५१॥

जो ब्राह्मण शूद्र जातियों का जल अज्ञान से पीले तो दिन रात्र का उपवास और पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है।

आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान् भवेत्।
अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥२५२॥
योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते।
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि सः स्मृतः ॥२५३।

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण महापातकी हो जाय तो जल में होम के पात्रों को फेंक कर फिर अग्निहोत्र को ग्रहण करे। जो विवाह की अग्नि को ग्रहण करके अर्थात् अग्निहोत्र को लेकर अपने को गृहस्थ मानता है अर्थात् उस अग्नि की रक्षा नहीं करता इससे उसका अन्न नहीं खाना चाहिए अतः ऋषियों ने उसे वृथापाक कहा है।

वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्त चरेद्द्विजः ।
प्राणानप्सु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥२५४॥

वृथापाक के अन्न जो द्विज खाले वह इस प्रायश्चित को करे वह जल के मध्य में तीन बार प्राणायाम करके और घृत को खा कर शुद्ध होता है।

वैदिके लौकिके वाऽपि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥२५५॥

वेद के मंत्रों से निकाली अथवा लोक की, जिसमें होम किया गया हो ऐसी अग्नि में अथवा जल में अथवा भूमि पर बलि वैश्वदेव को पांच हत्याओं को दूर करने के निमित्त करे ।

कनीयान् गुणवान् श्रेष्ठ· श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ।
पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद् बुध· ॥२५६॥

यदि ज्यष्ठ भाई निर्गुणी हो और छोटा गुणी हो तो ज्ञानी छोटा भाई जेठे से पहिले विवाह करके गृह्य अग्नि को धारण करे।

ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णीयादग्नि(यवीयकः)मग्रतः ।
नित्यं नित्य भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशय· ॥२५७॥

यदि ज्येष्ठ भाई निर्दोष हो और छोटा भाई अग्निहोत्र को ग्रहण कर ले तो प्रतिदिन उसे ब्रह्महत्या लगती है इसमें संशय नहीं है ।

महापातकसंस्पृष्ट· (ष्टे) स्नानमेव विधीयते ।
संस्पृष्टस्य यदा भुंक्ते स्नानमेव विधीयते ॥२५८॥

महापातकी ने जिसका स्पर्श किया हो वह, और महापातकी से स्पर्श किये हुये के भोजन को जिसने किया हो इन दोनों की स्नान मात्र करके शुद्धि होती है ।

पतितैः सह संसर्गं मासार्द्धं मासमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुद्ध्यति ॥२५९॥

पतित का संसर्ग जिसने पंद्रह दिन अथवा एक मास तक किया हो वह पंद्रह दिन तक गौ मूत्र और जौ को खाकर शुद्ध होता है ।

कृच्छ्रार्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ।
अविज्ञानाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥२६०॥

द्विजों में उत्तम पतित के अन्न को जान बूझ कर एक बार खाकर सांतपन कृच्छ्र व्रत करे ।

पतितान्नं यदा भुक्तं चांडालवेश्मनि ।
मासार्धन्तु पिवेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥२६१॥

यदि किसी ने पतितों का भोजन किया हो अथवा चांडाल के घर में भोजन किया हो तो वह पंद्रह दिन तक जल ही पीये—यह शातातप ऋषि ने कहा है।

गोब्राह्मणहतानां च पतिताना तथैव च ।
अग्निना न च संस्कारः शंखस्य वचनं यथा ॥२६२॥

शंख के वचनानुसार गौ और ब्राह्मणों से मारे गये पतितों का अग्नि से दाह नही करना चाहिए ।

यश्चाडालीं द्विजो गच्छेत् कथंचित् काममोहित. ।
त्रिभि. कृच्छ्रैर्विशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥२६३॥

यदि कामदेव से मोहित द्विज किसी प्रकार से चाडाली के संग गमन करे तो प्राजापत्य व्रत के अनन्तर तीन कृच्छ्र कर के शुद्ध होता है ।

पतिताच्चान्नमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि ।
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥२६४॥

पतित के अन्न को ग्रहण कर के अथवा खाकर ब्राह्मण उस अन्न के त्यागने पर अति कृच्छ व्रत करे ।

अंत्यहस्ताच्छवे क्षिप्तं काष्ठलोष्ट्रतृणानि च ।
न स्पृशेत्तु तथोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥२६५॥

अंत्यज के हाथ से फेके हुए काठ ढेले और तृणों को और अंत्यज के उच्छिष्ट को स्पर्श करके अहोरात्र का व्रत करे ।

चांडालं पतित म्लेच्छ मद्यभांडं रजस्वलाम् ।
द्विजः स्पृष्ट्वा न भुञ्जीत भुञ्जानो यदि संस्पृशेत् ॥२६६॥

अतः परं भुञ्जीत त्यक्त्वाऽन्नं स्नानमाचरेत् ।
ब्राह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥२६७॥

सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ।

चांडाल, पतित, म्लेच्छ, मदिरा का पात्र और रजस्वला, इनका स्पर्श कर के द्विज भोजन न करे, अर्थात उपवास करे। यदि भोजन करता हुआ द्विज पूर्वोक्तों का स्पर्श करे तो स्पर्श करने के अनंतर भोजन न करे और उस अन्न को त्यागकर स्नान करे और ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर तीन रात्र उपवास करे और घी से मिले जौ को खाकर शेष व्रत को समाप्त करे।

भुंजानः सस्पृशेद्यस्तु वायसं कुक्कुटं तथा ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टस्त्वहेन तु ॥२६८॥

यदि भोजन करता हुआ काक और मुर्गे का स्पर्श करले तो तीन रात्र में शुद्धि होती है। यदि उच्छिष्ट हुआ पूर्वोक्तो का स्पर्श करले तो एक दिन में शुद्ध होता है।

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ।
चांद्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥२६९॥

जो नैष्ठिक धर्म (यज्ञोपवीत और वेद को पढ़ कर गुरु की सेवा में ही जन्म भर रहना) में स्थित होकर फिर उस को छोड़ता है, वह एक मास भर चांद्रायण व्रत करे यह शातातप ऋषि ने कहा है।

पशुवेश्यभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ।
गवां गमने मनुप्रोक्त व्रतं चाद्रायणं चरेत् ॥२७०॥
अमानुषीषु गोवर्जमुदक्यायामयोनिषु ।

पशु और वेश्या के संग गमन करने से प्राजापत्य व्रत कहा गया है। गोओं के संग गमन (मैथुन) करके मनु के द्वारा कहे हुए चांद्रायण व्रत को करे।

रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्र सातपनंचरेत् ॥२७१॥
उदक्या सूतिकां वाऽपि अत्यजां स्पृशते यदि ।
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥२७२॥

और जल में वीर्य को सींच कर सांतपन कृच्छ्र करे। गौ से इतर पशु की योनि और चांडाली योनि से भिन्न (भूमि) चांडाली, सूतिका, और अंत्यज की स्त्री इनका यदि स्पर्श करे तो तीन रात्रि में शुद्धि होती है। यह पुरानी विधि है।

संसर्गं यदि गच्छेच्चेदुदक्याया तथाऽन्त्यजैः ।
प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २७३॥

एकारात्रंचरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ।
दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा स्मृत्यन्तरे ।।२७४।।

चांडाली और अन्त्यज-इनके संग जो ससर्ग को प्राप्त हो जाय वह इस प्रायश्चित के योग्य जानना चाहिए। पहिले स्नान करे फिर एक रात्र गोमूत्र और तीन दिन गोमय का भक्षण करे। चांडाली, अंत्यजा, इनके जलपान और मैथुन करने में पांच अथवा सात दिन पूर्वोक्त प्रायश्चित करे यह अन्य स्मृतियों में लिखा है ।

अंगीकारेण ज्ञानीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ।
दंतकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः ।।२७५।।
भोजने तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ।।

ज्ञानी पुरुषों के अंगीकार और ब्राह्मणों के अनुग्रह से जो महापातिकी भी पापी है वे भी पवित्र हो जाते हैं और निषिद्ध चांडालादिकों के भोजन में जो आसक्त है वे प्राजापत्य व्रत करें। निषिद्धों को दिये दंतधावन में जो प्रसक्त है वे एक रात दिन प्रायश्चित करे। यह शौच की विधि कही गई है ।

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचांण्डालवायसैः ।
निराहारा भवेत्तावत् स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ।।२७६।।

जिस रजस्वला स्त्री को कुत्ता, चांडाल, काक स्पर्श करले वह रजकी शुद्धि तक निराहार रहे और शुद्ध होने के समय(चौथे दिन) स्नान करके शुद्ध हो जाती है ।

रजस्वला यदा स्पृष्टा उष्ट्रजबुकशबरैः ।
पंचरात्र निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।।२७७।।

यदि रजस्वला स्त्री को ऊंट, गीदड़, शंवर (बड़ाशिगा) स्पर्श करले तो पांच रात्रि तक निराहार रहने से और फिर पंचगव्य से शुद्ध होती है ।

स्पृ(ष्टं)ष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ।
एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।।२७८।।

यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने ब्राह्मणी रजस्वला का स्पर्श कर लिया हो तो एक रात्र निराहार रह कर पंचगव्य से शुद्ध होती है ।

स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या ।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद् व्यासस्य वचनं यथा ।।२७९।।

यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने क्षत्रिया रजस्वला का स्पर्श कर लिया हो तो व्यास के वचन के अनुसार तीन रात्र में शुद्ध होती है।

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्य ब्राह्मण्यावैश्यसंभवा ।
चतूरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥२८०॥

यदि ब्राह्मणी रजस्वला वैश्य जाति की रजस्वला का स्पर्श कर ले तो चार रात्र निराहार रह कर पचगव्य से शुद्ध होती है।

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ।
षट्रात्रेण विशुद्धिः स्यात् ब्राह्मणीकामकारतः ॥२८१॥

यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने शूद्राणी की रजस्वला का स्पर्श कर लिया हो तो छ. रात्र में शुद्ध होती है और पूर्वोक्त रजस्वला ब्राह्मणी अपनी इच्छा के अनुसार व्रत आदि कर के शुद्ध होती है।

अकामतश्चरेदेवं ब्राह्मणी सर्वत. स्पृशेत् ।
चतुर्णामपि वर्णाना शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥२८२॥

औरों की इच्छा के अनुसार ब्राह्मणी ायश्चित करे और फिर सब का स्पर्श करे। चारों वर्णों की यह शुद्धि कही गई है।

उच्छिष्टेन तु सस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ।
भोजने मूत्रचारे च शखस्य वचनं यथा ॥२८३॥
स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शे जपहोमौ तु क्षत्रिये ।
वैश्ये नक्तञ्च कुर्वीति शूद्रे चैव उपोषणम् ॥२८४॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ने उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्श कर लिया हो तो भोजन के उच्छिष्ट में अथवा मूत्र के त्याग के उच्छिष्ट में शंखऋषि के वचनानुसार ब्राह्मण के स्पर्श में स्नान और क्षत्रिय स्पर्श में जप होम कहे गये है। वैश्य नक्त व्रत करे और शूद्र एक उपवास करे।

चर्मको रजको वैण्यो धीवरो नटकस्तथा ।
एतान् स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचामेत् प्रयतोऽपिसन् ॥२८५॥
एतैः स्पृष्टो द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ।
उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद्घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥२८६॥

चमार, धोबी, वैण्य (वेश्या का पुत्र), धीवर, और नट इन का अज्ञान से ब्राह्मण स्पर्श करके सावधान होकर आचमन करे यदि ये ब्राह्मण का स्पर्श

करलें तो एक रात्र दुग्ध पान करे। और यदि पूर्वोक्त चमार आदि उच्छिष्ट हुए ब्राह्मण का स्पर्श करले तो स्नान करे और घृत खाकर शुद्ध हो।

यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥२८७॥
अभिशस्तो द्विजोऽरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्।
मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा ॥२८८॥

यदि श्वपाक की छाया में ब्राह्मण जो ब्राह्मण अभिशस्त (कलंकित) हो वह बन में जाकर ब्रह्म हत्या का व्रत करे। मास तक उपवास करे अथवा चांद्रायण व्रत करे।

वृथा मिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत्।
अब्भक्षो द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्ध्यति ॥२८९॥

यदि वृथा ही (झूठा) हिंसा का दोष लगा हो तो ब्रह्महत्या का व्रत करे। बारह दिन जल का ही भक्षण करके पराक व्रत से शुद्ध होता है।

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्वा व्रतं चरेत्।
निर्गुणं सगुणो हत्वापराकं व्रतमाचरेत् ॥२९०॥

शठ ब्राह्मण को हत्या कर शूद्र की हत्या का व्रत करे। गुणी ब्राह्मण निर्गुण (मूर्ख) को मारकर पराक व्रत करे।

उपपातकसंयुक्तो मानवो म्रियते यदि।
तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥२९१॥

यदि जिस को उपपातक लगा हो वह मनुष्य मर जाय तो उस का संस्कार करने वाला दो प्राजापत्य करे।

प्रभु जानोऽतिसस्नेहं कदाचित् स्पृशते द्विजः।
त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्नि. स्नेहमथ वा चरेत् ॥२९२॥

अत्यंत स्नेह सहित पदार्थ को भक्षण करते हुए ब्राह्मण को कदाचित कोई स्पर्श करले तो तीन रात्र तक व्रत करे अथवा रूखा भोजन करे।

विडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वाश्वनकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्राह्मी सुवर्च्चसम् ॥२९३॥

विलाव, काक, कुत्ता, नेवले के उच्छिष्ट को भक्षण करके और जिस में केश में, कीट पड़े हों उसे खाकर ब्राह्मी औषधि को पीये।

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ।
स्नात्वा विप्रो जितग्रासःप्राणायामेन शुद्ध्यति ॥२९४॥

अपनी इच्छा से ऊंट, गधा, इन के यान (सवारी) पर बैठने पर ब्राह्मण स्नान और सूक्ष्म भोजन करके प्राणायाम से शुद्ध होता है।

सव्याहृती सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रि पठेदा(वा)यतःप्राण.प्राणायामः स उच्यते ॥२९५॥

सात व्याहृति (भू आदि) और शिर मंत्र इन सहित गायत्री का जप करे। प्राणो को रोक कर तीन बार जो पढ़े उसे प्राणायाम कहते हैं।

सकृद्द्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ।
क्षीरमष्टगुणं देयं पंचगव्ये तथा दधि ॥२९६॥

गोबर से दूना गोमूत्र और चौगुना घी और आठ गुना दूध और आठ ही गुना दही डाले।

पंचगव्य पिवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरा पिवेत् ।
उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरम् ॥२९७॥

यदि शूद्र उक्त पंचगव्य को पीये और ब्राह्मण मदिरा को पीये तो वे दोनों तुल्य दोष के भागी हैं और चिर काल तक नरक में बसते है।

अजा गावो महिष्यश्च अमेध्य भक्षयंति याः ।
दुग्धं हव्ये च कव्ये च गोमयं न विलेपयेत् ॥२९८॥

यदि बकरी, गौ, और भैस अशुद्ध वस्तु को खाती हों, तो हव्य और कव्य में उनका दूध न ले और उनके गोबर से नहीं लीपे।

ऊनस्तनीमधोकौ वा या चान्या स्तनपायिनी ।
तासां दुग्धं न होतव्य हुतं चैवाहुतं भवेत् ॥२९९॥

जिस के थन छोटे हों अथवा चार से अधिक हो, जो रोगी हो और जो अपने स्तन को स्वयं पीती हो, इन के दूध से होम न करे यदि करें तो होम किया हुआ बिना होम किए के समान हो जाता है।

ब्राह्मौदने च सोमे च सीमतोन्नयने तथा ।
जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥३००॥

ब्राह्मौदन (जो यज्ञोपवीत के समय चावल बनते हैं) सोम यज्ञ, सीमन्तोन्नयन इन में और जात कर्म के श्राद्ध और नवक श्राद्ध में भोजन करके चांद्रायण व्रत करें।

राजान्नं हस्ते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
स्वसुतान्नं च यो भुंक्ते स भुंक्तेपृथिवीमलम् ॥३०१॥

राजा का अन्न तेज को और शूद्र का अन्न ब्रह्म तेज को हरता है। जो अपनी लड़की के अन्न को खाता है वह पृथिवी के मल को खाता है।

स्वसुता अग्रजा तावन्नाश्नीयात्तद्गृहे पिता ।
अन्नं भुंक्ते तु यो मोहात्पूयं नरकं व्रजेत् ॥३०२॥

जिस लड़की के सतान न हुई हो उसके घर में भी पिता न खाये। और जो लड़की के अन्न को छल से खाता है वह पूय नरक में जाता है।

अधीत्य चतुरो वेदान् सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः ॥३०३॥

चार वेदों को पढ़कर संपूर्ण शास्त्रों के अर्थ के तत्त्व को जानने वाला पुरुष राजा के घर में भोजन करके विष्ठा में कीड़ा होता है।

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ।
पतंति पितरस्तस्य यो भुंक्तेऽनापदि द्विजः ॥३०४॥

नव दिन का श्राद्ध त्रिपक्ष का श्राद्ध, छेमाही का श्राद्ध, मासिक श्राद्ध और वार्षिक श्राद्ध, इन श्राद्धों में आपत्ति के बिना जो ब्राह्मण भोजन करता है उसके पितर नरक में पड़ते हैं।

चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ।
त्रिपक्षे चैव कृच्छ्रः स्यात् षण्मासे कृच्छ्रमेव च ।
आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥३०५॥

नव दिन का श्राद्ध मे चांद्रायण, मासिक श्राद्ध में पराक, त्रिपक्ष (दो मास) के और छेमाही के श्राद्ध में कृच्छ्र और पहले वार्षिक में पाद कृच्छ्र और दूसरे वार्षिक में एक दिन उपवास करे।

ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ।
द्वादशाहे त्रिपक्षेऽब्दे यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥३०६॥
पतंति पितरस्तस्य ब्रह्मलोके गता अपि ॥३०७॥

बिना ब्रह्मचर्य का पालन किए मासिक श्राद्ध में पर्व (पूर्णिमासी आदि) में, मृतक के द्वादशाह में, त्रिपक्ष में, और वार्षिक श्राद्ध में जो द्विजों में उत्तम भोजन करता है ब्रह्मलोक में गये भी उसके पितृ नरक में जाते हैं।

एकादशाहेऽहोरात्रं भुक्त्वा संचयने त्र्यहं ।
उपोष्य विधिवद्विप्रः कूष्मांडीं जुहुयाद् घृतम् ।।३०८

मृतक के ग्यारहवे दिन भोजन करके एक रात दिन और अस्थि संचयन के दिन तीन दिन तक विधि से उपवास कर के बैठे और घी से हवन करे ।

पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्नंति वै द्विजाः ।
भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ।।३०९।।

जिस गृहस्थ घर में पक्ष अथवा महीने में ब्राह्मण भोजन न करते हों उस दुष्टचित के अन्न को खाकर द्विज चांद्रायण व्रत करे ।

यन्न वेदध्वनिश्रांतं न च गोभिरलंकृतम् ।
यन्न बालैः परिवृतं श्मशानमिव तद्गृहम् ।।३१०।।

जो घर वेद के उच्चारण से पवित्र नहीं, और जो गौओं से शोभायमान नहीं है और जो बालकों से भरा हुआ नहीं है वह घर श्मशान भूमि के समान है ।

हास्येपि बहवो यत्र विना धर्मं वदंति हि (न) ।
विनाऽपि धर्मशास्त्रेण स धर्मः पावनः स्मृतः ।।३११।।

हंसी में भी जहां बहुत मनुष्य धर्म के विरुद्ध कहते हों और चाहे वह उन बहुत मनुष्यों का कथन धर्मशास्त्र के विरुद्ध भी हो तो वह उन का कथन धर्म कहा गया है ।

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम् ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ।।३१२।।

जो अपने से नीचे वर्ण को अज्ञान से नमस्कार करता है वह मनुष्य स्नान करे और घी को चाटकर भली प्रकार शुद्ध होता है ।

समुत्पन्ने यदा स्नाने भुक्ते वाऽपि पिवेद्यदि ।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत स्नात्वा समाहितः ।।३१३।।

जो स्नान के योग्य मनुष्य बिना स्नान किये भोजन करले अथवा जल पान करले तो स्नान करके सावधानी से आठ हजार गायत्री जपे ।

अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ।
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ।।३१४।।

अंगुली से दंत धावन और प्रत्यक्ष (केवल) लवण का भक्षण, मिट्टी का भक्षण करना गौ मांस भक्षण के समान है।

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ।
कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छ्रियम् ॥३१५॥

दिन में कैंथ की छाया और रात्र में दधि का भक्षण और शमी (छोंकर) और कपास के काठ से दंत धावन, ये विष्णु की लक्ष्मी को भी हरते हैं।

शूर्पवातनखाग्रांबुस्नानं वस्त्रपदोदकम् ।
मार्जनीरेणुकेशांबु हंति पुण्यं दिवाकृतम् ॥३१६॥
मार्जनीरजकेशांबु देवतायतनोद्भवम् ।
तेनावगुंठितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ॥३१७॥

सूप की पवन, नखों के अग्रभाग का जल, स्नान का वस्त्र, घट का जल और मार्जनी (झाडु) की धूल, और केशों का जल यदि ये पूर्वोक्त छओं देवता के स्थान के हों और इनमें जो लोटे तो वह पुरुष मानो गंगाजी के जल में लोटा है। मार्जनी धूल और केशों का जल ये दोनों दिन भर में किये गए पुण्य को नष्ट करते हैं।

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके मूषिकस्थले ।
अंतर्जले श्मशानांते वृक्षमूले सुरालये ।३१८॥
वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयष्कामैः सदा बुधैः ॥३१९॥
शुचौ देशे तु संग्राह्या शर्कराश्मविवर्जिता ॥३२०॥

वल्मी की, मूसों के स्थान की, जल के भीतर की, श्मशान की, वृक्ष के जड़ की, देवता के स्थान की, और बैलों द्वारा खोदी गई इन सातों स्थानों की मिट्टी को, कल्याण चाहने वाले द्विजों में उत्तम ग्रहण न करे। कंकर और पत्थर शुद्ध स्थान की मिट्टी ग्रहण करनी चाहिए।

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दंतधावने ।
स्नानभोजनजप्येषु सदा मौनं समाचरेत् ॥३२१॥

शौच करते, मैथुन, होम, लघुशंका, और दंतधावन करते समय, स्नान, भोजन, और जप करते समय मौन धारण करे।

यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुक्ते मौनेन सर्वदा ।
युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥३२२॥

जो मनुष्य पूर्ण वर्ष भर सदा मौन होकर भोजन करता है वह एक हजार करोड़ युग तक स्वर्ग लोग में पूजा को प्राप्त होता है।

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥३२३॥

स्नान, दान, जप, होम, भोजन, और देवता का पूजन, वेद का पढ़ना और पितरों का तर्पण इन आठ कामों को प्रौढ़ पाद होकर (पांव पसार कर) न करे।

सर्वस्वमपि यो दद्यात् पातयित्वा द्विजोत्तमम् ।
नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं लभेत् ॥३२४॥

जो मनुष्य द्विजों में उत्तम को पतित कर (जिसे पातक लगाकर) के सर्वस्व भी देता है। वह उस संपूर्ण को नष्ट कर भ्रूण (गर्भ) हत्या के फल को प्राप्त होता है।

ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा ।
दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रौ चापि प्रशस्यते ॥३२५॥

ग्रहण, विवाह, संक्रांति, और स्त्रियों के प्रसव, इन में दान नैमित्तिक जानना चाहिए वह दान रात्रि में भी करना श्रेष्ठ कहा गया है।

क्षौमजं वाऽथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ।
यज्ञोपवीतं यो दद्याद्वस्त्रदानफलं लभेत् ॥३२६॥

रेशम, सूत, पट्ट का सूत्र इनसे बने यज्ञोपवीत को जो देता है वह वस्त्र दान के फल को प्राप्त होता है।

कांस्यस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ।
तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥३२७॥

घी से भरे कांस के पात्र में भक्ति और विधि से भोजन देने वाला अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है।

श्राद्धकाले तु यो दद्याच्छशोभनौ च उपानहौ ।
स गच्छत्यन्नमार्गेऽपि अश्वदानफलं लभेत् ॥३२८॥

जो श्राद्ध के समय सुन्दर उपानह देता है वह अन्न युक्त मार्ग में गमन करता हुआ अश्व के दान के फल को प्राप्त करता है।

तिलपात्रं तु यो दद्यात् संपूर्णं तु समाहितः।
स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः ॥३२६॥

जो सावधान होकर भरा हुआ तेल का पात्र देता है वह मनुष्य निश्चय से स्वर्ग में जाता है इस में संदेह नहीं है।

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः।
पानीयदस्त्वरण्ये च स्वर्गलोके महीयते ॥३३०॥

दुर्भिक्ष में अन्न का दाता और सुभिक्ष में सुवर्ण का दाता और वन में जल का दाता, स्वर्ग लोक में पूजा को प्राप्त होता है।

यावदर्धप्रसूता गौस्तावत् सा पृथिवी स्मृता।
पृथिवीं तेन दत्ता स्यादीदृशीं गां ददाति यः ॥३३१॥

यावत् गौ आधी व्यायी (आधा बछड़ा भीतर और आधा जिसका बाहर) हो तावत् पृथिवी के तुल्य है। जिसने ऐसी गौ दी उसने मानो पृथिवी दी।

तेनाग्नयो हुताः सम्यक् पितरस्तेन तर्पिताः।
देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवाह्निकम् ॥३३२॥
जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा।
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥३३३॥

उसने अग्निहोत्र किया और उसी ने पितर तृप्त किये हैं। और उसी ने संपूर्ण देवता पूजे हैं, जो गौ को प्रति दिन खाने को देता है उसके जन्म भरके पाप और माता और पिता के प्रति किया गया अपराध हो संपूर्ण वस्त्र के देने से उसी समय नष्ट हो जाता है।

कृष्णाजिनञ्च यो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम्।
उद्धरेन्नरकस्थानात् कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥३३४॥

शृङ्ग आदि सहित काली मृगछाला को जो देता है। वह नरक में पड़े एक सौ एक कुलों का उद्धार करता है।

आदित्यो वरुणौ विष्णुर्ब्रह्मासोमो हुताशनः।
शूलपाणिस्तु भगवान् अभिनंदन्ति भूमिदम् ॥३३५॥

सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान शिवजी भूमि के देने वाले की प्रशंसा करते हैं।

बालुकानां कृता राशि र्यावत् सप्तर्षिमंडलम् ।
गते वर्षशते चैव पलमेकं विशीर्यति ॥३३६॥
क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ।

सात ऋषियों के मंडल पर्यन्त की जो बालु (रेत) की राशि है वह सौ वर्ष तक परन्तु एक पल-पल करके नष्ट हो जाता है। कन्या के दान से जो धर्म होता है वह नष्ट नहीं होता।

आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥३३७॥
सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ।

आतुर (दुःखी) के प्राणों को जो दान देता है उसको दान के तीन फल (धर्म, अर्थ, काम) प्राप्त होते हैं। संपूर्ण दानों के मध्य सब से श्रेष्ठ विद्या का दान है।

पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥३३८॥
सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ।

पुत्र आदि स्वजन को, और ब्राह्मण को विद्या दे और कपटी को विद्या न दे, किसी फल (द्रव्य आदि) की इच्छा से विद्या का दाता स्वर्ग को और फल की इच्छा न करने वाला मोक्ष को प्राप्त होता है।

ब्राह्मणे वेदविदुषिसर्वशास्त्रविशारदे ॥३४९॥
मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामिनि ।
शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥३४०॥
तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।

जो ब्राह्मण वेद को जानता हो, और संपूर्ण शास्त्रों में जो चतुर हो, और माता पिता का भक्त हो, और जो ऋतु के समय में ही स्त्री के संग गमन करता हो, शील और उत्तम आचारण में और प्रातः काल स्नान में जो तत्पर हो जो अपने कल्याण की इच्छा करता उसीको दान दें।

संपूज्य विदुषो विप्रान्नन्येभ्योऽपि प्रदीयते ।
तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥३४१॥

विद्वान् ब्राह्मणों का प्रथम पूजन करके अन्य (मूर्ख) ब्राह्मणों को भी दान दिया जाता है। और उस कार्य को नहीं करना चाहिए जो न तो देखा हो और न सुना हो।

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः।
पितृणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥३४२॥

इससे आगे मैं उन ब्राह्मणों के विषय में बतलाता हूँ जिनको श्राद्ध में पितरों के निमित्त दिया गया दान अक्षय फल देने वाला है और जिनको दिया गया दान निष्फल हो जाता है।

न हीनाङ्गो न रोषी (गी) च श्रुतिस्मृति विवर्जितः।
नित्यं चानृतवादी च वाणिक् श्राद्धे न भोजयेत् ॥३४३॥

अंग हीन हो, रोगी हो, श्रुति और स्मृति जो न जानता हो—जो नित्य झूठ बोलता हो, जो व्यापारी हो, इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन न कराये।

हिंसारतं च कपटं उपगूह्य श्रुतं च यः।
किंकर कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिण तथा ॥३४४॥
दुश्चर्माणं शीर्णकेशं पाण्डुरोगं जटाधरम्।
भारवाहकमुग्रं च द्विभार्यवृषलीपतिम् ॥३४५॥
भेदकारी भवेच्चैव बहुपीडाकरोऽपि वा।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥३४६॥

हिंसा में तत्पर, कपटी, और जो अपने वेद को छिपाकर किंकर बन जाय, पीला, काणा, दाद का जिसे रोग हो, जिस के देह की चर्म बिगड़ी हो, जिसके केश झड़े हों, पांडुरोगी, जटाधारी, भार (बोझ) का ढोने वाला, भयानक, जिसकी दो स्त्री हों, शूद्रा से जिसने विवाह किए हो, भेद का कर्ता (फूट डालने वाला) बहुतों को पीड़ा देने वाला, अंग-हीन (कम) अथवा अधिक हों—इनको श्राद्ध में दूर कर दे।

बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान्।
एतेषां नैव दातव्यः कदाचिद्वै प्रतिग्रहः ॥३४७॥

भेद कारी (अरुन्तुद), दीन मुख वाला, दूसरे के गुणों में दोषों को देखने वाला कठोर बुद्धि हो, इनको कदाचित् भी प्रतिग्रह न दे।

अथ चेन्मंत्र विद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ।
अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥३४८॥

मन्त्रवित् ब्राह्मण चाहे शारीरिक दोषों से युक्त क्यों न हो पक्ति को पवित्र करने वाला होता है।३४८

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ।
काणः स्यादेकहीनोऽपि द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तित. ॥३४९॥

वेद और स्मृति ये दोनों ब्राह्मणों के नेत्र कहे गये हैं । इन में से एक के कम होने पर वह काणा और जो दोनों से हीन हो वह अंधा है यह शास्त्र का मत है ।३४९

न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुल यतः ।
तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वन्धकस्यात्रिरब्रवीत् ॥३५०॥

जिसे वेद का ज्ञान न हो और स्मृति ज्ञान न हो, न शील हो, न कुलीन हो उस अंधे को श्राद्ध नहीं देना चाहिए यह अत्रि ऋषि ने कहा है ।३५०

तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ।
न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिरब्रवीत् ॥३५१॥

अतः ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व वेद और शास्त्र दोनों से है अकेले वेद से ही नहीं है—यह भगवान अत्रि ने कहा है ।

योगस्थैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रयच्छति ।
लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैवाधरोत्तरम् ॥३५२॥
वेदैश्च ऋषिभिर्गीत दृष्टिमान् शास्त्रवेदवित् ॥३५३॥
व्रतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरत सदा।
तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितृणामक्षय भवेत् ।

योग शास्त्र अनुसार जिसके नेत्र हों और अपने चरणो के अग्र भाग को ही जो देखता हो अर्थात् कहीं भी कुदृष्टि न रखता हो, लौकिक व्यवहार जानता हो और शास्त्र में कहे गये ऊंच नीच को जो देखता हो, ज्ञानवान् हो, शास्त्र और वेद का ज्ञाता हो व्रत करने वाला हो कुलीन हो, वेद और स्मृतियों के पठन और पाठन में जो तत्पर हो ऐसे ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन कराये तो पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ।

यावतो ग्रसतेग्रासान् पितृणां दीप्ततेजसाम् ॥३५४॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥३५५॥
नरकस्था विमुच्यंते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम् ।
तस्माद्विप्रं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥३५६॥

जितने ग्रासों को पूर्वोक्त ब्राह्मण खाता है उतने ही देदीप्यमान तेज से युक्त पितर, और पिता, पितामह, और प्रपितामह—ये सब नरक में स्थित हुए भी उससे निकल जाते है और निश्चय ही स्वर्ग में जाते है। अतः श्राद्ध के समय बड़े यत्न से ब्राह्मण की परीक्षा करें ।

न निर्व्वपति यः श्राद्ध प्रमीतपितृको द्विजः ।
इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥३५७॥

जिस द्विज का पिता मर गया हो यदि वह महीने-महीने में अमावस के दिन श्राद्ध न करे तो प्रायश्चित के योग्य होता है ।

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ।
धनं पुत्रान् कुलं तस्य पितृनिश्वासपीड़या ॥३५८॥

कन्या के प्रवेश करने पर सूर्य (कनागत) मे जो गृहस्थ श्राद्ध न करे । तो पितरों की दीर्घसांस करके उसका धन और कुल नष्ट होता है ।

कन्यागते सवितरि पितरो यांति सत्सुतान् ।
शून्या प्रेतपुरी सर्व्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥३५९॥
ततो वृश्चिकसंप्राप्ते निराशाः पितृरो गता ।
पुनः स्वभवन यांति शापं दत्त्वा सुदारुणं ॥३६०॥

कन्या राशि में जब सूर्य आता है तब पितर अपने उत्तम पुत्रो के समीप आते हैं। जब तक वृश्चिक की संक्रान्ति का दर्शन न हो तब तक यमराज की पुरी शून्य रहती है फिर वृश्चिक सक्रांति के होने पर निराश होकर पितर चले जाते हैं।फिर वे बड़ा भयानक शाप देकर अपने भवन को चले जाते है।

पुत्रं वा भ्रातर वापि दोहित्रं पौत्रकं तथा।
पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते यांति परमां गतिम् ॥३६१॥

पुत्र, भाई, लड़की का लड़का और पोता यदि ये सब पिता के श्राद्ध में आये हों तो वे भी परम गति को प्राप्त होते हैं ।

यथा निर्मन्थनादग्निः सर्व्वंकाष्ठेषु तिष्ठति ।
तथा स दृश्यते धर्म्याच्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥३६२॥
यःप्राप्नोति तदा सर्वकन्यागते च गंगया ।

जैसे मथने से सम्पूर्ण काष्ठों में स्थित अग्नि दीखती है वैसा ही धर्म श्राद्ध में दान देने से होता है, इसमें संशय नहीं है और जो गंगा सूर्य के कन्याराशि में प्रवेश करने पर श्राद्ध करता है उसे सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है ।

सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सर्वयज्ञफल विन्द्याच्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥३६३॥

सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों को जानने से सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने और सम्पूर्ण यज्ञों का जो फल है वह श्राद्ध में दान से जानना चाहिए इसमें संदेह नहीं है ।

महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्चोपपातकैः ।
घनैर्मुक्तो यथा भानूराहुमुक्तश्च चंद्रमा ॥३६४॥

जो महापातकी अथवा उपपातकी हो वह भी श्राद्ध में दान देने से मेघों में से निकले सूर्य और राहु से मुक्त चन्द्रमा के समान होता है ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापं विलंघयेत् ।
सर्वसौख्यं स्वयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः ॥३६५॥

वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर संपूर्ण पापों को लांघता है और वह श्राद्ध के दान से संपूर्ण सुखों को प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं है ।

सर्वेषामेव दानानां श्राद्धदानं विशिष्यते ।
मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राद्धदानं विशोधनम् ॥३६६॥

सम्पूर्ण दानों में श्राद्ध दान श्रेष्ठ है मेरु के समान पाप से श्राद्ध दान छुड़ाने वाला है ।

श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके महीयते ।
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयःस्मृतम् ॥३६७॥

मनुष्य श्राद्ध करके स्वर्ग लोक में यश को प्राप्त होता है । ब्राह्मण का अन्न अमृत रूप है और क्षत्रिय का अन्न दूध रूप है।

वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं भवेत् ।
एतत् सर्वं मया ख्यातं श्राद्धकाले समुत्थिते ॥३६८॥

वैश्य का अन्न घृत रूप है और शूद्र का अन्न रुधिर रूप होता है—यह सब मैंने श्राद्धकाल के सम्बन्ध में कहा है ।

वैश्वदेवे च होमे च देवताभ्यर्चने जपेत् ।
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥३६९॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, के मंत्रों से ब्राह्मण का अन्न निर्मल होने से अमृत रूप है ।

व्यवहारनुपूर्वेण धर्मेण बलिभिर्जितम् ।
क्षत्रियान्नं पयस्तेन घृतान्नं यज्ञपालने ॥३७०॥

क्योंकि व्यवहार के क्रम से और धर्म से बलवानों ने जीत कर अन्न संचय किया है इससे क्षत्रिय का अन्न दूध रूप है और यज्ञ की रक्षा करने से वैश्य का अन्न घृत रूप है ।

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः ।
पशुर्म्लेच्छोऽपि चाण्डालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥३७१॥

देव, मुनि, द्विज राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ, और चांडाल—ये दश प्रकार के (जिनका वर्णन आगे किया गया है) ब्राह्मण कहे गये हैं ।

संध्यां स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ।
अतिथिं वैश्वदेवञ्च देवब्राह्मण उच्यते ॥३७२॥

संध्या, स्नान, जप, होम, देवता और अभ्यागत का नित्य पूजन बलि-वैश्वदेव जो करे, उस ब्राह्मण को देव कहते है ।

शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ।
निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥३७३॥

शाक, पत्ते, फल, मूल, इनको भक्षण करे और बन में बसने में और प्रति दिन श्राद्ध करने में जो तत्पर हो उस ब्राह्मण को मुनि कहते है ।

वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ।
सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥३७४॥

जो वेदान्त को नित्य पढ़े और सबके संग को त्यागे सांख्य और योग शास्त्र के विचार में जो स्थित हो उस ब्राह्मण को द्विज कहते है ।

अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ।
आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥३७५॥

जिसने सबके सम्मुख संग्राम में धनुषधारी अस्त्रों से मारे हो और जिसने आरम्भों को जीता हो (युद्ध आदि काम का आरम्भ करके पूरा किया हो) उस ब्राह्मण को क्षत्रिय कहते है।

कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ।
वाणिज्य व्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥३७६॥

जो खेतों के काम में मग्न हो और गौओं के पालने में लवलीन हो जो लेन देन करता हो उस ब्राह्मण को वैश्य कहते हैं।

लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुम्भं क्षीरसर्पिष. ।
विक्रेता मधुमांसानां स विप्र. शूद्र उच्यते ॥३७७॥

लाख, लवण, कुसुम, दूध, घी, मिठाई, मांस—इनको जो बेचे उस ब्राह्मण को शूद्र कहते हैं।

चौरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ।
मत्स्यमांसे सदालुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥३७८॥

चोर और तस्कर (प्रबल चोर) चुगलखोर, दंशक (प्रचंड) मत्स्य के मांस का लोभी—ऐसे ब्राह्मण को निषाद कहते हैं।

ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ।
तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥३७९॥

जो ब्रह्म (वेद) के तत्त्व को न जाने और यज्ञोपवीत का जिसे अभिमान है उसी पाप से उस ब्राह्मण को शूद्र कहते है।

वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च।
निःशंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥३८०॥

बावड़ी, कूप, ताल, बाग, छोटा तालाब—इनको जो निशंक होकर रोके उस ब्राह्मण को म्लेच्छ कहते है।

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ।
निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चांडाल उच्यते ॥३८१॥

जो क्रिया से हीन हो, मूर्ख हो, धर्म से रहित हो, सपूर्ण भूतों के के प्रति क्रूर हो ऐसे ब्राह्मण को चांडाल कहते हैं।

वेदैर्विहीनाश्च पठंति शास्त्रं
शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ।

पुराणहीनाः कृषिणो भवंति
भ्रष्टास्ततो भागवता भवंति ॥३८२॥

वेद जिन्हें नही आता वे शास्त्र को पढ़ते है और शास्त्र जिन्हें नहीं आता वे पुराणों को पढ़ते है, पुराण जिन्हें नही आता वे खेती करते है और जिनसे खेती नहीं हो सकती वे भागवत (वैरागी) हो जाते है।

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीरा पौराणपाठकाः।
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन ॥३८३॥

ज्योतिषी, अथर्ववेद के ज्ञाता, कीर (यत्र तत्र कठ से जो तोते की तरह उपदेश करे) पुराण के पढ़ने वाले इन ब्राह्मणों को श्राद्ध, यज्ञ और महान दान में कदाचित ही वरे अर्थात् चारों के अभाव मे ही इनको इन अवसरों पर निमन्त्रित करने का अधिकार है।

श्राद्धञ्च पितर घोरं दानं चैव तु निष्फल।
यज्ञे च फलहानिःस्यात्तस्मात्तान् परिवर्जयेत् ॥३८४॥

श्राद्ध में पूर्वोक्त ब्राह्मणों के जिमाने से पितर घोर नरक मे जाते हैं और दान निष्फल होता है और यज्ञ में फल की हानि होती है अतः पूर्वोक्त ब्राह्मणों को छोड़ दे।

आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः।
चतुर्विप्रा न पूज्यंते वृहस्पतिसमा यदि ॥३८५॥

भेड़ों का पालने वाला, चित्रकार वैद्य और नक्षत्र पाठक (घर-घर नक्षत्र तिथि बताने वाला) वृहस्पति के समान होने पर भी ये चार ब्राह्मण पूजे नहीं जाते।

मागधो माधु(थु)रैश्चैव कापटः कीटकानजौ।
पंच विप्रा न पूज्यंते वृहस्पतिसमा यदि ॥३८६॥

मगध देश का वासी, माथुर (चौबे), कर्पट देश का वासी, कीट और कान देश में जो पैदा हुए है—ये पांच चाहे वृहस्पति के समान हों तो भी पजे नहीं जाते।

कृयकीता च य कन्या पत्नी सा न विधीयते।
तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिडं न विद्यते ॥३८७॥

मोल ली हुई जो कन्या है वह पत्नी (भार्या) नहीं होती और उससे पैदा हुए पुत्रों को पितरों का पिंड देने का अधिकार नहीं है।

अष्टशल्यागतो नीरं पाणिना पिबते द्विजः ।
सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्य गोमांसभक्षणम् ॥३८८॥

अष्ठशल्ली (पुर) के जल को जो द्विज हाथ से पीता है वह मदिरा के पीने और गौ मांस भक्षण के समान है।

ऊर्ध्वजंघेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ।
तावच्चांडालरूपेण यावद्गङ्गां न मज्जति ॥३८९॥

जो खड़े हुए ब्राह्मण के दोनों चरण धोते हैं वे तब तक चांडाल रूप रहते हैं जब तक गंगा स्नान न कर लें।

दीपशय्यासनच्छाया कार्पासं दंतधावनम् ।
अजारेणुस्पर्शं चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥३९०॥

दीपक, शय्या और आसन की छाया (जो अपने ऊपर पड़े) कपास वृक्ष की दातुन, बकरी की धूल का स्पर्श—ये तीनों इन्द्र की भी लक्ष्मी को हरते हैं।

गृहाद्दशगुणं कूपं कूपाद्दशगुणं तटम् ।
तटाद्दशगुणं नद्यां गंगासंख्या न विद्यते ॥३९१॥

घर से दश गुणा पुण्य कूप में और कूप से दश गुणा तट पर और तट से दश गुणा पुण्य नदी में होता है—और गंगा के पुण्य की संख्या (गिनती) नहीं है।

स्रवद्यद्ब्राह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ।
वापीकूपे तु वैश्यस्याच्छूद्रं भांडोदकं तथा ॥३९२॥

बहते हुए जल की ब्राह्मण संज्ञा है; एकान्त के जल की क्षत्रिय और बावड़ी और कूप के जल की वैश्य संज्ञा है; भांड (बरतन) के जल की शूद्र संज्ञा है।

तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यत्तिलतर्पणम् ।
अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपाततः ॥३९३॥

पिता आदि के मरने के अनन्तर एक वर्ष तक तीर्थ स्नान और महादान और तिलों से तर्पण न करें।

गंगा गया त्वमावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयेऽहनि ।
मघापिंडप्रदानं स्यादन्यत्र परिवर्ज्जयेत् ॥३९४॥

गगा, गया, अमावस, वृद्धि-श्राद्ध (नांदी मुख), क्षयी श्राद्ध और मघा नक्षत्र में पिंड दान इनको तो पिता के मरने के अनंतर वर्ष के मध्य में जो करे और इनसे अन्य कर्मों को त्याग दे ।

घृतं वा यदि वा तैलं पयो वा यदि वा दधि ।
चत्वारो ह्याज्यसंस्थानं हुतं नैव तु वर्ज्जयेत् ॥३९५॥

घी, तेल, दूध, दही इन चारों को मिला कर घी के स्थान में जो होम है उसे न त्यागे अर्थात् घी के अभाव मे इनसे ही कार्य करे ।

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान् भाषितानत्रिणा स्वयम् ।
इदमूचुर्महात्मानं सर्वे ते धर्म्मनिष्ठिताः ॥३९६॥

अत्रि ऋषि से स्वय कहे गये इन धर्मों को सम्पूर्ण ऋषि सुनकर और धर्म में भली प्रकार स्थित होकर महात्मा अत्रि ऋषि के प्रति यह वचन बोले ।

य इदं धारयिष्यंति धर्मशास्त्रमतद्रिताः ।
इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यंति त्रिविष्टपम् ॥३९७॥

जो पुरुष आलस्य को त्यागकर इस धर्मशास्त्र को जानेंगे वे इस लोक में यश को प्राप्त होकर स्वर्ग को प्राप्त होगे ।

विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च ।
आयुष्कामस्तथैवायुः श्रीकामो महती श्रियम् ॥३९८॥

इस शास्त्र के पढ़ने से विद्यार्थी विद्या को, धनेच्छु धन को, दीर्घायु के इच्छुक दीर्घ अवस्था को, लक्ष्मी की जिसे इच्छा हो वह लक्ष्मी को प्राप्त करता है ।

॥ इति श्रीमद् अत्रिमहर्षिसहिता समाप्ता ॥

श्रीगणेशायनमः

अथ विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्र प्रारंभः

श्री विष्णु भगवान द्वारा निर्धारित धर्मशास्त्र का आरम्भ

विष्णुमेकग्रमासीनंश्रुतिस्मृतिविशारदम् ।
पप्रच्छुर्मुनयः सर्वेकलापग्रामवासिनः ॥१

कलाप ग्राम के वासी, श्रुति एवं स्मृतियों में पारंगत समस्त मुनि जन ने, एकाग्र चित्त बैठे श्री विष्णु भगवान से यह प्रश्न किया ।

कृतेयुगेऽपक्षीणेलुप्तोधर्म्मस्सनातनः ।
तत्रवेशीर्य्यमाणेचधर्मोनप्रतिमार्गितः ॥२

कृतयुग के समाप्त होने पर सनातन धर्म लुप्त हो गया और किसी ने भी धर्म का शोधन नहीं किया ।

त्रेतायुगेऽथसंप्राप्तेकर्तव्यश्चास्यसंग्रहः ।
यथासंप्राप्यतेस्माभिस्तत्तत्वन्नोवक्तुमर्हसि ॥३

अब त्रेतायुग विद्यमान है इसमें धर्म का संग्रह अवश्यमेव करना चाहिए। वह धर्म, जिस रीति से हमें प्राप्त हो सके, कहिए।

वर्णाश्रमाणांयोधर्मोविशेषश्चैवयःकृतः ।
भेदस्तथैवचैषांयस्तन्नोब्रूहिद्विजोत्तम ॥४

वर्णाश्रम धर्म की, जो विशेषताएँ ऋषियों ने बताई हैं और वर्णों तथा आश्रमों के मध्य जो पारस्परिक भेद बताए हैं, हे द्विजोत्तम ! आप हमें बताइए ।

ऋषीणांसमवेतानांत्वमेवपरमोमतः ।
धर्मस्येहसमस्तस्यनान्योवक्तास्तिसुव्रत ॥५

यहां एकत्रित समस्त ऋषियों में आप परम श्रेष्ठ है, हे सुव्रत ! संपूर्ण धर्म की व्याख्या करने में सक्षम आप जैसा अन्य कोई वक्ता नहीं है ।

श्रुत्वाधर्मंचरिष्यामोयथावत्परिभाषितम् ।
तस्माद्ब्रूहिद्विजश्रेष्ठधर्मकामामेद्विजाः ॥६

आपके कथनानुसार धर्म की व्याख्या सुनकर तदनुसार हम आचरण करेंगे। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ ! आप उस धर्म के स्वरूप का वर्णन कीजिए, हम सब द्विज धर्माचरण की अभिलाषा करने वाले हैं।

इत्युक्तोमुनिभिस्तैस्तुविष्णुः पोवाचतांस्तदा ।
अनघाः श्रूयतांधर्मोवक्ष्यमाणोमयाक्रमात् ।।७

इस प्रकार, जब उन समस्त मुनियों ने श्री विष्णु भगवान से निवेदन किया, तब वे बोले, "हे पाप कर्मरहित मुनियों ! मैं जिस धर्म को व्यवस्थित रूप मे कहता हूं, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ! ।

ब्राह्मणः क्षत्रियोः वैश्यः शूद्रश्चैव तथा परे ।
एतेषां धर्मसार यद्वक्ष्यमाणं निबोधत ।।८

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य वर्ण (शूद्रादि) के श्रोताओ ! मैं जो धर्म का सार तुम्हें कहता हूं, उसे समझ कर सुनो।

ऋतौऋतौतुसंयोगाद्ब्राह्मणोजायतेस्वयं ।
तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारंगर्भादौतुप्रयोजयेत् ।।९

ऋतु (रजोदर्शन) काल (स्त्री के ऋतुमती होने के १६ दिनों की अवधि में) स्त्री और पुरुष के संयोग (रजाणु और शुक्राणु के सम्मिलन) से उत्पन्न ब्राह्मण (भ्रूण) का संस्कार गर्भकाल के आरभ से ही हो।

सीमंतोन्नयनं कर्मनस्त्रीसस्कारइष्यते ।
गर्भस्यैवत्संस्कारोगर्भेगर्भेप्रयोजयत् ।।१०

सीमंतोन्नयन (अठमासा या सतमासा) कर्म (गर्भिणी) स्त्री का ही संस्कार कर्म नहीं है। इसे को गर्भस्थ का सस्कार मान सीमंतोन्नयन संस्कार करे।

जात कर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम् ।
वहिर्निष्क्रमणंचैवतस्यकुर्याच्छिशोः शुभम् ।।११

पुत्र का जन्म होने पर, शास्त्र में बताई विधि के अनुसार जात कर्म करे और कुछ समयोपरांत उस बालक को कुशल मंगल युक्त घर से बाहर लेजा कर वहिर्निष्क्रमण कर्म सम्पन्न करे।

षष्ठेमासे च संप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ।
तृतीयेऽब्दे च सप्राप्तेकेशकर्मसमाचरेत् ।।१२

जब बालक छह महीने का हो जाए तब उसका अन्नप्राशन संस्कार करे और जब वह तीन वर्ष की आयु का हो तब केशकर्म (मुडन या केशकर्तन) संस्कार करे।

गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनं ।

द्विजत्वेत्वथसंप्राप्तेसावित्र्यामधिकारभाक् ।।१३

गर्भ (स्थापन) से आठवें वर्ष ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत संस्कार करे, क्योंकि यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही द्विज गायत्री (जप) का अधिकारी बन पाता है ।१३

गर्भादेकादशेसैकेकुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ।

कारयेद्द्विजकर्माणिब्राह्मणेनयथाक्रमम् ।।१४

शूद्रश्चतुर्थोवर्णस्तुसर्वसंस्कारवर्जितः ।

उक्तस्तस्यतुसंस्कारोद्विजेस्वात्मनिवेदनम् ।।१५

गर्भ से ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय बालक का तथा बारहवें वर्ष वैश्य बालक का यज्ञोपवीत संस्कार ब्राह्मण से कराया जाय तथा चतुर्थ वर्ण के जो अन्य शूद्रादि जन हैं उनके लिए ये संस्कार नहीं उनके लिए यही कहा गया है कि वे उक्त तीनों वर्णों के प्रति अपने आत्मा को निवेदन कर दें अर्थात् उनके अधीन कर दें ।१५

योयस्यविहितोदंडोमेखलाजितधारणम् ।

सूत्रंवस्त्रं च गृह्णीयाद्ब्रह्मचर्येणयंत्रित ।।१६

प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करने से पूर्व यज्ञोपवीत, शास्त्र-विहित रूप में धारण किया जाए । दंड, मेखला, मृगछाला, सूत्र, वस्त्रादि, जो जिस वर्ण के लिए धारणीय है, उन्हें धारण करे ।१६

ब्राह्मे मुहूर्तउत्थायचोपस्पृश्यपयस्यथा ।

त्रिराचम्यततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनीसमाहितः ।।१७

ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर, आचमन के उपरांत तीन बार प्राणायाम कर सावधान हो कर मौन धारण करे ।१७

अब्दैवतै. पवित्रैस्तुकृत्वात्मपरिमार्जनं ।

सावित्रींचजपंस्तिष्ठेदासूर्योदयनात्पुरा ।।१८

अग्निकार्यंततः कुर्यात्प्रातरेवव्रतंचरेत् ।

गुरवेतुततः कुर्यात्पादयोरभिवादनं ।।१९

ऐसे पवित्र मंत्रों का उच्चारण करते हुए, जिनके देवता, जल-देवता वरुण हैं, देह का मार्जन करे (अर्थात् वरुण को अर्पित मंत्रोच्चारण सहित कुशा से जल को शरीर पर छिड़के) फिर गायत्री मंत्र का जप करता हुआ सूर्योदय होने तक (शांत भाव से) बैठे तदनंतर अग्निहोत्र यज्ञ करे । प्रातः काल के समय (महनाम्न्यादि) व्रत करे, उसके उपरांत (गुरु चरणों में) गुरु को प्रणाम करे ।

समित्कुशांश्चोदकुम्भमाहृत्य गुरवे व्रती ।
प्राञ्जलिः सम्यगासीन उपस्थाययतः सदा ॥२०
यं यं ग्रन्थमधीयीत तस्य तस्य व्रत चरेत् ।
सावित्र्युपक्रमात्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥२१

गुरु (सेवा) के निमित्त समिधा, कुशा और जल (पूरित) घट ला कर, विनम्र भाव से दोनो हाथ जोड़कर, भली प्रकार बैठ कर गुरु की स्तुति करें, फिर सावधान रहकर जिस ग्रंथ का स्वाध्याय (पठन) करे, उस ग्रंथ से सबंधित व्रत करे, और सावित्री के उपदेश-क्रम से सपूर्ण वेद का पठन करे।

द्विजातिषु चरेद् भैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥२२

तीनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य) वर्ण के ब्रह्मचारी भिक्षा के समयभिक्षाटन करे और प्राप्त भिक्षा को गुरु को समर्पित कर, गुरु की सम्मति से ब्रह्मचारी भोजन करे।

साय सन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।
द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरेत् ॥२३

सायंकाल की संध्या करने के उपरांत, आठ सौ बार गायत्री मन्त्र का जाप करे और सायंकाल के भोजन के लिए, उसी प्रकार भिक्षाटन करे (जिस प्रकार पूर्वाह्न भोजन के लिए भिक्षाटन का विधान है)।

वेदस्वीकरणे हृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हित ।
निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकस्स उदाहृतः ॥२४

ऐसा बटुक, जो वेद के पठन में प्रसन्न और गुरु के प्रति आज्ञाकारी तथा गुरु का हितकारी होता है, और जिसकी गुरु में (पूरी) निष्ठा होती है, उसे नैष्ठिक अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचारी कहा जाता है।

अनेनैव विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च ।
गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः ॥२५

इस विधि से ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कर, वेद का पठन कर गुरु के घर से (पूरी शिक्षा प्राप्त करने के बाद) लौटकर गृहस्थाश्रम धर्म की आकाक्षा करे।

अनेनैव विधानेन कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।
कुले महति सभूता सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥२६
परिणीय तु षण्मासान्वत्सर वा न संविशेत् ।
औदुम्बरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहे गृहे ॥२७

इसी प्रकार शास्त्रोक्त विधि से दार-परिग्रह अर्थात् उच्च कुल में उत्पन्न सजातीय सुलक्षणा स्त्री के साथ (विवाह) करे। विवाह करने के उपरांत, जो छह महीने अथवा एक वर्ष पर्यंत (द्विरागमन होने तक) परिग्रहीता स्त्री का संग नहीं करता, गृह में रहते हुए भी उस ब्रह्मचारी को औदुम्बरायण अर्थात् उदुम्बर (वृक्ष) क्षेत्र वासी ब्रह्मचारी कहा जाता है।

ऋतुकाले तु संप्राप्ते पुत्रार्थी संविशेत्तदा।

जाते पुत्रे तथा कुर्यादग्न्याधेयं गृहे वसन् ॥२८

जब स्त्री को ऋतु काल में रजोदर्शन हो, तब पुत्र (प्राप्ति) की कामना से, स्त्री का संग (स्त्री के साथ समागम) करे और पुत्रोत्पत्ति होने पर घर में रहते हुए भी अग्निहोत्र-व्रत धारण करे।

पुत्रे जाते ऽनृतौ गच्छन्संप्रदुष्येत्सदा गृही।

चतुर्थे ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन्न विस्मृतः ॥२९

पुत्र होने पर, बिना ऋतुमती हुए स्त्री के साथ संग (समागम) करने से गृहस्थी दोषी होता है और चौथे पुत्र के होने पर गृहस्थी (गृहस्थाश्रमी) तथा ब्रह्मचारी दोनों घर में रहने से दूषित होते हैं।

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम्।

प्राजापत्यपदस्थान सम्यक्कृत्यं निबोधत ॥३०

इसके पश्चात् मैं गृहस्थियों के लिए वरेण्य उत्तम धर्म बताता हूं, जिससे ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त होता है, उस गृहस्थ कर्म को भली प्रकार (ध्यान से) सुनिए।

सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशौचः समाहितः।

स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमतन्द्रितः ॥३१

प्रत्येक व्यक्ति (समस्त गृहस्थ जन) सूर्योदय से पूर्व उठकर, शौचादि नित्य कर्मों से निवृत्त हो, आलस्य को त्यागकर, स्नान करने के बाद संध्योपासना करे।

अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ यद् दुरितं कृतम्।

प्रातः स्नानेन तत्सर्वं शोधयति द्विजोत्तमाः ॥३२

प्रविश्याथाग्निहोत्रं तु हुत्वाग्निं विधिवत्ततः।

शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥३३

अज्ञानवश (भूल अथवा प्रमाद) या मोहवश अकरणीय कृत्य रात्रि में किया हो उस सब को प्रातःकाल स्नान कर द्विजों में उत्तम मनुष्य दूर करते हैं। फिर यज्ञशाला मे प्रवेश कर, विधिपूर्वक अग्निहोत्र सम्पन्न कर, पवित्र स्थल में बैठकर, शक्ति (सामर्थ्य) के अनुसार वेद का पठन करे।

स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मंत्रवित् ।
देवानृषीन्पितृंश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ।।३४

स्वाध्याय करने के उपरांत वेदपाठी द्विज स्नान कर तिल और जल से, देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करे ।

मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुञ्जीत वाग्यतः ।
भुक्तोपविष्टो विश्रान्तो ब्रह्म किंचिद्विचारयेत् ।।३५

मध्याह्न होने पर, बलिवैश्वदेव से बचे, अवशिष्ट अन्न (युक्त) भोजन को मौन रह कर करे, तदुपरांत बैठ या विश्राम कर कुछ समय तक ब्रह्म का चिंतन करे ।

इतिहासं प्रयुञ्जीत त्रिकालसमये गृही ।
काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा बहिः ।।३६
आसीनः पश्चिमां संध्यां गायत्रीं शक्तितो जपेत् ।
हुत्वा चाथाग्निहोत्रं तु कृत्वा चाग्निपरिक्रमाम् ।।३७
बलिं च विधिवद् दत्त्वा भुञ्जीत विधिपूर्वकम् ।

दिवस के तीसरे भाग में महाभारत आदि इतिहास (ग्रंथादि) का भी स्वाध्याय करे और सायकाल होने पर घर में अथवा बाहर पश्चिम दिशा की ओर उन्मुख हो बैठ कर संध्योपासन करे और यथाशक्ति गायत्री का जप करे, फिर अग्निहोत्र कर अग्नि की प्रदक्षिणा करे। और सविधि बलिवैश्वदेव कर, शांतिपूर्वक भोजन ग्रहण करे ।

दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ।।३८
तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ।
कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ।।३९
संनिवेश्याथ विप्रन्तु संविशेत्तदनुज्ञया ।

यदि दिन में (किसी समय) अथवा रात्रि में (कभी कोई) अतिथि या अभ्यागत आ जाए तो तृण (कुशा आदि से बने आसन), भूमि, जल, वाणी से उसका आदर सत्कार करे, उसके पधारने पर ('आपने हम पर बड़ी कृपा की, जो यहाँ पधारे" कह कर) उसकी अभ्यर्थना करे, फिर उसको संतुष्ट कर विद्या आदि का विचार करे। अतिथि को शयन करा कर, उसकी आज्ञा (सम्मति) से स्वयं शयन करे ।

यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥४०
योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्बिषी भवेत् ।

यदि भिक्षा के लिए कोई योगी आए तो उसके समीप बैठकर पुर अथवा ग्राम में आए योगी का पूजन करे, अन्यथा गृहस्थ पाप का भागी होता है ।

पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥४१
पूज्या नित्यं भवंत्येव सर्वे चैव निवासिनः ।
तस्मात्संपूजयेन्नित्यं योगिनं गृहमागतम् ॥४२
तस्मिन्प्रयुक्ता या पूजा साक्षयायोपकल्पते ।

ऐसे योगी के पधारने पर, (उस पुर या ग्राम के) सब निवासी उन्हें पूजें क्योंकि वे पूजने योग्य होते हैं । जिस घर में योगी पधारे, उस घर में योगी का पूजन गृहस्थ नित्य करे। उस (योगी) की जो पूजा होती है, वह अक्षय सुखदायक होती है ।

गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥४३
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ।

गृहस्थ जन के लिए स्वर्ग-प्राप्ति का जो श्रेष्ठ साधन कर्म है, वह कर्म मैं अब तुमको बताता हूं । (तीन या चार घड़ी रात्रि रहने पर) ब्राह्म मुहूर्त में, उठकर, पूर्वोक्त सपूर्ण कर्म कर सदाचरण करे ।

चतुःप्रकारं भिद्यन्ते गृहिणो धर्मसाधकाः ॥४४
वृत्तिभेदेन सततं ज्यायांस्तेषां परः परः ।

(इस प्रकार मैं बताता हूं कि) धर्मसिद्ध आचरण करने वाले गृहस्थ जन चार प्रकार के होते है । अपनी-अपनी जीविका या वृत्ति-भेद से क्रमशः श्रेष्ठतर गृहस्थ इस प्रकार के होते है ।

कुसूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ॥४५
त्र्यहैहिको वापि भवेत्सद्यःप्रक्षालकोपि वा ।
श्रौतं स्मार्तं च यत्किंचिद्विधानं धर्मसाधनम् ॥४६
गृहे तद् वसता कार्यमन्यथा दोषभाग्भवेत् ।
एवं विप्रो गृहस्थस्तु शान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥४७
प्रजापतेः परं स्थानं सम्प्राप्नोति न संशयः ।

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।२।

(१) कुसूलधान्यक; अपने भंडार में उतनी मात्रा में अन्न का संग्रह करने वाले गृहस्थ, जिससे तीन वर्ष पर्यंत जीवन-निर्वाह हो सके। (२) कुंभी-धान्यक; किसी पात्र में, उतनी मात्रा में अन्न संग्रह करने वाले गृहस्थ, जिससे एक वर्ष पर्यंत जीवन-निर्वाह हो सके। (३) त्र्यहैहिक (तीन दिन के लिए पर्याप्त अन्न सग्रह करने वाले) गृहस्थ, तथा (४) सद्य.प्रक्षालक गृहस्थ, एक दिन के लिए पर्याप्त उसी दिन का अन्न रखने वाला गृहस्थ। वेद तथा स्मृतियों में वर्णित जो कर्म है, वही धर्म का साधन कर्म है। घर में वास करने वाले गृहस्थ को ये समस्त कार्य पूरे करने है, क्योंकि इन करणीय कर्मों के न करने से (गृहस्थ) दोष का भागी होता है। इस प्रकार शात स्वभाव वाला शुक्ल (स्वच्छ) वस्त्रधारी शुद्ध गृहस्थी ब्राह्मण ब्रह्मा के परम धाम अर्थात् उत्तम धाम को प्राप्त करता है, इसमें कोई सशय नहीं।

इति वैष्णवधर्मशास्त्र द्वितीय अध्याय

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ।।४८

चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ।

गत्वा च विजनं स्थानं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ।।४९

गृहस्थी या ब्रह्मचारी जब वन में वास करे तब चीर (चीथड़े) या वल्कल धारण करे, अकृष्ट (बिना जोते या बोए धरती में उत्पन्न, प्रकृत) अन्न का भक्षण करे, मौन रहे, और निर्जन स्थान में होने पर भी पच-यज्ञों को सम्पन्न करने का परित्याग न करे।

अग्निहोत्रं च जुहुयादन्नैर्नीवारकादिभिः ।

श्रावणेनाग्निमादाय ब्रह्मचारी वने स्थित. ।।५०

(वन में वास करते समय) अन्न या नीवार आदि से अग्निहोत्र यज्ञ भी करे, और श्रावण मास मे अग्नि को (सुरक्षित) लेकर ब्रह्मचारी वन में रहे।

पञ्चयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतद्रितः ।

सञ्चितं तु यदारण्यं भवतार्थं विधिवद्वने ।।५१

पंच यज्ञ सविधि उसी प्रकार आलस्य त्याग कर सम्पन्न करे, जिस प्रकार अपने भोजन के लिए (ब्रह्मचारी) वन में अन्न एकत्र करता है।

त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ।

आकाशशायी वर्षासु हेमन्ते च जलाशयः ।।५२

अपने लिए एकत्र किए वन के अन्न को, आश्विन मास में त्याग दे और नये वन के अन्न को अपने लिए इकट्ठा करे। वर्षा ऋतु में, (ऊंचे स्थान) आकाश में शयन करे तथा हेमंत ऋतु में जलाशय के समीप शयन करे।

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन्।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तुलापुरुषमेवच ॥५३
अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामान् शुचिस्ततः।
त्रिसन्ध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भूतजान्गुणान् ॥५४

ग्रीष्म ऋतु मे, पंचाग्नि के मध्य वन में रहे (अर्थात् चारों ओर से अग्नि प्रदीप्त कर, सूर्य की धूप में खुले आसमान के नीचे अग्नि तप करे और बाद में कृच्छ्र, चांद्रायण, तुला, पुरुष, अतिकृच्छ्र (नाम के इन व्रतों को निष्काम भाव से शुद्धतापूर्वक सम्पन्न करे और पंच भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के गुणों (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द) को सहते हुए, तीनों समय स्नान करे।

पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः।
प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेभ्यः किंचिदात्मवान् ॥५५

वन में प्राप्त (स्थित) हुआ ब्रह्मचारी अतिथियों का पूजन करे और आत्मा के स्वरूप को जानता हुआ, दूसरों से प्रतिग्रह (दान) न ले।

दाता चैव भवेन्नित्य श्रद्दधानः प्रियंवदः।
रात्रौ स्थंडिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिन क्षिपेत् ॥५६

मृदुभाषी तथा श्रद्धावान् होकर प्रतिदिन दान दे, रात्रि में स्वरचित मंच पर शयन करे और पद-यात्रा करते हुए दिन में अपना समय बिताए।

वीरासनेन तिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्यचिन्तयन्।
केशरोमनखश्मश्रून्न छिन्द्यान्नापि कर्त्तयेत् ॥५७

(एक अन्य विकल्प के रूप में) वह अपने मन में क्लेश को नहीं मानते हुए वीरासन में बैठा रहे तथा केश, रोम, नख तथा श्मश्रू-दाढ़ी को न कतरे, न काटे, न छेदन करे।

त्यजन् शरीरसौहार्द्दं बनवासरतः शुचिः।
चतुःप्रकारं भिद्यन्ते मुनयः शंसितव्रताः ॥५८

वन में वास करने में तत्पर और मनसा शुद्ध होकर अपने शरीर के प्रति प्रेम का परित्याग कर पूर्वोक्त कर्म करे। इस प्रकार कठोर (तीक्ष्ण) व्रत का पालन करने वाले मुनिजन चार प्रकार के होते हैं।

अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषा परः परः ।
वार्षिक वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥५९
वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ।
भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥६०

(अपने-अपने करणीय) अनुष्ठान-विशेष के पूरा करने की दृष्टि से क्रमशः श्रेष्ठतर मुनि इस प्रकार के होते हैं (१) एक वर्ष पर्यंत विधिपूर्वक आहार (नीवार) आदि को सचय करने वाले, वानप्रस्थ आश्रम मे स्थित, इन्द्रियजित् और प्रमाद रहित काल (समय) को व्यतीत करने वाले इन सब कर्मों के कर्त्ता वानप्रस्थी को भूरिसंवार्षिक कहते हैं।

आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न काक्षति ।
षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पञ्चयज्ञक्रियापरः ॥६१
काले चतुर्थे भुञ्जानो देहं त्यजति धर्मतः ।
त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः ॥६२
निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च षष्ठान्नभोजनः ।
दिनार्थमन्नमादाय पञ्चयज्ञक्रियारतः ॥६३
सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थ परिकीर्तितः ।
एवमेते हि वै मान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥६४

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्याय ।३।

(२) मृत्यु-पर्यंत वन में रह कर भी, मृत्यु की इच्छा न करने वाले, पच-कर्म में सदा तत्पर, छह महीनों के लिए पर्याप्त अन्न का संचय करने वाले, अपने जीवन के चौथे संध्याकाल में भोजन करते हुए, सधर्म देह को त्यागने वाले, तथा (३) तीसरे वे, जो तीस दिन (या एक महीने) के लिए पर्याप्त वन के अन्न का संचय कर, शुद्ध रहने का व्रत लेकर (शास्त्र-विहित) सब करणीय कर्मों को सम्पन्न कर प्रति छठे दिन (छह दिन में एक बार) भोजन करते है। (४) चौथे प्रकार के वे मुनि हैं जो एक दिन के लिए पर्याप्त अन्न का संग्रह कर पंचयज्ञ-कर्म सम्पन्न करने में तत्पर रहते हैं। चतुर्थ वर्ण के मुनि को सद्यःप्रक्षालक कहा जाता है। इस प्रकार वर्णित तीक्ष्ण व्रत पालन करने वाले चारों प्रकार के मुनिजन पूजनीय होते हैं।

इति वैष्णवधर्मशास्त्र तृतीय अध्याय

यथोत्तमानि स्थानानि प्राप्नुवन्ति दृढव्रताः ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥६५

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति (संन्यासी) आश्रम के दृढ़ व्रतों का पालन करने वाले जन जो उत्तम स्थान (अर्थात् ब्रह्मलोक) प्राप्त करते हैं, (वे ये हैं) ।

विरक्त. सर्वकामेषु पारिव्रज्यं समाश्रयेत् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य दत्त्वा चाभयदक्षिणाम् ॥६६

समस्त इच्छाओं (कामनाओं) के प्रति विरक्त होकर संन्यास आश्रम को ग्रहण कर, अपनी आत्मा ही में, समस्त अग्नियों को समाहित (समारोपित) करते हुं, स्त्री आदि को अभय की दक्षिणा (त्याग) दे.हे ।

चतुर्थमाश्रमं गच्छेद् ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ।
आचार्येण समादिष्टं लिङ्गं यत्नात्समाश्रयेत् ॥६७

गृहत्याग कर जो विप्र चौथे आश्रम (संन्यास) में प्रवेश करे, आचार्य द्वारा बताए गए, (दण्ड, कमण्डलु आदि) प्रतीक चिह्न यत्नपूर्वक धारण करे ।

शौचमाश्रमसम्बद्धं यतिधर्मांश्च शिक्षयेत् ।
अहिंसां सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुताम् ॥६८

संन्यास आश्रम मे (करणीय कर्म) शौच तथा सन्यासी के धर्म को सीखे, अहिंसा, सत्य, तथा अचौर्य का पालन करे, ब्रह्मचर्य व अफल्गुता (निरर्थकत्व का परित्याग) धारण करे ।

दयां च सर्वभूतेषु नित्यं यत्नाद्यतिश्चरेत् ।
ग्रामान्ते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥६९

संपूर्ण चराचर भूतों पर दया-भाव रखे, इस प्रकार कर्म यति नित्य यत्नपूर्वक करे । ग्राम के समीप, किसी वृक्ष के नीचे सदा स्थान रखे ।

पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संविशेत् ।
वृद्धानामातुराणां च भीरूणां सङ्गवर्जितः ॥७०

क्षुद्र कीट के समान पृथ्वी पर विचरण करे और वर्षाकाल में जागृत रह कर बैठे और वृद्ध, रोगी, भीरु (कायर) लोगों का साथ सग न करे (अर्थात् इनके संपर्क में न रहे) ।

ग्रामे वापि पुरे वापि वासेनैकत्र दुष्यति ।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्था शीतापहारिणी ।।७१
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ।
संभाषणं सह स्त्रीभिरालभप्रेक्षणे तथा ।।७२

एक ही ग्राम या एक ही नगर में, एक ही स्थान में वास करने से यति (धर्म-)दूषित हो जाता है। कौपीन (लंगोट), ओढने (शरीर ढांपने) का वस्त्र, जिसमें शीत न लगे, ऐसी कंथा (गुदड़ी) और पादुका (खड़ाऊ) को धारण करे। इनके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का सग्रह न करे। स्त्रियों के सग संभाषण, उनका स्पर्श, दर्शन, न करे।

नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्जयेत् ।
वानप्रस्थगृहस्थाभ्या प्रीति यत्नेन वर्जयेत् ।।७३

(उनके साथ) नृत्य, गान, संगोष्ठी, उनकी सेवा, और वार्तालाप न करे। वानप्रस्थी और गृहस्थी के साथ यत्नपूर्वक प्रीति का परित्याग करे।

एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।
याचितायाचिताभ्या तु भिक्षया कल्पयेत् स्थितिम् ।।७४

परिग्रह त्याग कर एकाकी हो विचरण करे, याचना करने से और बिना मांगे जो मिले, उस भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करे।

साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ।
चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ।।७५
हस. परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ।
एकदण्डी भवेद्वापि त्रिदण्डी वापि वा भवेत् ।।७६

'अच्छा' कह कर ग्रहण करनेको याचित, बिना मांगे जो मिले उसे अयाचित कहते हैं। संन्यासी चार प्रकार के होते हैं (१) कुटीचक (२) बहूदक (३) हंस और (४) परमहंस। इनमें पीछे के (पृष्ठ)-क्रम से क्रमश श्रेष्ठतर हैं, अर्थात् इनमें सबसे श्रेष्ठ परमहंस है, जिनके बाद हस, बहूदक और कुटीचक का स्थान है। ये उत्तम संन्यासी एक दंड अथवा तीन दड धारण करें।

त्यक्त्वा सर्वसुखास्वाद पुत्रैश्वर्यसुख त्यजेत् ।
अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्व यत्नतस्त्यजेत् ।।७७

समस्त प्रकार के सुखों के आस्वाद का परित्याग करे, पुत्र के प्रताप, ऐश्वर्य के सुख को छोड़ दे, अपने में ही नित्य वास करे और यत्नपूर्वक (सब के प्रति) ममत्व (ममता) को त्याग दे।

नान्यस्य गेहे भुञ्जीत भुञ्जानो दोषभाग्भवेत् ।
कामं क्रोधं च लोभ च तथेर्ष्यासत्यमेव च ॥७८
कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वत. ।
भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥७६

किसी अन्य (पराये) व्यक्ति के घर में भोजन न करे, क्योंकि पराये घर में जो भोजन करता है, वह दोष का भागी होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह ईर्ष्या, असत्य इनको सब वस्तुओं के संग, पुत्र के लिए जो छोड़ देता है, वह कुटीचक है। भिक्षाटन आदि में असमर्थ होने पर जो संन्यासी अपने पुत्रों को अपनी देह सौंप दे।

कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट् त्यक्तबांधवः ।
त्रिदण्ड कुण्डिकं चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥८०
सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव बहूदकः ।
प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ॥८१

इसको कुटीचक कहते हैं। (२) अन्य सभी कोटि के बंधु (बांधव) जिसने त्याग दिए हैं, ऐसा संन्यासी त्रिदंड, कुंडी, भिक्षा-पात्र, यज्ञोपवीत को जो नित्य ग्रहण करता है, बहूदक कहलाता है, जो प्राणायाम में तत्पर रहता है, निरंतर गायत्री (मंत्र) का जाप करता है।

विश्वरूपं हृदि ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ।
ईषत्कृतकषायस्य लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठतः ॥८२

वह भगवान् का ध्यान हृदय में करते हुए इंद्रियों को जीतकर काल व्यतीत करे। गेरुआ वस्त्रों को पहनने वाले, (संन्यासी की पहचान) चिह्न धारण करने वाले सन्यासीका।

अन्नार्थं लिङ्गमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ।
त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गंव्यवस्थितः ॥८३

चिह्न धारण करना मोक्ष के लिए नहीं, अन्न के लिए कहा है। यह चिह्न संन्यासी की मर्यादा है, जिसके भीतर सन्यासी को (गृह) समस्त पुत्रादि को त्यागकर, योग-मार्ग में स्थित हो टिके रहना चाहिए।

इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोभिधीयते।
कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥८४
अन्यैश्च शोषयेद् देहमाकांङ्क्षन्ब्रह्मणः पदम् ।
यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् ॥८५

(पाँचो) इंद्रियो तथा मन को नियत्रण में रखते संन्यासी को 'हंस' कहते हैं। कृच्छ्र, चांद्रायण व तुलापुरुष और इतर व्रतों से ब्रह्मपद की इच्छा करने वाला सन्यासी अपने देह को सुखाता (या देह का शोषण करता) है। यज्ञोपवीत और दण्ड धारण करता है। जन्तु देह पर न गिरे, ऐसा वस्त्र धारण करता है।

अय परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिन. ।
आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामास्तथाचरन्॥८६

वेदज्ञ हंस के लिए यही परिग्रह है, इतर (अन्य) नहीं। चौथे प्रकार का संन्यासी अपनी आत्मा (देह) में स्थित व्यापक ब्रह्म का जाप करता है और प्राणायाम को (नियमित रूप से) करता है।

वियुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो योगी नित्यं चरेन्मही ।
आत्मनिष्ठः स्वयंयुक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥८७

समस्त प्रकार के सग-साथ से रहित (वियुक्त) और (अपनी) आत्मा में स्थित और आत्मनिष्ठ होकर जिसने सर्व प्रकार के (परिग्रह) को त्याग किया है, वह पृथ्वी पर नित्य विचरण करता है।

चतुर्थोयं महानेषां स्थानभिक्षुरुदाहृतः ।
त्रिदण्डं कुण्डिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥८८

इन चारों प्रकार के संन्यासियों में श्रेष्ठ, सबसे बड़ा सन्यासी स्थानभिक्षु (परमहंस) कहा गया है। वह त्रिदंड, कुंडिका, यज्ञोपवीत, कपालिका (भिक्षा-पात्र)

जन्तूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुरिदं त्यजेत् ।
कौपीनाच्छादनार्थं च वासोधश्च परिग्रहेत् ॥८९
कुर्यात्परमहंसस्तु दण्डमेकं च धारयेत् ।
आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥९०

अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षु: समाहितः ।
प्राप्तपूजो न सतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥९१

जंगल के जीव-जन्तुओं का वारण वस्त्र, ये सब भिक्षु को त्याग देने चाहिए । उसे तो कौपीन (लंगोट) और शरीर को ढकने वाला वस्त्र ही धारण करना चाहिए । ऐसा परमहंस एक दंड धारण करे । शुभ-अशुभ कर्म का विचार करना अपनी बुद्धि से त्याग दे, अपने (पहचान) चिह्न को (अन्य जन से) छिपा कर, अप्रकट रूप से सावधान रहकर विचरण करे । अपनी (शंसा) पूजा होने पर प्रसन्न न हो और पूजा न होने पर क्रोध न करे ।

त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवी चरेत् ।
देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद् द्विजातिषु ॥९२

ऐसा ज्ञानी, जिसने तृष्णा को त्याग दिया है, गूंगे व्यक्ति के समान (किसी से बिना कुछ कहे-सुने) पृथ्वी पर विचरण करे, देह (जीवन-)रक्षा के निमित्त भिक्षा द्विजातिजन से मांगे ।

पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ।
अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं क्लृप्तवान्मनु. ॥९३

ऐसे भिक्षु का हाथ ही भिक्षा-पात्र होता है, (ऐसा करपात्री भिक्षु) नित्य गृहों में भिक्षार्थ जाए । (यूं तो) मनु (महाराज) ने, बिना धातु के बने तुंबा आदि भिक्षा-पात्र का विधान भी किया है ।

सर्वेषामेव भिक्षूणा दार्वलाबुमयानि च ।
कांस्यपात्रे न भुञ्जीत आपद्यपि कथं चन ॥९४

समस्त प्रकार के भिक्षुओं को काष्ठ का तुंबा (आदि) पात्र रखने के लिए (मनु महाराज ने) कहा है, किंतु (यह भी विधान है कि) आपात्काल में भी भिक्षु कांसी के पात्र में भोजन न करे ।

मलाशाः सर्वे उच्यन्ते यतयः कास्यभोजनाः ।
कांसिकस्य तु यत्पाप गृहस्थस्य तथैव च ॥९५
कांस्यभोजी यति: सर्व तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥९६
उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ।
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्म्मबहिष्कृतः ॥९७

निन्द्यश्च सर्वदेवानां पितॄणां च तथोच्यते ।
त्रिदण्डं लिङ्गमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ॥९८
न तेषामपवर्गोस्ति लिङ्गमात्रोपजीविनाम् ।
त्यक्त्वा लोकांश्च वेदाश्च विषयाणीन्द्रियाणि च ॥९९
आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ।

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।४।

कांसी के पात्र में भोजन (क्षुधापूर्ति) करनेवाला यति, मल (विष्ठा-) भक्षक (या विष्ठा-भोक्ता) कहा गया है। कांसी के पात्र में भोजन कराने वाले गृहस्थ को व पात्र बनाने वाले को जो पाप लगता है, वह इन दोनों का पाप कांसी के पात्र में भोजन करने वाले संन्यासी को लग जाता है। जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी (अपने-अपने) उत्तम आचरणों को (करणीय कर्मों के रूप मे) स्वीकार कर फिर (किसी भी कारण से उत्तम आचरण का) त्याग करता है वह पतित (पतितकर्मारूढ) के रूप में जाना जाता है; सब धर्मों से बहिष्कृत और समस्त देवताओं तथा पितरों द्वारा निंदित होता है। त्रिदंड के आश्रय से संन्यासी द्विजों में भी उत्तम (रूप में रहकर) जीवित रहते है। जो केवल लिंगमात्र से उपजीवी होते हैं, उन्हें मोक्ष नहीं मिलता। और जो लोक, वेद, इंद्रियों के विषयादि का त्याग कर, आत्मनिष्ठ हो, अपनी आत्मा में स्थित रहता है, (वह संन्यासी) परम पद को प्राप्त करता है।

इति वैष्णवधर्मशास्त्र चतुर्थ अध्याय

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकाङ्क्षिणाम् ॥१००
वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तन्निबोधत ।
तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥१०१
दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्त्तितः ।
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥१०२

शुद्धाचारी राजा के धर्म को मैं अब कहता हूं, आप सुनिये। धर्मार्थी राजा का आचार पवित्र होता है। तेज, सत्त्व, धैर्य, दक्षता (कर्म-चातुर्य) और संग्राम के प्रति अविमुखता, दान, ईश्वरभाव (बिना किसी भेद-भाव के न्याय कर्म) यह क्षत्रिय का धर्म कहा गया है। प्रजा का पालन (रक्षण) क्षत्रिय का परम धर्म है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षयेन्नृपतिः प्रजाः ।
त्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ।।१०३

(इस लिए सब) प्रयत्न कर राजा (को चाहिए कि) प्रजा की रक्षा करे और (क्षत्रियोचित) तीन कर्म सयत्न करे ।

दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ।
ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सततं तथा ।।१०४

(१) दान (२) (वेदादि का) पठन (३) योग-अनुसरण और विप्रजन को संतुष्ट करने वाला आचरण (राजा नित्य) करे ।

तेषु तुष्टेषु नियतं राज्यं कोशश्च वर्द्धते ।
वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ।।१०५

विप्रो के संतुष्ट रहने पर, राजा का राज्य और राजकोश बढ़ता है, और (व्यापारिक) व्यवहार (लेन-देन) कृषि तथा गौओं के परिपालन में वृद्धि होती है ।

ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ।
खलयज्ञं कृषीणां च गोयज्ञं चैव यत्नतः ।।१०६

ब्राह्मण और क्षत्रिय की सेवा, वैश्य के कर्म (कर्तव्य) कहे गए हैं । कृषि (खलियान) यज्ञ और गो-यज्ञ करने,

कुर्याद्वैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ।
ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः ।।१०७

गौओं के लिए शरण-गृह (गोशाला) बनाने का कार्य वैश्य निरंतर करे । (शूद्र) ईर्ष्या (द्वेष) को त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों (वर्णों) की नित्य सेवा करे ।

कुर्वंस्तु शूद्रः शुश्रूषां लोकान् जयति धर्मतः ।
पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ।।१०८

(क्योंकि) इन की सेवा-शुश्रूषा करता हुआ (सभी) लोकों को जीत लेता (प्राप्त करता) है । पंच यज्ञ कर्म का करना भी शूद्र के लिए कहा गया है ।

तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन् नित्यं न हीयते ।
शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ।।१०९

शूद्र के लिये भी नमस्कार का विधान किया गया है। नमस्कार करने से शूद्र पतित नही होता। शूद्र दो प्रकार का होता है—एक श्राद्ध-कर्म का अधिकारी—और दूसरा अनधिकारी ।

श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः ।
प्राणानर्थास्तथा दारान्ब्राह्मणार्थन्निवेदयेत् ॥११०

उन दोनों में से, श्राद्धी अर्थात् श्राद्ध-कर्म करने के अधिकारी शूद्र का भोजन करना चाहिए, अनधिकारी शूद्र का नहीं। जो शूद्र अपने प्राण, धन, स्त्री (आदि) को विप्र की सेवा में अर्पित कर दे ।

स शूद्रजातिर्भोज्य स्यादभोज्यः शेष उच्यते ।
कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥१११

उस शूद्र का भोजन भोज्य है और शेष (पंच-यज्ञ कर्म करने के अनधिकारी) शूद्र का भोजन अभोज्य है। शूद्र क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करे ।

कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ।
आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥११२

वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय की सेवा करे और क्षत्रिय ब्राह्मण की ही सेवा करे। वैश्य और क्षत्रिय इनके लिए तीन आश्रम कहे गए है, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ ।

पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ।
आश्रमाणामय प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥११३

संन्यास आश्रम ब्राह्मण के लिए ही कहा गया है। इस प्रकार चारों आश्रमों का सनातन धर्म (विधि-विधान) मैंने कहा ।

यदत्राविदितं किंचित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥

इति विष्णुप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ।

जो कुछ इस में तुमने नहीं जाना, वह इतर (अन्य) ग्रंथो (के अनुशीलन) से जान जाओगे ।

इति विष्णुप्रोक्त धर्मशास्त्र समाप्त ।

।। अथ ।।

लघुहारीतस्मृतिः

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम् ।

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।
इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्द्विजोत्तमाः ।।१

लघुहारीतस्मृति

जो भू, भुव स्वर्ग लोक के द्विजों में उत्तम हैं, और (जो) वर्णाश्रम (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रम) में(जन्मना या कर्मणा) स्थित हैं, वे (सहज रूप से) भगवान् केशव के भी भक्त हैं यह तुम पहले बता चुके हो।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ।
येन सन्तुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ।।२

अब हे पुरुषश्रेष्ठ ! (कृपया) उस वर्ण(-व्यवस्था) और आश्रम(-धर्म) को कहिए जिससे सनातन देव नरसिंह (नृसिंह) प्रसन्न हों।

अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ।।३।।

भगवान् बोले, "इस विषय में, मैं उस उत्तम पुरातन वृत्तांत (कथा) को कहूगा, जिसमें महात्मा हारीत के साथ हुआ ऋषियों का संवाद सन्निहित है।"

हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ।
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ।।४।।

धर्मजिज्ञासु समस्त मुनियों ने, धर्म-ज्ञान-प्राप्ति की अभिलाषा से (प्रेरित हो) अग्नि (देव) के समान (तेजस्वी) धर्मासीन धर्मज्ञ हारीत को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा।

भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक !।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ॥५॥

हे धर्म-मर्मज्ञ ! सर्व धर्म-प्रवर्तक ! भृगुवंश में उत्पन्न भगवन् ! (कृपया) हमें वर्णों और आश्रमों के धर्म का ज्ञान दीजिए।

समासाद्योगशास्त्रञ्च विष्णुभक्तिकरं परम् ।
एतच्चान्यच्च भगवन् ! ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥६॥

विष्णु भगवान् के प्रति भक्ति मे साधक जो योग-शास्त्र है, उसे सार-संक्षेप में कहिए और हे भगवन् ! इसके अतिरिक्त अन्य उपदेश भी दीजिए, क्योंकि आप हमारे परम गुरु हैं।

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ।
शृण्वन्तु मुनयः! सर्वे! धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान्॥७॥

इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति की भावना से प्रेरित उन मुनियों से हारीत ने कहा, 'हे मुनिजन ! सुनिए। मैं समस्त धर्मों में (विद्यमान) सनातन धर्मों को तुम्हें बताता हूं।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च योगशास्त्रञ्च सत्तमाः !।
सन्धार्य्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥८॥

वर्णाश्रमधर्म और योग-शास्त्र का ज्ञान भली प्रकार प्राप्त करने पर (ही) मनुष्य जन्म (-मरण) और संसार के बंधनों से मुक्ति पाता है।

पुरा देवो जगत्स्रष्टा परमात्मा जलोपरि ।
सुष्वाप भोगिपर्यङ्के शयने तु श्रिया सह ॥९॥

पुराकाल में, जगत्-स्रष्टा देव—विष्णु भगवान् (सागर में) जल के ऊपर (शेषनाग की)—शय्या पर (भार्या) लक्ष्मी सहित शयन कर रहे थे।

तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत् पद्ममभूत् किल ।
पद्ममध्येऽभवद् ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१०॥

उस समय शेषशय्यासीन भगवान् विष्णु की नाभि से विशाल कमल-नाल, और कमल के आसन पर ब्रह्मा जी प्रकट हुए, जो वेद-वेदांगों के परमज्ञान से विभूषित थे।

स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः ।
सोऽपि सृष्ट्वा जगत् सर्व सदेवासुरमानुषम् ॥११॥

देवाधिदेव परमब्रह्म भगवान् विष्णु ने उन (ब्रह्मा) से बार-बार कहा, कि वे जगत् की सृष्टि करें। (तदनुसार) ब्रह्मा ने भी देवता, असुर और मनुष्य सहित इस सम्पूर्ण संसार की रचना की।

यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत्।
असृजत् क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यानप्युरुदेशतः ॥१२॥

यज्ञ-सिद्धि के लिए, अनघ (पाप) रहित ब्राह्मण(-वर्ण) की रचना मुख से की, क्षत्रिय(-वर्ण) का सृजन भुजाओं से किया और वैश्य(-वर्ण) की सृष्टि जंघाओं से की।

शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिं पितामहः ॥१३॥

शूद्र-(वर्ण) को पाद (चरणों) से रचा। (इस प्रकार ब्रह्मा के श्रीमुख से ब्राह्मण, भुजदण्डों से क्षत्रिय, जघाओं से वैश्य तथा ब्रह्म-पाद से शूद्र उत्पन्न हुए)। इन चारों वर्णों की क्रमशः रचना करने के उपरान्त भगवान् ब्रह्मा ने ब्रह्म-योनि (विष्णु) को जो वचन कहे (उन्हें सुनिए)।

तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः!।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥१४॥

हे द्विज-जन में उत्तम (श्रोतागण)! (ब्रह्मा के द्वारा कहे गए) उस वचन को आप (लोग) सुनिए, जो धन, यश, आयु, स्वर्ग, मोक्ष फल का दाता है।

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव ह्युत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः।
तस्य धर्मः प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१५॥

ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मण स्त्री से जो उत्पन्न हो, उसे ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण का धर्म क्या है और ब्राह्मण के निवास-योग्य कौन सा देश है इसे मैं अब कहूंगा।

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते।
तस्मिन् देशे वसेद्धर्मः सिद्ध्यति द्विजसत्तमाः ॥१६॥

जिस देश में श्याम वर्ण (कृष्णसार) मृग सहज भाव से विचरण करे (हिंसा रहित) उस देश में, धर्म सिद्धि के लिए, हे द्विजों में उत्तम जनो! ब्राह्मण वास करे।

षट् कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः।
तैरेव सततं यस्तु वर्त्तयेत् सुखमेधते ॥१७॥

षट् कर्मों में निरत वह ब्राह्मण महान् (आत्मा) होता है जो निरन्तर सुखपूर्वक सदा बढ़ता है (अर्थात् धन-पुत्रादि से परिपूर्ण रहता है)।

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति चोच्यते ॥१८॥

जो षट् (छह) कर्म कहे गए हैं वे (इस प्रकार) हैं, पढ़ाना (अध्यापन), पढ़ना (अध्ययन); यज्ञ करना और यज्ञ कराना, दान देना और प्रतिग्रह (दान लेना)।

अध्यापनञ्च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ।
शुश्रूषाकरणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्त्तितम् ॥१९॥

अध्यापन (पढ़ाना) के तीन प्रकार हैं, (१) धर्म ज्ञान के लिए, (२) अर्थ लाभ के लिए और (३) पूर्णतः परोपकारार्थ सेवा के लिए।

एषामन्यतमाभावे वृषाचारो भवेद् द्विजः ।
तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥२०॥

इन तीन (उद्देश्यों) में से किसी एक उद्देश्य के बिना जो द्विज किसी अन्य (स्वार्थ-साधन) के लिए पढ़ाता है, वह ब्राह्मण शूद्र आचारवाला होता है। ऐसे ब्राह्मण का पढ़ाना निरर्थक होता है। (अतः उचित है कि) स्वहिताभिलाषी पुरुष उक्त उद्देश्यों के विरुद्ध विद्या न दे।

योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ।
विदितात् प्रतिगृह्णीयाद् गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥२१॥
वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः ।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥२२॥

वह योग्य शिष्यों को पढ़ाए और अधम (अयोग्य) शिष्यों को नहीं पढ़ाए, अपने गृहस्थ-धर्म (गृहस्थ जीवन) के निर्वाह के लिए किसी धर्म प्रसिद्ध धनी से प्रतिग्रह (दान-दक्षिणा) ले अध्यापक शुद्ध देश में सावधान रहकर वेदाभ्यास (वेदों का अध्ययन) करे। ऐसे ब्राह्मणों को धर्म-शास्त्र भी पढ़ावे, जिनका मानस (हृदय) शुद्ध (अर्थात् अध्ययन का उद्देश्य अच्छा) है।

वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यञ्च दिवा निशि ।
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ।
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥२३॥

वेदाध्ययन के समान धर्मशास्त्र को दिन-रात पढ़ना, सुनना चाहिए, स्मृति और श्रुति इन दोनों से हीन ब्राह्मण को दान, भोजन और अन्य दान, (दान देने वाले के) कुल को नष्ट करता है ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद् द्विजः ।
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥२४॥

(इसलिए उचित यही है कि) ब्राह्मण समस्त प्रकार के प्रयत्न कर धर्म शास्त्र को पढ़े । श्रुति एवं स्मृति दोनों परमेश्वर के बनाए ब्राह्मणों के दो नेत्र हैं । इन दोनो में से किसी भी एक से हीन ब्राह्मण काना (एक-नेत्र) और दोनों से हीन ब्राह्मण अन्धा कहा जाता है ।

गुरुशुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।
सायं प्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजोत्तमः ॥२५॥

(ब्राह्मण को चाहिए कि) आलस्य को त्याग कर, विधिपूर्वक गुरु की सेवा करे, प्रति-दिन सायंकाल और प्रातःकाल विवाहाग्नि की उपासना (होम) करे, अर्थात् विवाह का होम होने पर आजीवन होम करता रहे ।

सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।
अतिथीनागताञ्छक्त्या पूजयेदविचारतः ॥२६॥

(ब्राह्मण) प्रतिदिन भली प्रकार स्नान करे, बलिवैश्वदेव करे और आगत अतिथियों की पूजा, बिना किसी प्रकार का विचार किए, सामर्थ्य-शक्ति के अनुसार करे ।

अन्यानभ्यागतान् विप्राः पूजयेच्छक्तितो गृही ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥२७॥

गृहस्थी ब्राह्मण अन्य (वर्ण के क्षत्रियादि) अभ्यागतों की पूजा सेवा भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार करे । अपनी स्त्री (भार्या) के संग सदा रहे, और पर-स्त्री का वर्जन करे ।

कृतहोमस्तु भुञ्जीत सायं प्रातरुदारधीः ।
सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्त्तयेन्मतिम् ॥२८॥

उदार बुद्धि वाला ब्राह्मण सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र (यज्ञ) कर भोजन करे, सदा सत्य बोले, क्रोध को जीते, अधर्म में वृत्ति को न लगाए ।

स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ।
सत्यां हिता वदेद्वाच परलोकहितैषिणीम् ॥२९॥

किसी कार्य को करते समय प्रमाद वश कार्य को (बीच में) न छोड़े, सदा सच्ची, हितकारी और परलोक में सुखदायक वाणी बोले ।

एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासत. ।
धर्ममेव हि यः कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥३०॥

सक्षेप में यह ब्राह्मण-धर्म कहा है, जो ब्राह्मण अपने धर्म का ही पालन करता है, वह ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है ।

इत्येष धर्मः कथितो मयाय पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ।
वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान् पृथक् पृथग्बोधत विप्रवर्य्याः॥३१॥

हे विप्र श्रेष्ठ ! जो (वर्ण-)धर्म तुमने मुझसे जानना चाहा था, वह समस्त पाप-नाशक धर्म मैने तुम्हे बताया है । राजाओं (क्षत्रियों) के लिए पृथक् धर्मो को भी मैं कहता हू तुम सुनो ।

इति हारीत धर्म शास्त्र प्रथम अध्याय

द्वितीयोऽध्यायः

अथ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम् ।

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परा गतिम् ॥१॥

क्षत्रियादि (वर्ण) के धर्म को यथार्थ रूप मे क्रमबद्ध (व्यवस्थित) रीति से कहता हूं। जिसका विधिपूर्वक पालन करते हुए (क्षत्रियादि) परम गति को प्राप्त करते हैं ।

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मेण पालयन् ।
कुर्यादध्ययन सम्यग् यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥२॥

राज्यासन पर स्थित और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन-पोषण करता हुआ क्षत्रिय भी वेद-पठन और सविधि यज्ञ-कर्म करे ।

दद्याद् दान द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वभार्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥३॥

जो राजा धर्म-बुद्धि में प्रवृत्त हो ब्राह्मण को दान दे; सदा अपनी स्त्री (रानी) में रमे (अनुरक्त रहे), वह राजा सदा आय के छठे भाग का अधिकारी होता है ।

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥४॥

नीतिशास्त्र मे कुशल, संधि, विग्रह के तत्त्वों को (राजा को) जानना चाहिए और उसे देव तथा ब्राह्मणों के प्रति भक्ति-भाव रखना तथा पितरो के कार्य (श्राद्धादि कर्मों) में तत्पर रहना चाहिए ।

धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ।
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५॥

धर्म से यज्ञ करना और अधर्म का परित्याग कर (सत्य का) आचरण करने वाला क्षत्रिय उत्तम गति प्राप्त करता है ।

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।
दानं देय यथाशक्त्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥६॥

(अब मैं वैश्य के धर्म को कहता हूं) गौवों की रक्षा, कृषि-कर्म, व्यापार (लेन-देन) ये वैश्य के धर्म हैं, वैश्य इन कर्मो को विधिपूर्वक करे । यथाशक्ति दान दे, ब्राह्मणों को भोजन कराए ।

दम्भमोहविनिर्मुक्तस्तथा वागनसूयकः ।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥७॥

दंभ और मोह को त्यागे, वाणी पर नियत्रण करे, ईर्ष्या-भाव प्रगट न करे, अपनी स्त्री में रत रहे और पराई स्त्री का परित्याग करे ।

धनैर्विप्रान् भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ।
अप्रभुत्वञ्च वर्तेत धर्मेष्वादेहपातनात् ॥८॥

(वैश्य के लिए उचित है कि वह)धन से ब्राह्मणों को प्रसन्न करे, यज्ञ करते समय ऋत्विजों को तृप्तिकारक भोजन कराए। आमृत्यु (मरण पर्यन्त) धर्म के कार्यों में प्रभुत्व का व्यवहार न करे ।

यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।
पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्च्चनापर. ॥९॥

प्रतिदिन आलस्य को त्याग कर, यज्ञ, अध्ययन, दान (आदि कर्म) करे । पितरों के कार्य (श्राद्धादि कर्म) और नरसिंह के पूजन में तत्पर रहे ।

एतद्वैश्यस्य धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ।
एतदाचरते यो हि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥१०॥

ये वैश्य के धर्म हैं। इन कर्मों को जो करता है और जो वैश्य स्वधर्म के अनुसार जीवन-यापन करता है, वह स्वर्ग में स्थान पाता है । इस कथन में कोई सशय नहीं है।

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नत ।
दासवद् ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥११॥

शूद्र के धर्म के अंतर्गत है, तीनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों) की सेवा। शूद्र यत्नपूर्वक सेवा करे, ब्राह्मण की सेवा विशेष रूप से दासवत् होकर (निष्ठावान्) करे ।

अयाचितप्रदाता च कष्ट वृत्त्यर्थमाचरेत् ।
पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥१२॥

बिना मांगे (अभ्यर्थी को) दान देता है, अपने जीवन-निर्वाह के लिए कष्ट सहता है। आलस्य का परित्याग कर, पाक-यज्ञ से देवताओं का पूजन विधि-पूर्वक करता है।

शूद्राणामधिकं कुर्यादर्च्चनं न्यायवर्तिनाम् ।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ।
स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ॥१३॥

न्याय में तत्पर जो शूद्र देवताओं की पूजा-अर्चना अधिक करता है, जीर्ण (पुराने)वस्त्रों को धारण करता है, ब्राह्मण के उच्छिष्ट भोजन को ग्रहण करता है, अपनी स्त्री में रमता है, पराई स्त्री का परित्याग करता है ।

इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपाप. सुपुण्यकृत् ॥१४॥

मन, वचन (वाणी), देह से इसी प्रकार धर्म में सदा निरत रहता है। ऐसा शूद्र, जिसका पाप नष्ट हो गया है और जो उत्तम पुण्य कर्मो का कर्त्ता होता है, वह इन्द्रासन को प्राप्त करता है ।

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथा तथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा ।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनीद्राः ।१५।

ये ब्रह्मा के मुख से कहे गए चार वर्णों के यथार्थ धर्म मैंने तुम्हें बता दिए हैं। हे मुनिजन (मुनीद्र) अब सनातन आश्रम व्यवस्था के धर्म क्रमशः सुनिए ।

इति हारीत धर्मशास्त्र द्वितीय अध्याय

तृतीयोऽध्यायः

अथ ब्रह्मचर्याश्रमधर्मवर्णनम् ।

उपनीतो माणवको वसेद् गुरुकुलेषु च ।
गुरोः कुले प्रिय कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा ॥१॥

यज्ञोपवीत होने के पश्चात् बालक गुरुकुल में रहे । मन-वचन-कर्म से गुरु के कुल में अनुरक्त रहे ।

ब्रह्मचर्य्यमधःशय्या तथा वह्नेरुपासना ।
उदकुम्भान् गुरोर्दद्याद् गोग्रासञ्चेन्धनानि च ।
कुर्य्यादध्ययनञ्चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ।
विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्व्वाणो न स्वाध्यायफल लभेत् ॥२॥

ब्रह्मचर्य का पालन करे, भूमि पर शयन करे, अग्निहोत्र यज्ञ सम्पन्न करे, मुंह के लिए जल पूरित घट और (भोजन बनाने के लिए) ईंधन की व्यवस्था करे, गौओं को ग्रास (चारा) दे । ब्रह्मचारी शास्त्रोक्त विधिपूर्वक अध्ययन करे, क्योंकि विधि से रहित (हीन) पठन (अध्ययन) फलदायी नहीं होता ।

यः कश्चित् कुरुते धर्म विधिं हित्वा दुरात्मवान् ।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥३॥

जो कोई दुरात्मा, विधि का परित्याग कर, धर्म-कर्म करता है, विधि से पतित वह ब्रह्मचारी उस कर्म के फल को प्राप्त नही करता ।

तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये ।
शौचाचारमशेष तु शिक्षयेद् गुरुसन्निधौ ॥४॥

(इसलिए यह उचित है कि) स्वाध्याय (वेदाध्ययन) की सिद्धि के लिए, गुरुकुल में रहते हुए वेद (उल्लिखित) व्रतों का पालन करे, और गुरु के समीप रहकर, समस्त शौचादि आचरणों को सीखे ।

अजिनं दण्डकाष्ठञ्च मेखलाञ्चोपवीतकम् ।
धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥५॥

मृगचर्म, दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, इनको सावधान रह कर, अप्रमत्त होकर धारण करे ।

सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं सयतेन्द्रियः ।
आचम्य प्रयतो नित्यं च कुर्याद्दन्तधावनम् ।
छत्रञ्चोपानहञ्चैव गन्धमाल्यादि वर्जयेत् ।
नृत्यगीतमथालापं मैथुनञ्च विवर्जयेत् ॥६॥

इन्द्रियों (के विषयों) को जीत कर, भोजन के लिए, सायंकाल और प्रात. काल भिक्षाटन करे, नित्य सावधानी पूर्वक आचमन करे और भिक्षाटन से पूर्व (नियमतः) दंत-धावन करे। छत्र-धारण, जूता पहनना, गन्ध, माला, नृत्य, गान, बहुत संभाषण, मैथुन को त्याग दे।

हस्त्यश्वारोहणञ्चैव सत्यजेत् संयतेन्द्रियः ।
सन्ध्योपास्तिं प्रकुर्व्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥७॥

ऐसा ब्रह्मचारी, जिसने इन्द्रियो को वश में कर लिया है, हाथी और घोड़े की सवारी का (भी) परित्याग किया है, व्रतपूर्वक सन्ध्योपासना करे।

अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः ।
तथा योगं प्रकुर्व्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥८॥

संध्या-कर्म के अंत में, गुरु के चरणों में प्रणाम कर, भक्तिपूर्वक माता-पिता की सेवा करे।

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
एतेषां शासने तिष्ठेद् ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥९॥

जो ब्रह्मचारी निष्ठापूर्वक तीनों कर्मों (गुरु, माता, पिता की सेवा) नहीं करता, इन सेवाओं से नष्ट होता है, उससे सब देवता नष्ट (अप्रसन्न) होते हैं। (इसलिए यह उचित है कि) ब्रह्मचारी ईर्ष्या को त्याग कर, तीनों की शिक्षा (और उनके उपदेश) का पालन करे।

अधीत्य च गुरोर्वेदान् वेदौ वा वेदमेव वा ।
गुरुवे दक्षिणां दद्यात् संयमी ग्राममावसेत् ॥१०॥

गुरु से समस्त (चारों) वेद अथवा दो वेद या एक वेद को पढ़कर, ब्रह्मचारी गुरु को दक्षिणा दे। फिर संयमी होकर किसी अन्य ग्राम में बसे।

यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ।
संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्यया ॥११॥

जिह्वा, लिंगेन्द्रिय, उदर, हाथ आदि कर्मेन्द्रियों को जिसने अपने वश में कर लिया, वह ब्राह्मण संन्यास की प्रतिज्ञा कर ब्रह्मचारी के समान आचरण करे ।

तस्मिन्नेव नयेत् कालमाचार्य्ये यावदायुषम् ।
तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥१२॥

जब तक जीवित रहे अपना समय आचार्य (गुरु) के पास रहकर बिताए, (यदि) आचार्य न हो तो उनके पुत्र के समीप रहे, पुत्र न हो तो उनके शिष्य के सान्निध्य में और शिष्य न हो तो गुरु के कुल अपनी आयु-पर्यन्त अर्थात् आजीवन समय व्यतीत करे ।

न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥१३॥
इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः ।
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१४॥

ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए विवाह करने और संन्यास (आश्रम में प्रवेश करने) का विधान नहीं है । उसके लिए तो प्रमाद (आलस्य) को त्याग कर इस (उपर्युक्त) विधि से देह त्याग देने का विधान किया गया है । ऐसा ब्रह्मचारी जो दृढव्रती है, इस भूलोक में फिर जन्म नहीं लेता, (क्योंकि वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है) ।

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलं च तस्याः सुलभं तु विन्दति ।१५

विधिपूर्वक और सावधानी के सहित जो ब्रह्मचारी पृथ्वी पर विचरता और गुरु की सेवा में तल्लीन या लवलीन रहता है, (मोक्ष प्राप्त करता है ।), वह ब्रह्मचारी अत्यन्त दुर्लभ और कल्याणप्रद विद्या को प्राप्त कर ज्ञानार्जन के सुलभ फल (मोक्ष) को प्राप्त करता है ।

इति हारीत धर्मशास्त्र तृतीय अध्याय ।

चतुर्थोऽध्यायः

अथ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम्

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
असमानार्षगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥१
सर्व्वावयवसंपूर्णां सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ।
ब्राह्मेण विधिना कुर्य्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२॥

वेदों का अध्ययन-कर्ता तथा श्रुतियों के अर्थादि तत्त्वों का ज्ञाता (ब्राह्मण), असमान प्रवर और गोत्र भाई वाली शुभ कन्या से। जिसकी देह में समस्त अवयव, अंगोपांगादि सम्पूर्ण हों, जिसका वृत्त सुन्दर और अच्छा हो अर्थात् जो नीरोग और दोष-रहित हो, उससे आठ प्रकार के विवाहों में उत्तम ब्राह्मण विधि से विवाह करे।

तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्म्मतः ।
उपासनञ्च विधिवदाहृत्य द्विजपुङ्गवाः ॥३॥

इस प्रकार वर्णों के धर्म के अनुसार, अन्य प्रकार के बहुत से विवाह भी कहे गए हैं। द्विज-श्रेष्ठ ब्राह्मण (को चाहिए कि वह) विधिपूर्वक सामग्री एकत्रित करे।

सायं प्रातश्च जुहुयात् सर्वकालमतन्द्रित ।
स्नानं कार्य्यं ततोनित्यं दन्तधावनपूर्व्वकम् ॥४॥

आलस्य को सम्पूर्णत. छोड़कर, प्रतिदिन सायंकाल एव प्रातःकाल यज्ञ करे, नित्य दंतधावन कर स्नान करे।

उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ।
मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥५॥

अरुणोदय के समय उठ कर, यथाविधि शौचादि कर्मों से निवृत्त होना चाहिये, क्योंकि मुख के पर्य्युषित (बासी या बासयुक्त) होने के कारण (सामान्यतः) मनुष्य नित्य असावधान रहता है।

तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम् ।
करञ्जं खादिरं वापि कदम्बं कुरवं तथा ॥६॥

इसलिए शुष्क या आर्द्र काष्ठ (दतौन या दातुन) को दांतों से चबाए; दतौन काष्ठ करंज, खदिर (खैर), कदब, मौलश्री (आदि) का हो।

सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बुनिम्बं तथैव च ।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्चार्कञ्चोदुम्बरमेव च ॥७॥
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्म्मणि ।
दन्तकाष्ठस्य भक्षश्च समासेन प्रकीर्त्तितः ॥८॥

सप्तपर्णी, पृश्निपर्णी, जामुन, नीम, (अपामार्ग) ओंगा, (बिल्व) बेल, आक (ओदुम्बर) गूलर (नामक ये) वृक्ष दतौन के लिए उत्तम कहे गए हैं। दतौन (करते समय) काष्ठ-भक्षण (दांतों से दातुन चबाने) के सम्बन्ध में संक्षेप मे कहा गया है ।

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ।
अष्टाङ्गुलेन मानेन दन्तकाष्ठमिहोच्यते ॥९॥

समस्त कांटे वाले (कीकर आदि कंटकिन्), वृक्ष (दातुन के लिए) पवित्र हैं, दूधवाले समस्त वृक्ष (के दतौन) यशस्वी है। मानक काष्ठ दतौन का आकार अष्ट अगुल प्रमाण कहा गया है ।

प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान् विशोधयेत् ।
प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्याञ्चैव सत्तमाः ॥१०॥
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ।

दातुन का आकार कहीं-कहीं प्रादेश (बालिश्त) मात्र प्रमाण माना गया है, जिससे दांतों को शुद्ध करे। हे उत्तम जन ! प्रतिप्रदा (पड़वा), अमावस्या आदि पर्वों, षष्ठी (छठ) और नवमी तिथियों को दांतों के संग काष्ठ (दातुन) के संयोग को, सात कुल (पुरखाओं) की आत्माओं के लिए दाहक कहा गया है।

अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ॥११*॥
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ।
स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥१२॥

---

* विशिष्ट पर्वों और तिथियों में दंत-धावन, मुख-शोधन, मंजन आदि का निषेध कदाचित् इसलिए किया गया होगा कि इन दिनो करणीय कार्यों के निष्पादन में किसी प्रकार का प्रमाद न हो, अन्यथा यह संभव था कि दंत-धावन के बाद व्यक्ति-विशेष अपनी आदत से विवश हो, नित्य की भांति अन्य कर्मों में प्रवृत्त हो जाता ।

(पीढ़ियों) के पूर्वजों हरे या सूखे वृक्षों की काष्ठ की दंतौन के अभाव में और (प्रतिपदा आदि) निषिद्ध पर्वों और तिथियों में जल (लेकर) बारह गंडूष (कुल्ले) कर मुख की शुद्धि करे और मंत्रों से आचमन कर स्नान करे। स्नान के उपरांत पुनः आचमन करे।

मन्त्रवत् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम्।
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥१३॥

मंत्रपूरित जल स्वयं की (आत्मा की) देह पर छिड़के, इस प्रकार स्वयं पवित्र हो सूर्य को जल की अंजलि (अर्घ्य) दे, (यह कहा गया है कि) सूर्य के साथ प्रातःकाल में मन्देह नामक राक्षस युद्ध करते हैं।

युद्ध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उदकाञ्जलिनिःक्षेपा गायत्र्या चाभिमन्त्रिताः ॥१४॥
निघ्नन्ति राक्षसान्सर्वान् मन्देहाख्यान् द्विजेरिताः।
ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥१५॥

ब्रह्मा के वरदान से, ब्रह्म से जन्मे इन मंदेह राक्षसों को द्विजों की गायत्री मंत्र पूरित जल की अंजलि (अर्घ्य) नष्ट करती है। (इस प्रकार) ब्राह्मणों से रक्षित ऐसा सूर्य आकाश (मार्ग) में (रिपु विहीन हो) गमन करता है।

मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः।
तस्मान्न लङ्घयेत् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥१६॥

महाभाग ऋषियों में मरीचि आदि और योगियों में सनकादि से रक्षित सूर्य गमन करता है। (अर्घ्य दान) का अवलंघन (परित्याग) द्विज न करे और सायंकाल तथा प्रातःकाल संध्या (नित्य) करे।

उल्लङ्घयति यो मोहात् स याति नरकं ध्रुवम्।
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्य्यस्य चाञ्जलिम् ॥१७॥

ऐसा विप्र (जो सध्या-वंदनादि नित्य कर्म का) मोह-वशात् उल्लंघन करता है निश्चय ही नरक में जाता है। सायंकाल में मंत्रों का उच्चारण कर जल का आचमन करे। देह पर छिड़क कर देह को पवित्र करे और सूर्य को अर्घ्य (अंजलि) दे।

दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्य्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति ।
पूर्व्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥१८॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनात् ।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्याञ्च यथाविधि ॥१९॥

अंजलि देकर (आत्म-)प्रदक्षिणा करे, फिर जल का स्पर्श करे और शुद्ध हो प्रातःकाल की संध्या, उस समय (सूर्योदय से पूर्व) करे, जब आकाश में नक्षत्र (तारागण) दृष्टिगत होते हों। तब तक गायत्री मंत्र का जाप करे, जब तक सूर्य (भगवान्) के दर्शन न हों। सायंकाल की संध्या, सूर्य के अस्त होने से पूर्व विधिपूर्वक करे।

गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारा न पश्यति ।
ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होम स्वयं बुधः ॥२०॥

जब तक तारागण आकाश में न दिखने लगें, तब तक गायत्री का जाप करे, फिर अपने घर में जाकर, शास्त्रोक्त विधि से स्वयं होम करे।

सञ्चिन्त्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।
ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥२१॥

(तदुपरांत) अपने पोष्य वर्ग (पुत्र, प्रपौत्र आदि) सेव्य (भृत्य आदि) के भरण-पोषण (पुष्टि) हेतु चिंता करे। फिर ज्ञानी ब्राह्मण, अपने शिष्य के हित से स्वाध्याय करे।

ईश्वरञ्चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ।
कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूर समाहरेत् ॥२२॥

द्विजों में उत्तम ब्राह्मण (आवश्यकता पड़ने पर) ईश्वर (शासक, राजा आदि) के यहां अपने कार्य के लिए जाए। दूर जाकर, कुशा, फल, ईंधन आदि लाए।

ततो माध्याह्निकं कुर्य्याच्छुचौ देशे मनोरमे ।
विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात् पापनाशनम् ॥२३॥

फिर मनोरम प्रदेश या शुद्ध क्षेत्र में माध्याह्निक कर्म (दोपहर में करणीय कार्य) करे। ऐसे कर्मों के निष्पादन के लिए, पापनाशक विधि (अब) मैं संक्षेप में कहूंगा।

स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।
स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ॥२४॥

जिस विधि से स्नान कर (विप्र) समस्त पापों से छूटता है, (वह विधि मैं बताता हूं) । स्नान के लिये शुद्ध अक्षत (बिना टूटे हुए चावल) और तिल सहित मृतिका (स्वच्छ मिट्टी) लाए ।

सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धजलाधिकाम् ।
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ॥२५॥

अच्छे मन (शांत चित्त) सहित शुद्ध पुष्कल जल (तालाब, कूप) नदी में स्नान करे, यदि समीप नदी हो तो नदी में स्नान करे, अन्य जल (कूप, तडाग आदि के जल में) स्नान न करे ।

न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके ।
सरिद्वरं नदीस्नानं प्रतिस्रोतःस्थितश्चरेत् ॥२६॥

(इस सम्बन्ध में, यह विधान निश्चित किया गया है कि) अधिक जल वाले तीर्थ (के निकट) होते, अल्प जल(क्षेत्र) में स्नान न करे । उत्तम नदी में, स्रोत (प्रवाह मूल) में स्थित हो (शुद्ध जल में) स्नान करे ।

तडागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः ।
शुचिदेशं समभ्युक्ष्य स्थापयेत् सकलाम्बरम् ॥२७॥

नदी के अभाव में तडाग (तालाब) में स्नान करे । (स्नान-पूर्व) शुद्ध भूमि को जल से छिड़क (पवित्र कर) (धारणीय) सपूर्ण वस्त्र वहां रखे ।

मृत्तोयेन स्वकं देहं लिम्पेत् प्रक्षाल्य यत्नतः ।
स्नानादिकञ्च संप्राप्य कुर्य्यादाचमनं बुधः ॥२८

(शुद्ध) मिट्टी और(स्वच्छ) जल से अपनी देह को लीपे, स्नान करे (ताकि शारीरिक त्वचा-रंध्र) स्वच्छ हो जाएं, फिर ज्ञानवान् पुरुष आचमन करे ।

सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि ।
हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥२९॥

फिर जल (धारा) के बीच प्रवेश करे, मौन होकर, नियमपूर्वक हरि का स्मरण कर, जंघाओं तक गहरे जल में गोता लगाए ।

ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः ।
प्रोक्षयेद्वारुणैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥३०॥

फिर तट पर आकर, मंत्र जाप कर जल का आचमन करे, वरुण देवता के निमित्त मंत्र जपे, पावमानी सूक्त पढ़कर शरीर पर जल छिड़के ।

कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ।
स्योनापृथ्वीति मृद्गात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ।।३१।।

कुश के अग्रभाग से जल को देह पर छिड़के । 'स्योना पृथ्वी' मंत्र से अथवा 'इदं विष्णु' मंत्र से, देह में मृत्तिका लेपन करे ।

ततो नारायणं देवं संस्मरेत् प्रतिमज्जनम् ।
निमज्यान्तर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्षणम् ।।३२।।

फिर प्रत्येक गोते (जल-प्रवेश) में नारायण देव का स्मरण करे और जल (धारा) के बीच में गोता लगाते समय अघमर्षण मंत्र (ऋत च सत्यं च आदि) का जाप करे ।

स्नात्वा च क्षततिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिः सह ।
तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ।।३३।।
जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी ।
परिधायोत्तरीयञ्च कुर्य्यात् केशान्न धूनयेत् ।।३४।।

स्नान के उपरांत अक्षत और तिलों से देव, ऋषि, पितर इनका (क्रमशः) तर्पण करे, भीगे वस्त्र निचोड़ कर, सावधानी से । जल-तट पर आकर, श्वेत वस्त्र (धोती) पहन कर उत्तरीय धारण करे और केशों को (न झटके) न झाड़े, न कम्पित करे ।

न रक्तमुल्वणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते ।
मलाक्तं गन्धहीनञ्च वर्जयेदम्बरं बुधः ।।३५।।

अधिक लाल और अधिक नीला वस्त्र श्रेष्ठ नहीं कहा गया है । मैले-कुचैले और गंधहीन (सुगंध रहित और दुर्गन्ध युक्त) वस्त्र को बुद्धिमान् व्यक्ति त्याग दे ।

ततः प्रक्षालयेत् पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ।
दक्षिणन्तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् पुनः ।।३६।।

फिर बुद्धिमान् (ज्ञानी) पुरुष मिट्टी और जल का लेप कर पाद-प्रक्षालन करे । (पैर धोने के बाद) दाहिने हाथ का आकार गौ के कर्ण जैसा (गोकर्ण आसन की मुद्रा में) करे ।

त्रिः पिबेदाक्षित तोयमास्य द्विः परिमार्जयेत् ।
पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३७॥

फिर तीन बार जल पान (आचमन) करे। दो बार मुख को पोंछे। फिर पैरों और शिर पर जल छिड़के, (हाथ की) तीन अंगुलियों से मुख का स्पर्श करे।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ।
तथैव पञ्चभिर्मूर्द्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥३८॥

अगुष्ठ (अगुठा) और अनामिका से नेत्रों का स्पर्श करे। इसी प्रकार सावधान रहकर पांचों अंगुलियों से मस्तक का स्पर्श करे।

अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ।
कुर्व्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥३९॥
प्राणायामत्रयं धीमान् यथान्यायमतन्द्रितः ।
जपयज्ञं ततः कुर्य्याद् गायत्रीं वेदमातरम् ॥४०॥

शुद्धमानस ब्राह्मण इस विधि से आचमन करे। हाथ में कुशा लेकर, उत्तर या पूर्व दिशा की ओर अभिमुख हो, आलस्य को छोड़कर न्याय के अनुसार तीन बार प्राणायाम करे। फिर (नित्य नियमानुसार) जप यज्ञ करे। वेद-माता गायत्री का जाप करे।

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधतः ।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥४१॥

तीन प्रकार का जप यज्ञ होता है। उसका स्वरूप बताता हूं, सुनो! वाणी से जप, उपांशु (धीमी ध्वनि-युक्त वाणी) से जप और मन से (मौन रह कर हृदय में) जप, ये तीन जप-यज्ञ के भेद हैं।

त्रयाणामपि यज्ञाना श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ।
यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥४२॥

इन तीनों जप-यज्ञों में उत्तरोत्तर क्रम से जप-यज्ञ श्रेष्ठ है (अर्थात् मनसा जप-यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है, उसके बाद उपांशु जप यज्ञ और फिर वाचिक जप-यज्ञ का स्थान है।) जो जप उच्च और धीमी गति से उच्चारण किए जाते हैं और जिनके उच्चारण में पद और अक्षर युक्त शब्दों का उच्चारण स्पष्ट होता है।

मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ।
शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ।।४३।।

इस प्रकार वाणी के माध्यम से मंत्रों का उच्चारण करते हुए जो जप किया जाता है, वह वास्तविक जप-यज्ञ कहा जाता है। यत्किंचित् होठों को हिला कर शनैः-शनैः मन्त्र का उच्चारण करे ।

किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुजप स्मृतः ।
धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ।।४४।।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।।४५।।

किंचित् सुना जा सके, ऐसा जप उपांशु-जप कहा जाता है और जिस मंत्र-जप में, वर्णाक्षर (पदों के अक्षर) प्रतीत न हों, केवल बुद्धि से, पदों के अक्षरों की पंक्ति और शब्द तथा अर्थ का विचार जिसमें (निहित) हो, उसे मानस जप-यज्ञ कहते हैं। ऐसे सर्व-संस्तुत (सबके द्वारा प्रशंसित) मानस जप-यज्ञ से देवता प्रसन्न होते है ।

प्रसन्ने विपुलान् गोत्रान् प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ।।४६।।
जपितान्नोपसर्पन्ति दूरादेव प्रयान्ति ते ।
छन्द ऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।।४७।।

(देवताओं) की प्रसन्नता से मनीषी जनों की वंशवृद्धि होती है । (बुद्धिमान् लोग फलते-फूलते हैं)। राक्षस, पिशाच और भयानक सर्पादि जप करने से निकट नहीं आते, किन्तु वे दूर से ही भाग जाते है। मंत्रों के छंद और ऋषि आदि को जानकर, आलस्य को त्याग कर मंत्र को जपना चाहिए ।

जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ।
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।।४८।।

(प्रत्येक द्विज के लिए यह विधान है कि) प्रति-दिन, छंद-ऋषि आदि को मन से जान कर गायत्री का जाप करे। एक हजार बार किया गया गायत्री मंत्र का जाप श्रेष्ठ है और शत (सौ) बार किया जाप मध्यम और दस बार किया गायत्री का जाप अधम या निकृष्ट है (अतः गायत्री का जाप शताधिक संख्या में करना चाहिए) ।

गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ।
अथ पुष्पाञ्जलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ॥४९॥
उदुत्यञ्च जपेत् सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ॥५०॥

जो (द्विज) नित्य गायत्री को जपता है वह पाप से लिप्त नहीं होता, फिर ऊपर (आकाश की ओर) भुजा स्थापित कर, सूर्य की ओर अंजलि (हाथ जोड़कर) 'उदुत्यं' और 'तच्चक्षु' (शीर्षक) सूक्तों के जप से सूर्य की स्तुति करे फिर (आत्म-) प्रदक्षिणा कर सूर्य को नमस्कार करे।

ततस्तीर्थेन देवादीनद्भिः सन्तर्पयेद् द्विजः ।
स्नानवस्त्रन्तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ॥५१॥

फिर तीर्थ के (पवित्र) जल से देवादि का तर्पण करे, (तदुपरांत) स्नान के वस्त्र (धोती) को निचोड़ कर आचमन करे ।

तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ।
दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥५२॥
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।
ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥५३॥

इसी प्रकार भक्त-जन स्नान और दान करे । कुशासन (या कुशा-समूह) पर बैठकर कुशाओं को हाथ में लेकर ब्रह्म यज्ञ के विधान से पूर्व दिशा की ओर अभिमुख हो, श्रद्धा से ब्रह्मयज्ञ करे। फिर तिल, पुष्प और अक्षत (बिना टूटे चावलों) से युक्त जल लेकर सूर्य भगवान् को अर्घ्य दे ।

उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा ।
ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ॥५४॥

मस्तक (शिर) पर्यन्त हाथ उठा कर, 'हंसः शुचिषद्' आद्य शब्दों से युक्त ऋचा को उच्चरित कर सूर्य को नमस्कार करे, फिर घर को जाए।

विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णु समर्चयेत् ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्मविधानतः ॥५५॥

तत्पश्चात् घर जाकर, विधिपूर्वक 'सहस्रशीर्षा' पुरुष सूक्त से विष्णु भगवान् का पूजन करे और वैश्वदेव की विधि से, बलिवैश्वदेव सम्पन्न करे ।

गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेदतिथिं प्रति वै गृही ।
अदृष्टपूर्वमज्ञानमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥५६॥

जितनी अवधि मे गौ दुही जाए, उतनी अवधि तक गृहस्थी अतिथि के आगमन की प्रतीक्षा करे। जिसे पहले नहीं देखा हो, ऐसे आए हुए अनजान अतिथि की पूजा करे ।

स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ।
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ॥५७॥

अतिथि को आता देख कर (प्रसन्नता पूर्वक) उसका स्वागत करे, उसे आसन दे। अतिथि को देखकर स्वयं अपने आसन से उठकर उसकी अभ्यर्थना करे, (शीतल) जल उसके सम्मुख प्रस्तुत करे। इन विधियों से अतिथि का स्वागत-सत्कार करने से गृहस्थी के गृह में स्थित अग्नि तुष्ट एवं प्रसन्न होती है ।

आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ।
पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्लभाम् ॥५८॥

अतिथि को आसन प्रदान करने से (देवों के देवता) इन्द्र देव प्रसन्न होते है, अतिथि के पाद-प्रक्षालन (चरणों को धोने) से पितर गण दुर्लभ प्रीति को प्राप्त होते हैं ।

अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ।
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥५९॥

उत्तम अन्न प्रदान करने से ब्रह्मा जी प्रसन्न होते है, अतः गृहस्थी जन को अतिथि का पूजन करना चाहिए ।*

भक्त्या च शक्तितो नित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ।
भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ॥६०॥

भक्ति और अपनी सामर्थ्य शक्ति सहित, विष्णु भगवान् के नित्य पूजन के अनन्तर गृहस्थी को चाहिए कि वह संन्यासी और ब्रह्मचारी (बटुक) को भिक्षा दे।

अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यञ्जनसमन्विताम् ।
अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ॥६१॥

अन्न के विभाजन से पूर्व ही व्यञ्जन-सहित, वैश्वदेव सम्पन्न किए बिना भी घर पर आए भिक्षु को अन्नादि का दान करे ।

---

* अतिथि को देवतासमान पूज्य मानकर उसका स्वागत-सत्कार करने की प्रथा आज भी विद्यमान है ।

उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ।
वैश्वदेवाकृतान् दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।।६२।।

बलिवैश्वदेव के लिए, अन्न को अलग निकाल कर, भिक्षाटन के लिए आए भिक्षुक को अन्नदान देकर विदा करे, क्योंकि बलिवैश्वदेव के सम्पन्न न करने से जो पाप होता है, उसका निवारण करने मे भिक्षुक को दिया दान समर्थ है ।

नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ।
तस्मात् प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात् समाहितः ।।६३।।

भिक्षुक के प्रति की गई अवहेलना के पाप का निवारण वैश्वदेव भी नहीं कर सकता । अतः घर आए अतिथि को सावधानी सहित भिक्षा दें ।

विष्णुरेव यतिच्छाय इति निश्चित्य भावयेत् ।
सुवासिनीं कुमारीञ्च भोजयित्वा नरानपि ।।६४।।

आगत संन्यासी विष्णु का (प्रति-)रूप है, ऐसा निश्चय कर विनम्र भाव से सुवासिनी, कुमारी (कन्या) और अन्य नर (भृत्य आदि) इनको भोजन कराए ।

बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वय भुञ्जीत वा गृही ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ।।६५।।
अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
एवं प्राणाहुतिं कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ।।६६।।

बालक और वृद्ध-जन को भी भोजन जिमा कर, अवशिष्ट (बाकी बचे) भोजन को, पूर्व या उत्तर की दिशा अभिमुख हो, मौन धारण कर, 'परिमित है' (बाकी बचा भोजन मेरे लिए पर्याप्त है) कह कर गृहस्थी भोजन करे और भोजन इस प्रकार करे कि सर्वप्रथम सम्मुख रखे भोजन को नमन करे, प्रसन्न मन से 'प्राणाय स्वाहा' कहकर प्राणाहुति पृथक् पृथक् मंत्र से दे ।६६

ततः स्वादुकरान्नञ्च भुञ्जीत सुसमाहितः ।
आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ।।६७।।

फिर स्वादिष्ठ भोजन को, दत्तचित्त (मनोयोगपूर्वक) हो ग्रहण करे । फिर आचमन कर इष्टदेव का स्मरण करते हुए उदर का स्पर्श करे ।

इतिहासपुराणाभ्यां कञ्चित् कालं नयेद्‌बुधः ।
ततः सन्ध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ॥६८॥

किंचित् समय तक (भारतादि) इतिहास और पुराणादि के पठन-श्रवण में समय बिताए और ग्राम (आवास-समूह) से बाहर जाकर विधिपूर्वक संध्या-वन्दन करे ।

कृतहोमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ।
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥६९॥

फिर होम करे । तदुपरांत घर आए अभ्यागत को भोजन करा कर, रात्रि में भोजन करे । (इसी प्रकार) द्विजातियों के भोजन के लिए सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करने का विधान वेदों में किया गया है ।

नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि. ।
शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥७०॥

स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विज. ।
महानवम्यां द्वादश्या भरण्यामपि पर्वसु ॥७१॥

तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद् द्विजः ।
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्याख्याया तु वर्जयेत् ॥७२॥

दिन के बीच (दिन में दुबारा) भोजन नही करना अग्निहोत्र के समान है । (गुरु को चाहिए कि वह) शिष्यों को पढ़ाये और अनध्याय (तिथियों) में शिष्यों का विसर्जन करे (अर्थात् उन्हें अनध्याय दिवसों में अवकाश प्रदान करे) ।धर्म-शास्त्र, स्मृतियों और पुराणों में कथित सम्पूर्णतः अनध्याय तिथियां हैं—(कार्तिक शुक्ला नवमी) महानवमी, भरणी नक्षत्र युक्त द्वादशी; पर्व (वैशाख शुक्ला तृतीया) अक्षय तृतीया इन अनध्याय तिथियों में शिष्यों को न पढ़ाए और माघ मास की रथ-सप्तमी को भी अनध्यापन कर्म नहीं करे ।

अध्यापनं समभ्यञ्जन् स्नानकाले च वर्जयेत् ।
नीयमानं शवं दृष्ट्वा महोस्थं वा द्विजोत्तमाः ॥७३॥

न पठेद्रुदितं श्रुत्वा सन्ध्यायां तु द्विजोत्तमः ।
दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ॥७४॥

(अध्यापन कर्म का निषेध अन्य अवसरों पर भी इस प्रकार किया गया है।) उबटना लगाने और स्नान करने के समय पढ़ाना वर्जित है। मृत व्यक्ति (शव) को ले जाते समय अथवा किसी (प्राणी) को (निश्चेतना अवस्था में) धरती पर पड़े देख कर अथवा (कहीं से) किसी के रोने या रुदन की ध्वनि को सुने जाने के समय (दिवस और रात्रि के संधि काल) संध्या समय हे द्विजों में उत्तम व्यक्तियो पढ़ाना नहीं चाहिए।

हिरण्यदान गोदान पृथिवीदानमेव च।
एष धर्मो गृहस्थस्य सारभूत उदाहृतः ॥७५॥

(ब्राह्मणों को संबोधित करते हुए कहा गया है) हे द्विजोत्तम ! ये दान भी गृहस्थी को देने चाहिए; सोना, गौ, धरती ये दान देने योग्य कहे गए हैं। यह गृहस्थी के लिए उसका सारभूत धर्म कहा गया है।

य एव श्रद्धया कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम्।
ज्ञानोत्कर्षश्चा तस्य स्यान्नारसिंहप्रसादतः ॥७६॥

जो श्रद्धा सहित इस प्रकार कार्य करता है, उसे ब्रह्मपद अर्थात् वैकुण्ठ लोक प्राप्त होता है और नृसिंह भगवान की कृपा से उसे ज्ञान की उत्कर्ष स्थिति प्राप्त होती है।

तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः।
एव हि विप्राः ! कथितो मया वः,
समासतः शाश्वतधर्मराशिः।
गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्म
कुर्वन् प्रयत्नाद्धरिमेति युक्तम् ॥७८॥

हे द्विज-श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! उस ज्ञान से ब्राह्मण को मुक्ति या निर्वाण की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मैंने संक्षेप में शाश्वत (सनातन) धर्म की (समस्त ज्ञान-)राशि तुम्हें (प्रस्तुत की और) कही है। गृहस्थी के उत्तम धर्म का पालन प्रयत्न सहित करने वाला सर्वोत्तम विष्णु (हरि) की शरण प्राप्त करता है अर्थात् हरिपद पाकर मुक्त होता है।

इति हारीत धर्मशास्त्र चतुर्थ अध्याय।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णनम्

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः!।
धर्माश्रमं महाभागाः ! कथ्यमानं निबोधत ॥१॥

अब मैं वानप्रस्थ का धर्म तुम्हें बताता हूँ। हे उत्तम जन ! हे महाभाग ! मेरे द्वारा कहे गए उस (वानप्रस्थ) आश्रमधर्म को सुनो ।

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् दृष्ट्वा पलितमात्मनः ।
भार्य्यां पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥२॥

(सद्-गृहस्थ पुरुष)पुत्र और पौत्र आदि को, अपनी वृद्धावस्था को देख कर, अपनी भार्या को पुत्रों के अधीन कर अथवा अपने साथ लेकर वन-गमन करे ।

नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ।
धारयन् जुहुयादग्नि वनस्थो विधिमाश्रितः ॥३॥

नख, केश, श्वेत गात्र की त्वचा को धारण करता हुआ वन में टिककर शास्त्रोक्त विधि से अग्निहोत्र सम्पन्न करे ।

धान्यैश्च वनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिन्दितैः ।
शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥४॥

वन में उत्पन्न अथवा अनिन्दित नीवारादि अन्न, शाक, मूल, फलों से यत्नपूर्वक वानप्रस्थी निर्वाह और होम करे ।

त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्य्यात्तीव्रं तपस्तदा ।
पक्षान्ते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपक्वभुक् ॥५॥

त्रिकाल स्नान करे, तीव्र तप करे । (प्रत्येक शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण-)पक्ष के अन्त में अथवा मासान्त (प्रत्येक मास के अन्त) में भोजन करे और अपने आप (स्वय) भोजन बना कर भोजन (भक्षण) करे ।

तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ।
षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६॥

चतुर्थ काल (प्रहर) अथवा आठवें प्रहर या छठे प्रहर में भोजन करे अथवा पवनभक्षी बने (अर्थात् उपवास) करे ।

घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ।
हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत् कालं तपश्चरन् ॥७॥

घर्म (उष्ण या ग्रीष्म काल) में, पंचाग्नि (अपने चारो ओर धूनी जला कर खुले स्थान में ऊपर से सूर्य ताप को सहे), वर्षाकाल में निराश्रय (अनावृत) भूमि या खुले स्थान में रहे और शीत-काल में (शीतल) जल मध्य रहकर तप करे और काल-यापन करे, अर्थात् तीनों ऋतुओं में, ऋतुधर्म के अनुकूल उग्र तपश्चर्यापूर्ण जीवन बिताए ।

एवञ्च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ।
अग्नि स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥८॥

इस प्रकार तपश्चर्या करते हुए, धीरे-धीरे अधिकाधिक तप करते हुए जिस (वानप्रस्थी तपस्वी) ने अपनी बुद्धि को स्थिर कर लिया है, वह अग्नि को अपनी आत्मा में स्थापित कर उत्तर दिशा मे गमन करे ।

आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ।
स्मरन्नतीन्द्रिय ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥९॥

देह के पतन (अर्थात मृत्यु) होने तक, मौन (व्रत) धारण कर, अतीन्द्रिय तपस्वी (ऐसा तपस्वी, जिसने इन्द्रिय-बोध आदि को न जानकर) ब्रह्म का स्मरण करता हुआ (अंत होने पर अततः) ब्रह्म-लोक में पूजा जाता है ।

तपो हि यः सेवति वन्यवासः
समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा ।
विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः
स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०॥

जो वानप्रस्थी, अपने (चंचल) मन को वश में कर, समाधिस्थ हो, तपश्चर्या को अपनाता है, पापों से रहित, निर्मल और प्रशांत रूप में रहता है, वह पुराण पुरुष के दिव्य स्वरूप को प्राप्त करता है ।

इति हारीत धर्मशास्त्र पचम अध्याय ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सन्यासाश्रमधर्मवर्णनम्

अतः पर प्रवक्ष्यामि चातुर्थाश्रममुत्तमम् ।
श्रद्धया तदनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बन्धनात् ॥१॥

अब मैं चार आश्रमो में उत्तम चतुर्थ संन्यास आश्रम के विषय में बताता हूँ । श्रद्धापूर्वक इस आश्रम के धर्म अनुष्ठानादि का टिककर निर्वाह करता हुआ (संन्यासी) पुरुष (जीवन-मरण के) बधनो से मुक्त होता है ।

एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयंश्चैव किल्विषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ॥२॥

वन के आश्रम में स्थित और समस्त प्रकार के पापों से दूर रहते हुए द्विज (को चाहिए कि वह) संन्यास की विधि से (अपने चौथेपन में) चतुर्थ आश्रम (संन्यास) को ग्रहण करे ।

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ।
दत्त्वा श्राद्ध पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥३॥

पितृ, देवता और मनुष्यों के निमित्त दान दे और यत्नपूर्वक पितरों, मनुष्यों और अपनी आत्मा के लिए श्राद्ध करे ।

इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
अग्नि स्वात्मनि सरोप्य मन्त्रवित् प्रव्रजेत् पुनः ॥४॥

पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर अभिमुख हो वैश्वानर यज्ञ करे । तदन्तर स्वयं को अग्नि मान कर मंत्रज्ञाता पुरुष सन्यास ले ।

ततः प्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत् ।
बन्धूनामभयं दद्यात् सर्वभूताभय तथा ॥५॥

(संन्यास आश्रम में प्रवेश लेने के उपरात) पुत्रो के प्रति स्नेह और उनके पालन-पोषण आदि की वृत्ति को त्याग दे, और बन्धु तथा समस्त प्राणियों को अभयदान दे ।

त्रिदण्डं वैणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम् ।
वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥६॥

प्रव्रज्या लेने पर त्रिदंड धारण करे, जिसपर चार अगुल (मात्र) वस्त्र और श्यामा गौ के केशों से बनी रज्जु लिपटी हो, जिसमे ग्रन्थि सम हों ।

शौचार्थमासनार्थञ्च मुनिभिः समुदाहृतम् ।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥७॥

शौच के समय तथा आसन के निमित्त, मुनियों के द्वारा बताई कौपीन और शीत निवारणार्थ कंथा (गूदड़ी) ग्रहण करे ।

पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ।
एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥८॥

चरण-पादुका (खड़ाऊँ) के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का संचय न करे इन्हें सदा अपने पास रखे। ये संन्यासी के लिए सदाचरणीय प्रतीक (चिह्न) कहे गए हैं।

संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम्।
स्नात्वाचम्य च विधिवद्वस्त्रपूतेन वारिणा ॥९॥

जिसने संन्यास आश्रम ग्रहण किया है, वह इन्हें धारण कर श्रेष्ठ तीर्थ में जाकर, वस्त्र से छना पवित्र (शुद्ध) जल ले, विधिपूर्वक स्नान तथा (तदुपरांत) आचमन करे।

तर्पयित्वा तु देवांश्च मन्त्रवद् भास्करं नमेत्।
आत्मनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥१०॥

मंत्रोच्चारण सहित देवताओं के प्रति तर्पण कर, भगवान् भास्कर (सूर्य) को नमस्कार करे। पूर्व दिशा की ओर मुख कर मौन रहे और आत्मनिमित्त तीन बार प्राणायाम करे।

गायत्रीञ्च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत् परं पदम्।
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥११॥

यथाशक्ति गायत्री मंत्र का जाप करे, परम पद (ब्रह्म) का ध्यान करे। देह की स्थिति के लिए नित्य भिक्षाटन करे।

सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु।
सम्यक् याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥१२॥

सायंकाल के समय ब्राह्मणों के घरों में जाकर भिक्षाटन के मिले कवल (ग्रास) को दाहिने हाथ में ग्रहण करे।

पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोधयेत्।
यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥१३॥

बाएँ हाथ भिक्षा पात्र को रखे और दाहिने हाथ से उसे निःशेष (खाली) करे अर्थात् भिक्षा पात्र से उतने अन्न को निकाले, जितने अन्न से तृप्ति हो, अधिक भिक्षा (अन्न) न मांगे।

ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी।
चतुर्भिरङ्गुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥१४॥

सर्वव्यञ्जनसंयुक्तं पृथक् पात्रे नियोजयेत् ।
सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वा सम्प्रोक्ष्य वारिणा ॥१५॥
भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वाचभ्यतो यतिः ।
वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतेन्दुकपात्रके ॥१६॥
कोविदारकदम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन ।

(भिक्षाटन के उपरांत) लौटकर उस भिक्षा-पात्र को, दूसरे (नियत) स्थान पर रखे और चार अंगुलियों से (आवृत) एक ग्रास सावधानी से सब व्यंजन सहित दूसरे पात्र में रखे और उसे सूर्यादि समस्त भूत देवों को प्रदान कर, जल से छिड़क कर पत्तों से बने दोने या पात्र में रखे, मौन रहकर संन्यासी (अल्प) भोजन करे। बड़, पीपल, अगस्त्य, तेंदुक, कनेर, कदंब के पत्तों में (या इन वृक्षों के पत्तों से बने दोनों मे) भोजन कदापि न करे।

मलाक्ताः सर्वे उच्यन्ते यतय. कांस्यभोजिन ॥१७॥
कांस्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्ये भोजयत. सर्व किल्विषं प्राप्नुयात्तयोः ॥१८॥

कांस्य-पात्र (कांसी के बने बर्तन) में भोजन करने वाले संन्यासी को मलिन कहा गया है। (अतः पर्णपात्र (दोने) में सन्यासी को भोजन करना चाहिए।) कांस्यपात्र में भोजन पकाने वाले और कांस्यपात्र मे जिमाने वाले गृहस्थी को पाप का दोष लगता है। ऐसे गृहस्थो से प्राप्त कासी के बर्तन मे बने भोजन और कांसी के बर्तन में परोसे भोजन से उत्पन्न दोनो पाप संन्यासी को लगते है।

भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥१९॥

(संन्यासी को चाहिए कि) वह भोजन के उपरांत पात्र को मंत्रोच्चार करते हुए जल से प्रक्षालित करे अर्थात् मंत्रों से धोए। ऐसा पात्र जो मत्रोच्चार सहित धोया जाता है उसी प्रकार कभी दूषित या अशुद्ध नहीं होता, जिस प्रकार यज्ञ में चमसा कभी अशुद्ध नहीं होता।

अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद् बुधः ॥२०॥

(भोजन एवं पात्र प्रक्षालन के बाद) संन्यासी आचमन और ध्यान कर स्तुति करे और बाकी बचा समय जप, दान, इतिहास-अध्ययन में बिताए।

कृतसन्ध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥२१॥

फिर सध्या कर (किसी आच्छादित) घर में रात्रि का समय बिताए और अपने कमलरूपी हृदय में अविनाशी आत्मा का ध्यान करे ।

यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी ।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२॥

जो संन्यासी सदा धर्म में तत्पर शांत रहता है, समस्त प्राणियों में अपनी समस्त इन्द्रियो को वश में रखकर रहता है, वह इस उत्तम स्थान (लोक) को प्राप्त करता है, जहां पहुंचकर उसे फिर (इस लोक में) लौटना नहीं पड़ता ।

त्रिदण्डभृद्यो हि पृथक् समाचरे-
च्छनैः शनैर्यस्तु बहिर्मुखाधः ।
संमुच्य संसारसमस्तबन्धनात्
स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ॥२३॥

जो त्रिदंडी पृथक्-पृथक् ऐसा आचरण करता है, शनैः शनैः जो अपनी इन्द्रियो के विषयों से विरक्त होता है, वह ससार के समस्त बन्धनों से मुक्त होकर विष्णु भगवान् के अमृतरूपी पादपद्मों को प्राप्त करता है ।

इति हारीतधर्मशास्त्र षष्ठ अध्याय ।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ योगवर्णनम्

वर्णानामाश्रमाणाञ्च कथितं धर्मलक्षणम् ।
येन स्वर्गापवर्गञ्च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥१॥

अब तक मैंने यहां वर्ण और आश्रम के उस धर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में कहा है, जिसके लक्षणों के पालन करने से द्विजाति के मनुष्य स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपात् सारमुत्तमम् ।
यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ।।२।।

अब मैं संक्षेप में, योग शास्त्र का वह सार रूप बताता हूं, जो उत्तम (ज्ञान से युक्त) है और जिसके श्रवण (ज्ञान) से मोक्ष के अभिलाषी (जीवन-) मुक्त होते हैं ।

योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ।।३।।

योगाभ्यास के बल पर समस्त पाप नष्ट होते हैं, अतः (साधक को चाहिए कि) योग में तत्पर हो, उत्तम आचरण-पूर्वक नित्य (परमात्मा का) ध्यान करे ।

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ।।४।।

सर्वप्रथम समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत्त कर, प्राणायाम करे । वाणी को प्रत्याहार व धारणा के वश कर, चंचल मन को स्थिर कर वश में करे ।

एकाकारमना मन्दं बुधैरुपमलामयम् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतर ध्यायेत् जगदाधारमुच्यते ।।५।।

एकाकार मन (एकाग्रचित्त) हो, देवताओं को भी अगम्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, जगत् के आधार परमेश्वर का मन में ध्यान करे ।

आत्मानं बहिरन्तस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ।
रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ।।६।।

वह ब्रह्म जो आत्मस्वरूप के भीतर और बाहर स्थित है । शुद्ध स्वर्ण के समान प्रभा और कांति से युक्त होता है, एकांत में एकाग्र चित्त हो, बैठ कर उसका ध्यान करे ।

यत्सर्वप्राणिहृदय सर्वेषाञ्च हृदि स्थितम् ।
यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ।।७।।

वह ब्रह्म, जो समस्त प्राणियों का हृदय है और जो समस्त जीवधारियों के हृदय में स्थित है, सर्वजन के जानने योग्य है, वही ब्रह्म स्वरूप मैं हूं, ऐसा चिंतन (मनन) करे ।

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ।
श्रुतिस्मृत्यादिक धर्म तद्विरुद्ध न चाचरेत् ॥८॥

जब तक आत्मा से साक्षात्कार का सुख प्राप्त न हो, तब तक ब्रह्म का (अनवरत) ध्यान करना चाहिए । शास्त्रकारों ने यह कहा है कि लाभ का विरोधी जो श्रुति एवं स्मृति-धर्म है, उनके विरुद्ध आचरण नहीं करे ।

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ।
एवं तपश्च विद्या च संयुतं भैषजं भवेत् ॥९॥

जिस प्रकार अश्व के बिना रथ और सारथि के बिना अश्व चल नहीं सकता (क्योंकि ये परस्पर सहायक है) इस प्रकार तप और विद्या (ज्ञान) दोनों परस्पर सहायक होने से ही साथ-साथ चल सकते हैं, और दोनों मिलकर इस संसार (जन्म-मरण) रोग की औषधि है ।

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुवान्नेन संयुतम् ।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणा गतिः ॥१०॥

जैसे मधुर (रस) से युक्त अन्न (मिष्टान्न बनाता है) अन्न से युक्त मीठा (मिठाई) दोनों एक दूसरे से युक्त होते है, जिस प्रकार अपने दोनों पंखों से पक्षी आकाश में गतिशील हो उठता है ।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्या संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११॥

वैसे ही ज्ञान और कर्म दोनों से ही सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है । विद्या (ज्ञान) एव तप के अभ्यास से सम्पन्न ब्राह्मण को सनातन (शाश्वत) ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति वन्धनात् ।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२॥

और वह सूक्ष्म देह तथा स्थूल देह दोनों के बंधनों से मुक्त हो (मोक्ष की स्थिति को प्राप्त हो) जाता है । इस प्रकार जिसकी देह (सूक्ष्म देह सहित स्थूल देह) क्षीण (नष्ट) हो गई, उसका विनाश कदापि नहीं होता (अर्थात् जिसकी दोनों देह नष्ट हो गई उसकी असद् गति कदापि नहीं ।)

मया वः कथितः सर्व्वो वर्णाश्रमविभागशः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३॥

मैंने, द्विजों में श्रेष्ठ ! मनुष्यों के वर्ण और आश्रम के भेद संक्षेप में, और उनका शाश्वत (सनातन) धर्म तुम्हे बताया है ।

श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ।।१४।।

इस प्रकार स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदाता धर्म का ज्ञान सुनकर, मुनिजन ने हारीत मुनि को नमस्कार किया । ज्ञान प्राप्त कर प्रसन्न हुए और तदुपरांत सारे मुनि अपने-अपने आश्रमों की ओर चले गए ।

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ।
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ।।१५।।

हारीत मुनि द्वारा कथित इस धर्मशास्त्र को बार-बार पढ़ कर, जो धर्माचरण करता है, वह परम गति (मोक्ष) प्राप्त करता है ।

ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं बाहुजस्य च ।
ऊरुजस्यापि यत् कर्म्म कथितं पादजस्य च ।
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ।।१६।।

ब्राह्मण के करणीय कर्म, बाहुज (क्षत्रिय) और ऊरूज (वैश्य) वर्णों के कर्म और पादज (शूद्र) वर्ण के करणीय कर्म जो बताए गए है । उनके विरुद्ध (या विपरीत) कर्म करने वाला अपनी जाति (वर्ण) से पतित होता है ।

यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।
तस्मात् स्वधर्मं कुर्व्वीत द्विजो नित्यमनापदि ।।१७।।

इस प्रकार जो वर्ण-धर्म कहा गया है । वह (उस-उस) प्रत्येक वर्ण का करणीय धर्माचरण है केवल आपात्काल को छोड़ कर, जो वस्तुत इस नियम का अपवाद है, और जिससे उसे यह छूट दी गई है कि वह विपज्जनक स्थिति में स्वविवेक के अनुसार कार्य कर सकता है, प्रत्येक द्विज प्रतिदिन अपने-अपने वर्ण के धर्म का पालन करे ।

वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ।।१८।।

राजाओं के स्वामी ! चार वर्ण हैं, और चार ही आश्रम हैं । स्वधर्म के अनुसार जो कर्म करते है, वे परम गति (मोक्ष) प्राप्त करते हैं ।

स्वधर्म्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।
न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥१६॥

अपने अपने (वर्णाश्रम) धर्म के पालन से मनुष्यों पर नृसिंह भगवान् की कृपा होती है और वे प्रसन्न होते है। मधुसूदन भगवान्, धर्मशास्त्र-विहित कर्मों के विपरीत अन्य कर्मो से उस प्रकार प्रसन्न या तुष्ट नहीं होते।

अतः कुर्वन्निजं कर्म्मं यथाकालमतन्द्रितः ।
सहस्रानीकदेवेशं नारसिंहञ्च सालयम् ॥२०॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी
ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ।
सत्यं सुखं रूपमनन्तमाद्यं
विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२१॥

अतः नित्यप्रति आलस्य और प्रमाद को त्याग कर (मनुष्य) यथासमय यथोचित कार्य करे। ऐसा व्यक्ति सहस्रों देवों के स्वामी नृसिंह भगवान् की गति (शरण) को प्राप्त करता है और तन में उत्पन्न वैराग्य की भावना के बल से योगी पुरुष ब्रह्म का ध्यान करता है। सतत क्रियाशील वह योगी देह को त्याग कर सत्य, सुखरूप, अनन्त, आद्य-स्वरूप विष्णु के चरणों में शरण प्राप्त करता है।

इति लघुहारीत-धर्मशास्त्र सप्तम अध्याय।
इति लघु हारीत स्मृतिः समाप्त।

॥ अथ ॥

औशनस-संहिता

—:०.—

— श्रीगणेशाय नमः —

अथानुलोमप्रतिलोमजात्यन्तराणां निरूपणवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि जातिवृत्तिविधानकम् ।
अनुलोमविधानञ्च प्रतिलोमविधिं तथा ॥१॥

अब मै जाति और वृत्ति के विधान, और अनुलोम और प्रतिलोम विधि को कहता हूं ।

सान्तरालकसयुक्तं सर्वं सक्षिप्य चोच्यते ।
नृपाद् ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ।
जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः ॥२॥

जो अंतरालक (अनुलोम और प्रतिलोम के बीच-बीच में उत्पन्न हुए) हैं (यथा पुलिंद, आदि) उनके संयोग सहित उन समस्त का सार-संक्षेप यहां कहा जाता है । ब्राह्मण कन्या से नृप (क्षत्रिय) का विवाह होने पर उत्पन्न पुत्र सूत कहा जाता है (यथा, विदुर आदि)। ऐसा द्विज प्रतिलोम-विधि का द्विज होता है ।

वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥३॥

ऐसी विधि से उत्पन्न सूत वेद का अधिकारी नहीं होता। वह केवल वेदों के धर्म का उपदेष्टा होता है और धर्म का अनुबोधक होता है ।

सूताद्विप्रप्रसूतायां सूतो वेणुक उच्यते ।
नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥४॥

सूत से ब्राह्मण की कन्या से (हुए विवाह से) जो उत्पन्न हो उसे वेणुक (वण्ड) कहते है। क्षत्रिय कन्या से जो सूत की सन्तान उत्पन्न हो उसे चर्मकार (चमार) कहते है ।

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ।
वृत्तञ्च शूद्रवृत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषिध्यते ॥५॥

ब्राह्मण की कन्या से क्षत्रिय पुरुष से जो चोरी से पुत्र हो वह रथकार (बढ़ई, स्वर्णकार) कहलाता है। इसका धर्म वही है, जो शूद्र का धर्म है और वह द्विज नहीं कहलाता है ।

यानानां ये च वोढारस्तेषाञ्च परिचारकाः ।
शूद्रवृत्त्या तु जीवन्ति न क्षात्रं धर्ममाचरेत् ॥६॥

जो (मनुष्य) यान, सवारी को उठाने वाले (भारवाही) हैं, या जो उनके सेवक हैं और शूद्र की वृत्ति से जीवन-यापन करते हैं, उनके लिए क्षत्रिय धर्म वर्जित है ।

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ।
वन्दित्वं ब्राह्मणानाञ्च क्षत्रियाणां विशेषतः ॥७॥

ब्राह्मण स्त्री से जो वैश्य का पुत्र हो, उसे मागध या भाट कहते हैं। वह ब्राह्मणों का या विशेष कर क्षत्रियों का विरुद-गायक (स्तुति करने वाला) होता है ।

प्रशंसावृत्तिको जीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ।
ब्राह्मण्यां शूद्रससर्गाज्जातश्चाण्डाल उच्यते ॥८॥

ऐसे व्यक्ति की जीविका प्रशंसा-वृत्ति है। (यदि अन्य विकल्प न हो तो ऐसा व्यक्ति) वैश्य की दासता करे। ब्राह्मणी से शूद्र-संपर्क से जो पैदा हो उसे चांडाल कहते है ।

सीसमाभरणं तस्य कार्ष्णायसमथापि वा ।
वध्रीं कण्ठे समावध्य झल्लरीं कक्षतोऽपि वा ॥९॥

ये चांडाल सीसे या लोहे के बने आभरणालकार धारण करते है, और ग्रीवा (कठ) में चर्म-पट्टिका (या व्याघ्र-चर्म पट्टी) और कुक्षि (कोख)में झालर (झल्लरी) बांधते हैं ।

मलापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्ने परिशुद्धिकम् ।
नापराह्ने प्रविष्टोऽपि वहिर्ग्रामाच्च नैर्ऋते ॥१०॥

मध्याह्न से पूर्व, ग्राम की शुद्धि-सफाई करते है, मल को उठाते है और मध्याह्न के उपरांत ग्राम मे प्रवेश नहीं करते और ग्राम से बाहर नैर्ऋत दिशा में रहा करते है ।

पिण्डीभूता भवन्त्यत्र नोचेद् वध्या विशेषतः ।
चाण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥११॥

वे सब एक ही स्थान (पिंड) पर साथ-साथ रहें, जो इस प्रकार न रहें, वे विशेष कर वध्य हैं। वैश्य कन्या से चांडाल के संसर्ग से जो उत्पन्न हो, उसे श्वपच कहते है।

श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्बलम् ।
नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः ॥१२॥

कुत्ते का मांस उनका भक्षण है और कुत्ते ही उनका बल है। क्षत्रिय कन्या से वैश्य-संसर्ग से जो उत्पन्न हो उसे आयोगव या जुलाहा या कोली (कोरी) ऐसा कहा गया है।

तन्तुवाया भवन्त्येव वसुकांस्योपजीविनः ।
शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥१३॥

ये तंतुवाय बुनने का काम करें या कांसे के बर्तनों के व्यापार से जीविकोपार्जन करें। इनमें से जो वस्त्र पर कढ़ाई-कसीदा कर्म कर जीवकोपार्जन करते हैं, वे शीलिक कहलाते हैं।

आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः ।
तस्यैव नृपकन्यायां जातः सूनिक उच्यते ॥१४॥

ब्राह्मण कन्या से आयोगव के संसर्ग से जो उत्पन्न होते हैं उन्हें ताम्रोपजीवी या ठठेरा कहते हैं। अयोगव के संसर्ग से क्षत्रिय कन्या से जो उत्पन्न हो, उसे सूनिक (सोनी[1]) कहते है।

सूनिकस्य नृपायान्तु जाता उद्बन्धकाः स्मृताः ।
निर्णेजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवन्त्यतः ॥१५॥

सूनिक के साथ समागम से क्षत्रिय कन्या से जो उत्पन्न हों, उन्हें उद्बंधक कहते हैं। वे वस्त्रों को धोये, वे अस्पृश्य होते हैं।

नृपायां वैश्यतश्चौर्यात् पुलिन्दः परिकीर्तितः ।
पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान् दुष्टसत्त्वकान् ॥१६॥

क्षत्रिय कन्या के साथ वैश्य के चौर्य संयोग से जो उत्पन्न हो, उसे पुलिंद

---

१. आज कल सोनी स्वयं को सुनार और स्वर्णकार कहलाया जाना पसन्द करते हैं।

कहते हैं। पशु-वृत्ति वाले ये पशुओं को मारकर मांस-भक्षण से तृप्त होते हैं। इन्हें दुष्ट (हिंस्र) पशुओं को मार कर अपना जीवकोपार्जन करना चाहिए।

नृपायां शूद्रसंसर्गाज्जातः पुक्कश उच्यते।
सुरावृत्तिं समारुह्य मधुविक्रयकर्मणा ॥१७॥

क्षत्रिय कन्या से जो शूद्र के संसर्ग से उत्पन्न हो, उसे पुल्कस कहते हैं[1]। वह सुरा बनाकर बेचता और जीविकोपार्जन करता है। मधु-विक्रय उसका जीविका-कर्म होता है।

कृतकानां सुराणाञ्च विक्रेता पाचको भवेत्।
पुक्कशाद्वैश्यकन्यायां जातो रंजक उच्यते ॥१८॥

किसी अन्य द्वारा बनाई मदिरा भी वह बेचता है और पकाता भी है। पुल्कस के संसर्ग से वैश्य कन्या से जो उत्पन्न हो, उसे रजक[2] कहते हैं।

नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रञ्जक उच्यते।
वैश्यायां रञ्जकाज्जातो नर्त्तको गायको भवेत् ॥१९॥

क्षत्रिय-कन्या के साथ शूद्र के चौर्य-संपर्क से जो उत्पन्न हो, उसे (भी) रंजक[2] कहते हैं। रंजक से वैश्य-कन्या से जो उत्पन्न हो उसे नर्तक और गायक कहते हैं।

वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहिकः स्मृतः।
अजानां पालनं कुर्यान्महिषीणां गवामपि ॥२०॥

वैश्य-कन्या के साथ शूद्र के संयोग से जो उत्पन्न हो, उसे वैदेहिक कहते हैं। वह बकरियों, भैंसों और गौओं को पालता (वन में चराता) है।

दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत्।
वैदेहिकात्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥२१॥

और दही, दूध, घी, तक्र (छाछ, मट्ठा) आदि बेचकर जीविका कमाता है। वैदेहिक के साथ ब्राह्मणी के संयोग से जो पैदा हो उसे चर्मोपजीवी (चमार) कहते हैं।

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः।
वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते ॥२२॥

---

१. बोलचाल की भाषा में इसे 'कलाल' कहा जाता है।

२. रजक और रंजक आजकल रंगरेज कहे जाते हैं।

क्षत्रिय कन्या के साथ वैदेहिक के संसर्ग से जो उत्पन्न हो, उसे सूचिक या पाचक कहते हैं[1]। वैश्य-कन्या के संग शूद्र के चौर्य संयोग से जो उत्पन्न हो उसे 'चक्री' कहते हैं[2]।

तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन् पुनः ।
विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायान्तु समन्त्रकम् ॥२३॥

जातः सुवर्ण इत्युक्तः सानुलोमद्विजः स्मृतः ।
अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥२४॥
अश्वं रथं हस्तिनं वा वाहयेद्वा नृपाज्ञया ।
सैनापत्यञ्च भैषज्य कुर्याज्जीवेत्तु वृत्तिषु ॥२५॥

चक्री या तैल-पिष्टक तिल से तेल निकालने का कर्म करता है या फिर लवण (नमक) के व्यवसाय से जीविकोपार्जन करता है। (यह जानने योग्य है कि) ब्राह्मण के साथ विधिपूर्वक विवाहित क्षत्रिय कन्या से जो जन्म लेता है, वह अनुलोम सुवर्ण द्विज कहलाता है। वह नित्य संध्या-वंदन आदि नैमित्तिक (जात-कर्मादि) करता, राजाज्ञा से अश्व, रथ, हाथी आदि को संचालित करता, इनकी सवारी करता है और सेनापति बनता अथवा भैषज-कर्म या औषधियों से अपनी जीविका का उपार्जन करता है।

नृपायां विप्रतश्चौर्यात् संजातो यो भिषक् स्मृतः ।
अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपाल्येत्तु वैद्यकम् ॥२६॥

क्षत्रिय कन्या के साथ विप्र के चौर्य सम्पर्क से जो उत्पन्न होता है, उसे भिषक् कहते हैं। वह अभिषिक्त राजा की आज्ञा से चिकित्सा-कर्म अर्थात् वैद्यक कर अपना परिपालन करता है।

आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं तन्त्रोक्त धर्ममाचरेत् ।
ज्यौतिषं गणितं वाऽपि कायिकीं वृत्तिमाचरेत् ॥२७॥

(भिषक् को चाहिए कि) वह अष्टाग आयुर्वेद या तंत्रोक्त धर्म का पालन करे, ज्योतिष अथवा गणित विद्या के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करे।

---

१. आज कल सूचिक को 'दर्जी' और पाचक को 'रसोइया' कहा जा सकता है।

२. चक्री को आधुनिक 'तेली' कहा जा सकता है।

नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः ।
नृपायां नृपसंसर्गात् प्रमादाद् गूढजातक. ॥२८॥

क्षत्रिय की कन्या से विधि पूर्वक विप्र के संसर्ग से जो उत्पन्न हो, वह नृप है। इस नृप से क्षत्रिय कन्या के संसर्ग से जो उत्पन्न हो वह गूढ़ कहलाता है।

सोऽपि क्षत्त्रिय एव स्यादभिषेके च वर्जितः ।
अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥२९॥

वह (गूढ़) भी क्षत्रिय ही होता है, किन्तु राजतिलक और अभिषेक के लिए वर्जित होता है। अभिषेक-वर्ज्य होने के कारण इसे गोज (गोल या गोला) कहते हैं।

सर्वन्तु राजवृत्तस्य शस्यते प(ट्ट)दवन्दनम् ।
पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकानीन एव च ॥३०॥

समस्त प्रकार के राजाओं के चरण वदना (नमन) के लिए प्रशस्त (श्रेष्ठ) है। यह गोज-सज्ञक क्षत्रिय पुनर्भूकरण (दूसरा विवाह करने) में राजा के समान है, अर्थात् गोज के यहां राजा दूसरा विवाह कर सकता है।

वैश्याया विधिना विप्राज्जातो ह्यम्बष्ठ उच्यते ।
कृष्याजीवो भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥३१॥
ध्वजिनी जीविका वाऽपि अम्बष्ठा. शस्त्रजीविनः ।
वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात् कुम्भकारः स उच्यते ॥३२॥

वैश्य कन्या के साथ विप्र के विधिपूर्वक विवाह के बाद जो उत्पन्न हो, उसे अम्बष्ठ कहा जाता है। उसकी जीविका का साधन या तो कृषि-कर्म (खेती) होता है, या अग्नेय (जलाने योग्य) काष्ठ। सेना (को अन्न, काष्ठ आदि की आपूर्ति) या शस्त्र (अस्त्र की आपूर्ति) अम्बष्ठों की जीविका होती है। वैश्य की कन्या के साथ किसी ब्राह्मण के चौर्य-सम्पर्क से जो उत्पन्न हो उसे कुम्भकार (कुम्हार) कहा जाता है।

कुलालवृत्त्या जीवेत नापिता वा भवन्त्यतः ।
सूतके प्रेतके वाऽपि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥३३॥

वह कुलाल (मृत्तिका-पात्र बना कर) जीवकोपार्जन करे। इसी से (उत्पन्न व्यक्ति) नापित (नाई) होता है। जन्म-सूतक या मरण-सूतक में अथवा दीक्षा

(मंत्रोपदेश या शिष्यत्व ग्रहण) के अवसर पर ये केशों का कर्तन कर के जीवन-निर्वाह करते हैं।

नाभेरूद्ध्वं तु वपनं तस्मान्नापित उच्यते ।
कायस्थ इति जीवेत्तु विचरेच्च इतस्ततः ॥३४॥

नाभि के ऊपर (वाले शरीर के भाग) के केशों का कर्तन करने से इसे-नापित कहते हैं। यह कायस्थ (नाम से) इधर-उधर विचरता हुआ जीविकोपार्जन करता है।

काकाल्लौल्यं यमात् क्रौर्य स्थपतेरथ कृन्तनम् ।
आद्याक्षराणि संगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥३५॥

काक की चंचलता, यमराज की क्रूरता और स्थपति (कारीगर) की कृन्तन (काटने-पीटने की) कला से यह सम्पन्न होता है। काक, यमराज और स्थपति के अद्याक्षरों का+य+स्थ से युक्त कायस्थ होता है, जो स्वभाव से चंचल क्रूर तथा कर्तन कर्म में निपुण होता है।

शूद्रायां विधिना विप्राज्जात. पारशवो मतः ।
भद्रकादीन् समाश्रित्य जीवेयुः पूजका· स्मृताः ॥३६॥

शूद्र कन्या के साथ विप्र के सविधि विवाह से जो उत्पन्न होता है, वह पारशव माना गया है। भद्रक आदि (श्रेष्ठ) पर्वतों पर वे रह कर जीविकोपार्जन करते है और पूजक कहलाते हैं।

शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथामण्ड(र्द)लवृत्तिभिः ।
तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥३७॥

ये (पर्वतीय) पारशव शिव आद्यागमों (पंचरात्र आदि आदि आगमों) या मंडल (-ीय) वृत्ति से जीवकोपार्जन करते है। उसी एक (पारशव) जाति के स्त्री-पुरुष से उत्पन्न औरस पुत्र को निषाद कहा जाता है।

वने दुष्टमृगान् हत्वा जीवनं मांसविक्रयम् ।
नृपाज्जातोऽथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥३८॥
वैश्यवृत्या तु जीवेत क्षात्रधर्म न चाचरेत् ।

(निषाद की) जीविका जंगली दुष्ट पशुओं को मारकर उनका मांस बेचना है। विधिपूर्वक वैश्य कन्या के साथ क्षत्रिय के सम्पर्क से जो उत्पन्न हो, वह वैश्य-वृत्ति से जीविकोपार्जन करे और क्षत्रिय के धर्म को न ग्रहण करे।

तस्यां तस्यैव चौरेण मणिकारः प्रजायते ॥३९॥

वैश्य-कन्या के साथ क्षत्रिय के चौर्य-सम्पर्क से जो उत्पन्न हो, उसे मणिकार कहते है ।

मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां वेधनक्रियाम् ।
प्रवालानाञ्च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् ॥४०॥

मणियों का रंजन(रंगना) मोतियों का भेदन मणिकार का काम होता है। (पिरोकर) प्रवाल (मूंगों) की माला बनाना या कड़े बनाना इनका काम है।

शूद्रस्य विप्रससर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ।
नृपस्य दण्डधारः स्याद्दण्डं दण्ड्येषु सञ्चरेत् ॥४१॥

शूद्र-कन्या के साथ विप्र के संसर्ग से जो उत्पन्न हो, वह उग्र कहा जाता है। वह(उग्र)राजा का दंड-धारक होता है, और दंड पाने योग्य (अपराधियों) को दंड देता है।

तस्यैव चौर्यसंवृत्त्या जातः शुण्डिक उच्यते ।
जातदुष्टान् समारोप्य शुण्डाकर्मणि योजयेत् ॥४२॥

शूद्र-कन्या के साथ विप्र के चौर्य-सम्पर्क से जो उत्पन्न हो, उसे शुण्डिक[1] कहते हैं। जन्मते ही दुष्ट (जन) के ऊपर अर्थात् जन्म-जात अपराधियों पर शुण्डी को उनका अधिपति बनाये और शुण्डिक-कर्म[2] के लिए राजा शुण्डिक को नियुक्ति करे।

शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचकः स्मृतः ।
सूचकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ॥४३॥

विधिपूर्वक शूद्र कन्या के साथ वैश्य के संसर्ग से जो उत्पन्न हो, उसे सूचक[3] कहते हैं। ब्राह्मण कन्या के साथ सूचक के संसर्ग से जो उत्पन्न होता है, उसे तक्षक कहते हैं।

---

१. शुण्डिक को आज कल कलाल या करार कहा जाता है।

२. सूली की सजा देना या फाँसी का फन्दा लगाना शुण्डी कर्म होता है।

३. सूची कर्म सूचक की वृत्ति है। आज-कल के व्यवसायों में सूचक को दर्जी कहा जा सकता है।

शिल्पकर्माणि चान्यानि प्रासादलक्षणं तथा ।
नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबन्धक ॥४४॥

शिल्प-कर्म या प्रासाद (भवन) लक्षण बनाने का कार्य उसकी वृत्ति है। क्षत्रिय-कन्या के साथ सूचक के सम्पर्क से जो उत्पन्न हो, वह मत्स्यबधक[1] होता है।

शूद्राया वैश्यतश्चौर्यात् कटकार इति स्मृतः ।
वशिष्ठशापात्त्रेतायां केचित् पारशवास्तथा ॥४५॥

शूद्र-कन्या के साथ वैश्य के चौर्य-सम्पर्क से जो उत्पन्न हो, उसे कटकार कहा जाता है। त्रेतायुग मे, (ब्रह्मर्षि) वशिष्ठ के शाप से कई पारशव हुए हैं।

वैखानसेन केचित्तु केचिद्भागवतेन च ।
वेदशास्त्रावलम्बास्ते भविष्यन्ति कलौ युगे ॥४६॥

वैखानस (हरि भजनों के गायन) या ईश्वर की भक्ति से कई लोग भविष्य में आने वाले कलियुग मे वेदशास्त्र को जानने वाले होंगे ।

कटकारास्ततः पश्चान्नारायणगणा. स्मृताः ।
शाखा वैखानसेनोक्ता तन्त्रमार्गविधिक्रियाः ॥४७॥

उनमें से कटकार नाम के जन बाद में नारायण के जन कहलायेगे। तंत्र मत के विधान से ऐसे जिनके कर्म है, वे वैखानस शाखा के ऋषि कहे गए है।

निषेकाद्याः श्मशानान्ताः क्रियाः पूजाङ्गसूचिकाः ।
पञ्चरात्रेण वा प्राप्तं प्रोक्तं धर्म समाचरेत् ॥४८॥

और पुंसवन सस्कार से लेकर श्मशान तक षोडश संस्कार इनके होते है। इसीलिए ये सूचिक पूज्य है, श्रेष्ठ है। ये पंचरात्र में कहे धर्म का अनुपालन करें।

शूद्रादेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः ।
द्विजशुश्रूषणपर. पाकयज्ञपरान्वितः ॥४९॥
सच्छूद्र तं विजानीयादसच्छूद्रस्ततोऽन्यथा ।
चौर्यात् काकवचो ज्ञेयश्चाश्वानां तृणवाहकः ॥५०॥

---

१. मत्स्यबधक का कार्य, जल में अपने जाल में मछलियों को बांधना या फंसाना होता है। धीवर की वृत्ति मछली पकड़ना है।

शूद्र-कन्या के साथ, शूद्र के सम्पर्क से शूद्र उत्पन्न होता है और शूद्र कहा जाता है। द्विज वर्ण की सेवा में जो शूद्र पाक यज्ञ के कर्म में सावधान है, वह शूद्र उत्तम शूद्र है और जो ऐसा नहीं है, वह असत्, तुच्छ अर्थात् निन्दा योग्य जाना जाता है। जो शूद्र कन्या के चौर्य सम्पर्क से उत्पन्न होता है, वह घोड़ों का तृणवाहक काकवच कहा जाता है।

एतत् संक्षेपतः प्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः।
जात्यन्तराणि दृश्यन्ते सकल्पादित एव तु ॥५१॥

ये जीविका-भेद या वृत्तिविभागानुसार जातियाँ संक्षेप में हमने कही हैं। मन के संकल्पानुसार इनमें से ही अन्य जातियां भी (विकसित होती) दिखाई देती हैं।

इति औशनस धर्मशास्त्र समाप्त।

इत्यौशनसं धर्मशास्त्र समाप्तम्।

शुक्र (औशनस) संहिता समाप्ता।

॥ अथ ॥

॥ आङ्गिरसस्मृतिः ॥

—:o:—

श्रीगणेशाय नमः

अथादौ प्रायश्चित्तविधानवर्णनम्।

गृहाश्रमेषु धर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ।
प्रायश्चित्तविधिं दृष्ट्वा अङ्गिरा मुनिरब्रवीत् ॥१॥

चारों वर्णों के गृहस्थाश्रम आदि धर्मों में प्रायश्चित की पूर्व-निर्धारित विधियों के आलोक में अंगिरा मुनि ने यह कहा।

अन्त्यानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः ।
चान्द्रं कृच्छ्रं तदर्द्धन्तु ब्रह्मक्षत्त्रविशां विदुः ॥२॥

अन्त्यजों के द्वारा बनाए (पकाए) अन्न (भोजन) को खाने के बाद, द्विजादि (ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय चांद्रायण, कृच्छ्र या अर्धकृच्छ्र करें।

रजकश्चर्मकारश्च नटो वुरुड एव च ।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजाः स्मृताः ॥३॥

रजक, चर्मकार (चमार), नट, बुरुड, कैवर्त, मेद और भील ये सात स्मृतियों के अनुसार अन्त्यज कहे गए है।

अन्त्यजानां गृहे तोय भाण्डे पर्य्युषितञ्च यत् ।
प्रायश्चित्तं यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥४॥

अन्त्यजों के घर का जल और पात्र का बासी जल पी लेने पर द्विज को चाहिए कि वह शास्त्र में कथित प्रायश्चित करे।

चाण्डालकूपभाण्डेषु त्वज्ञानात् पिबते यदि ।
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विधीयते ॥५॥

चाण्डाल के कूप (कुएं) या पात्र के जल को, यदि अज्ञान (अनजाने) में द्विजादि पी ले तो प्रत्येक वर्ण के अनुसार वे किस प्रकार प्रायश्चित करे, यह कहा गया है।

चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु भूमिपः ।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥६॥

ब्राह्मण सांतपन, क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य अर्द्ध-प्राजापत्य और शूद्र पाद (चतुर्थ) प्राजापत्य प्रायश्चित क्रमानुसार करें ।

अज्ञानात् पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वन्त्यजातिषु ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥७॥

जो ब्राह्मण अनजाने या अज्ञान वश अन्त्यज जातियों के जल को पीले तो एक दिन का उपवास करे, पंचगव्य (गौ का दूध, वही, घृत, मूत्र) और गोबर पी ले तो (इस प्रकार प्रायश्चित की विधि से) वह शुद्ध हो जाता है ।

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ।
आचान्त एव शुध्येत अङ्गिरा मुनिरब्रवीत् ॥८॥

यदि कभी (संयोग से) उच्छिष्ट-स्पर्श ब्राह्मण (पावन) ब्राह्मण को छू ले या स्पर्श कर ले तो वह आचमन करे। इस प्रकार आचमन करने से वह ब्राह्मण शुद्ध हो जाता है, यह अंगिरा मुनि ने कहा है ।

क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ।
स्नानं जप्यन्तु कुर्वीत दिनस्यार्द्धेन शुध्यति ॥९॥

यदि कभी उच्छिष्ट-स्पर्श क्षत्रिय ब्राह्मण को स्पर्श करे या छू ले तो स्नान के उपरांत आधा दिन (छह घंटे) जप करने के बाद वह शुद्ध होता है ।

वैश्येन तु यदा स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१०॥

यदि कभी उच्छिष्ट-स्पर्श वैश्य, शूद्र या कुत्ता ब्राह्मण को छू ले तो एक दिन और एक रात्रि उपवास करने के उपरान्त, पञ्च-गव्य पीने से ब्राह्मण शुद्ध होता है ।

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टः स्नानं येन विधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥११॥

अनुच्छिष्ट (झूठा मुँह न हो जिसका उसके) द्वारा ब्राह्मण को छू लेने पर स्पर्शित को चाहिए कि वह स्नान करे और उच्छिष्ट के द्वारा स्पर्श किए जाने पर प्राजापत्य व्रत करे ।

अत उर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य वै विधिम् ।
स्त्रीणां क्रीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति ।।१२।।

(अंगिरा ऋषि बोले) इससे आगे मै नीली शौच की विधि बताता हूँ । स्त्रियों के सग क्रीड़ा तथा सभोग के लिए, शय्या पर नील वर्ण का वस्त्र दूषित नहीं है (अर्थात् गृहस्थ धर्म के निर्वाह के लिए, विशेष कर स्त्री रमण के समय, शय्या पर नीले रग की चादर या नीलवर्ण का बिछौना निषिद्ध नहीं है ।)

पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने ।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ।।१३।।

नील के पौधों का पालन (पोषण), नील का विक्रय और नील के व्यापार से जीविकोपार्जन करने वाला ब्राह्मण पतित होता है। तीन बार कृच्छ्र व्रत करने से उक्त पाप से निवृत्ति होती है और ब्राह्मण शुद्ध होता है ।

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवस्त्रस्य धारणात् ।।१४।।

नीले वर्ण वाले वस्त्रधारी पुरुष के स्पर्श से तथा नील वस्त्र धारण कर किए गए स्नान, जप, होम, वेद-पाठ और पितरों के निमित्त तर्पण करने से बड़ा पाप होता है (क्योंकि नील वर्ण के वस्त्र धारण करने वाले व्यक्ति को उक्त कार्य निषिद्ध हैं) ।

नीलीरक्तं यदा वस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।१५।।

नील से रंगे नील वस्त्र को (यदि कोई व्यक्ति) अज्ञान पूर्वक धारण करता या पहिनता है तो वह एक अहोरात्र (दिन-रात) का व्रत कर पंच-गव्य पान करने से शुद्ध होता है ।

नीलीदारु यदा भिन्द्याद् ब्राह्मणं वै प्रमादतः ।
शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् ।।१६।।

यदि नील पौधे की लकड़ी (अर्थात् नील काष्ठ के स्पर्श) से प्रमादवश ब्राह्मण के शरीर में घाव हो जाए या खरौंच के कारण रुधिर का स्राव हो, तब भी ब्राह्मण को चाहिए कि वह चांद्रायण व्रत करे (क्योंकि चांद्रायण व्रत करने से ही नील स्पर्श के दोष से मुक्ति प्राप्त हो सकती है) ।

नीलवृक्षेण पक्वन्तु अन्नमश्नाति चेद् द्विजः ।
आहारं वमनं कृत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।१७।।

जो द्विज (ब्राह्मण) नील के पौधे की लकड़ी से पके अन्न को खाता है वह उस भक्षित आहार को वमन करने के उपरान्त, पच-गव्य के पीने के बाद शुद्ध होता है।

भक्षन् प्रमादतो नोलीं द्विजातिस्त्व समाहित ।
त्रिषु वर्णेषु सामान्यं चान्द्रायणमिति स्थितम् ॥१८॥

यदि द्विजाति (के तीन वर्ण) के व्यक्ति भूल, प्रमाद या अनवधानता (असावधानी) वश नील का भक्षण कर लें तो उनके इस निषिद्ध भक्षण के दोष के निवारण के लिए उन्हें प्रायश्चित्त के रूप में चांद्रायण व्रत करना जरूरी है।

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ।
नोपतिष्ठति दातारं भोक्ता भुङ्क्ते तु किल्विषम् ॥१९॥

नील वस्त्र धारण कर, जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को अन्न (आहार) परोसता है, उसे उसका फल नहीं मिलता। (न केवल अन्नदाता बल्कि) आहारकर्त्ता (भोजन करने वाला) भी पाप का भागी होता है।

नोलीरक्तेन वस्त्रेण यत्पाके श्रपित भवेत् ।
तेन भुक्तेन विप्राणां दिनमेकमभोजनम् ॥२०॥

नील वर्ण के वस्त्र को पहिन कर (रसोई बनाने वाले व्यक्ति द्वारा) जो पाक किया जाता है, उसे भक्षण कर लेने पर ब्राह्मण एक दिन अभोजन रहे अर्थात् उपवास करे।

मृते भर्त्तरि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत् ।
भर्त्ता तु नरकं याति सा नारी तदनन्तरम् ॥२१॥

पति की मृत्यु के पश्चात् जो विधवा नील वर्ण के वस्त्र धारण करती है, उसका पति नरक मे जाता है और बाद में (मरणोपरान्त) वह (नीलवस्त्र-धारी) स्त्री भी नरक को प्राप्त होती है।

नील्या चोपहते क्षेत्रे शस्यं यत्तु प्ररोहति ।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२२॥

नील से उपहत (अर्थात् नील की खेती से दूषित) खेत में जो अन्न उत्पन्न हो, वह द्विजातियों के लिए अभक्ष्य है। (प्रमादवश उस अन्न का) भक्षण किए जाने पर द्विजाति वर्ण के लोग चान्द्रायण व्रत करें।

देवद्रोण्यां वृषोत्सर्गे यज्ञे दाने तथैव च ।
अत्र स्नानं न कर्त्तव्यं दूषिता च वसुन्धरा ॥२३॥

देव-द्रोण (तीर्थ) में, वृषोत्सर्ग, यज्ञ और दान (आदि कर्मों) में नीलवर्ण के वस्त्र धारण कर स्नान नहीं करना चाहिए, क्योंकि (इन कर्मों को करते समय) नील के प्रभाव से पृथिवी दूषित हो जाती है ।

वापिता यत्र नीली स्यात्तावद् भूम्यशुचिर्भवेत् ।
यावद् द्वादश वर्षाणि अत ऊद्‌र्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥२४॥

जिस खेत में नील की खेती होती है या नील बोया गया है उस खेत की भूमि तब तक अशुद्ध रहती है, जब तक बारह वर्ष पर्यन्त नील की खेती उस भूमि में न की जाए, अर्थात् नील की खेती छोड़ देने के बारह वर्ष बाद वह भूमि शुद्ध होती है ।

भोजने चैव पाने च तथा चौषधभेषजैः ।
एवं म्रियन्ते या गावः पादमेकं समाचरेत् ॥२५॥

(गौ के महत्त्व को दर्शाते हुए अंगिरा ऋषि कहते हैं कि) गौ को भोजन या चारा दिलाने, जल पिलाने और ओषधि देने से यदि गौ की मृत्यु हो जाए तो गो हत्या के (निमित्त विहित) प्रायश्चित्त का चौथाई भाग (प्रायश्चित्त स्वरूप) करें ।[1]

घण्टाभरणदोषेण यत्र गौर्विनिपीड्यते ।
चरेदर्द्धं व्रतं तेषां भूषणार्थं हि तत् कृतम् ॥२६॥
दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते ।
गवा प्रभवता घातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥२७॥

ग्रीवा में घंटी बाँधने के दोष से यदि गौ की मृत्यु हो जाए तो (गौ का स्वामी) वही (उपर्युक्त) व्रत करे क्योंकि वह भूषण के लिए किया गया है । यदि गौओं के भूषण (या उनको सजाने) के लिए घंटा गले में बाँधा हो और (गौओं का) दमन करने, (नियंत्रण या दमन) कराने, रोकने और मारने पर, गौओं के ब्याते (जन्मते) समय यदि गौ को कोई आघात लगे, (तब भी) प्रायश्चित्त का चतुर्थ भाग व्रत करे ।

---

१. इस व्यवस्था का तात्पर्य यह है कि गौ के भरण पोषण और रक्षण में अनवधानता सर्वथा वर्जित है । जाने-अनजाने दूषित भोजन, जल या ओषधि देने से गौ का प्राणान्त हो जाए तो यह कृत्य भी प्रायश्चित करने योग्य है ।

अङ्गुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः ।
सपल्लवश्च साग्रश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥२८॥

(दण्ड को परिभाषित करते हुए अंगिरा मुनि कहते हैं) अंगुष्ठ प्रमाण जिस डंडे में गांठें हों, दो हाथ लम्बा हो, अग्रभाग वाले ऐसे पल्लव युक्त डंडे को दण्ड कहते हैं ।

दण्डादुक्ताद्यदान्येन पुरुषाः प्रहरन्ति गाम् ।
द्विगुणं गोव्रतं तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥२९॥

ऐसे (सपल्लव) दण्ड से भिन्न किसी अन्य प्रकार के इतर दण्ड से, यदि गौ को ताड़ना दी जाती है, तो (ताड़ना) देने वाले पुरुष को प्रायश्चित्त स्वरूप दुगुने गोव्रत करने से शुद्धि प्राप्त होती है ।

शृङ्गभङ्गे त्वस्थिभङ्गे चर्मनिर्म्मोचने तथा ।
दशरात्रं चरेत् कृच्छ्रं यावत् स्वस्थो भवेत्तदा ॥३०॥

ताड़ना देते समय यदि गाय के सींग या अस्थि में चोट लग जाए या गाय की चमड़ी उखड़ या उधड़ जाए तो (ताड़ना देने वाला व्यक्ति) दशरात्र कृच्छ्र व्रत करे या व्रत तब तक करे जब तक गौ के सींग, त्वचा आदि स्वस्थ हों ।

गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकञ्चोपजायते ।
एतदेव हितं कृच्छ्रमिदमाङ्गिरसं मतम् ॥३१॥

अंगिरा ऋषि ने अपनी स्मृति में कहा है कि गोमूत्र से सम्मिश्रित जो जौ उपजता है, वह हितकर कृच्छ्र है ।

असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः ।
यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते ॥३२॥

उक्त प्रायश्चित्त करने में असमर्थ बालक के स्थान पर उसका पिता अथवा गुरु यदि प्रायश्चित्त करे तो (अपकर्मकर्ता) बालक को पाप-दोष नहीं लगता ।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥३३॥

अस्सी वर्ष का (वयोवृद्ध) पुरुष और सोलह वर्ष की अवस्था से कम का बालक, स्त्री और रोगी व्यक्ति अर्द्ध प्रायश्चित्त के योग्य है ।

मूर्च्छिते पतिते चापि गवि यष्टिप्रहारिते ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु प्रायश्चित्तं विशोधनम् ।।३४।।

यदि लाठी के प्रहार से गौ मूर्छित हो जाए या वह (भूमि पर) गिर पड़े, तो आठ हजार बार गायत्री मंत्र का जाप करने के स्वरूप प्रायश्चित्त करने पर शुद्धि (अथवा गौ को कष्ट पहुंचाने के पाप-दोष से मुक्ति प्राप्त) होती है ।

स्नात्वा रजस्वला चैव चतुर्थेऽह्नि विशुध्यति ।
कुर्य्याद्रजसि निवृत्तेऽनिवृत्ते न कथञ्चन ।।३५।।

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने के उपरान्त शुद्ध होती है । स्त्री को चाहिये कि वह रजोनिवृत्ति होने पर ही स्नान करे। निवृत्ति के बिना स्नान बिलकुल नहीं करे ।

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्त्तते ।
अशुद्धास्ता न तेन स्युस्तासां वैकारिकं हि तत् ।।३६।।

रोग के कारण यदि स्त्री को रज (रक्त)-स्राव हो तो उसके कारण स्त्री अशुद्ध नहीं होती, क्योंकि शारीरिक रोग अन्य रज (रक्त)-स्राव विकार से होता है (प्रकृत से नहीं) ।

साध्वाचारा न तावत् स्याद्रजो यावत् प्रवर्त्तते ।
वृत्ते रजसि गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैन्द्रिये ।।३७।।

(स्त्री के लिए यह उचित है कि) जब तक रज की प्रवृत्ति रहे, तब तक उत्तम कर्म (आचरणादि) न करे और रज की निवृत्ति होने पर पुरुष का संग (सहवास) और घर के अन्य काम करे ।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ।।३८।।

रजस्वला स्त्री, रजोदर्शन के प्रथम दिन चांडाली होती है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के समान होती है, और चौथे दिन (रजोनिवृत्ति होने पर) शुद्ध होती है ।

रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ।।३९।।

यदि रजस्वला स्त्री को श्वान अथवा शूद्र छू ले तो एक रात्री उपवास कर, पंचगव्य पान करने के उपरांत वह शुद्ध होती है ।

द्वावेतावशुची स्यातां दम्पती शयनङ्गतौ ।
शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥४०॥

(सहवास काल में) शय्या पर शयन करते समय स्त्री-पुरुष दोनों अशुद्ध होते हैं। शय्या से उठने के उपरांत स्त्री शुद्ध होती है और पुरुष अशुद्ध रहता है।

गण्डूषं पादशौचञ्च न कुर्य्यात् कांस्यभाजने ।
भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥४१॥

कांसी के बने पात्र में गंडूष (कुल्ले) नहीं करे और पैर नहीं धोये। यदि (भूल या प्रमादवश ऐसा) करे तो (इस प्रकार प्रयुक्त) कांस्य पात्र भस्म से माँजे जाने पर और (प्रयोग में लिया गया) ताँबे का पात्र खटाई मलने से शुद्ध होता है।

रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ।
भूमौ निःक्षिप्य षण्मासमत्यन्तोपहतं शुचि ॥४२॥

स्त्री की शुद्धि रजोनिवृत्ति से, नदी की शुद्धि वेग (बाढ़ आने के उपरांत) और अत्यन्त बिगड़ी वस्तु (पात्र आदि) की शुद्धि उसके छः मास तक भूमि में पड़े रहने से होती है।

गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ।
भस्मना दशभिः शुद्ध्येत् काकेनोपहते तथा ॥४३॥

ऐसा कांस्यपात्र, जिसे गाय ने सूंघ लिया हो, जिसमें किसी शूद्र ने भोजन किया हो अथवा जिसे कौए ने छू (स्पर्श कर) लिया हो, दस दिन तक भस्म से माँजने से शुद्ध होता है।

शौचं सौवर्णरौप्याणां वायुनार्केन्दुरश्मिभिः ॥४४॥
रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकञ्च न दुष्यति ।
अद्भिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुध्यति ॥४५॥

स्वर्ण-पात्र और (चांदी से बने) रौप्य-पात्र पवन-स्पर्श, चन्द्र-रश्मि और सूर्य-रश्मियों से शुद्ध होते हैं (अर्थात् कभी अशुद्ध नहीं होते)। स्त्री का रज और शव का स्पर्श, सारे ऊनी वस्त्र को अशुद्ध नहीं करता है। ऊनी वस्त्र जिस मात्रा (जितने अंश) में भ्रष्ट या अशुद्ध हुआ हो, उतना ही मिट्टी और जल से धोने से शुद्ध होता है।

शुष्कमन्नमविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ।
अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्य्यति ।।४६।।

अविप्र (अर्थात् ब्राह्मण से भिन्न) वर्ण के व्यक्ति से प्राप्त शुष्क अन्न को खाकर सात दिन पर्यन्त उपवास करे। व्यजन मिश्रित अन्न को खाकर एक पक्ष(पंद्रह दिन) के उपवास से शुद्धि होती है।

पयो दधि च मासेन षण्मासेन घृत तथा ।
तैलं संवत्सरेणैव कोष्ठे जीर्य्यति वा न वा ।।४७।।

दूध या दही खाकर एक महीने के उपवास से और घी का सेवन कर छह महीने पर्यन्त उपवास से शुद्धि होती है। एक वर्ष में तेल मनुष्य के पेट में पचता है या नहीं भी पचता।

यो भुङ्क्ते हि च शूद्रान्नं मासमेक निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ।।४८।।
शूद्रान्न शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण च सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागम. कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ।।४९।।

वह व्यक्ति, जो निरन्तर महीने भर शूद्र के अन्न का सेवन करता है इसी जन्म में शूद्र हो जाता है और मरणोपरान्त (अगले जन्म में) श्वान होता है। शूद्र का अन्न, शूद्र का सम्पर्क और शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना तथा शूद्र से किसी विद्या (ज्ञान) की प्राप्ति, प्रतापी मनुष्य को भी पतित करते हैं (अर्थात् अपवित्र जीवन-चर्या वाले व्यक्ति के संग दोष से उज्ज्वल चरित्र भी दूषित होता है)।

अप्रणामे तु शूद्रेऽपि स्वस्ति यो वदति द्विजः ।
शूद्रोऽपि नरकं याति ब्राह्मणोऽपि तथैव च ।।५०।।

जो ब्राह्मण शूद्र के प्रणाम किये बिना उसे आशीर्वाद देता है, तो इस प्रकार द्विज को अभिवादन न करने वाला शूद्र तथा बिना अभिवादन किये शूद्र को आशीर्वचन कहने वाला ब्राह्मण दोनों नरकगामी होते हैं।

दशाहाच्छुध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ।
पाक्षिक वैश्य एवाह शूद्रो मासेन शुध्यति ।।५१।।

दस दिन में ब्राह्मण, बारह दिन में क्षत्रिय, पन्द्रह दिन में वैश्य तथा एक मास की अवधि में शूद्र शुद्ध होता है।

अग्निहोत्री च यो विप्रः शूद्रान्न चैव भोजयेत् ।
पञ्च तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा वेदास्त्रयोऽग्नय. ।।५२।।

(इस अवधि में)जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्र के अन्न का भक्षण करता है, उसकी देह, उसके वेद(-ज्ञान) और तीन प्रकार के अग्नि(तेज) इस प्रकार पांचों नष्ट हो जाते हैं ।

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्त्तते ।।५३।।

शूद्र के अन्न को भक्षण कर, द्विज जिन पुत्रों को उत्पन्न करता है वे पुत्र तो उस शूद्र के होते हैं, जिसका अन्न सेवन करने से उनका जन्म हुआ, क्योंकि इस प्रकार भक्षण किये अन्न से ही वीर्य उत्पन्न होता है । (इस कथन का तात्पर्य यह है कि दूष्य अन्न-भक्षण वर्ज्य है) ।

शूद्रेण स्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथ पाणिना ।
तद् द्विजेभ्यो न दातव्यमापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ।।५४।।

शूद्र से प्रमाद के कारण हाथ से स्पर्शित, उच्छिष्ट अन्न द्विज को न दे, यह आपस्तम्ब मुनि ने कहा है ।

ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ।
वैश्येष्वापत्सु भुञ्जीत न शूद्रेऽपि कदाचन ।।५५।।

ब्राह्मण का अन्न सदा भक्षणीय होता है। क्षत्रिय का अन्न पर्व (यज्ञादि) में प्रयोज्य, वैश्य का अन्न आपत्तिकाल में सेवनीय है और शूद्र का अन्न कदाचित् न खाये ।

ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ।
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्व शूद्रान्ने नरकं ध्रुवम् ।।५६।।

ब्राह्मण के अन्न को खाने से व्यक्ति दरिद्री, क्षत्रिय के अन्न के भक्षण से पशु, वैश्य के अन्न-भक्षण से शूद्र और शूद्र के अन्न के भक्षण से भक्षणकर्त्ता निश्चय ही नरकगामी होता है ।

अमृत ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पय· स्मृतम् ।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्न रुधिरं ध्रुवम् ।।५७।।

ब्राह्मण का अन्न अमृत रूप है और क्षत्रिय का अन्न दूध के समान होता है। वैश्य का अन्न अन्न ही होता है और शूद्र का अन्न रुधिर (कदान्न) स्वरूप होता है ।

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ।
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ।।५८।।

मनुष्य का किया कर्म या पाप अन्न में रहता है। जो व्यक्ति (अपने उपजे या उपजाये अन्न को छोड कर) परान्न का भक्षण करता है, वह (पर व्यक्ति के) पाप को खाता है ।

सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पिबेत् पानीयमज्ञानाद् भुङ्क्ते(अन्नं)भक्तमथापि वा ।।५९।।

उत्तीर्य्याचम्य उदकमवतीर्य्य उपस्पृशेत् ।
एवं हि समुदाचारो वरुणेनाभिमन्त्रितः ।।६०।।

यदि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण सूतक में अज्ञानवश (पर वर्ण के) जल को भी पी ले या अन्न का भक्षण कर ले, तो सेवित जल व अन्न का वमन कर उसे निकाल दे, फिर आचमन करे, फिर जल में उतर कर स्नान प्राणायाम करे और आचमन करे। इस प्रकार उत्तम विधि से वरुण के मन्त्रों के उच्चारण के साथ पवित्र जल अपनी देह पर छिड़के ।

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ।
आहारे जपकाले च पादुकानां विसर्जनम् ।।६१।।

अग्निशाला, गोशाला, देव और ब्राह्मणों के सान्निध्य में आहार और जप के समय पादुकाओं को त्याग दे ।

पादुकासनमारूढो गेहात् पञ्चगृहं व्रजेत् ।
छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीपतिः ।।६२।।

और यदि पादुकाओं पर चढ़ कर जो सामान्य गृहस्थी, अपने घर से पाँच घरों तक जाये तो धर्मज्ञ राजा को चाहिये कि वह उसके पैरों को काट डाले।

अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारग. ।
एते वै पादुकैर्य्यान्ति शेषान्दण्डेन ताडयेत् ।।६३।।

क्योंकि अग्निहोत्री ब्राह्मण, तपस्वी, वेदोक्त कर्मों का पालन करने वाला और वेद का मर्म जानने वाला व्यक्ति ही पादुका धारण कर चलें और अन्य पुरुषों को (जो पादुका पर चढ़े) दण्ड से ताड़ना करे।

जन्मप्रभृति संस्कारे चूडान्ते भोजनं नवम् ।
असपिण्डे न भोक्तव्य चूडस्यान्ते विशेषतः ।।६४।।

जन्म से (जात-कर्मादि) संस्कारों में, चूड़ा कर्म में, अन्न-प्राशन में अपने असपिंड के घर भोजन न करे, और चूड़ा-कर्म में तो विशेष रूप में ऐसा न करे ।

याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ।
नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।६५।।

भिक्षुक का अन्न, नव श्राद्ध (किसी व्यक्ति की मृत्यु के ग्यारहवें दिन का ब्राह्मण भोजन), सूतक का अन्न और स्त्री (पत्नी) के प्रथम गर्भाधान (-काल) में खा कर चांद्रायण व्रत कर प्रायश्चित्त करे ।

अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ।
तस्याश्चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रगीयते ।।६६।।

जो कन्या अन्य व्यक्ति को देकर अन्य को दी जाती है, उसका अन्न भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि उसे पुनर्भू कहते हैं ।

पूर्वश्च स्रावितो यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ।
द्वितीये गर्भसंस्कारस्तेन शुद्धिर्विधीयते ।।६७।।

यदि पूर्व गर्भ का पात (या गर्भ-स्राव) हो जाये अथवा विहित संस्कार सम्पन्न न किये जायें, तो दूसरे (पश्चवर्ती) गर्भ के सस्कार से शुद्धि होती है ।

राजाद्यैर्दशभिर्माषैर्यावत्तिष्ठति गुर्विणी ।
तावद्रक्षा विधातव्या पुनरन्यो विधीयते ।।६८।।

जब तक वह स्त्री गर्भवती रहे, राजमाष आदि दस प्रकार के माषों से गर्भवती स्त्री के गर्भ की रक्षा करनी चाहिये, ताकि फिर अन्य गर्भ रहे ।

भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्त्तते ।
तस्याश्चैव न भोक्तव्य विज्ञेया कामचारिणी ।।६९।।

अपने पति की आज्ञा का उल्लंघन (अतिक्रमण) कर जो स्त्री अन्यथा व्यवहार करती है उसका अन्न भी नहीं खाना चाहिये और ऐसी स्त्री को कामचारिणी जानना चाहिये ।

अनपत्या तु या नारी नाश्नीयात्तद्गृहेऽपि वै ।
अथ भुङ्क्ते तु यो मोहात् पूयसं नरकं व्रजेत् ॥७०॥

जो स्त्री वन्ध्या हो, उसके घर का अन्न भी नहीं खाना चाहिये। जो मोहवश (उस प्रकार का वर्ज्य) भोजन करता है, वह पापात्मा पूयस नरक में जाता है ।

स्त्रिया धनन्तु ये मोहाद् उपजीवन्ति बान्धवाः ।
स्त्रिया यानानि वासांसि ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥७१॥

स्त्री के धन को मोहवश जो बान्धव भोगते हैं, स्त्री का यान (वाहन, सवारी आदि), उसके वस्त्रों को जो प्रयोग (व्यवहार) में लाते हैं, वे पापी अधोगति को प्राप्त होते हैं ।

राजान्नं हरते तेज शूद्रान्नं ब्रह्मवर्च्चसम् ।
सूतकेषु च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ॥७२॥

राजा का (राजस दोष से युक्त) अन्न भोक्ता के तेज का हरण करता है और शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को हरता है । और जो सूतक के अन्न का भक्षण करता है, वह पृथिवी के मल को खाता है ।

अंगिरा प्रणीत धर्मशास्त्र पूर्ण हुआ ।

इत्यङ्गिरसा महर्षिणा प्रणीतं धर्मशास्त्र समाप्तम् ॥

समाप्ता चेयं आङ्गिरसस्मृतिः ।

ओ३म् तत्सत् ।

॥ अथ ॥

संवर्त्तस्मृतिः

संवर्त्तमेकमासीनमात्मविद्यापरायणम् ।
ऋषयस्तमुपागम्य पप्रच्छुर्धर्मकाङ्क्षिणः ॥१॥

अकेले बैठे हुए, आत्मविद्या में पारङ्गत उस संवर्त्त के पास आकर धर्माभिलाषी ऋषियों ने पूछा ।

भगवन् ! श्रोतुमिच्छाम श्रेयस्कर्म द्विजोत्तम !
यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाशुभविवेचनम ॥२॥

हे भगवन् ! हे कल्याणकारी कर्मों वाले ! हे द्विजों में श्रेष्ठ ! हम सुनने के इच्छुक है, इसलिए हमें शुभ और अशुभ का विवेक कराने वाले धर्म का समुचित रूप से उपदेश कीजिये ।

वामदेवादयः सर्वे तमपृच्छन् महौजसम् ।
तानब्रवीन्मुनीन् सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥३॥

वामदेव आदि सब ऋषियों ने महान् ओज वाले उस (संवर्त्त) से प्रश्न किया । प्रसन्न-चित्त (संवर्त्त) ने उन सब मुनियों को कहा—सुनिये ।

स्वभावाद् यत्र विचरेत् कृष्णसारः सदा मृगः ।
धर्म्यदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥४॥

जहां कृष्णसार मृग सदा स्वेच्छापूर्वक विचरण करे, उसे ही द्विजों को धर्म की सिद्धि कराने वाला धर्म-क्षेत्र जानना चाहिये ।

उपनीतः सदा विप्रो गुरोस्तु हितमाचरेत् ।
स्रग्गन्धमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥५॥

उपनयन संस्कार किया हुआ विप्र ब्रह्मचारी सदा गुरु का हित साधे और माला, गन्ध, मधु और मांस को त्याग दे ।

सन्ध्या प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्द्धास्तमितभास्करे ॥६॥

प्रातः काल (पूर्वा) सन्ध्या में जब तारे निकले हुए हों, और सूर्य से युक्त पश्चिमा सन्ध्या में सूर्य के आधा अस्त हो जाने तक यथाविधि उपासना करे।

तिष्ठन् पूर्वा जपं कुर्य्याद् ब्रह्मचारी समाहितः ।
आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां जपं कुर्य्यादतन्द्रितः ॥७॥

पूर्वा सन्ध्या में ब्रह्मचारी ध्यानावस्थित होकर खड़े हुए (गायत्री का) जप करे और पश्चिमा संध्या में आलस्य-रहित होकर बैठा हुआ (गायत्री का) जप करे।

अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यान्मेधावी तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत वेदन्तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥८॥

उसके पश्चात् मेधावी ब्रह्मचारी (दोनो समय) अग्निकर्म (होम) करे। तत्पश्चात् गुरु के मुख को देखते हुए वेद का अध्ययन करे।

प्रणव प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृति तदनन्तरम् ।
गायत्रीञ्चानुपूर्वेण ततो वेदं समारभेत् ॥९॥

पहले प्रणव (ओम्) का प्रयोग करे, उसके पश्चात् व्याहृति का, (तब) आदि से आरम्भ करके गायत्री का उच्चारण करे। उसके पश्चात् वेद का आरम्भ करे।

हस्तौ सुसंयतौ कार्य्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ ।
गुरोरनुमतं कुर्य्यात् पठन्नान्यमतिर्भवेत् ॥१०॥

दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखकर सुस्थिर करने चाहिये। (वेद को) पढ़ते हुए (सब कुछ) गुरु की अनुमति से करे। अन्यमनस्क न होवे।

सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयात् प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥११॥

सदा व्रत को धारण करने वाला ब्रह्मचारी साय और प्रातः भिक्षाचरण करे। उसे गुरु को देकर, नहा-धोकर पूर्वाभिमुख हो चुपचाप भोजन करे।

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्य्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥१२॥

सायं और प्रातः द्विजातियों का भोजन करना वेद में विहित है। शांत-चित्त अग्नि-होत्री बीच में भोजन न करे।

आचम्यैव तु भुञ्जीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद् द्विजः ।
अनाचान्तस्तु योऽश्नीयात् प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥१३॥

द्विज आचमन करके भोजन करे और भोजन करके पुनः मुंह साफ करे। जो बिना मुंह साफ किए भोजन खाता है, वह प्रायश्चित्त का भागी होता है ।

अनाचान्तः पिबेद् यस्तु योऽपि वा भक्षयेद् द्विजः ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जप कृत्वा विशुध्यति ॥१४॥

जो द्विज विना आचमन किए (जल) पीता है अथवा जो भोजन खाता है, वह आठ हजार गायत्री का जाप करके पूर्ण रूप से शुद्ध होता है ।

अकृत्वा पादशौचन्तु तिष्ठन् मुक्तशिखोऽपि वा ।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽथ शुचिर्द्विजः ॥१५॥

पाँव धोए बिना, खड़ा हुआ, अथवा खुली हुई शिखा वाला, यज्ञोपवीत के विना तो आचमन करके भी (खाने वाला द्विज) अशुद्ध होता है ।

आचामेद् ब्राह्मतीर्थेन सोपवीती ह्युदङ्मुखः ।
उपवीती द्विजो नित्य प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥१६॥

उपवीत को धारण किये हुए (द्विज) उत्तर की ओर मुख करके ब्रह्मतीर्थ (अगूठे के निकट वाले स्थान) से आचमन करे। उपवीत को धारण किये पूर्वाभिमुख बैठा मौनी द्विज नित्य शुद्ध होता है ।

जले जलस्थ आचामेत् स्थलाचान्तो बहि. शुचि. ।
वहिरन्तस्थ आचान्त एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१७॥

जल में बैठा हुआ (द्विज) जल में आचमन करके और बाहर स्थल में बैठा हुआ स्थल में आचमन करके इस प्रकार जल के बाहर और भीतर शुद्धि को प्राप्त होता है।

आमणिबन्धनाद्धस्तौ पादावद्भिर्विशोधयेत् ।
परिमृज्य द्विरास्यन्तु द्वादशाङ्गानि च स्पृशेत् ॥१८॥

मणिबन्ध (पहुंचे) तक दोनों हाथों को और दोनों पाँवों को जल से साफ करे। मुख को दो बार साफ करके बारह अंगों (दो ओष्ठों, दो नासिकाओं, दो आंखों, दो कानों, दो भुजाओं और दो जांघों) को स्पर्श करे ।

स्नात्वा पीत्वा तथा भुक्त्वा स्पृष्ट्वा चैव द्विजोत्तमाः ।
अनेन विधिना विप्र आचान्तः शुचितामियात् ॥१९॥

हे ब्राह्मणो ! स्नान कर के, (जल) पीकर, (भोजन) खाकर और (अपवित्र वस्तु को) स्पर्श करके ब्राह्मण इसी विधि से आचमन करके भली प्रकार शुद्ध होता है।

शूद्रः शुद्ध्यति हस्तेन वैश्यो दन्तेषु वारिभिः ।
कण्ठागतैः क्षत्रियस्तु आचान्तः शुचितामियात् ॥२०॥

शूद्र हाथ से (जल का स्पर्श करके), वैश्य दांतों में जल के स्पर्श से, क्षत्रिय कण्ठ तक गए हुए जलों से आचमन करके शुद्ध होता है।

आसनारूढपादश्चाकृतावश्यक्रियस्तथा ।
आरूढपादुको वापि न शुद्ध्यति कदाचन ॥२१॥

आसन पर रखे हुए पाँव वाला, उसी प्रकार न की हुई आवश्यक क्रियाओं वाला और पादुकाए पहना हुआ नर (आचमन करके भी) शुद्ध नहीं होता।

उपासीत न चेत् सन्ध्यामग्निकार्यं न वा कृतम् ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जपेत् स्नात्वा समाहितः ॥२२॥

यदि सन्ध्योपासन न करे, अथवा अग्नि-होत्र न किया हो, तो स्नान करके शांतचित्त हो आठ हज़ार गायत्री का जप करे।

सूतकान्न नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ।
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयात्त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥२३॥

सूतक का अन्न, इसी प्रकार नव श्राद्ध और मासिक श्राद्ध का अन्न जो ब्रह्मचारी खाता है, वह तीन रात्रियों में ही शुद्ध हो जाता है।

ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत् स्त्रियं कामप्रपीडितः ।
प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रमथवैकं सुयन्त्रितः ॥२४॥

जो ब्रह्मचारी काम से पीडित होकर स्त्रीगमन करे, तो वह उसके पश्चात् जितेन्द्रिय रहकर एक कृच्छ्र प्राजापत्य करे।

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधुमांसं कथञ्चन ।
प्राजापत्यन्तु कृत्वासौ मौञ्जीहोमेन शुध्यति ॥२५॥

जो ब्रह्मचारी किसी कारण से मधु और मांस का सेवन करे, वह प्राजापत्य व्रत करके मौञ्जी-होम (जो यज्ञोपवीत के समय होता है) से शुद्ध होता है।

निर्वपेच्च पुरोडाशं ब्रह्मचारी च पर्वणि ।
मन्त्रैः शाकलहोमान्तैरग्नावाज्यञ्च होमयेत् ॥२६॥

ब्रह्मचारी पर्व के दिन पुरोडाश दे, और शाकल होम के अङ्गभूत मन्त्रों से अग्नि में आज्य का होम करे।

ब्रह्मचारी तु यः स्कन्देत् कामतः शुक्रमात्मनः।
अवकीर्णी व्रत कुर्य्यात् स्नात्वा शुद्ध्येदकामत. ॥२७॥

जो ब्रह्मचारी जानबूझकर अपने वीर्य को स्खलित करे, वह अवकीर्णिव्रत करे। जो ब्रह्मचारी अनजाने में वीर्य को स्खलित करता है वह स्नान करके शुद्ध हो जाता है।

भिक्षाटनमटित्वा तु स्वस्थो ह्येकान्तमश्नुते।
अस्नात्वा चैव यो भुङ्क्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥२८॥

जो भिक्षाटन करके स्वस्थ होता हुआ भी अकेला उसे खाता है, और जो बिना स्नान किये भोजन करता है, वह आठ सौ गायत्री का जप करे।

शूद्रहस्तेन योऽश्नीयात् पानीयं वा पिबेत् क्वचित्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२९॥

जो शूद्र के हाथ का खाए, या कहीं जल को पी ले, वह अहोरात्र उपवास करके पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, मूत्र और गोमय) से शुद्ध होता है।

शुष्कपर्य्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्न केशदूषितम्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥३०॥

सूखे, बासी और उच्छिष्ट अन्न को खाकर और केश पड़े हुए अन्न को खाकर अहोरात्र उपवास करके पञ्चगव्व से शुद्ध होता है।

शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥३१॥

शूद्रों के बर्तन में खाकर अथवा फूटे हुए बर्तन में खाकर एक दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथञ्चन।
स्नात्वा सूर्य्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥३२॥

जो स्वस्थ ब्रह्मचारी किसी कारण दिन के समय सोए, तो स्नान करके सूर्य का दर्शन करे और आठ सौ गायत्री का जाप करे।

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ।
एवं संवर्त्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ।।३३।।

प्रथम आश्रम (=ब्रह्मचर्याश्रम) में वास करने वालों का यह धर्म कहा गया है। इस प्रकार बरतता हुआ (ब्रह्मचारी) परम गति को प्राप्त होता है।

अथ द्विजो समावृतः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत् ।
कुले महति सम्भूतां लक्षणैश्च समन्विताम् ।।३४।।
ब्राह्मेणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ।
पञ्चयज्ञविधानञ्च कुर्य्यादहरहर्द्विजः ।।३५।।

इसके पश्चात् द्विज (घर) लौटकर समान वर्ण वाली, महान् कुल में उत्पन्न, (उत्तम) लक्षणों से युक्त, शील, रूप और गुणों से अन्वित स्त्री का ब्राह्म विवाह[1] के द्वारा उद्वहन करे। और तदनन्तर द्विज दिन-प्रतिदिन पञ्च महायज्ञों का विधान करे।

न हापयेत् तु तान् शक्तः श्रेयस्कामः कदाचन ।
हानिं तेषां तु कुर्व्वीत सदा मरणजन्मनोः ।।३६।।

श्रेय की कामना करने वाला समर्थ (द्विज) कभी उनका त्याग न करे। (पर) मरण और जन्म में सदा उनका त्याग करे।

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ।
क्षत्त्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ।।३७।।

(मरण और जन्म के अवसर पर) ब्राह्मण दान अध्ययन को छोड़कर दस दिन तक बैठा रहे, क्षत्रिय बारह दिनों तक (और) वैश्य पन्द्रह दिनों तक।

शूद्रः शुध्यति मासेन संवर्त्तवचनं यथा ।
प्रेतायान्नं जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ।।३८।।

जैसा कि संवर्त्त ऋषि का वचन है, शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। प्रेत के गोत्रजों को मिलकर स्नान कर प्रेत को अन्न और जल देना चाहिये।

प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ।
चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः ।।३९।।

---

१. उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाकर विद्यावान् और सुशील वर को बुलाकर कन्या को देना ब्राह्म विवाह कहलाता है।

ब्राह्मणों के द्वारा पहले दिन, तीसरे, सातवे और उसी प्रकार नवम दिन अथवा चौथे दिन अस्थिसंचयन किया जाना चाहिये।

ततः सञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते।
चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्त्रियस्य च ॥४०॥

तदनन्तर (अस्थि-) सचयन के पश्चात् अंगस्पर्श का विधान है। (अर्थात् किसी को स्पर्श करने में कोई पाप नहीं)। ब्राह्मण के लिये चौथे दिन और क्षत्रिय के लिये छठे दिन (अंगस्पर्श का विधान है)।

अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः।
जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥४१॥

आठवें और दसवें दिन वैश्य और शूद्र के लिये (अङ्ग-)स्पर्श का विधान है। महर्षियों के द्वारा उत्पन्न हुए (अर्थात् जन्म-सूतक) के विषय में भी यही विधि देखी गई है।

दशरात्रेण शुध्येत द्विजो वेदविवर्ज्जितः।
पुत्रे जाते पितुः स्नानं सचैलन्तु विधीयते ॥४२॥

जिस ब्राह्मण ने वेद नहीं पढ़ा है वह दश रात्रियों में शुद्ध होता है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता के लिये वस्त्रों सहित स्नान का विधान है।

माता शुध्येद् दशाहेन स्नातस्य स्पर्शनं पितुः।
होमस्तत्र तु कर्त्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन च। ॥४३॥

माता दस दिन में शुद्ध होती है। पिता का स्नान करके स्पर्श करना ही उचित है)। इस अवसर पर सूखे अन्न या फलों से होम करना चाहिये।

पञ्चयज्ञविधानन्तु न कार्य्यं मृत्युजन्मनोः।
दशाहात्तु परं सम्यग् विप्रोऽधीयीत धर्मवित् ॥४४॥

मृत्यु और जन्म (के सूतक) में पंच यज्ञों का विधान न करे। दस दिन के पश्चात् धर्म को जानने वाला ब्राह्मण भली प्रकार वेदाध्ययन करे।

दानञ्च विधिना देयमशुभान्तकरं शुभम्।
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ॥४५॥

जो-जो वस्तु लोक में इष्टतम है और जो इसे घर में बहुत प्यारी है, अशुभों (पापों) का विनाश करने वाली उस-उस वस्तु का शुभ दान विधिपूर्वक दिया जाना चाहिये।

तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ।
नानाविधानि द्रव्याणि धान्यानि सुबहूनि च ॥४६॥

अक्षय (पुण्य) को चाहने वाले नर को वह-वह वस्तु गुणवान् (ब्राह्मण) को दान में देनी चाहिये । नाना प्रकार के द्रव्य और बहुत से अन्न (दान में दिये जाने चाहियें) ।

समुद्रजानि रत्नानि नरो विगतकल्मषः ।
दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय प्राप्नोति महती श्रियम् ॥४७॥

समुद्र में जितने रत्न हैं उन सब को पापरहित मनुष्य गुणों से सम्पन्न ब्राह्मण को दान में देकर बड़ी भारी लक्ष्मी को प्राप्त करता है ।

गन्धमाभरणं माल्यं यः प्रयच्छति धर्मवित् ।
स सुगन्धः सदा हृष्टो यत्र तत्रोपजायते ॥४८॥

जो धर्म को जानने वाला मनुष्य गन्ध, आभूषण और माल्यादि को दान में देता है, वह उत्तम गंध वाला, सदा प्रसन्नचित्त मनुष्य जहाँ-तहाँ उत्पन्न होता है ।

श्रोत्रियाय कुलीनायाभ्यर्थिने च विशेषतः ।
यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥४९॥

जो दान वेदपाठी ब्राह्मण को, ऊँचे कुल वाले को और विशेष रूप से अभ्यर्थी को भक्ति के साथ दिया जाता है, वह बहुत महान् फल वाला होता है ।

आहूय शीलसम्पन्नं श्रुतेनाभिजनेन च ।
शुचिं विप्रं महाप्राज्ञं हव्यकव्येषु पूजयेत् ॥५०॥

शील-सपन्न, श्रुत और अभिजन से सम्पन्न, शुद्धाचार और महान् प्रज्ञा वाले ब्राह्मण को बुलाकर हव्य (देवताओं के अन्न) और कव्य (पितरों के अन्न) से उसकी पूजा करे ।

नानाविधानि द्रव्याणि रसवन्तीप्सितानि च ।
श्रेयस्कामेन देयानि स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥५१॥

श्रेय की कामना वाले, और अक्षय स्वर्ग चाहने वाले मनुष्य को रस वाले और कमनीय अनेक प्रकार के द्रव्यों का दान करना चाहिये ।

वस्त्रदाता सुवेशः स्याद्रौप्यदो रूपमेव हि ।
हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विन्दति ॥५२॥

वस्त्र का दान करने वाला सुन्दर वेश वाला हो जाता है, चाँदी का दान करने वाला रूप को प्राप्त करता है। सोने का दान करने वाला समृद्धि, तेज और आयु को प्राप्त करता है।

भूताभयप्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात् ।
दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ।।५३।।

प्राणियों को अभय प्रदान करने से (मनुष्य) सब कामनाओं को प्राप्त करता है। दीर्घ आयु को प्राप्त करता है और सदा सुखी रहता है।

धान्योदकप्रदायी च सर्पिर्दः सुखमश्नुते ।
अलङ्कृत्य त्वलङ्कारं दत्त्वा प्राप्नोति तत्फलम् ।।५४।।

धान्य और जल का दान करने वाला और घी का दान करने वाला सुख को प्राप्त होता है। अलङ्कृत होकर अलंकारों का दान करने वाला उसके फल को प्राप्त करता है।

फलमूलानि विप्राय शाकानि विविधानि च ।
सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञः स जायते ।।५५।।

ब्राह्मण को फलों, मूलों, विविध प्रकार के शाकों और सुगन्धित पुष्पों का दान देकर वह (मनुष्य) प्रज्ञावान् हो जाता है।

ताम्बूलं चैव यो दद्याद् ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ।
मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ।।५६।।

जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मणो को पान दान करे, वह मेधावी, सुन्दर, प्रज्ञावाला और दर्शनीय हो जाता है।

पादुकोपानहौ च्छत्रं शयनान्यासनानि च ।
विविधानि च यानानि दत्त्वा दिव्यगतिर्भवेत् ।।५७।।

पादुका, जूते, छत्र, शयनों, आसनों और विविध प्रकार के यानों का दान करके (मनुष्य) दिव्य गति वाला हो जाता है।

दद्याच्च शिशिरे त्वग्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः ।
कायाग्निदीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपसौभाग्यमाप्नुयात् ।।५८।।

जो (मनुष्य) शिशिर ऋतु में प्रयत्न पूर्वक अत्यधिक काष्ठ वाली अग्नि का दान करता है, वह जठराग्नि की दीप्ति, बुद्धि, रूप और सौभाग्य को प्राप्त करता है।

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशान्तये ।
दत्त्वा स्याद्रोगरहित: सुखी दीर्घायुरेव च ॥५६॥

रोगियों के रोग को शान्त करने के लिये उसे औषध, स्नेह (घी)और आहार देकर (मनुष्य) रोग-रहित, सुखी और लम्बी आयु वाला हो जाता है।

इन्धनानि च यो दद्याद्विप्रेभ्य: शिशिरागमे ।
नित्यं जयति सग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीप्यते ॥६०॥

जो (मनुष्य) शिशिर के आगमन पर विप्रों को ईंधन का दान करता है, वह सग्राम में नित्य विजयी होता है, और श्री से युक्त होकर प्रकाशमान् होता है।

अलङ्कृत्य तु य: कन्यां वराय सदृशाय वै ।
ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यात्तान्तु सुपूजिताम् ॥६१॥
स कन्याया: प्रदानेन श्रेयो विन्दति पुष्कलम् ।
साधुवादं लभेत् सद्भि: कीर्ति प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥६२॥

जो (मनुष्य) सुपूजित कन्या को अलंकृत करके तुल्य वर को ब्राह्म विवाह की विधि से देता है, वह कन्या के प्रदान से पुष्कल श्रेय को प्राप्त करता है, और सज्जनों से साधुवाद को और महती कीर्ति को प्राप्त करता हे।

ज्योतिष्टोमातिरात्राणा शत शतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममन्त्रैस्तु संस्कृताम् ॥६३॥

होम के मन्त्रो से संस्कृत कन्या को देकर पुरुष सौ ज्योतिष्टोम और अतिरात्र यज्ञों के सौ गुना फल को पाता है।

ता दत्त्वा तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनासनै: ।
पूजयन् स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु ॥६४॥

पिता कन्या का विवाह करके उत्सव और वृद्धि (पुत्र-जन्म आदि) के अवसरों पर नित्य ही भूषण, वस्त्र और भोजन से उसका आदर-सत्कार करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त करता है।

रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुङ्क्तेऽथ कन्यकाम् ।
रजो दृष्ट्वा तु गन्धर्व: कुचौ दृष्ट्वा तु पावक: ॥६५॥

रोम (फूटने) के समय सोम, रजोदर्शन के समय गन्धर्व और कुचों का दर्शन करके अग्नि कन्या का उपभोग करता है।

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला ॥६६॥

आठ वर्ष की गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी, दश वर्ष की कन्या और उसके पश्चात् रजस्वला होती है ।

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥६७॥

माता और पिता, और उसी प्रकार से ज्येष्ठ भ्राता—ये तीनो कन्या को रजस्वला देखकर नरक में जाते हैं ।

तस्माद्विवाहयेत् कन्यां यावन्नर्त्तुमती भवेत् ।
विवाहो ह्यष्टवर्षाया कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥६८॥

इस लिये कन्या जब तक ऋतुमती (रजस्वला) नहीं हो जाती, तब तक उसका विवाह कर देना चाहिए । आठ वर्ष की कन्या का विवाह श्रेष्ठ माना गया है ।

तैलमास्तरणं प्राज्ञः पादाभ्यङ्गं ददाति यः ।
प्रहृष्टमानसो लोके सुखी चैव सदा भवेत् ॥६९॥

जो तेल और बिछौने का दान तथा स्नान और उबटने का दान करता है, वह मनुष्य लोक में सदा प्रसन्न-चित्त रहता है और सुखी होता है ।

अनड्वाहौ च यो दद्यात् द्विजे सीरेण संयुतौ ।
अलङ्कृत्य यथाशक्त्या धूर्व्वहौ शुभलक्षणौ ॥७०॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ।
वर्षाणि वसति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥७१॥

जो नर हल में जुते हुए, जूए को खींचने वाले, शुभ लक्षणों वाले दो बैलों को यथाशक्ति अलंकृत करके ब्राह्मण को देता है, वह सब पापों से भली प्रकार शुद्ध हुए अन्तःकरण वाला और सब कामनाओं से युक्त होकर (बैलों के) रोमों की संख्या के प्रमाण से (अर्थात् बैलों के शरीर पर जितने रोम होंगे उतने ही वर्षों तक) स्वर्ग में वास करता है ।

धेनुञ्च यो द्विजे दद्यादलङ्कृत्य पयस्विनीम् ।
कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥७२॥

जो मनुष्य दुधारू गाय को कांसी के पात्र और वस्त्र आदि के साथ भूषित करके ब्राह्मण को देता है, वह स्वर्ग-लोक में पूजित होता है ।

भूमिं शस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे ।
गां दत्त्वार्द्धप्रसूताञ्च स्वर्गलोके महीयते ।।७३।।

सस्य वाली उत्तम भूमि को और अर्द्धप्रसूता गाय को वेदपारङ्गत ब्राह्मण को दान में देकर (मनुष्य) स्वर्ग लोक में पूजा जाता है।

यावन्ति शस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः ।
नरस्तावन्ति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ।।७४।।

सस्य की जितनी जड़ें हैं, और सब मिलाकर जितने गाय के रोम हैं, मनुष्य उतने ही वर्षों तक स्वर्ग लोक मे पूजा को प्राप्त करता है ।

यो ददाति शफैरौप्यैर्हेमश्रृङ्गीमरोगिणीम् ।
सवत्सां वाससा वीतां सुशीलाङ्गां पयस्विनीम् ।।७५।।
तस्यां यावन्ति रोमाणि सवत्सायां दिवं गतः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स नरो ब्रह्मणोऽन्तिके ।।७६।।

जो (मनुष्य) चांदी के खुरों से युक्त, सोने के सींगों वाली, नीरोग, बछड़े या बाछड़ी वाली, वस्त्र से आच्छादित, उत्तम शील वाली, दुधारू गाय का दान करता है, वह स्वर्ग लोक में जाकर जितने बछड़े सहित उसके शरीर पर बाल हैं, उतने ही वर्षों तक ब्रह्म के सांनिद्ध्य में निवास करता है ।

यो ददाति बलीवर्द्दमुक्तेन विधिना शुभम् ।
अव्यङ्गं गोप्रदानेन फलाद्दशगुणं फलम् ।।७७।।

जो उक्त विधि से उत्तम बैल का दान करता है, वह अक्षुण्ण अंगों वाले बैल को दान में देने से (गाय से) दस गुणा फल का भागी होता है ।

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता
यः काञ्चनं गाञ्च महीञ्च दद्यात् ।।७८।।

सोना अग्नि की प्रथम सन्तान है, पृथिवी विष्णु की पुत्री है, और गौवें सूर्य की पुत्रियां हैं । उसके द्वारा तीनों लोकों का ही दान हो जाता है, जो सोने, गऊ और पृथिवी का दान करता है ।

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ।।७९।।

सभी दानों का फल एक जन्म तक चलने वाला होता है। सोने, भूमि और गऊवों (के दान का) फल तो सात जन्मो तक चलने वाला होता है।

अन्नदस्तु भवेन्नित्य सुतृप्तो निभृतः सदा।
अम्बुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥८०॥

अन्न का दान करने वाला तो हमेशा भली प्रकार तृप्त, सदा भरा-पूरा रहता है। जल का दान करने वाला नित्य सुखी और सब कर्मों से युक्त रहता है।

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं पर स्मृतम्।
सर्वेषामेव जन्तूना यतस्तज्जीवितं परम् ॥८१॥

सभी दानों में अन्न का दान परम माना गया है, क्योंकि वह सभी प्राणियों का परम जीवन है।

यस्मादन्नात् प्रजाः सर्व्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत् प्रभुः।
तस्मादन्नात् परं दान न भूतो न भविष्यति ॥८२॥

चूंकि परमेश्वर ने प्रत्येक कल्प मे सब प्रजाओं को अन्न से उत्पन्न किया है, इस लिये अन्न से बढ़ कर और कोई दान न है और न होगा।

अन्नदानात् परं दानं विद्यते न हि किञ्चन।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न सशयः ॥८३॥

अन्न के दान से बढकर और कोई दान नही हैं। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हे और जीवित रहते है, (इस मे) सशय नहीं है।

मृत्तिकां गोशकृद्दर्भानुपवीत यथोत्तरम्।
दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥८४॥

मिट्टी, गोबर, कुशाओ और उपवीत का गुणों में बढ़े हुए ब्रह्मण को क्रमशः दान देकर (मनुष्य) महान् कुल में उत्पन्न होता है।

मुखवासञ्च यो दद्याद्दन्तधावनमेव च।
शुचिगन्धसमायुक्तोऽवाग्दुष्टः स सदा भवेत् ॥८५॥

जो (मनुष्य) मुखवास (पान, सुपारी, इलायची आदि) और दतौन का दान करता है, वह पवित्र गन्ध से युक्त हुआ कभी भी वाणी के दोष से युक्त नहीं होता।

पादशौचन्तु यो दद्यात्तथा च गुदलिङ्गयोः।
यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिः सदा भवेत् ॥८६॥

जो (मनुष्य) पाँव को धोने के लिये जल तथा गुदा और लिंग को धोने के लिये जल ब्राह्मण को देता है, वह सदा शुद्ध बुद्धि वाला होता है।

औषधं पथ्यमाहार स्नेहाभ्यङ्गं प्रतिश्रयम्।
यः प्रयच्छति रोगिभ्यः सर्वव्याधिविवर्ज्जितः ॥८७॥

औषध, स्वास्थ्यवर्द्धक आहार, तेल की मालिश और आश्रय जो (मनुष्य) रोगियों को देता है, वह सब रोगो से रहित हो जाता है।

गुडमिक्षुरसञ्चैव लवणं व्यञ्जनानि च।
सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यन्त सुखी भवेत् ॥८८॥

गुड़ और गन्ने के रस, लवण और मसालों को और सुगन्धित पेय पदार्थों को देकर (मनुष्य) अत्यन्त सुखी होता है।

दानैश्च विविधैः सम्यक् पुण्यमेतदुदाहृतम्।
विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते ॥८९॥

विविध प्रकार के दानो से मिलने वाला यह पवित्र फल बताया गया है। विद्या के दान से उत्तम बुद्धि वाला मनुष्य ब्रह्म लोक में पूजा जाता है।

अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः।
अन्योन्यं प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति तरन्ति च ॥९०॥

एक-दूसरे को अन्न देने वाले और एक-दूसरे की पूजा करने वाले ब्राह्मण एक-दूसरे से धन स्वीकार करते है, दूसरों को तार देते है और स्वयं तर जाते हैं।

दानान्येतानि देयानि तथान्यानि विशेषतः।
दीनान्धकृपणादिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ॥९१॥

ये दान तथा अन्य दान श्रेय की कामना वाले बुद्धिमान् मनुष्य के द्वारा विशेष रूप से दीनों, अंधों और कृपणों को (शास्त्रोक्त विधि से) दिये जाने चाहियें।

ब्रह्मचारियतिभ्यश्च वपनं यस्तु कारयेत्।
नखकर्मादिकञ्चैव चक्षुष्मान् जायते नरः ॥९२॥

ब्रह्मचारी और सन्यासी का जो मुण्डन कराता है, नखकर्म आदि कराता है, वह मनुष्य नेत्रों वाला हो जाता है।

देवागारे द्विजातीनां दीप दद्याच्चतुष्पथे।
मेधाविज्ञानसम्पन्नश्चक्षुष्मान् जायते नरः ॥९३॥

देव-मन्दिर में, ब्राह्मणों को और चतुष्पथ (चौराहे) पर जो दीपक देता है, वह सदा मेधावी, ज्ञानवान् और (दूर-) दृष्टि वाला होता है ।

नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिलान् दत्त्वा तु शक्तितः ।
प्रजावान् पशुमांश्चैव धनवान् जायते नरः ॥९४॥

नित्य, नैमित्तिक और काम्य (कर्म) मे सामर्थ्यानुसार तिल देकर मनुष्य सन्तान वाला, पशुओं वाला और धन वाला हो जाता है ।

यो यदाभ्यर्थितो विप्रैर्यद्यत् संप्रतिपादयेत् ।
तृणकाष्ठादिकञ्चैव गोप्रदानसमं भवेत् ॥९५॥

जो जिस समय ब्राह्मणों के द्वारा याचना करने पर जिस-जिस (वस्तु) को देता है, और तृण, काष्ठ आदि (प्रदान करता हे), तो (वह) गोदान के तुल्य हो जाता है ।

न वै शयीत तमसा न यज्ञे नानृतं वदेत् ।
अपवदेन्न विप्रस्य न दानं परिकीर्तयेत् ॥९६॥

अन्धकार मे न सोये, न यज्ञ में (सोये), झूठ न बोले, ब्राह्मण की निन्दा न करे, दान का बखान न करे ।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥९७॥

यज्ञ झूठ बोलने से क्षीण हो जाता है, तप अभिमान से क्षीण हो जाता है, आयु ब्राह्मण की निन्दा से क्षीण हो जाती है, दान बखान से क्षीण हो जाता है ।

चत्वार्येतानि कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद् बुधः ।
आहारं मैथुनं निद्रां तथा सपाठमेव च ॥९८॥
आहाराज्जायते व्याधिर्गर्भो वै रौद्रमैथुनात् ।
निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः सपाठादायुषः क्षयः ॥९९॥

ज्ञानवान् इन चार कर्मो को सन्ध्या(दिन और रात्रि की सन्धि-वेलाओं) में छोड़ देवे – भोजन को, मैथुन को, निद्रा को और उसी प्रकार पठन को । (संध्या काल मे) भोजन करने से रोग उत्पन्न होता है, मैथुन से रौद्र गर्भ, निद्रा से अलक्ष्मी (निस्तेजस्विता) और पठन से आयु का क्षय (होता है) ।

ऋतुमतीं तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ।
तस्या रजसि तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥१००॥

जो (मनुष्य) ऋतुमती (मासिक धर्म के पश्चात् स्नाता स्त्री) के पास नहीं जाता है, उस मास उस के पितर उस (स्त्री) के रज मे शयन करते हैं।

कृत्वा गृह्याणि कर्माणि स्वभार्य्यापोषणे रतः ।
ऋतुकालाभिगामी स्यात् प्राप्नोति परमां गतिम्॥१०१॥

गृहस्थ के कर्मों को करके अपनी भार्या के पोषण में व्यस्त, और ऋतुकाल में (भार्या के पास) जाने वाला (मनुष्य) परमगति को प्राप्त करता है।

उषित्वैवं गृहे विप्रो द्वितीयादाश्रमात् परम् ।
वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयन्तु समाश्रयेत् ॥१०२॥

विप्र इस प्रकार घर में वास करके दूसरे आश्रम (गृहस्थाश्रम) के पश्चात् झुरियों और सफेद बालों से युक्त हुआ तीसरे (आश्रम) का आश्रय ले।

गच्छेदेव वनं प्राज्ञ. सभार्यस्त्वेक एव वा ।
गृहीत्वा चाग्निहोत्रञ्च होम तत्र न हापयेत् ॥१०३॥

इस प्रकार (गृहस्थाश्रम के पश्चात्) बुद्धिमान् पत्नी के साथ अथवा अकेला ही वन मे चला जाए, और अग्निहोत्र को ग्रहण करके वहाँ होम का परित्याग न करे।

कुर्य्याच्चैव पुरोडाशं वन्यैर्मेध्यैर्यथाविधि ।
भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभि. ॥१०४॥

और वन में उत्पन्न होने वाले यज्ञीय पदार्थों से विधिपूर्वक पुरोडाश बनाकर शाक, मूल, फल आदि के साथ याचक को भिक्षा देवें।

कुर्य्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टि पार्व्वायणीयाञ्च प्रकुर्य्यात् प्रतिपर्वसु ॥१०५॥

अग्निहोत्र मे तत्पर हुआ नित्य अध्ययन करे, प्रत्येक पर्व (अमावस्या, पूर्णिमा आदि) में तत्पर्व सम्बन्धी इष्टि को करे।

उषित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञ. सर्वकर्मसु ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्धुतहोमो जितेन्द्रिय ॥१०६॥

इस प्रकार सब कर्मो में विधि-विधान को जानने वाला विप्र वन में वास करके किये हुए होम वाला और जीती हुई इन्द्रियों वाला होकर चौथे आश्रम में प्रवेश करे।

अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विज. प्रव्रजितो भवेत् ।
वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायण ॥१०७॥

अपने अन्दर अग्नि को स्थापित करके द्विज संन्यास ग्रहण करे। नित्य ही वेदों के अभ्यास में रत और (आत्म-)विद्या में तत्पर होवे।

अष्टौ भिक्षा. समादाय स मुनि· सप्त पञ्च वा।
अद्भिः प्रक्षाल्य तत्सर्व्वं भुञ्जीत च समाहितः ॥१०८॥

वह मुनि आठ अथवा सात अथवा पांच भिक्षाओ को लेकर उन सबका जल से प्रक्षालन करके (अर्थात् उनपर जल छिड़ककर) सुसमाहित चित्त होकर उनका भोग करे।

अरण्ये निर्ज्जने तत्र पुनरासीत भुक्तवान्।
एकाकी चिन्तयेन्नित्य मनोवाक्कायकर्मभिः ॥१०९॥

भोजन से तृप्त होकर वहां निर्जन वन में आसीन हो अकेला मन, वाणी और कर्म से नित्य (परमेश्वर का) चिन्तन करे।

मृत्युञ्च नाभिनन्देत जीवित वा कथञ्चन।
कालमेव प्रतीक्षेत यावतायुः समाप्यते ॥११०॥

मृत्यु अथवा जीवन का किसी प्रकार भी अभिनन्दन न करे(चिन्ता न करे)/ उस काल की ही प्रतीक्षा करे जब आयु समाप्त हो जाएगी।

संसेव्य चाश्रमान् सर्वान् जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
ब्रह्मलोकमेवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद् द्विजः ॥१११॥

सब आश्रमों का सेवन करके जीते हुए क्रोध वाला और जीती हुई इन्द्रियों वाला, वेद और शास्त्र के अर्थ को जानने वाला विप्र ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है।

आश्रमेषु च सर्वेषु प्रोक्ताऽयं प्राश्निको विधिः।
अथाभिवक्ष्ये पापानां प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥११२॥

सब आश्रमों के विषय मे इस निर्णायक विधि का प्रवचन कर दिया गया है। इससे आगे मै पापो के प्रायश्चित्त का यथाविधि प्रवचन करूंगा।

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ॥११३॥

ब्राह्मण की हत्या करने वाला, सुरा का पान करने वाला, चोरी करने वाला और गुरु-पत्नी से गमन करने वाला, और पाँचवां इनका सहयोगी—ये (सब के सब) महापातकी होते है।

ब्रह्मघ्नस्तु वनं गच्छेत् वल्कवासा जटी ध्वजी ।
वन्यान्येव फलान्यश्नन् सर्व्वकामविवर्जितः ॥११४॥

ब्रह्मघाती वन में चला जाए, छाल के वस्त्रों, जटाओं और ध्वज (ब्रह्म-हत्यारे के चिह्न) को धारण करे और सब इच्छाओं से रहित होकर वन के फलों को ही खाता हुआ (रहे)।

भिक्षार्थी विचरेद् ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ।
चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्ष खट्वाङ्गी संयतः सदा ॥११५॥

यदि वन के फल-मूल आदि से जीवन न चल सके तो भिक्षुक बनकर गांव मे विचरण करे। हमेशा खाट की बाही वाला और संयमी होकर चारों वर्णों में भिक्षा मांगे।

भैक्षञ्चैव समादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ।
वनवासी स पापः स्यात् सदाकालमतन्द्रितः ॥११६॥

इस प्रकार भिक्षाओं को ग्रहण करके वह फिर वन मे चला जाए। वह पापी आलस्यरहित होकर हमेशा के लिये वन में वास करने वाला होवे।

ख्यापयन् मुच्यते पापात् ब्रह्मघ्नः पापकृन्नरः ।
अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतञ्चरेत् ॥११७॥

(सब से बड़े) पाप को करने वाला ब्रह्मघाती अपने पाप का बार-बार कथन करता हुआ पाप से मुक्त हो जाता है। इस विधि से बारह वर्ष के व्रत का आचरण करे।

सनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वभूतहिते रतः ।
ब्रह्महत्यापनोदाय ततो मुच्येत किल्विषात् ॥११८॥

ब्रह्महत्या (के पाप से) मुक्त होने लिये इन्द्रिय-समूह को नियन्त्रण में करके, सब प्राणियों के हित मे लगा हुआ पाप से मुक्त हो जाता है।

अतः परं सुरापस्य प्रवक्ष्यामि विनिष्कृतिम् ।
श्रोतुमिच्छत भो विप्रा वेदशास्त्रानुरूपिकाम् ॥११९॥
गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥१२०॥

इसके पश्चात् सुरा पीने वाले के प्रायश्चित्त को कहता हू। तुम वेदशास्त्रानुरूप उसे सुनने की इच्छा करो। गौडी (गुड़ से बनने वाली),

माध्वी (मधु महुआ या अंगूर से बनने वाली) और पैष्टी (आटे से बनने वाली) तीन प्रकार की सुरा जाननी चाहिये। जैसी एक है, वैसी ही सब हैं। उत्तम द्विजों को वे नहीं पीनी चाहियें।

सुरापस्तु सुरा तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः।
गोमूत्रमग्निवर्णञ्च गोमयं वा तथाविधम् ॥१२१॥

सुरा के पाप से मुक्त होने का इच्छुक शराबी गर्म सुरा का पान करे। अग्नि के वर्ण वाले गोमूत्र का अथवा उसी प्रकार के गोबर का सेवन करे।

घृतं वा त्रीणि पेयानि सुरापो व्रतमाचरेत्।
मुच्यते तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥१२२॥

अथवा (उष्ण) घृत को पिये, ये तीन पेय (पदार्थ) हैं। सुरा पीने वाला (सुरा न पीने के) व्रत का आचरण करे। प्रायश्चित्त कर लिये जाने पर वह उस-उस पाप से मुक्त हो जाता है।

अरण्ये वा वसेत् सम्यक् सर्वकामविवर्जितः।
चान्द्रायणानि वा त्रीणि सुरापो व्रतमाचरेत् ॥१२३॥

अथवा सब कामनाओं से रहित होकर भली प्रकार अरण्य में वास करे। अथवा तीन चान्द्रायण व्रतों का पालन करे। सुरापान करने वाले के व्रत का आचरण करे।

एवं शुद्धिः सुरापस्य भवेदिति न संशयः।
मद्यभाण्डोदक पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥१२४॥

सुरापान करने वाले की इस प्रकार शुद्धि हो सकती है. इसमें कोई संशय नहीं। सुरापात्र मे रखे जल को पीकर (मनुष्य) पुनः संस्कार के योग्य होता है।

स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य राज्ञे शंसेत मानवः।
ततो मुसलमादाय स्तेनं हन्यात् सकृन्नृपः ॥१२५॥

सोने की चोरी करके (चोर) चोरी के माल को राजा को बता देवे। फिर राजा मूसल लेकर एक बार चोर पर प्रहार करे।

यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयात् प्रमुच्यते।
अरण्ये चीरवासा वा चरेद् ब्रह्महणो व्रतम्।
एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्त्तवचनं यथा ॥१२६॥

यदि वह चोर जीवित रह जाए, तो चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है। अथवा चीथड़ों के वस्त्र धारण करके वन में ब्रह्मघाती के व्रत का आचरण करे। संवर्त्त ऋषि के अनुसार चौर्यकर्म से उत्पन्न पाप की इस प्रकार शुद्धि कही गई है।

गुरुतल्पे शयानस्तु तल्पे स्वप्यादयोमये।
समालिङ्गेत् स्त्रियं वापि दीप्तां कृत्वायसां कृताम् ॥१२७॥

गुरु की शय्या पर सोने वाला (अर्थात् गुरु-पत्नी से गमन करने वाला) लोह-निर्मित (गर्म) शय्या पर शयन करे। अथवा लोहे से बनाई हुई और तपाई हुई स्त्री का आलिंगन करे।

चान्द्रायणानि वा कुर्य्याच्चत्वारि त्रीणि वा द्विजः।
ततो विमुच्यते पापात् प्रायश्चित्ते कृते सति ॥१२८॥

और द्विज चार अथवा तीन चान्द्रायण व्रतों का पालन करे। तब प्रायश्चित्त किये जाने पर पाप से मुक्त होता है।

एभिः सम्पर्कमायाति यः कश्चित् पापमोहितः।
तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतञ्चरेत् ॥१२९॥

जो कोई पाप से मोह को प्राप्त मनुष्य इन के साथ संपर्क में आता है, उस-उस पाप की शुद्धि के लिये उस-उस (पापी) के व्रत का आचरण करे।

क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति।
कुर्य्याच्चैवानुरूपेण त्रीणि कृच्छ्राणि संयतः ॥१३०॥

क्षत्रिय का वध करके तीन कृच्छ्र व्रतों से शुद्ध हो जाता है। इस लिये संयमी होकर तीन कृच्छ्रों को विधिपूर्वक करे।

वैश्यहत्यान्तु संप्राप्तः कथञ्चित् कामामोहितः।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्व्वीत स नरो वैश्यघातकः ॥१३१॥

किसी कारण काम से मोहित मनुष्य यदि वैश्य की हत्या कर दे, तो वैश्य की हत्या करने वाला वह मनुष्य कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतों को करे।

कुर्य्याच्छूद्रवधं प्राप्तस्तप्तकृच्छ्रं यथाविधि।
एवं शुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनं यथा ॥१३२॥

शूद्र का वध करने पर विप्र यथाविधि तप्तकृच्छ्र व्रत का आचरण करे, संवर्त्त ऋषि के वचनानुसार वह इस प्रकार शुद्धि को प्राप्त होता है।

गोघ्नस्यात प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्वत शूभाम्।।१३३।।

इस के पश्चात् मै गो-हत्या करने वाले के शुभ प्रायश्चित्त का तत्वत प्रवचन करूंगा।

गोघ्नः कुर्व्वीत संस्कारं गोष्ठे गोरुपसंनिधौ।

तत्रैव क्षितिशायी स्यान्मासार्द्ध संयतेन्द्रिय.।।१३४।।

गो-हत्या करने वाला मनुष्य गायों के बाड़े में गाय के निकट संस्कार करे, और सयत इन्द्रियो वाला होकर आधे मास तक वहीं धरती पर सोए।

स्नान त्रिषवणं कुर्यान्नखलोमविवर्जितः।

सक्तुयावकभिक्षाशी पयो दधि शकृन्नरः।।१३५।।

नखों और बालों से रहित वह नर त्रिषवण स्नान करे। सक्तु और जौ की भिक्षा का भोजन करने वाला और दूध, दही एवं गोबर का भोजन करने वाला होवे।

एतानि क्रमशोऽश्नीयाद् द्विजस्तत्पापमोक्षकः।

गायत्रीञ्च जपेन्नित्य पवित्राणि च शक्तितः।।१३६।।

उस पाप से छुटकारा चाहने वाला द्विज इन (पदार्थों) का क्रमश. भोजन करे। नित्य ही सामर्थ्य के अनुसार गायत्री का और पवित्र-मन्त्रों का जाप करे।

पूर्णे चैवार्द्धमासे च विप्रान् भोजयेद् द्विजः।

भुक्तवत्सु च विप्रेषु गाञ्च दद्यात् स दक्षिणाम्।।१३७।।

पूरा अथवा आधा मास समाप्त हो जाने पर वह द्विज ब्राह्मणों को भोजन कराए और ब्राह्मणों के भोजन करलेने पर वह बुद्धिमान् उन्हे गाय दक्षिणा में दे।

व्यापन्नानां बहूनां च बन्धने रोधनेऽपि वा।

भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं व्रतमाचरेत्।।१३८।।

रोकने में, बाँधने में और मिथ्या उपचार किये जाने पर यदि बहुत सी गायें मर जाएं, तो वैद्य उनके लिये दुगने व्रत का आचरण करे।

एका चेद्बहुभि· कैश्चिद्दैवाद् व्यापादिता क्वचित्।

पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक्।।१३९।।

यदि किन्हीं बहुतों के द्वारा दुर्भाग्य से कहीं एक गाय मार दी जाए तो वे सब हत्या के एक-एक अंश का अलग-अलग प्रायश्चित्त करें।

यन्त्रणे गोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने ।

यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ।।१४०।।

चिकित्सा के लिये गाय को वश में करने में, गूढ (मरे हुए) गर्भ को बाहर निकालने में, यदि इस कार्य में दुर्घटना हो जाए (गाय मर जाए), तो वह पाप से लिप्त नहीं होता ।

औषधं स्नेहमाहारं दद्याद् गोब्राह्मणेषु च ।

दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ।।१४१।।

गायों और ब्राह्मणों को औषध, स्नेह (तेल घी आदि चिकना पदार्थ) और आहार प्रदान करे। यदि ये वस्तुएं देने से दुर्घटना हो जाए तो पुण्य ही होता है; पाप नहीं ।

प्रायश्चित्तस्य पादन्तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ।

द्वौ पादौ बन्धने चैव पादोनं यन्त्रणे तथा ।।१४२।।

यदि रोकने पर (गाय मर जाए) तो एक चौथाई व्रत का आचरण करे, बांधने से मरने पर आधे, और वश में करने से मरने पर तीन-चौथाई व्रत का आचरण करे ।

पाषाणैर्लगुडैर्दण्डैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ।

निपातने चरेत् सर्वं प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ।१४३।।

पत्थर, लाठी, डंडे तथा शस्त्रादि से (गाय की) मृत्यु होने पर मनुष्य तीन दिन तक पूर्ण प्रायश्चित्त करे।

हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपीस्तथा ।

एवंविधे द्विजः कुर्वीत् सप्तरात्रमभोजनम् ।।१४४।।

हाथी, घोड़े, भैंस, ऊँट तथा बन्दरों को मारकर, इन का बध हो जाने पर द्विज सात रात्रियों तक भोजन न करे ।

व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं शूकरमेव च ।

एतान् हत्वा द्विजः मोहात् त्रिरात्रेणैव शुध्यति ।'१४५।।

व्याघ्र, कुत्ते, गधे, सिंह, रीछ और सूअर—इन को अनजाने में मारकर द्विज तीन रात्रियों में ही शुद्ध हो जाता है ।

सर्वासामेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम् ।

अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम् ।।१४६।।

वन में विचरने वाले सभी जाति के मृगों का (अनजाने में वध करके) जातवेदस् (अग्नि) का जाप करता हुआ एक दिन-रात उपवास करे ।

हंसं काकं वलाकाञ्च बर्हिकारण्डवानपि ।
सारसञ्चासभासौ च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ॥१४७॥

हंस, कौवे, बगले, मोर और कारण्डवों को, सारस, चास और भास को मार कर तीन दिन का लंघन करे।

चक्रवाकं तथा क्रौञ्चं सारिकाशुकतित्तिरीम् ।
श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापि वा ॥१४८॥
टिट्टिभं जालपादञ्च कोकिलं कुक्कुटं तथा ।
एषां वधे नरः कुर्याद् दिनमेकमभोजनम् ॥१४९॥

चकवे को तथा क्रौञ्च को, मेना, तोते और तीतर को, बाज, गीधों और उल्लुओं को, एवं कबूतरों को, टिटीहरी और जालपाद को, तथा कोयल और कुक्कुट को (मारकर), इनका वध होने पर मनुष्य एक दिन तक भोजन का लघन करे ।

पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां हंसादीनामशेषतः ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम् ॥१५०॥

पूर्वोक्त इन सबका, और सब प्रकार के हंसादि का (वध होने पर) जातवेदस् (अग्नि) का जप करता हुआ एक दिन-रात उपवास करे ।

मण्डूकांश्चैव हत्वा च सर्पमार्ज्जारमूषकम् ।
त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठेत् कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥१५१॥

मेंढक को मारकर, और साँप, बिलाव एवं चूहों को मारकर तीन रात्रियों तक उपवास करे, और ब्राह्मणों को भोजन कराए ।

अनस्थीन् ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुध्यति ।
अस्थिमतो वधे विप्रः किञ्चिद्दद्याद्विचक्षणः ॥१५२॥

बिना हड्डी वाले जीवों को मारकर ब्राह्मण प्राणायाम से (ही) शुद्ध हो जाता है। हड्डी वाले (क्षुद्रजीवों) का वध होने पर बुद्धिमान् विप्र कुछ दान करे ।

चाण्डालीं यो द्विजो गच्छेत् कथञ्चित् काममोहितः ।
त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वकैः ॥१५३॥

जो द्विज किसी प्रकार काम से मोहित हुआ चाण्डाली के साथ गमन करे, वह क्रम से प्राजापत्य आदि तीन कृच्छ्रों से शुद्ध होता है ।

पुंश्चलीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोऽपि वा ।
कृच्छ्रचान्द्रायणे तस्य पावने परमे स्मृते ॥१५४॥

इच्छा से या बिना इच्छा के व्यभिचारिणी के संग गमन करके वो कृच्छ्र चान्द्रायण उसके लिये परम पावन माने गए है ।

नटीं शैलूषिकीञ्चैव रजकीं वेणुजीविनीम् ।
गत्वा चान्द्रायणं कुर्य्यात्तथा चर्मोपजीविनीम् ॥१५५॥

नटनी, शैलूषिकी और धोबिन, बांस और चमड़े से आजिविका करने वाली —अज्ञानवश इनसे सम्भोग करके द्विज चान्द्रायण व्रत का आचरण करे ।

क्षत्रियामथ वैश्यां वा गच्छेद्य. काममोहितः ।
तस्य सान्तपनं कृच्छ्रं भवेत् पापापनोदकम् ॥१५६॥

जो काम से मोहित हुआ क्षत्रिया अथवा वैश्या से संभोग करे, उसके लिये सांतपन कृच्छ्र पाप छुड़ाने वाला होता है ।

शूद्रीं तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥१५७॥

ब्राह्मण एक मास तक अथवा आधे मास तक शूद्र स्त्री से संभोग करके गोमूत्र और जौ से बने भोजन का आहार करने वाला होकर आधे मास में शुद्ध होता है ।

विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्येन शुध्यति ।
स्वजनां तु द्विजो गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥१५८॥

अन्य कुटुम्ब की ब्राह्मणी के संग गमन करके प्राजापत्य व्रत से शुद्ध होता है । अपने कुटुम्ब की (ब्राह्मणी) के संग गमन करके (भी) प्राजापत्य व्रत का सेवन करे ।

क्षत्रियां क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ।
नरो गोगमनं कृत्वा कुर्य्याच्चान्द्रायण व्रतम् ॥१५९॥

क्षत्रिय क्षत्रिया के संग गमन करके उसी (प्राजापत्य) व्रत का आचरण करे । मनुष्य गाय के संग गमन करके चान्द्रायण व्रत करे ।

मातुलानीं तथा श्वश्रूं सुतां वै मातुलस्य च ।
एता गत्वा स्त्रियो मोहात् पराकेण विशुध्यति ॥१६०॥

मामी तथा सास और मामे की पुत्री के संग, इन सब स्त्रियों के संग अनजाने में गमन करके पराक व्रत से भली प्रकार शुद्ध हो जाता है ।

गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ।
तस्या दुहितरञ्चैव चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥१६१॥

गुरु की पुत्री के साथ गमन करके, और पिता की बहिन के साथ, और उसकी पुत्री के संग गमन करके चान्द्रायण व्रत करे ।

पितृव्यदारगमने भ्रातुर्भार्य्यागमे तथा ।
गुरुतल्पव्रतं कुर्य्यान् निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥१६२॥

चाचा की पत्नी के संग गमन करने पर, तथा भाई की पत्नी के संग गमन करने पर गुरु की पत्नी के संग गमन वाला व्रत करे, अन्यथा प्रायश्चित्त नहीं हो सकता ।

पितृदाराः समारुह्य मातृवर्जं नराधमः ।
भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥१६३॥
एतास्तिस्रः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।
कुमारीगमने चैव व्रतमेतत् समाचरेत् ॥१६४॥

नीच नर माता से भिन्न पिता की पत्नी (मासी) पर आरोहण करके, माता की सगी बहन और अन्य माता से उत्पन्न बहन—इन तीनों प्रकार की स्त्रियों के संग संभोग करके तप्तकृच्छ्र व्रत का आचरण करे । और कँवारी (अविवाहित लड़की) के साथ संभोग करने पर भी इसी व्रत का आचरण करे ।

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ।
सखिभार्य्यां समारुह्य श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥१६५॥

पशु और वेश्या के संग गमन करने पर, मित्र की पत्नी, सास तथा साली पर आरोहण करके (शुद्ध होने के लिये) प्राजापत्य व्रत का विधान किया गया है ।

मातरं योऽधिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषाधमः ।
न तस्य निष्कृतिर्दद्यात् स्वां चैव तनूजां तथा ॥१६६॥

जो नीच मनुष्य माता और बहन के संग और वैसे ही अपनी पुत्री से संभोग करता है, उसके लिये प्रायश्चित्त का विधान नहीं है (अर्थात् इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता) ।

नियमस्थां व्रतस्थाञ्च योऽभिगच्छेत् स्त्रियं द्विजः ।
स कुर्य्यात् प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्॥१६७॥

जो ब्राह्मण नियम में स्थित अथवा व्रत में स्थित स्त्री से गमन करता है, वह प्राकृत कृच्छ्र का आचारण करे, और दुधारू गाय का दान करे ।

रजस्वलाञ्च यो गच्छेद् गर्भिणीं पतितां तथा ।
तस्य पापविशुध्द्यर्थमतिकृच्छ्रं विधीयते ॥१६८॥

जो मनुष्य रजस्वला, गर्भिणी तथा पतित स्त्री से संभोग करता है, उसको पाप-शुद्धि के लिये अतिकृच्छ्र व्रत का विधान किया गया है ।

वैश्यजां ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ।
एवं शुद्धिः समाख्याता संवर्त्तस्य वचो यथा ॥१६९॥

ब्राह्मण वैश्य-कन्या से संभोग करके एक कृच्छ्र करे । संवर्त्त ऋषि के वचनानुसार इस प्रकार शुद्धि कही गई है ।

कथञ्चिद् ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति ॥१७०॥

क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी कारण से ब्राह्मणी के संग गमन करके गोमूत्र और जौ से बना आहार करके एक महीने में शुद्ध होता है ।

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत् कदाचित् काममोहितः ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति ॥१७१॥

यदि कदाचित् काम के वश हुआ शूद्र ब्राह्मणी से संभोग करे, तो गोमूत्र और जौ से बना आहार करके एक मास में शुद्ध होता है ।

ब्राह्मणी शूद्रसम्पर्के कदाचित् समुपागते ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं तस्याः पावनं परमं स्मृतम् ॥१७२॥

ब्राह्मणी यदि कदाचित् शूद्र के सम्पर्क में आ जाए, तो उसके लिये कृच्छ्र, चान्द्रायण परम पवित्र करने वाला माना गया है ।

चाण्डालं पुल्कसञ्चैव श्वपाकं पतित तथा ।
एतान् श्रेष्ठस्त्रियो गत्वा कुर्य्युश्चान्द्रायणत्रयम् ॥१७३॥

चाण्डाल और पुक्कस, श्वपच तथा पतित के संग कुलीना स्त्रियां संभोग करके तीन चान्द्रायण व्रत करें ।

अतः परञ्च दुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
सन्न्यस्य दुर्म्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ॥१७४॥
स कुर्य्यात् कृच्छ्रमश्रान्तः षण्मासं तदनन्तरम् ।
विषाग्निश्यामशवलास्तेषामेवं विनिर्द्दिशेत् ॥१७५॥

इससे आगे अत्यन्त दुष्टों के लिये विहित प्रायश्चित्त तुम सुनो। यदि कोई दुर्मति संन्यास ग्रहण करके सन्तान के हेतु स्त्री का संग करे, तो वह निरन्तर छः मास तक समान कृच्छ्र का पालन करे। विष और अग्नि के कारण जो लोग काले और चितकबरे हो जाते हैं, उनके लिये भी इसी व्रत का निर्देश करे ।

स्त्रीणाञ्च तथाचरणे गर्ह्याभिगमनेषु च ।
पतनेषु तथैतेषु प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥१७६॥
नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च ॥१७७॥

और स्त्रियों के उसी प्रकार के आचरण करने निन्दनीय स्त्रियों से संभोग करने पर, और पतनों में प्रायश्चित्त की यह शुभ विधि देखी गई है। मनुष्यों की विपत्ति में परलोक और इहलोक में (यही प्रायश्चित्त) पवित्र करने वाला है।

गोविप्रप्रहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ।
नाश्रुप्रपातनं कार्य्यं सद्भिः श्रेयोऽनुकाङ्क्षिभिः ॥१७८॥

गाय और ब्राह्मण के द्वारा मारे हुए के विषय में, तथा आत्मघाती के विषय में कल्याण चाहने वाले सज्जनों को आँसू नहीं बहाने चाहियें।

एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ।
तथोदकक्रियां कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥१७९॥

इन में से मरे हुए किसी एक को जो उठाता है (अर्थी को कन्धा देता है), अथवा जलाता है (चिता में अग्नि प्रज्वलित करता है), वह नर इसी प्रकार जलाञ्जलि देने के पश्चात् चान्द्रायण व्रत करे।

तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पातितं यदि ।
पूर्वकेष्वप्यकारी चेदेकाहं क्षपणं तथा ॥१८०॥

यदि उसके शव को केवल छुआ हो, अश्रुपात न किया हो, पूर्वोक्त प्रायश्चित्त भी न किया हो, तो वैसा करने से एक दिन का अशौच होता है।

महापातकिनाञ्चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ।
उदकं पिण्डदानञ्च श्राद्धं चैव तु यत्कृतम् ।
नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥१८१॥

महापातकियों का और वैसे ही आत्महत्या करने वालों का जो जल-दान, पिण्डदान और श्राद्ध किया गया है, वह सारे का सारा उन्हें नहीं पहुंचता, वह राक्षसों के द्वारा हड़प लिया जाता है।

चाण्डालैस्तु हता ये तु द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः ।
श्राद्धमेषां न कर्त्तव्यं ब्रह्मदण्डहताश्च ये ॥१८२॥

जो ब्राह्मण चाण्डालों, (कुत्ता आदि) दाढ़ वालों और (सर्प आदि) सरिसृपों के द्वारा मारे गए हैं और जो ब्रह्मदण्ड (ब्राह्मण के शाप) से मारे गए हैं, उनका श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा भुक्तोच्छिष्टस्तथा द्विजः ।
श्वादिस्पृष्टो जपेद्देव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥१८३॥

मूत्र और मल का त्याग करके, भोजन करके उच्छिष्ट हुआ और कुत्ते आदि से छुआ हुआ ब्राह्मण स्नानपूर्वक एक हजार देवी (गायत्री) का जाप करे।

चाण्डालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमन्त्यजमेव च ।
उदक्यां सूतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥१८४॥

चाण्डाल, पतित, शव और अन्त्यज (शूद्र) का स्पर्श करके, रजस्वला और सूतिका स्त्री का स्पर्श करके वस्त्रों सहित (=सचैल) स्नान करे।

स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तेन विधीयते ।
ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥१८५॥

इनके द्वारा स्पर्श किये हुए के द्वारा जो छू लिया गया है उसके लिये स्नान का विधान है। उसके पश्चात् आचमन और द्रव्यों का प्रोक्षण (वस्त्र आदि पर जल छिड़कना) कहा गया है।

चाण्डालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्च द्विजोत्तमः ।
गोमूत्रयावकाहारः त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥१८६॥

यदि द्विज-श्रेष्ठ चाण्डाल आदि से छु लिया गया है, या उच्छिष्ट हो गया है, तो वह गोमूत्र और जौ के आहार वाला होकर तीन रात्रियों में शुद्ध हो जाता है।

शुना पुष्पवती स्पृष्टा पुष्पवत्यान्यया तथा ।
शेषान्यहान्युपवसेत् स्नाता शुध्येद् घृताशना ॥१८७॥

कुत्ते से छुई हुई तथा अन्य रजस्वला से छुई हुई रजस्वला (मासिक धर्म के) शेष दिनों तक उपवास करे । घी का भोजन करने वाली वह स्नान करने के पश्चात् शुद्ध होती है ।

चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम् ।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥१८८॥

चाण्डाल के पात्र से छुए हुए कुएँ के अन्दर पड़े जल को (यदि) पिये, तो गोमूत्र और जौ के आहार वाला होकर तीन रात्रियों में शुद्ध होता है ।

अन्त्यजैः स्वीकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च ।
शुध्यते पञ्चगव्येन पीत्वा तोयमकामतः ॥१८९॥

तालाबों और नदियों में शूद्रों द्वारा अपनाए गए घाट पर अनजाने में जल पीकर पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर के मिश्रण) से शुद्ध होता है ।

सुराघटप्रपातोयं पीत्वा नासा जलं तथा ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्यं पिबेद् द्विजः ॥१९०॥

सुरा के घड़े और प्याऊ के जल को पीकर तथा नासिका से जल को पीकर ब्राह्मण एक दिन और एक रात का उपवास करके पञ्चगव्य का पान करे ।

कूपे विण्मूत्रसंस्पृष्टे प्राश्य चापो द्विजातयः ।
त्रिरात्रेणैव शुध्यन्ति कुम्भे सान्तपनं स्मृतम् ॥१९१॥

कूएं में पडे हुए, मल और मूत्र से संस्पृष्ट जल का पान करके द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) लोग तीन रात्रियों में शुद्ध हो जाते हैं । घड़े में (पड़े हुए, मल और मूत्र से संस्पृष्ट जल का पान करके) सांतपन व्रत (शुद्धिकर) माना गया है ।

वापीकूपतडागानां दूषितानां विशोधनम् ।
अपां घटशतोद्धारः पञ्चगव्यञ्च निक्षिपेत् ॥१९२॥

अपवित्र की हुई बावलियों, कुओं और तालाबों का विशोधन (यह) है कि (उन से) सौ घड़े जल निकाल दिया जाए और पञ्चगव्य (उनमें) डाल दिया जाए ।

स्त्रीक्षीरमाविक पीत्वा सन्धिन्याश्चैव गो. पयः ।
तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानाञ्चैव भक्षणे ॥१६३॥

स्त्री के दूध, भेड़ के दूध और गाभिन गाय के दूध को पीकर उसकी शुद्धि तीन रातों के व्रत से और ब्राह्मणों को भोजन कराने से होती है।

विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ।
श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु त्र्यहं द्विजः ॥१६४॥

मल और मूत्र का भक्षण होने पर प्राजापत्य व्रत का पालन करे। कुत्ते और कौए के झूठे और गाय के झूठे को खाने पर ब्राह्मण तीन दिन तक (इस व्रत का पालन करे)।

विडालमूषकोच्छिष्टे पञ्चगव्य पिबेद् द्विजः ।
शूद्रोच्छिष्टं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१६५॥

बिलाव और चूहे का झूठा खाने पर द्विज पञ्चगव्य का पान करे। उसी प्रकार शूद्र का झूठा खाकर तीन रात्रियों के व्रत से ही शुद्ध होता है।

पलाण्डुलशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम् ।
छत्राकं विड्वराहञ्च चरेच्चान्द्रायण द्विजः ॥१६६॥

प्याज, लहसुन तथा ग्राम-कुक्कुट (गाँव में पाले हुए मुर्गे) को खा कर, खुम्भ और विष्ठा खाने वाले सूअर को खाकर द्विज सांतपन व्रत का पालन करे।

श्वविडालखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकाकयोः ।
प्राश्य मूत्रं पुरीषं वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥१६७॥

कुत्ते, बिल्ली, गधे और ऊँट के, बन्दर के, गीदड़ और कौए के मूत्र और मल का भक्षण करके चान्द्रायाण व्रत का पालन करे।

अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् ।
पतितैः प्रेक्षितं वापि पञ्चगव्यं पिबेद् द्विजः ॥१६८॥

बासी, केश और कीड़े पड़े हुए तथा नीचों द्वारा देखे हुए भोजन को खाकर द्विज पञ्चगव्य का पान करे।

अन्त्यजाभाजने भुक्त्वा ह्युदक्याभाजने तथा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥१६९॥

शूद्रा के पात्र में भोजन करके तथा रजस्वला के पात्र में भोजन करके गोमूत्र और जौ के आहार वाला होकर आधे मास में शुद्ध होता है।

गोमांसं मानुषञ्चैव शुनो हस्तात् समाहृतम् ।
अभक्ष्यमेतत् सर्वन्तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२००॥

गाय का मांस और मनुष्य का मांस, और कुत्ते के हाथ से लिया हुआ, वह सारे का सारा अभक्ष्य होता है। उसे खाकर चान्द्रायण व्रत का पालन करे।

चाण्डाले सङ्करे विप्रः श्वपाके पुल्कसेऽपि वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥२०१॥

चाण्डाल, वर्णसंकर से उत्पन्न, श्वपाक और पुक्कस के पास (भोजन करके) ब्राह्मण गोमूत्र और जौ के आहार वाला होकर आधे मास में शुद्ध होता है।

पतितेन तु सम्पर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ॥२०२॥

पतित के साथ एक मास तक अथवा आधे मास तक भी संपर्क करने पर गोमूत्र और जौ के आहार वाला होकर आधे मास में शुद्ध होता है।

पतिताद् द्रव्यमादत्ते भुङ्क्ते वा ब्राह्मणो यदि ।
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद् द्विजः ॥२०३॥

यदि ब्राह्मण पतित से द्रव्य का आदान करता है अथवा उसका उपभोग करता है, तो वह द्विज उसका उत्सर्ग करके अतिकृच्छ्र व्रत का आचरण करे।

यत्र यत्र च सङ्कीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥२०४॥

जिस-जिस बात में द्विज अपने को संकीर्ण (अपवित्र) समझे, उस-उस में वह ब्राह्मण प्रतिदिन तिलों और गायत्री से होम करे।

एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ।
अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥२०५॥

यह ही मेरे द्वारा प्रायश्चित्त की शुभ विधि बताई गई है। जिन पापों का (शास्त्रों में) निर्देश नहीं हुआ है, उनका, प्रायश्चित्त भी नहीं कहा जाता है।

दानैर्होमैर्जपैर्नित्य प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ।
पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्न संशयः ॥२०६॥

नित्य ही दानो, होमों, जपों और प्राणायामों के द्वारा, तथा वेदाभ्यास से ब्राह्मण पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

सुवर्णदान गोदानं भूमिदानं तथैव च।
नाशयन्त्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥२०७॥

सुवर्ण-दान, गो-दान और इसी प्रकार से भूमिदान अन्य जन्मों में किये हुए भी पापों को शीघ्र ही नष्ट कर देते है।

तिलं धेनुञ्च यो दद्यात् संयताय द्विजातये ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥२०८॥

जो मनुष्य संयमी ब्राह्मण को तिल और गाय का दान करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है।

माघमासे तु सप्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः ।
ब्राह्मणेभ्यस्तिलान् दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०९॥

माघ मास आजाने पर पूर्णिमा के दिन उपवास करके, ब्राह्मणों को तिलों का दान करके सब पापों से मुक्त हो जाता है।

उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्या तु कार्त्तिके ।
हिरण्यं वस्त्रमन्नं वा दत्त्वा तरति दुष्कृतम् ॥२१०॥

कार्तिक मास में पूर्णिमा के दिन उपवासी होकर और सुवर्ण, वस्त्र और अन्न का दान करके मनुष्य दुष्कृत को तर जाता है।

अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्ते भवति चाक्षयम् ॥२११॥

अयन में (अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन में), तुला और मेष की संक्रातियों में, नैमित्तिक विपत्ति में, दिनक्षय (संध्याकाल) में, और चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय में दिया हुआ दान अक्षय होता है।

अमावास्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः ।
एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥२१२॥

अमावास्या को और द्वादशी को, और विशेष रूप से सक्राति के दिन (दिया हुआ दान अक्षय होता है)। ये उत्तम तिथियां है। इसी प्रकार रविवार भी उत्तम वार है।

अत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।
उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयेन्नरम् ॥२१३॥

इनमें स्नान, जप, होम और ब्राह्मणों को भोजन, उपवास तथा दान, एक-एक भी मनुष्य को पवित्र कर देता है।

स्नातः शुचिर्धौतवासाः शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ।
सात्त्विकं भावमास्थाय दानं दद्याद्विचक्षणः ।।२१४।।

स्नान किया हुआ, स्वच्छ, धुले वस्त्रों वाला, पवित्रात्मा, विशेष रूप से जीती हुई इन्द्रियों वाला ज्ञानी पुरुष सात्त्विक भाव में स्थित होकर दान दे ।

सप्तव्याहृतिभिर्होमो द्विजैः कार्य्यो जितात्मभिः ।
उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया ।।२१५।।

उपपातक की शुद्धि के लिये आत्मजयी द्विजों के द्वारा एक हजार की संख्या में सप्तव्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्) से होम करना चाहिये ।

महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं सदा द्विजः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ।।२१६।।

महापातक से युक्त द्विज सदा एक लाख होम करे । गायत्री से पवित्र किया हुआ वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

अभ्यसेच्च महापुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ।।२१७।।

और सब पापों की शुद्धि के लिये वन में नदी के किनारे जा कर वह परम पावन वेद-माता गायत्री का अभ्यास करे ।

स्नात्वा आचम्य विधिवत्ततः प्राणान् समापयेत् ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतो गायत्रीन्तु जपेद् द्विजः ।।२१८।।

उसके पश्चात् विधिवत् स्नान और आचमन करके प्राणों को स्थिर करे । तीन प्राणायामों से पवित्र हुआ द्विज गायत्री का जप करे ।

अक्लिन्नवासाः स्थलगः शुचौ देशे समाहितः ।
पवित्रपाणिराचान्तो गायत्र्या जपमाचरेत् ।।२१९।।

सूखे वस्त्रों का धारण कर, सूखे स्थान पर पवित्र जगह में, समाहितचित्त, कुशाओं की पवित्री हाथ में धारण कर, आचमन करके गायत्री का जप करे ।

ऐहिकामुष्मिकं लोके पापं सर्वं विशेषतः ।
पञ्चरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति ।।२२०।।

इस लोक और परलोक (=पूर्वजन्म) के समस्त पाप को इसी लोक में गायत्री का जप करता हुआ पांच रात्रियों में सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है ।

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधन पापकर्मणाम् ।
महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत् ॥२२१॥

गायत्री से बढ़कर पापकर्मों का (और) शोधक नहीं है । (इसका) महाव्याहृति (भूः, भुवः, स्वः) सहित और प्रणव (ओम्) के साथ जप करे ।

ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः ।
गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२२॥

ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला निराहार रहकर सब प्राणियों के कल्याण में लगा हुआ गायत्री के एक लाख जप से सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु जप्यं कृत्वा विमुच्यते ॥२२३॥

जो यज्ञ के योग्य नहीं है उसे यजन कराकर और निन्दित अन्न खाकर (पाप को प्राप्त ब्राह्मण) आठ हजार गायत्री का जप करके शुद्ध हो जाता है ।

अहन्यहनि योऽधीते गायत्रीं वै द्विजोत्तमः ।
मासेन मुच्यते पापादुरगः कञ्चुकाद्यथा ॥२२४॥

जो द्विजोत्तम निश्चय से प्रतिदिन गायत्री का पाठ करता है, वह मास भर में पाप से इस प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे साँप केंचुली से ।

गायत्रीं यः सदा विप्रो जपते नियतः शुचिः ।
स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्त्तिमान् ॥२२५॥

जो ब्राह्मण संयत इन्द्रियों वाला और पवित्र होकर गायत्री का जप करता है, वह आकाश के स्वरूप वाला और वायु बनकर परम स्थान को प्राप्त हो जाता है ।

प्रणवेन तु सयुक्ता व्याहृती सप्त नित्यशः ।
गायत्रीं शिरसा सार्द्ध मनसा त्रिः पठेद् द्विजः ॥२२६॥

प्रणव (ओम्) से युक्त सात व्याहृतियों को और गायत्री को शिर के साथ (प्रणाम करके) द्विज मनसे तीन बार पाठ करे ।

निगृह्य चात्मनः प्राणान् प्राणायामो विधीयते ।
प्राणायामत्रयं कुर्य्यान्नित्यमेव समाहितः ॥२२७॥

और अपने प्राणों का निग्रह करके प्राणायाम किया जाता है । नित्य ही सावधान होकर तीन प्राणायाम करे ।

मानसं वाचिकं पापं कायेनैव तु यत्कृतम् ।
तत्सर्वं नश्यते तूर्णं प्राणायामत्रये कृते ।।२२८।।

मन से किया हुआ, वाणी से किया हुआ और शरीर से किया हुआ जो पाप है, तीन प्राणायाम करने पर वह सब नष्ट हो जाता है ।

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ।
सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२२९।।

जो ऋग्वेद का अभ्यास करता हैं, अथवा यजुर्वेद की (किसी) शाखा का अभ्यास करता है, या रहस्य (आरण्यकों और उपनिषदों) सहित साम मन्त्रों का अभ्यास करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

पावमानीं तथा कौत्सीं पौरुष सूक्तमेव च ।
जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत स पित्र्यं माधुच्छन्दसम् ।।२३०।।

पावमानी ऋचा को, तथा कौत्सी ऋचा को और पुरुषसूक्त को एव पितरों के मन्त्र माधुछन्दस को जपकर पापों से मुक्त हो जाता है ।

मण्डल ब्राह्मण रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृहत्कथाः ।
वामदेव्यं बृहत्साम जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ।।२३१।।

मंडल, ब्राह्मण, रुद्र-सूक्त में कही बृहत् कथाओं और वामदेव के बृहत्साम को जपकर सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

चान्द्रायणन्तु सर्वेषां पापानां पावनं परम् ।
कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परम स्थानमेव च ।।२३२।।

सब पापो को परम पवित्र करने वाले चान्द्रायण व्रत को करके (शीघ्र ही) शुद्धि और परम स्थान को प्राप्त होता है ।

धर्मशास्त्रमिदं पुण्य संवर्त्तेन तु भाषितम् ।
अधीत्य ब्राह्मणो गच्छेद् ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ।।२३३।।

संवर्त्त ऋषि द्वारा प्रोक्त इस पवित्र धर्मशास्त्रका अध्ययन करके ब्राह्मण ब्रह्म के शाश्वत लोक को प्राप्त हो जाता है ।

इति श्रीसंवर्त्तेनोक्तं धर्मशास्त्र समाप्तम्

॥ अथ ॥

लघुयमस्मृतिः

अथ नानाविधप्रायश्चित्तवर्णनम्

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ।
प्राब्रवीदृषिभिः पृष्टो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥१॥

ऋषियों के द्वारा पूछे हुए, मुनियों के अग्रणी यम ने श्रुति और स्मृति मे कहे हुए वर्णों के धर्म का क्रम से प्रवचन किया ।

यो भुञ्जानोऽशुचिर्वाऽपि चण्डालं पतित स्पृशेत् ।
क्रोधादज्ञानतो वाऽपि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥२॥

जो भोजन करता हुआ अथवा अपवित्र हुआ क्रोध से अथवा अनजाने में पतित चाण्डाल को छू लेता है, उसका प्रायश्चित्त बताता हूं ।

षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वा यथासंख्यं समाचरेत् ।
स्नात्वा त्रिषवण विप्रः पञ्चगव्येन शुध्यति ॥३॥

छः रातों तक अथवा तीन रातों तक ब्राह्मण स्नान करके गिनती से त्रिषवण (प्रात., मध्याह्न और सायं इन तीन कालों में सोम का सवन) करे, तत्पश्चात् पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है ।

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ।
उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वे च तस्य शौचं विनिर्दिशेत् ॥४॥

यदि भोजन करते किसी ब्राह्मण के गुद-स्रवण (वस्त) हो जाए, तो उच्छिष्टता और अपवित्रता के कारण उसकी शुद्धि करे ।

पूर्वं कृत्वा द्विजः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५॥

ब्राह्मण पहले शौच करके तत्पश्चात् आचमन करे । वह दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।

निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने कृते ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतीः ॥६॥

भोजन निगलते (खाते) समय यदि मूत्र कर दे, अथवा भोजन करने के पश्चात् (शुद्धि से पूर्व) मूत्र कर देने पर दिन-रात उपवास करके घी से आहुतियां डाले ।

यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित् ।
भूमौ निधाय तद् ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥७॥

जब ब्राह्मण कहीं भोजन-काल में अपवित्र हो जाए, तो उस ग्रास को भूमि पर रखकर, स्नान करके शुद्धि को प्राप्त होता है ।

भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुध्यति ।
अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥८॥

यदि उस ग्रास को खाले तो उपवास करके शुद्ध होता है । यदि सारा भोजन खाले तो तीन रात में (उपवास करके) शुद्ध होता है ।

अश्नतश्चेद्विरेकः स्यादस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् ।
स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्याः शोधनं परम् ॥९॥

यदि भोजन खाते समय दस्त हो जाए तो अस्वस्थ (ब्राह्मण) तीन सौ (गायत्री) जपे । स्वस्थ ब्राह्मण तीन हजार गायत्री का जप करके परम शुद्धि को प्राप्त होता है ।

चण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे तु कृते द्विजः ।
त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥१०॥

चण्डालों और श्वपचों के द्वारा छुआ हुआ अथवा विष्ठा और मूत्र कर देने पर ब्राह्मण तीन रात का उपवास करे । यदि भोजन करने पर इस प्रकार उच्छिष्ट हो जाए तो छः रात का उपवास करे ।

उदक्यां सूतिकां वाऽपि संस्पृशेदन्त्यजो यदि ।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥११॥

यदि शूद्र रजस्वला अथवा सूतिका स्त्री को छू ले तो उस (स्त्री) की तीन रात्रियों में शुद्धि होती है, यह शातातप ऋषि ने कहा है ।

रजस्वला तु संस्पृष्टा श्वमातङ्गादिवायसैः ।
निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्कालस्नानेन शुध्यति ॥१२॥

यदि रजस्वला कुत्ते, हाथी, कौए आदि के द्वारा छू ली जाए, तो निराहार रहकर शुद्ध होती है, अथवा समय पर (नियमित) स्नान करने से शुद्ध होती है।

रजस्वले यदा नार्यावन्योन्यं स्पृशतः क्वचित् ।
शुध्यतः पञ्चगव्येन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ॥१३॥

जब दो रजस्वला स्त्रियां कहीं एक-दूसरे को छू लें तो पञ्चगव्य का पान कर और ब्रह्मकूर्च (कुश की कूची) से उसे ऊपर छिड़क कर शुद्ध होती है।

उच्छिष्टेन च संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ।
कृच्छ्रेण शुद्धिमाप्नोति शूद्रा दानोपवासतः ॥१४॥

किसी समय उच्छिष्ट पुरुष के द्वारा छुई हुई रजस्वला (ब्राह्मण) स्त्री कृच्छ व्रत का पालन करने से शुद्ध होती है, और शूद्र स्त्री दान और उपवास से शुद्ध होती है।

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टे स्नानं येन विधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥१५॥

जिस अनुच्छिष्ट पुरुष के द्वारा स्पर्श होने पर स्नान का विधान है, यदि वही उच्छिष्ट होकर स्पर्श करले तो प्राजापत्य व्रत का पालन करे।

ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।
अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥१६॥

गर्भ के विचार से ऋतुकाल मे संभोग करने वाले के लिए स्नान का विधान है। बिना ऋतुकाल के स्त्री से संभोग करके मल-मूत्र के समान शुद्धि होती है।

उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ ।
शयनादुत्थिता नारी शुचि. स्यादशुचिः पुमान् ॥१७॥

शय्या पर लेटे पति और पत्नी दोनों अपवित्र होते है। शय्या से उठ जाने पर स्त्री शुद्ध होती है और पुरुष अशुद्ध होता है।

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ।
दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्ष त्याज्या धनं विना ॥१८॥

दुष्टता के कारण पति की सेवा न करती हुई दण्ड के योग्य नारी धन के बिना बारह वर्ष के लिये त्याज्य होती है।

त्यजन्तोऽपतितान्बन्धून्दण्डया उत्तमसाहसम् ।
पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥१९॥

अपतित बन्धुओं का त्याग करने वाले उत्तम साहस दण्ड के भागी होते हैं। पिता भले ही पतित (होकर त्याज्य) हो जाए, पर माता कभी (पतित) होकर त्याज्य नहीं होती ।

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः ।
मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥२०॥

जो मनुष्य रस्सी आदि उपायों से आत्म-हत्या कर ले तो मरे हुए को अमेध्य (पुरीष) से लेप देना चाहिए। यदि जीवित रह जाए तो उसे दो सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये।

दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिक दमम् ।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥२१॥

उसके पुत्र और मित्र भी दण्ड के भागी होते हैं। उनमें से प्रत्येक को एक-एक पणिक दण्ड देना चाहिये। उसके पश्चात् वे सब शास्त्र की आज्ञानुसार प्रायश्चित्त करें ।

जलाद्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ।
विषप्रपतनप्रायशस्त्रघातहताश्च ये ॥२२॥
न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः ।
चान्द्रायणेन शुध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥२३॥

जल आदि में डूबकर या फांसी लगा कर मरने के प्रयास में जो असफल हो गए हैं, जो संन्यास का विनाश करने वाले अथवा उससे च्युत हो गए हैं, जो विष खाने, ऊंचे स्थान से कूदने, उपवास के द्वारा प्राणान्त करने और शस्त्र के द्वारा आत्मघात करने वाले हैं, अगर ये मरने से बच जाएं तो सब लोगों से बहिष्कृत किये हुए चान्द्रायण अथवा दो तप्तकृच्छ व्रतों का पालन करने से शुद्ध होते हैं ।

उभयावसितः पापः श्यामाच्छबलकाच्च्युतः ।
चान्द्रायणाभ्यां शुध्येत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥२४॥

श्याम और चितकबरे वृषभों से गिर कर दोनो ही अवस्थाओं में बचा हुआ पापी मनुष्य गऊ और बैल का दान करके दो व्रतों से शुद्ध होता है ।

श्वशृगालप्लवङ्गाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना ।
दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा सध्यासु रात्रिषु ॥२५॥

कुत्ते, गीदड़, बन्दर आदि के द्वारा और मनुष्यों के द्वारा बिना क्रीड़ा के काटा हुआ मनुष्य दिन में, सन्ध्याओं में और रात्रियों में तुरन्त स्नान करके शुद्ध हो जाता है ।

अज्ञानाद् ब्राह्मणो भुक्त्वा चण्डालान्नं कदाचन ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुध्यति ॥२६॥

किसी समय अनजाने में चण्डाल के अन्न को खाकर ब्राह्मण गोमूत्र और जौ से बने आहार वाला होकर आधे मास में भली प्रकार शुद्ध हो जाता है ।

गोब्राह्मणगृहं दग्ध्वा मृतं चोद्बन्धनादिना ।
पाशांश्छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद् द्विजः ॥२७॥

गऊ और ब्राह्मण के घर को जला कर और फांसी आदि लगा कर मरे हुए मनुष्य को जला कर तथा उसके पासों को काट कर ब्राह्मण एक कृच्छ्र व्रत करे ।

चण्डालपुल्कसानां च भुक्त्वा गत्वा च योषितम् ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२८॥

चण्डालों और पुक्कसों का भोजन खाकर और उनकी स्त्री के साथ सभोग करके, यदि जानबूझ कर किया हो तो एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे और यदि अनजाने में किया हो तो चान्द्रायण व्रत करे ।

कापालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२९॥

अनजाने में कापालिकों का भोजन करने वाला और उनकी नारियों से संभोग करने वाला वर्ष भर तक कृच्छ्र व्रत करे और अनजाने में ऐसा करने वाला दो चान्द्रायण व्रत करे ।

अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ।
तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुध्यति ॥३०॥

संभोग के अयोग्य स्त्री का संभोग करने पर, मद्यपान और गोमांस का भक्षण कर लेने पर तप्त कृच्छ्र व्रत का आचरण करता हुआ ब्राह्मण मौर्वी (सूत्र) के होम से शुद्ध होता है ।

महापातककर्तारश्चत्वारोऽथविशेषतः ।
अग्निं प्रविश्य शुध्यन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ ।।३१।।

चारों प्रकार के महापातक करने वाले विशेष रूप से तो अग्नि में प्रवेश करके शुद्ध होते है, अथवा महान् यज्ञ में स्थित होकर ।

रहस्यकरणेऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः ।
अघमर्षणसूक्तं वा शुध्येदन्तर्जले स्थितः ।।३२।।

(इन पातकों को) छुपकर करने पर भी इसी प्रकार से पुरुष महीने भर तक बार-बार (प्रायश्चित्त) करके और जल में खड़े होकर अघमर्षण सूक्त (ऋतञ्च सत्यञ्च०) का जप करके शुद्ध होता है ।

रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ।
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ।।३३।।

रजक, चमार, नट, बुरुड (कटकार), केवट, मेद और भील, ये सात अन्त्यज माने गये हैं ।

भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वाऽपः प्रतिगृह्य च ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ।।३४।।

जानबूझ कर इनका अन्न खाकर, इनकी स्त्रियों से भोग करके, इनके हाथ का जल पीकर और (दान) ग्रहण करके वर्ष भर तक चलने वाला कृच्छ्र व्रत करे । यदि अनजाने में ऐसा हो जाए तो दो चान्द्रायण व्रत करे ।

मातरं गुरुपत्नीं च स्वसृदुहितरौ स्नुषाम् ।
गत्वैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ।।३५।।

माता, गुरु-पत्नी, बहन और पुत्री, पुत्र-वधू—इनसे संभोग करके अग्नि में प्रवेश करे । किसी अन्य शुद्धि का विधान नहीं है ।

राज्ञीं प्रव्रजितां धात्रीं तथा वर्णोत्तमामपि ।
कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ।।३६।।

राजा की पत्नी, संन्यासिनी, धाया तथा उत्तम वर्ण की स्त्री और समान गोत्र की स्त्री से संभोग करके दो कृच्छ्र व्रत करे ।

अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ।
परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।।३७।।

अन्य पिता के गोत्र की, माता के गोत्र की और सब प्रकार की पराई स्त्रियों से संभोग करके सांतपन कृच्छ्र व्रत करे ।

वेश्याभिगमने पाप व्यपोहन्ति द्विजातयः ।
पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पञ्चरात्रं कुशोदकम् ।।३८।।

वेश्या के साथ सभोग करने से उत्पन्न हुए पाप को द्विजाति लोग भली प्रकार गर्म किये हुए कुशा के जल को पाच रातों तक एक बार पीकर दूर करते हैं।

गुरुतल्पव्रतं केचित् केचिद् ब्रह्महणो व्रतम् ।
गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ।।३९।।

(वेश्यागमन से उत्पन्न पाप को दूर करने के लिये) कुछ (ऋषि) गुरुपत्नी-गमन के व्रत की, कुछ ब्रह्म-हत्यारे के व्रत की, कुछ गोहत्यारे के व्रत की और कुछ अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य को भङ्ग करने वाले) के व्रत की इच्छा करते हैं।

दण्डादूर्ध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ।
द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।४०।।

डंडे से ऊपर प्रहार करने से जो मनुष्य गऊ को (धरती पर) गिरा दे, (राजा) उसके लिये दुगुने गोव्रत प्रायश्चित्त का निर्देश करे।

अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ।
सार्द्रश्च सपलाशश्च गोदण्डः परिकीर्तितः ।।४१।।

अंगूठे जितना मोटा, भुजा जितनी लम्बाई वाला, गीला और पत्तो वाला गोदण्ड (गऊओं को हांकने का डंडा) कहा गया है।

गवां निपातने चैव गर्भोऽपि संपतेद्यदि ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं यथापूर्वं तथा पुनः ।।४२।।

गऊओं का (धरती पर) निपातन होने पर यदि गर्भ भी गिर जाए, तो प्रत्येक द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य), जैसे पहले (गो-निपातन पर) कृच्छ्र किया था, वैसे ही फिर से कृच्छ्र करे।

पादमुत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ गात्रसंभवे ।
पादोनं कृच्छ्रमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ।।४३।।

(ऋषि) गर्भ हो जाने मात्र पर (यदि दण्ड प्रहार से गर्भपात हो जाए तो) एक चौथाई कृच्छ्र, शरीर निर्माण होने पर आधा कृच्छ्र, और अचेतन गर्भ का हनन करने पर तीन चौथाई कृच्छ्र का आदेश करते हैं।

अङ्गप्रत्यङ्गसंपूर्णे गर्भे रेतःसमन्विते ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रमेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥४४॥

गर्भ के अङ्ग और प्रत्यङ्गों[1] के पूर्ण हो जाने पर और वीर्य से युक्त हो जाने पर यदि गर्भपात हो जाए तो प्रत्येक द्विजाति कृच्छ्र व्रत करे, यह गोहत्यारे का प्रायश्चित्त है ।

बन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा ।
संपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते ॥४५॥

(गऊ को) बांधने, रोकने, पालन-पोषण करने से अथवा गायों के रोग से यदि उसकी मृत्यु हो जाए, तो निमित्ती (बांधने आदि का कार्य करने वाला) पाप से लिप्त नहीं होता ।

मूर्च्छितः पतितो वाऽपि दण्डेनाभिहतस्तथा ।
उत्थाय षट् पदं गच्छेत् सप्त पञ्च दशापि वा ॥४६॥
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वाऽपि पिबेद्यदि ।
पूर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४७॥

मूर्छित हुआ, अथवा गिरा हुआ, तथा डंडे से मारा हुआ (बैल अथवा गाय) यदि उठकर छः, सात, पांच अथवा दस कदम चल ले, अथवा घास खा ले, अथवा यदि जल पी ले तो उनके लिए और पूर्व रोग से मरने वालों के लिए प्रायश्चित्त नहीं होता ।

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि ।
प्रायश्चित्तं कथं तत्र शास्त्रे शास्त्रे निगद्यते ॥४८॥

लाठी, ढेले और पत्थर से अथवा शस्त्रों से यदि गौएं मर गई हैं, तो उस स्थिति में प्रायश्चित्त कैसे होगा, यह प्रत्येक (धर्म)शास्त्र में बताया गया है ।

काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ।
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥४९॥

लाठी से मारे जाने पर सांतपन व्रत करे, ढेले से मारे जाने पर प्राजापत्य व्रत करे, पत्थर से मारे जाने पर तप्तकृच्छ्र करे और शस्त्र से मारे जाने पर अतिकृच्छ्र करे ।

---

१. धड़, शिर, दो हाथ, दो पांव—ये छः अङ्ग कहलाते हैं । मस्तक, नाक, कान, अंगुलियां आदि छोटे अंग प्रत्यङ्ग कहलाते हैं ।

औषधं स्नेहमाहारं ददद् गोब्राह्मणेषु तु ।
दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥५०॥

गायों और ब्राह्मणों को दवा देते हुए, स्नेह (घी, तेल आदि) पिलाते हुए और भोजन देते हुए अथवा दे दिये जाने पर यदि दुर्घटना हो जाए, तो प्रायश्चित्त नहीं होता ।

तैलभैषज्यपाने च भेषजानां च भक्षणे ।
निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥५१॥

तेल और औषधों के पिलाने में और औषधियों के खिलाने में, तथा काँटा निकालने में (गऊ आदि को जो कष्ट होता है उसके लिए भी) प्रायश्चित्त नहीं होता ।

वत्सानां कण्ठबन्धेन क्रियया भेषजेन तु ।
साय सगोपनार्थं च न दोषो रोधबन्धयोः ॥५२॥

बछड़ों के गले में रस्सी डालने से, दवा पिलाने आदि की क्रिया से और सायं काल रक्षा के लिए रोकने और बांधने से (उन्हें जो कष्ट होता है उससे) कोई दोष नहीं होता ।

पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ।
त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् ॥५३॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलद्वयम् ।
एवमेव हि नारीणां मुण्डमुण्डापनं स्मृतम् ॥५४॥

एक चौथाई कृच्छ्र में पुरुष के रोमों का, अर्द्ध कृच्छ्र में केवल मूछों और दाढ़ी का, पौन कृच्छ्र में शिखा को छोड़कर सारे सिर का और मूल (सम्पूर्ण) कृच्छ्र में सारे सिर का (मुण्डन) कराए। सारे केशों को ऊपर को उठाकर दो अंगुल तक कटवा दे। इसी प्रकार नारियों के सिर का मुंडवाना कहा गया है ।

न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं तथा ।
न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनुव्रजेत् ॥५५॥

स्त्री का मुण्डन नहीं करना चाहिए, न ही उसे वीरासन से बैठना चाहिए। उसे गोष्ठ मे निवास नहीं करना चाहिए और वह चलती हुई गाय के पीछे भी न चले ।

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।
अकृत्वा वपन तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।५६।।

राजा अथवा राजकुमार अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण उन का मुण्डन न कराये। जो करे उनके लिए प्रायश्चित्त का विधान करे ।

केशानां रक्षणार्थं च द्विगुण व्रतमादिशेत् ।
द्विगुणं तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ।।५७।।

केशों की रक्षा के लिए दोगुने व्रत का आदेश करे । और दुगुना व्रत करने पर दुगुनी ही दक्षिणा दे ।

द्विगुणं चेन्न दत्तं च केशांश्च परिरक्षयेत् ।
पापं न क्षीयते हन्तुर्दाता च नरकं व्रजेत् ।।५८।।

यदि (दक्षिणा के रूप में) दुगुना धन नहीं दिया गया और केशों की रक्षा चाहे, तो (केश) हनन करने वाले का पाप नष्ट नही होता, और केश काटने वाला नरक में जाता है।

अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ।
तान् धर्मविघ्नकर्तृश्च राजा दण्डेन पीडयेत् ।।५६।।

श्रुति और स्मृति में विधान न किये हुए प्रायश्चित्त को जो लोग बताते हैं, धर्म में विघ्न उत्पन्न करने वाले उन लोगों को राजा दण्ड से पीड़ा दे ।

न चेत्तान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः ।
तत्पाप शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ।।६०।।

यदि राजा किसी प्रकार अपनी इच्छा से मोह को प्राप्त होकर उनको (दण्ड से) पीड़ित न करे, तो वह पाप सौ गुना होकर उसी को लग जाता है ।

प्रायश्चित्ते ततश्चार्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
विंशति गा वृषं चैव दद्यात्तेषा च दक्षिणाम् ।।६१।।

तब प्रायश्चित्त करने के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराए । बीस गायें और एक बैल दान मे दे और उन ब्राह्मणों को दक्षिणा दे ।

कृमिभिर्व्रणसभूतैर्मक्षिकाभिश्च पातितैः ।
कृच्छ्रार्धं सप्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।।६२।।

मक्खियों के बैठने से यदि घाव में कीड़े पड़ जाएं, तो अर्द्ध-कृच्छ्र करे और शक्ति के अनुसार दक्षिणा दे ।

प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
सुवर्णमाषकं दद्यात्तत. शुद्धिर्विधीयते ।।६३।।

प्रायश्चित्त करके और उत्तम ब्राह्मणों को जिमा कर मासा भर सोना दान करे, तब शुद्धि होती है ।

चण्डालश्वपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ।
न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुध्यति ।।६४।।

रात्रि में चण्डालों और श्वपचों से छुए जाने पर स्नान का विधान है । वहां रात्रि मे वास न करे. स्नान से तुरन्त शुद्ध हो जाता है ।

अथ वसेद्यदा रात्रावज्ञानादविचक्षणः ।
तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्तते ।।६५।।

और जब वह बुद्धिहीन अज्ञान के कारण रात्रि में वास करता है, तो उस का वह पाप सौ गुणा हो जाता है ।

उद्गच्छन्ति हि नक्षत्राण्युपरिष्टाच्च ये ग्रहा. ।
सस्पृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदके स्नानमाचरेत् ।।६६।।

जो नक्षत्र और ग्रह ऊपर से गुजरते हैं, उनकी किरणों से छुए जाने पर जल में स्नान करे ।

कुड्यान्तर्जलवल्मीकमूषिकोत्करवर्त्मसु ।
श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः ।।६७।।

दीवार की, जल के अन्दर की, बाम्बी की, मुषकेर की (चूहे के द्वारा खोद कर ढेर की हुई), मार्ग मे पड़ी हुई, श्मशान मे पड़ी हुई और शौच से शेष बची हुई—ये सात (प्रकार की) मिट्टियां ग्राह्य नहीं हैं ।

इष्टापूर्तं तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ।
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं समश्नुते ।।६८।।

ब्राह्मण को यत्नपूर्वक इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्त (जनहित के कार्य) करने चाहियें । वह इष्ट से स्वर्ग को प्राप्त करता है और पूर्त से मोक्ष पाता है ।

वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते ।
आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ।।६९।।

इष्ट वित्त के अनुसार होता है । तडाग, विशेष रूप से उद्यान तथा देवद्रोणियां (तीर्थ, जलाशय), पूर्त कहलाते हैं ।

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ।।७०।।

जीर्ण बावलियों, कूओं, तालाबों और देवमन्दिरों का जो उद्धार कराता है वह पूर्त के फल को प्राप्त करता है ।

शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गो. शकृत्तथा ।
ताम्रायाश्च पयो ग्राह्य श्वेताया दधि चोच्यते ।।७१।।

कपिलाया घृत ग्राह्यं महापातकनाशनम् ।
सर्वतीर्थे नदीतोये कुशैर्द्रव्यं पृथक्पृथक् ।।७२।।

आहृत्य प्रणवेनैव ह्युत्थाप्य प्रणवेन च ।
प्रणवेन समालोड्य प्रणवेन तु संपिबेत् ।।७३।।

शुक्ला (गऊ) का मूत्र ले, तथा कृष्णा गऊ का गोबर । लाल रंग की गऊ का दूध ले और श्वेत गऊ की दही लेनी बताई गई है । कपिला का घी लेना चाहिए । (इस प्रकार का यह पञ्चगव्य) महापातक का नाशक (बताया गया है) । सब तीर्थो में और नदियों के जल में पृथक् पृथक् द्रव्य को कुशाओं से प्रणव (ओम्) के उच्चारण के साथ इकट्ठा करके, प्रणव के उच्चारण के साथ ही उठाकर, प्रणव के उच्चारण के साथ ही बिलोकर, प्रणव के उच्चारण के साथ ही पिये ।

पालाशे मध्यमे पर्णे भाण्डे ताम्रमये तथा ।
पिबेत्पुष्करपर्णे वा ताम्रे वा मृण्मये शुभे ।।७४।।

ढाक के (तीन पत्तो मे से) बीच के पत्ते में, अथवा तांबे से बने हुए पात्र में, अथवा कमल के पत्ते में, अथवा मिट्टी से बने शुभ लाल पात्र में उस (पञ्चगव्य) को पिये ।

सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ।
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुध्यति ।।७५।।

सूतक उत्पन्न हो जाने पर यदि दूसरा सूतक भी साथ ही आ जाए, तो दूसरे सूतक से कोई दोष उत्पन्न नहीं होता । वह प्रथम (सूतक के प्रायश्चित्त) से ही शुद्ध हो जाता है।

जातेन शुध्यते जात मृतेन मृतकं तथा ।
गर्भसंस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ।।७६।।

(पहले) जन्म-सूतक के साथ दूसरा जन्म-सूतक शुद्ध हो जाता है, तथा (पहले) मृतक-सूतक के साथ (दूसरा) मृतक-सूतक। मास भर का गर्भ-स्राव हो जाने पर तीन दिन तक सूतक होता है।

रात्रिभिर्मासतुलाभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥७७॥

गर्भ-स्राव होने पर, जितने मास का गर्भ हो उतनी ही रात्रियों में (स्त्री) शुद्ध होती है। साध्वी रजस्वला स्त्री रज की निवृत्ति होने पर स्नान से शुद्ध होती है।

सगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे।
स्वामिगोत्रेण कर्तव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रिया ॥७८॥

विवाह होने से सातवां पग रखने पर (सप्तपदी हो जाने पर) स्त्री अपने (पिता के) गोत्र से छूट जाती है। उसके पिण्ड और जलदान की क्रियाए पति के गोत्र के अनुसार की जानी चाहियें।

द्वे पितुः पिण्डदाने स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामता।
षण्णा देयास्त्रयः पिण्डा एव दाता न मुह्यति ॥७९॥

पिता को दो पिण्ड दिये जाते है। प्रत्येक पिण्ड में (पति और पत्नी के) दो नाम बोले जाते है। छः को तीन पिण्ड देने होते हैं। इस प्रकार पिण्ड देने वाला मोह को प्राप्त नही होता।

स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुक्त्वा सदैवतम्।
पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥८०॥

माता अपने पति के साथ देवताओ (विश्वे देवाः) के साथ श्राद्ध का भक्षण करती है। पितामही अपने पति के साथ और प्रपितामही भी अपने पति के साथ।

वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम्।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥८१॥

प्रतिवर्ष माता और पिता की सत्क्रिया (श्राद्ध) करे। देवों (विश्वे देवाः) के बिना श्राद्ध जिमावे और एक पिण्ड दे।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम्।
पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पञ्चविधं बुधैः ॥८२॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य और अन्य वृद्धि-श्राद्ध, तथा पार्वण (दर्श आदि पर्व के समय किये जाने वाले)—ये पांच प्रकार के श्राद्ध विद्वानों के द्वारा माने गए हैं।

ग्रहोपरागे संक्रान्तौ पर्वोत्सवमहालयोः ।
निर्वपेत्त्रीन्नरः पिण्डानेकमेव मृतेऽहनि ॥८३॥

(सूर्य, चन्द्र आदि) ग्रहों के ग्रहण में, संक्रान्ति (सूर्य के संक्रमण काल) में, पर्व उत्सव और महालय (कनागत) में मनुष्य तीन पिण्ड दे, और मृत्यु के दिन (जिस दिन माता-पिता आदि मरे हो उस दिन) एक ही पिण्ड दे।

अनूढा न पृथक् कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके ।
पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्राद् भ्रश्यते ततः ॥८४॥

अविवाहित कन्या पिण्ड, गोत्र और सूतक मे(अपने पितृ-परिवार से) अलग नहीं होती। उसके पश्चात् पाणिग्रहण और विवाह मन्त्रों से वह अपने गोत्र से अलग हो जाती है।

येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ।
तत्समं सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥८५॥

जिस-जिस वर्ण (के पुरुष) के साथ जो कन्या ब्याही जाती है, उसके समान सूतक तथा पिण्ड और जलदान की क्रिया को प्राप्त हो जाती है।

विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥८६॥

विवाह सपन्न हो जाने पर चौथे दिन या रात्रि में वह पिण्ड, गोत्र और सूतक में पति के साथ एकता को प्राप्त कर लेती है।

प्रथमेऽह्नि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ।
अस्थिसंचयनं कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभिः ॥८७॥

पहले दिन, अथवा दूसरे, अथवा तीसरे (अथवा) चौथे (दिन) हितैषी बन्धुओं द्वारा अस्थि-सञ्चय किया जाना चाहिये।

चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा ।
अस्थिसंचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥८८॥

(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) वर्णों का क्रमशः चौथे, पांचवें, सातवें और नौवें दिन अस्थि-संचय कहा गया है।

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ।
मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥८९॥

और जिस प्रेत के लिये ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेत-लोक से छूट जाता है और स्वर्ग लोक में पूजा को प्राप्त होता है ।

गङ्गातोयेषु यस्यास्थि प्लवते शुभकर्मणः ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कथंचन ॥९०॥

शुभ कर्म करने वाले जिस मृतक की अस्थियां गंगाजल में प्लावित होती है, उसकी ब्रह्मलोक से किसी भी प्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती ।

यावदस्थि मनुष्याणां गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥९१॥

जब तक मनुष्यों की अस्थियां गंगाजल में स्थिर रहती है, तब तक हजारों वर्षों तक वे स्वर्ग लोक में पूजे जाते हैं ।

नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेनानुचिन्तयेत् ।
आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् ॥९२॥

नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर हृदय में चिन्तन करे— मेरे पितर आएं और इन जलाञ्जलियों को ग्रहण करें ।

हस्तौ कृत्वा सुसयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥९३॥

दोनों हाथों को भली प्रकार मिलाकर और जल से भरकर गऊ के सींगों की ऊँचाई भर ऊपर उठाकर उस जल को जल के मध्य में डाल दे ।

आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुखः ।
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक्तथैव च ॥९४॥

जल में खड़े होकर, दक्षिण की ओर मुख करके आकाश में जल फेंके । आकाश तथा दक्षिण दिशा पितरों के स्थान है ।

आपो देवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा ।
तस्मादप्सु जलं देयं पितॄणां हितमिच्छता ॥९५॥

जल ही देवगण कहे गए हैं, तथा जल ही पितृगण । इस लिए पितरों का हित चाहने वाले मनुष्य के द्वारा जलों में जल दिया जाना चाहिये ।

दिवा सूर्यांशुभिस्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ।
सन्ध्ययोरप्युभाभ्या च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥९६॥

दिन में सूर्य की किरणों से तपा हुआ, रात्रि में नक्षत्रों और पवनों से और संध्याओं (प्रातः, सायकाल) में इन दोनों से जल सदा पवित्र रहता है।

स्वभावयुक्तमव्याप्तममेध्येन सदा शुचि ।
भाण्डस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥९७॥

अपवित्र वस्तु से अव्याप्त स्वाभाविक जल सदा पवित्र होता है। पात्र मे पड़ा हुआ अथवा भूमि पर स्थित जल भी सदा पवित्र होता है।

देवतानां पितृणां च जले दद्याज्जलाञ्जलीन् ।
असंस्कृतप्रमीताना स्थले दद्याज्जलाञ्जलीन् ॥९८॥

देवताओं और पितरों की जलाजलिया मनुष्य जलों मे दे, बिना संस्कार किये मरने वालों को जलांजलियां स्थल पर दे।

श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ।
उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥९९॥

श्राद्ध में और हवन के समय एक हाथ से (पिण्ड या आहुति) दे। तर्पण में दोनों हाथों से जलाञ्जलि दे। यही धर्म की व्यवस्था है।

इति लघुयमप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ।
समाप्तेयं यमस्मृतिः ।

॥ अथ ॥

॥ आपस्तम्बस्मृतिः ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

आपस्तम्ब प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ।
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥१॥

वर्णों के क्रम से दोषों को प्राप्त मनुष्यों के हित के लिए आपस्तम्ब ऋषि प्रोक्त प्रायश्चित्त के निर्णय का वर्णन करता हू ।

परेषा परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ।
विविक्तदेश असीनमात्मविद्यापरायणम् ॥२॥
अनन्यमनसं शान्तं तत्त्वस्थ योगवित्तमम् ।
आपस्तम्बमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोऽब्रुवन् ॥३॥

दूसरों की निन्दाओं से दूर, ऋषियों में उत्तम, एकान्त स्थान पर बैठे हुए, आत्मविद्या में परायण, एकाग्रचित्त, शान्त, तत्त्व में स्थित, योगियों में श्रेष्ठ आपस्तम्ब ऋषि के पास जाकर सब मुनि बोले ।

भगवन् ! मानवाः सर्वेऽसन्मार्गेऽपि स्थिता यदा ।
चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥४॥

हे भगवन् ! जब सभी मनुष्य असत् मार्ग में स्थित हों और वे धर्मकृत्यों को करना चाहे, तो उनके प्रायश्चित्त को बताइये ।

यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादिपरिपालनम् ।
कृषिकर्मादि वपनं द्विजामन्त्रणमेव च ॥५॥
बालाना स्तन्यपानादिकार्यञ्च परिपालनम् ।
देयञ्चानाथकेऽवश्य विप्रादीनाञ्च भेषजम् ॥६॥
एवं कृते कथञ्चित् स्यात् प्रमादो यद्यकामतः ।
गवादीनां ततोऽस्माक भगवन् ! ब्रूहि निष्कृतिम् ॥७॥

चूंकि अवश्य ही गृहस्थ को गऊ आदि का पालन करना होता है, कृषि कर्म और बीज आदि बोना होता है, ब्राह्मणों को भोजन पर बुलाना होता है, बालकों को स्तन-पान आदि कार्य और उन का परिपालन करना होता है, असहायों को अवश्य देना होता है और ब्राह्मण आदि की दवा-दारू करनी होती है—ऐसा करने पर यदि न चाहते हुए भी गऊ आदियों के विषय में किसी प्रकार का प्रमाद हो जाए, तो हे भगवन् ! उसका हमें प्रायश्चित्त बताइये ।

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः ।
दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तम्बः सुनिश्चितम् ॥८॥

इस प्रकार पूछे हुए, प्रणिपात के कारण नीचे की ओर मुख किये हुए आपस्तम्ब ने क्षण भर विचार कर और फिर ऋषियों को देखकर यह सुनिश्चित (वचन) कहा ।

बालानां स्तन्यपानादिकार्ये दोषो न विद्यते ।
विपत्तावपि विप्राणामामन्त्रणचिकित्सने ॥९॥

बालकों के स्तन-पान आदि कार्य में तथा ब्राह्मणों के आमन्त्रण और चिकित्सा आदि कार्य मे विपत्ति उत्पन्न हो जाने पर भी दोष नहीं लगता।

गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्त तृणादिषु ।
केचिदाहुर्न दोषोऽत्र स्नेहे लवणभेषजे ॥१०॥

गऊ आदियों के घास आदि खाने से मर जाने पर प्रायश्चित्त बताता हूं । कुछ कहते हे कि स्नेह (घी, तेल आदि) नमक और औषध देने से यदि दुर्घटना हो जाए, तो कोई दोष नहीं है ।

औषध लवणञ्चैव स्नेहपुष्ट्यन्नभोजनम् ।
प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥११॥

औषध, लवण, घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थ, पौष्टिक अन्न और भोजन प्राणियों की प्राण-रक्षा के लिये हे, (इसलिये उन से विपत्ति आने पर) प्रायश्चित्त नहीं होता ।

अतिरिक्त न दातव्य काले स्वल्पन्तु दापयेत् ।
अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥१२॥

आवश्यकता से अधिक नहीं देना चाहिये, उचित समय पर थोड़ा ही देना चाहिये। आवश्यकता से अधिक देने पर जो मर जायें तो उनके विषय में कृच्छ्र का ही विधान है ।

त्र्यहं निरशनात् पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम् ।
सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा त्र्यहम् ॥१३॥

तीन दिन तक भोजन न खाने से एक चौथाई कृच्छ्र होता है, तीन दिन तक बिना मांगे जो मिल जाए उसे खाने से एक चौथाई, तीन दिन तक केवल सायं काल में खाने से एक चौथाई और तीन दिन तक केवल प्रातः काल में खाने से एक चौथाई कृच्छ्र होता है ।

प्रातः सायं दिनार्द्धञ्च पादोन सायवर्ज्जितम् ॥१४॥

प्रातःकाल और सायंकाल भोजन न करने को आधे दिन का कृच्छ्र और सायंकाल को छोड़कर दिन में एक बार भोजन करने को पादोन (पौना) कृच्छ्र कहते हैं ।

प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ।
अयाचितन्तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च ॥१५॥

शूद्र प्रातः पाद (तीन दिन तक केवल प्रातः काल में जिस में खाया जाता है) कृच्छ्र को करे, वैश्य सायं पाद कृच्छ्र को करे, क्षत्रिय अयाचित पाद कृच्छ्र को करे और ब्राह्मण तीन दिन तक भोजन न करने के पादकृच्छ्र को करे ।

पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ।
योजने पादहीनञ्च चरेत् सर्वं निपातने ॥१६॥

रोकने से यदि गऊ आदि को विपत्ति आ जाए तो एक चौथाई कृच्छ्र करे, बांधने से यदि आए तो अर्द्ध-कृच्छ्र, जोतने से यदि आए तो पादोन (पौना) कृच्छ्र, और गिरने से यदि आए तो सम्पूर्ण कृच्छ्र करे ।

घण्टाभरणदोषेण गौस्तु यत्र विपद्यते ।
चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् ॥१७॥

जहां गऊ घण्टाभरण (आभूषण के रूप में गले में बांधे घण्टे) से विपत्ति में पड़ जाए, वहां अर्द्ध-कृच्छ्र व्रत का आचरण करे, क्योंकि वह (गऊ के) मण्डन के लिए किया गया था ।

दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ।
स्तम्भश्रृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ॥१८॥

वश में करने, रोकने अथवा एकत्रित करने, जोतने, खम्बे जंजीर और रस्सी से बांधने में यदि मर जाए तो पौना कृच्छ्र करे ।

पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ।
निपातयन्ति ये पापास्तेषां सर्वं विधीयते ॥१९॥

पत्थरों से, लाठियों से अथवा अन्य किसी शस्त्र से जो पापी बलपूर्वक गिराकर मार डालते हैं, उनके लिए सम्पूर्ण कृच्छ्र का विधान है।

प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियश्चरेत् ।
कृच्छ्रार्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२०॥

ब्राह्मण प्राजापत्य करे, क्षत्रिय पादोन प्राजापत्य करे, वैश्य अर्द्ध कृच्छ्र करे और शूद्र से चौथाई कृच्छ्र कराना चाहिये।

द्वौ मासौ पाययेद् वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ।
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकाले यथारुचि ॥२१॥

(ब्याई हुई गऊ का दूध) दो महीने तक बछड़े को पिलाए, दो महीने तक गऊ के दो थन दुहे, दो महीने तक उसे एक समय दुहे और शेष समय में रुचि के अनुसार दुहे।

दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२२॥

दस दिन या आधे महीने के अन्दर (नव प्रसूता गऊ) यदि मर जाए तो शिखा सहित मुण्डन कराकर प्राजापत्य व्रत करे।

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं हि जिघांसिनाम् ॥२३॥

आठ बैलों का हल धर्म का, छः बैलों का जीवन चाहने वालों का, चार बैलों का दयाहीनों का और दो बैलों का हल हत्यारों का होता है।

अतिवाहातिदोहाभ्या नासिकाभेदेन तथा ।
नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥२४॥

(बैल से) अधिक बोझा खिचवाने से और (गऊ को) अधिक दोहने से तथा (नाथ के लिये) नासिका छेदन से और नदी एवं पर्वत में अटक जाने से मर जाने पर पौना कृच्छ्र करे।

न नारिकेलबालाभ्यां न मुञ्जेन न चर्म्मणा ।
एभिर्गास्तु न बध्नीयाद् बद्ध्वा परवशो भवेत् ॥२५॥

न नारियल और बालों (की रस्सी) से, न मूंज (की रस्सी) से और न ही चमड़े (की रस्सी) से—इन सब से गाय-बैलों को न बांधे। अगर बांधे तो (पशु) परवश हो जाता है।

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् वृषभं दक्षिणामुखम्।
पादलग्नाहिदाहेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२६॥

बैल को कुशा और काश (की रस्सी) से दक्षिण को मुख करके बांधे। पाँव उलझने, सांप काटने और अग्नि से जलने से (पशु के मरने पर) प्रायश्चित्त नहीं होता।

व्यापन्नानां बहूनान्तु रोधने बन्धनेऽपि च।
भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ॥२७॥

रोकने और बांधने में बहुत की मृत्यु हो जाने पर और वैद्य के द्वारा गलत उपचार किये जाने पर दुगना (गोहत्या का) व्रत करे।

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलस्य च कर्त्तने।
सप्तरात्र पिबेद् वज्रं यावत् स्वस्था पुनर्भवेत् ॥२८॥

सींग टूटने पर, हड्डी टूटने पर और दुम के कट जाने पर, सात रातों तक वज्र (गोमूत्र में जौ मिलाकर) पिये, जब तक कि वह फिर से स्वस्थ नहीं हो जाती।

गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद् द्विजः।
एतद्विमिश्रितं वज्रमुक्तञ्चोशनसा स्वयम् ॥२९॥

द्विज गोमूत्र से मिश्रित जौ का भक्षण करे। यह मिश्रण स्वयं उशना ऋषि के द्वारा वज्र कहा गया है।

देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च।
एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३०॥

देवतीर्थ में, विहारों में, कूओं में और गोष्ठो में—इन सब में गायों के मरने पर प्रायश्चित्त नहीं होता।

एका यदा तु बहुभिर्दैवाद् व्यापादिता क्वचित्।
पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥३१॥

जब कहीं एक गऊ दुर्भाग्य से बहुतों के द्वारा मार दी जाए, तो वे सब अलग-अलग हत्या के एक चौथाई-एक चौथाई (प्रायश्चित्त) को करें।

यन्त्रणा गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ।
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।३२।।

गऊ की चिकित्सा के लिये उसे जकडने में अथवा मरे हुए गर्भ को बाहर निकालने में यत्न करने पर भी यदि दुर्घटना हो जाए तो प्रायश्चित्त नहीं होता ।

सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुधारणम् ।
तृतीये तु शिखा धार्य्या सशिखन्तु निपातने ।।३३।।

(प्रायश्चित्त के) प्रथम पाद में रोमों का (मुण्डन), द्वितीय पाद में दाढ़ी धारण करना (और शेष समस्त मुण्डन), तृतीय पाद में शिखा को धारण (और शेष सब मुण्डन) और मृत्यु होने पर शिखा सहित (समस्त मुण्डन का विधान है) ।

सर्व्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ।
एवमेव तु नारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ।।३४।।

सब केशों को ऊपर को उठाकर दो अंगुल तक कटवा देवे। इसी प्रकार नारियों के सिर का मुण्डन माना गया है ।

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

कारुहस्तगत पुण्यं यच्च ग्रामाद् विनिनिःसृतम् ।
स्त्रीबालवृद्धचरित सर्वमेतच्छुचि स्मृतम् ।।१।।

कारीगर के हाथ में गई हुई (वस्तु) पवित्र मानी जाती है, और जो (वस्तु) गाँव से बाहर से लाई गई हो, तथा स्त्रियों बच्चों और वृद्धों का आचरण—यह सब पवित्र माना गया है ।

प्रपास्वारण्येषु जलेषु गिरौ द्रोण्या जल च केशविनिःसृतं ।
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जल पञ्चगव्येन शुद्धि ।।२।।

प्याऊ पर स्थित, जंगल के जलों, पर्वत पर स्थित, मशक में रखे हुए, केशों से चिपे हुए जल को और श्वपाक और चण्डालों के घरों में रखे जल को पीकर पञ्चगव्य से शुद्धि होती है।

न दुष्येत् सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥३॥

निरन्तर बहने वाली (जल की) धारा, वायु से उड़ाई गई धूलियां, स्त्रियाँ वृद्ध और बालक कभी अपवित्र नहीं होते।

आत्मशय्या च वस्त्रञ्च जायापत्यं कमण्डलुः ।
आत्मनः शुचिरेतानि परेषामशुचीनि तु ॥४॥

अपनी शय्या, वस्त्र, पत्नी, सन्तान और जलपात्र - ये सब अपने ही शुद्ध होते हैं, दूसरों के अशुद्ध होते हैं।

अन्यैस्तु खानिता. कूपास्तडागानि तथैव च ।
एषु स्नात्वा च पीत्वा च पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५॥

दूसरों के खुदवाए हुए जो कूएँ तथा जो तालाब है—इनमें स्नान करके और पानी पीकर मनुष्य पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

उच्छिष्टमशुचित्वञ्च यच्च विष्ठानुलेपनम् ।
सर्वं शुध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुध्यति ॥६॥

जो उच्छिष्ट है, अपवित्र है और जो मल से अनुलिप्त है, वह सब जल से शुद्ध होता है, (पर) वह जल किससे शुद्ध होता है (सो बताता हूं।

सूर्य्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च ।
गवां मूत्रपुरीषेण तत्तोयं तेन शुध्यति ॥७॥

सूर्य की किरणों के पड़ने से और पवन के स्पर्श से, गायों के मूत्र और गोबर से—इन सब से वह जल शुद्ध होता है।

अस्थिचर्म्मादियुक्तन्तु खराश्वोष्ट्रोपदूषितम् ।
उद्धरेदुदकं सर्व्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥८॥

(जिस जल-पात्र में) हड्डी, चाम आदि पड़ जाएं, या जो गधे, घोड़े, ऊंट आदि के द्वारा दूषित कर दिया जाए, तो सारे जल को निकाल दिया जाए और मांजने से शुद्ध होता है।

कूपो मूत्रपुरीषेण ष्ठीवनेनापि दूषितः ।
श्वश्रृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्च जुगुप्सितः ॥९॥
उद्धृत्यैव च तत्तोयं सप्तपिण्डान् समुद्धरेत् ।
पञ्चगव्यं मृदा पूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम् ॥१०॥

यदि कुआं मूत्र और मल से और थूकने से अपवित्र किया हुआ हो, एवं कुत्ते गीदड़, गधे और ऊँट से तथा कच्चा मांस खाने वाले पशुओं से घृणास्पद बनाया हुआ हो तो उसके जल को निकालकर सात मिट्टी के पिण्ड उससे निकाले । वह पञ्चगव्य डालने और मिट्टी से मांजने से पवित्र होता है। कूएं के सम्बन्ध में यही पवित्रीकरण माना गया है ।

वापीकूपतडागानां दूषितानाञ्च शोधनम् ।
कुम्भानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत् ॥११॥

दूषित हुई बावलियों, कूओं और तालाबों का शोधन (पवित्रीकरण) यह है कि उनसे सौ घड़े पानी निकाल कर तत्पश्चात् उनमें पञ्चगव्य डाल दे ।

यश्च कूपात् पिबेत्तोयं ब्राह्मणः शवदूषितात् ।
कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ॥१२॥

जो ब्राह्मण शव (पड़ने) से दूषित कूए से जल पी ले तो उसके सम्बन्ध में शुद्धि कैसे हो, इसमें मुझे संशय हो । (भगवन् ! मेरा संशय दूर कीजिये ।)

अक्लिन्नेनाप्यभिन्नेन शवेन परिदूषिते ।
पीत्वा कूपे ह्यहोरात्रं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१३॥

बिना (रक्त से) भीगे हुए, बिना फूटे हुए शव से दूषित कूएँ में से जल पीकर एक दिन और एक रात तक पञ्चगव्य के सेवन से (ब्राह्मण) शुद्ध होता है ।

क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत् पिबेत् ।
शुद्धिश्चान्द्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥१४॥

और शव के (रक्त से) भीगा हुआ और फूटा हुआ होने पर यदि उस (कूएँ) में स्थित जल को पिये तो चान्द्रायण अथवा तप्तकृच्छ्र व्रत उसकी शुद्धि है ।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ।
तस्य ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ।।१।।

बिना जाना हुआ शूद्र जाति का मनुष्य जिसके घर में वास करे और समय आने पर उसका पता चल जाए, तो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) लोग उसपर दया करते हैं ।

चान्द्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ।
प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ।।२।।

चान्द्रायण अथवा पराक द्विजों की शुद्धि करने वाला व्रत है । चान्द्रायण शूद्र का व्रत है, शेष सब कुछ तदनुसार होता है ।

यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्न कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत् ।
तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ।।३।।

उस (घर) में जिनके द्वारा पका हुआ अन्न खाया गया हो उनको कृच्छ्र कराए । और उन (खाने वालों) के घर में भी जिनके द्वारा भोजन किया गया हो उनको पाद-कृच्छ्र कराए ।

कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शसंसर्गदूषणात् ।
तेषामेकोपवासेन पञ्चगव्येन शोधनम् ।।४।।

(अन्त्यज के) स्पर्श और संसर्ग के दोष से और (उसके साथ) एक ही कूएँ पर जल पीने से जो अपवित्र हो गए हैं, उनकी शुद्धि एक उपवास से और पञ्चगव्य के सेवन से होती है ।

बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुपीडिता ।
तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ।।५।।

जो बालक, वृद्ध, रोगी और वायु से पीड़ित गर्भिणी स्त्री हो, तो उन्हें रात का व्रत कराए । बालकों को (केवल) दो पहर का व्रत ही कराए ।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः ।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ।।६।।

जो अस्सी वर्ष का (बूढ़ा) है, अथवा सोलह वर्ष से कम का बालक है, स्त्रियां है अथवा रोगी मनुष्य है, वे आधे प्रायश्चित्त के अधिकारी हैं ।

न्यूनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च ।
चरेद् गुरुः सुहृद् वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ।।७।।

जो ग्यारह वर्ष से कम का और पांच वर्ष से अधिक का (बालक) है, (उसके लिये उससे) बड़ा अथवा हितैषी मनुष्य शुद्धिकारक प्रायश्चित्त करे।

अथैतैः क्रियमाणेषु येषामार्त्तिः प्रदृश्यते।
शेषसम्पादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥८॥

और अगर इन (बालकों) के द्वारा (प्रायश्चित्त) किये जाने पर इनमें से जिनको कष्ट होता दिखाई पड़े, तो (उन के लिये) शेष (प्रायश्चित्त) के (बड़ों द्वारा) सम्पादन से शुद्धि होती है, जिस प्रकार से कि (उनको) कष्ट न हो।

क्षुधा व्याधितकायाना प्राणो येषां विपद्यते।
ये न रक्षन्ति वक्तारस्तेषां तत्किल्बिषं भवेत् ॥९॥

भूख से और व्याधि से पीडित शरीर वाले जिन मनुष्यो को प्राणसंकट हो जाए, तो जो उपदेष्टा (प्रायश्चित्त का विधान करने वाले) उनकी रक्षा नहीं करते (अर्थात् सामर्थ्य के अनुसार प्रायश्चित्त नहीं बताते) तो वह पाप उनको लग जाता है।

पूर्णेऽपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना।
अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥१०॥

(जितने समय प्रायश्चित करना है वह) काल-नियम पूर्ण हो जाने पर भी ब्राह्मणों के बिना शुद्धि नहीं होती। काल(-नियमों) के पूरा न होने पर भी उत्तम ब्राह्मण शुद्धि करा देते हैं।

समाप्तमिति नो वाच्य त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित्।
विप्रसम्पादन कर्म उत्पन्ने प्राणसंशये ॥११

प्राणों का संशय उत्पन्न हो जाने पर कर्म ब्राह्मण के द्वारा ही सम्पादित होता है, इस लिये तीनों वर्णो (क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के विषय मे कभी कोई यह न कहे कि कर्म समाप्त हो गया।

सम्पादयन्ति यद् विप्राः स्नान तीर्थफलप्रदम्।
सम्यक् कर्त्तुरपाप स्याद् व्रती च फलमाप्नुयात् ॥१२॥

जो ब्राह्मण (किसी एक के द्वारा करणीय) तीर्थ आदि के फल को देने वाले स्नानादि कर्म को (किसी अन्य से) सम्पन्न कराते हैं, तो भली प्रकार करने वाले को पाप नहीं लगता और व्रती (जिसके लिये कर्म किया जा रहा है) फल को प्राप्त करता है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

चाण्डालकूपभाण्डेषु योऽज्ञानात् पिबते जलम् ।
प्रायश्चित्त कथ तस्य वर्णे वर्णे विधीयते ।।१।।

चाण्डाल के कूए और बर्तनों में जो मनुष्य अनजाने में जल पीता है, प्रत्येक वर्ण में उसका प्रायश्चित्त कैसे होता है (वह मैं बताता हूं) ।

चरेत् सान्तपन विप्रः प्राजापत्यन्तु भूमिपः ।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ।।२।।

ब्राह्मण सान्तपन व्रत करे, क्षत्रिय प्राजापत्य करे, वैश्य उससे आधा प्राजापत्य करे और शूद्र से एक चौथाई (प्राजापत्य) कराए ।

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा ।
प्रमादात् स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद् विशोधनम् ।।३।।

भोजन करके उच्छिष्ट हुआ बिना आचमन किये यदि चाण्डालों और श्वपच के साथ प्रमाद के कारण स्पर्श को प्राप्त हो जाए तो उसमें शुद्धि करनी चाहिये ।

गायत्र्यष्टसहस्रन्तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ।
जपंस्त्रिरात्रमनश्नन् पञ्चगव्येन शुध्यति ।।४।।

आठ हजार गायत्री अथवा सौ द्रुपद (द्रुपदादिव मुमुचानः) मन्त्र का जप करे। तीन रात तक जपता हुआ, उपवास करता हुआ, पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः ।
प्रायश्चित्त त्रिरात्रं स्याद् भुक्त्वोच्छिष्ट षडाचरेत् ।।५।।

जब मल और मूत्र का त्याग करने पर ब्राह्मण चाण्डाल के द्वारा छुआ जाए तो तीन रात का प्रायश्चित्त होता है, भोजन करके उच्छिष्ट हुआ यदि छू लिया जाए तो छः रात का प्रायश्चित्त करे ।

पानमैथुनसम्पर्के तथा मूत्रपुरीषयोः ।
सम्पर्क यदि गच्छेत्तु उदक्या चान्त्यजैस्तथा ।।६।।
एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।

जल-पान और मैथुन के सम्पर्क में, तथा मल-मूत्र के सम्पर्क में, और यदि रजस्वला अन्त्यजो के साथ संपर्क को प्राप्त हो जाए तो, और इनके द्वारा ही जब (मनुष्य) छू लिया जाए तो प्रायश्चित्त कैसे होता है (यह बताता हूं) ।

भोजने च त्रिरात्रं स्यात् पाने तु त्र्यहमेव च ॥७॥
मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः ।
दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ॥८॥
एकाहं तत्र निर्दिष्ट दन्तधावनभक्षणे ।

भोजन करने पर तीन रात का प्रायश्चित्त होता है, जलपान करने पर तीन दिन का, संभोग करने पर पादकृच्छ्र होता है। उसी प्रकार मूत्र और मल के (विषय में बताता हूं)। मूत्र के सम्बन्ध में एक दिन का उपवास और मल के सम्बन्ध में तीन दिन का और दातुन के भक्षण के विषय में एक दिन के उपवास का विधान है।

वृक्षारूढे तु चाण्डाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति॥९॥
फलानि भक्षयंस्तस्य कथं शुद्धिर्विनिर्दिशेत् ।

यदि चाण्डाल वृक्ष पर चढ़ा हो और द्विज भी उसी पर बैठा हो और फल खा रहा हो तो उसकी शुद्धि कैसे हो (उसे यह बताना चाहिये)।

ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।
एकरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१०॥

ब्राह्मणों को (अपना दोष) बता कर वस्त्रों सहित स्नान करे फिर एक रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

येन केनचिदुच्छिष्टो ह्यमेध्यं स्पृशति द्विजः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥११॥

जिस किसी भक्ष्य वस्तु को खाकर उच्छिष्ट हुआ ब्राह्मण यदि किसी अपवित्र वस्तुको छू ले तो एक दिन और एक रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ।
अनभ्युक्ष्य पिबेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१॥

जब कभी द्विज वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) चाण्डाल से छू लिया जाए और बिना स्नान किये जल पीले, तो प्रायश्चित्त कैसे होता है (यह बताता हू)।

ब्राह्मणस्तु त्रिरात्रेण पञ्चगव्येन शुध्यति ।
क्षत्त्रियस्तु द्विरात्रेण पञ्चगव्येन शुध्यति ।
अहोरात्रं तु वैश्यस्य पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२॥

ब्राह्मण तीन रात में पञ्चगव्य से शुद्ध होता है, क्षत्रिय दो रात में पञ्चगव्य से शुद्ध होता है। वैश्य का एक दिन और एक रात का प्रायश्चित्त होता है, और वह पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं न वै भवेत् ।
व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥३॥

चौथे वर्ण (शूद्र) का प्रायश्चित्त नहीं होता, न व्रत होता है, न तप होता है, और न ही होम होता है।

पञ्चगव्य न दातव्यं तस्य मन्त्रविवर्जनात् ।
ख्यापयित्वा द्विजानान्तु शूद्रो दानेन शुध्यति॥४॥

उसके मन्त्रहीन होने के कारण उसे पञ्चगव्य नहीं देना चाहिये। ब्राह्मणों के सामने अपने दोष का ख्यापन करके शूद्र दान से शुद्ध होता है।

ब्राह्मणस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ।
अहोरात्रन्तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुध्यति ॥५॥

जब द्विज अनजाने में ब्राह्मण का झूठा खा लेता है, तो एक दिन-रात गायत्री का जप करके भली प्रकार शुद्ध होता हे।

उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुङ्क्तेऽज्ञानाद् द्विजो यदि ।
शङ्खपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥६॥

यदि द्विज अनजाने में वैश्य जाति के लोगो का उच्छिष्ट खा लेता है, तो शङ्खपुष्पी का जल पीकर तीन रात में ही शुद्ध हो जाता हे।

ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ।
न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥७॥

जो ब्राह्मण कभी ब्राह्मणी के साथ (उसका) उच्छिष्ट खा ले तो विद्वान् हमेशा ही उसमे दोष नहीं मानते।

उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात् स्पृशतेऽपि वा ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानङ्गिराब्रवीत् ॥८॥

यदि वह अन्य स्त्रियों का झूठा खा ले या उनका स्पर्श भी कर ले तो प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है, यह अङ्गिरा ऋषि का कथन है।

अन्त्यानां भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वा द्विजातयः ।
चान्द्रायणं तदर्द्धार्द्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥९॥

शूद्रों के खाने से बचे हुए भोजन को खाकर द्विजन्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों (के पश्चात्ताप) की विधि क्रमशः कृच्छ्, आधा कृच्छ् और आधे से आधा कृच्छ् है।

विण्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।
श्वकाकोच्छिष्टभोगे च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥१०॥

मल-मूत्र का भक्षण होने पर ब्राह्मण तप्त कृच्छ् व्रत करे। कुत्ते और कौए के उच्छिष्ट का भोग करने पर प्राजापत्य व्रत की विधि स्वीकार की गई है।

उच्छिष्टः स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ।
शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभाण्डं तथैव च ॥११॥
पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यदमेध्यं कदाचन ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१२॥

यदि कोई उच्छिष्ट ब्राह्मण बिना चाहे कुत्तो, मुर्गों, शूद्रों और शराब के बर्तनों, और जो पक्षियों के बैठने का स्थान है, और जो अपवित्र वस्तु है, उस को छू लेता है तो दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

वैश्येन च यदा स्पृष्टः उच्छिष्टेन कदाचन ।
स्नानं जपञ्च त्रैकाल्यं दिनस्यान्ते विशुध्यति ॥१३॥

और जब कभी उच्छिष्ट वैश्य के द्वारा छू लिया जाए, तो तीन काल स्नान और जप करके दिन के अन्त में शुद्ध होता है।

विप्रो विप्रेण संस्पृष्टः उच्छिष्टेन कदाचन ।
स्नात्वाचम्य विशुद्धः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥१४॥

किसी समय उच्छिष्ट ब्राह्मण के द्वारा छुआ हुआ ब्राह्मण स्नान और आचमन करके शुद्ध होता है, यह आपस्तम्ब मुनि का वचन है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य यो विधिः ।
स्त्रीणा क्रीडार्थसम्भोगे शयनीये न दुष्यति ।।१।।

इस से आगे नीली से रगे वस्त्र की जो विधि है, उसका वर्णन करूंगा । स्त्रियों के साथ क्रीड़ा के लिये संभोग में और शय्या में नीली वस्त्र में कोई दोष नहीं ।

पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने ।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ।।२।।

उसके पालन (खेती करने), बेचने और उसकी वृत्ति से जीवन चलाने से ब्राह्मण पतित हो जाता है। और फिर तीन कृच्छ्रों से भली प्रकार शुद्ध होता है ।

स्नानं दान तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात् ।।३।।

उसका स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण और पंच महायज्ञ नीली-वस्त्र को धारण करने से निष्फल हो जाते हैं ।

नीलीरक्त यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽङ्गेषु धारयेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।४।।

जब नीली से रगे हुए वस्त्र को ब्राह्मण अंगों पर धारण करता है, तो दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।

रोमकूपैर्यदागच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित् ।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभि. कृच्छ्रैर्विशुध्यति ।।५।।

जब रोम-कूपों से नीली का रस कहीं अग में चला जाता है, तो ब्राह्मण पतित हो जाता है और तीन कृच्छ्र करके भली प्रकार शुद्ध होता है।

नीलीदारु यदा भिन्द्याद् ब्राह्मणस्य शरीरकम् ।
शोणित दृश्यते तत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।।६।।

जब नीली की लकड़ी ब्राह्मण के शरीर का भेदन कर दे और उसमें लोहू दिखाई दे तो द्विज चान्द्रायण व्रत करे ।

नीलीमध्ये यदा गच्छेत् प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।७।।

जब ब्राह्मण प्रमादवश कहीं नीली (के खेत) के अन्दर चला जाए, तो दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।८।।

नीली से रंगे वस्त्र से जो अन्न दिया जाता है, वह द्विजों के खाने के योग्य नहीं होता, यदि खाले तो चान्द्रायण व्रत करे ।

भक्षयेद् यश्च नीलीं तु प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित्।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ।।९।।

और जो ब्राह्मण प्रमादवश नीली को खाले तो चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है, यह आपस्तम्ब मुनि का कथन है ।

यावत्या वापिता नीली तावती चाशुचिर्मही ।
प्रमाणं द्वादशब्दानि अत ऊर्द्ध्वं शुचिर्भवेत् ।।१०।।

जितनी धरती में नीली बोई जाती है उतनी भूमि बारह वर्ष की अवधि तक अपवित्र हो जाती है । उसके पश्चात् ही वह पवित्र होती है ।

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते ।
वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथञ्चन ।।१।।

रजस्वला का स्नान चौथे दिन में बताया गया है । रज की निवृत्ति हो जाने पर ही स्त्री संभोग के योग्य होती है । रज की निवृत्ति हुए बिना वह कभी संभोग के योग्य नहीं होती है ।

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ।
अशुद्धास्तु न तेनेह तासां वैकारिकं हि तत्।।२।।

रोग के कारण स्त्रियों का जो रज अत्यधिक बह जाता है, वे उससे अपवित्र नहीं होतीं, वह उनका (रजःप्रवर्तन) विकार के कारण होता है।

साध्वाचारा न सा तावद्रजो यावत् प्रवर्तते ।
वृत्ते रजसि साध्वी स्याद् गृहकर्म्मणि चैन्द्रिये ।।३।।

जब तक रज बहता है तब तक वह साध्वाचारा (उत्तम कार्यों को करने योग्य) नहीं होती । रज के रुक जाने पर वह उत्तम कार्यों को करने के योग्य और इन्द्रियों से सम्बन्धित गृहस्थकर्म (संभोग) के योग्य हो जाती है ।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥४॥

(रजस्वला) पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्म-घातिनी, तीसरे दिन रजकी (वस्त्र रंगने वाली या धोबिन) कही गई है। वह चौथे दिन शुद्ध होती है।

अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ।
अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥५॥

शूद्र जाति और श्वपाक के द्वारा यदि रजस्वला छू ली जाए, तो उन (रजःप्रवर्तन) के दिनों को छोड़कर प्रायश्चित्त करे।

त्रिरात्रमुपवासः स्यात् पञ्चगव्यं विशोधनम् ।
निशां प्राप्य तु ता योनिं प्रजाकारञ्च कामयेत् ॥६॥

तीन रात का उपवास और पञ्चगव्य शोधक होता है। उसी (अन्तिम) रात्रि को उसी (पवित्र) योनि को प्राप्त होकर सन्तान उत्पन्न करने वाले (पति) की कामना करे।

रजस्वलान्त्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति॥७॥

अन्त्यजों से, कुत्ते से और श्वपाक से छुई हुई रजस्वला तीन रात तक उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होती है।

प्रथमेऽहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहन्तथा ।
तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥८॥

पहले दिन (छुए जाने पर) षड्रात्र उपवास, दूसरे दिन (छुए जाने पर) तीन दिन का उपवास, तीसरे दिन (छुए जाने पर एक दिन का) उपवास करे। चौथे दिन (छुए जाने पर) अग्नि के दर्शन से शुद्ध हो जाती है।

विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा ।
रजस्वला भवेत् कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत् ॥९॥

विवाह में यज्ञ का वितान होने पर और (कुछ) संस्कार भी संपन्न हो जाने पर यदि कन्या रजस्वला हो जाए तो (शेष) संस्कार कैसे हो (यह बताता हूं)।

स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलङ्कृताम् ।
पुनः मेध्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥१०॥

उस समय कन्या को स्नान करा कर और अन्य वस्त्रों से अलंकृत करके पुनः मेध्य आहुति डालकर शेष कर्म सम्पन्न करे ।

रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसै ।
सा त्रिरात्रोपवासेन पञ्चगव्येन शुध्यति ।।११।।

बन्दर, मुर्गे और कौए से छुई हुई जो रजस्वला है, वह तीन रात के उपवास और पञ्चगव्य से शुद्ध होती है ।

रजस्वला तु या नारी अन्योऽन्य स्पृशते यदि ।
तावत् तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुध्यति।।१२।।

जो स्त्री रजस्वला हो और उसे कोई रजस्वला आपस में छुए, तो वह चौथे दिन तक निराहार रहे और फिर समय आने पर स्नान करके शुद्ध होती है ।

उच्छिष्टेन तु सस्पृष्टा कदाचित् स्त्री रजस्वला ।
कृच्छ्रेण शुध्यते विप्रा शूद्रा दानेन शुध्यति ।।१३।।

यदि किसी समय रजस्वला स्त्री उच्छिष्ट व्यक्ति के द्वारा छू दी जाए तो ब्राह्मणी कृच्छ्र करके शुद्ध होती है, और शूद्रा दान देकर शुद्ध होती है ।

एकशाखासमारूढा चाण्डाला वा रजस्वला ।
ब्राह्मणेन समं तत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ।।१४।।

यदि चाण्डाल, रजस्वला और ब्राह्मण एक साथ (किसी वृक्ष की) शाखा पर चढ़े हों, तो ऐसी स्थिति में, प्रत्येक वस्त्रों सहित स्नान करे ।

रजस्वलायाः सस्पर्शः कथञ्चिज्जायते शुना ।
रजोदिनानां यच्छेषं तदुपोष्य विशुध्यति ।।१५।।

रजस्वला का स्पर्श यदि किसी प्रकार से कुत्ते के द्वारा हो जाए, तो रज के दिनों का जो काल शेष रहे उसमें उपवास करके शुद्ध होती है ।

अशक्ता चोपवासेन स्नान पश्चात् समाचरेत् ।
तत्राप्यशक्ता चैकेन पञ्चगव्येन शुध्यति ।।१६।।

और यदि (शेष काल में उपवास करने में) असमर्थ हो, तो बाद में एक उपवास के साथ स्नान कर ले । यदि उस (स्नान) में भी असमर्थ हो तो एक उपवास के साथ पञ्चगव्य से शुद्ध होती है ।

उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ।
मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत् कृच्छ्रं तदर्द्धन्तु रजस्वलाम् ।।१७।।

जब उच्छिष्ट ब्राह्मण मदिरा और रजस्वला को छूले, तो मदिरा को छूकर कृच्छ्र करे और रजस्वला को छूकर उससे आधा कृच्छ्र करे।

उदक्यां सूतिका विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ।
कृच्छ्रार्द्धन्तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ।।१८।।

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ऐसी रजस्वला को छू ले जिसने शिशु को जन्म दिया हो, तो ब्राह्मण अर्द्ध-कृच्छ्र करे, क्योंकि प्रायश्चित्त ही शुद्धि करने वाला होता है।

चाण्डालः श्वपचो वापि आत्रेयीं स्पृशते यदि ।
शेषाहान् फालकृष्टेन पञ्चगव्येन शुध्यति ।।१९।।

चाण्डाल अथवा श्वपच यदि रजस्वला को छूले तो वह शेष दिनों में हल के फाले से आलोडित पञ्चगव्य से शुद्ध होती है।

उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ।
अहोरात्रोषिता भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।।२०।।

यदि रजस्वला ब्राह्मणी रजस्वला शूद्रा को छूले तो एक दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होती है।

एवञ्च क्षत्रियां वैश्यां ब्राह्मणी चेद्रजस्वला ।
सचैलप्लवनं कृत्वा दिनस्यान्ते घृतं पिबेत् ।।२१।।

और इसी प्रकार यदि रजस्वला ब्राह्मणी (रजस्वला) क्षत्रिया अथवा (रजस्वला) वैश्या को छूले तो वस्त्रों सहित जल में डुबकी लगाकर दिन के अन्त में घी पिये।

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ।
एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।।२२।।

अपने वर्ण की (रजस्वला) स्त्रियों के विषय में (रजस्वला) स्त्रियों के लिये सद्यःस्नान (अविलम्ब स्नान) का विधान किया गया है। आपस्तम्ब मुनि ने कहा है कि इसी प्रकार शुद्धि होती है।

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।

।। अथ अष्टमोऽध्यायः ।।

भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ।
सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुध्यते तापलेखनैः ।।१।।

कांसे का वह पात्र जो सुरा से लिप्त नहीं हुआ है, राख से शुद्ध हो जाता है । सुरा, मल और मूत्र से छुआ पात्र तो अग्नि में तपाने और रितवाने से शुद्ध होता है ।

गवाघ्रातानि कांस्यनि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ।
दशभस्मभिः शुध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ।।२।।

जिन को गायों ने मुंह लगा दिया है, जो शूद्र से उच्छिष्ट कर दिये गए हैं और जो कुत्तों और कौवों से अपवित्र कर दिये गए है, वे दस बार राख में मांजने से शुद्ध हो जाते है ।

शौचं सुवर्णनारीणा वायुसूर्येन्दुरश्मिभिः ।।३।

सोने और नारियों की शुद्धि वायु से एव सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से होती है ।

रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकन्तु प्रदुष्यति ।
अद्भिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुध्यति ।।४।।

वीर्य से लिप्त और शव से छुआ हुआ ऊनी वस्त्र अपवित्र हो जाता है । परन्तु जलों और मिट्टी से (जितने परिमाण में अशुद्ध हुआ है) उतने ही परिमाण में धोकर शुद्ध हो जाता है ।

शुष्कमन्नमविप्रस्य पञ्चरात्रेण जीर्य्यति ।
अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्य्यति ।।५।।

शूद्र का सूखा अन्न पांच रात्रियों में पचता है । व्यञ्जन (शाक-भाजी) से युक्त अन्न आधे महीने में पचता है ।

पयस्तु दधि मासेन षण्मासेन घृत तथा ।
संवत्सरेण तैलन्तु कोष्ठे जीर्य्यति वा न वा ।।६।।

दूध और दही एक मास में तथा घी छः महीने में पचता है । तेल तो पेट में वर्ष भर में (पता नही) पचता भी है या नहीं पचता ।

भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृता शुनि ॥७॥

जो एक मास तक निरन्तर शूद्र का अन्न खाते हैं, वे इस लोक में शूद्र हो जाते हैं और मरकर कुत्ते की योनि मे उत्पन्न होते हैं ।

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमः कञ्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥८॥

शूद्र का अन्न, शूद्र का सम्पर्क, शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना और शूद्र से किसी ज्ञान की प्राप्ति करना—ये बातें किसी भी जाज्वल्यमान मनुष्य का पतन कर सकती है ।

आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ।
तथा तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः ॥९॥

जो ब्राह्मण अग्नि का आधान करके शूद्र के अन्न से नहीं हटता, तो उसी प्रकार उसका आत्मा, वेद और तीनों अग्नियां नष्ट हो जाती हैं ।

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति ।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा ह्यन्नाच्छुक्रस्य सम्भवः ॥१०॥

शूद्र का अन्न खाकर जो मनुष्य (सन्तान के लिये) मैथुन करता है, जिसका अन्न होता है उसी के वे पुत्र होते हैं, क्योंकि अन्न से ही वीर्य की उत्पत्ति होता है ।

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ।
संभवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥११॥

उदर में स्थित शूद्र के अन्न के साथ जो कोई द्विज मरता है, वह मरकर ग्राम्य सूअर उत्पन्न होता है, अथवा उसी (शूद्र) के कुल में उत्पन्न होता है ।

ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ।
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥१२॥

ब्राह्मण का अन्न सदा भक्ष्य है, क्षत्रिय का पर्व में, वैश्य का यज्ञ की दीक्षा में, और शूद्र का कदापि नहीं ।

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ।
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥१३॥

ब्राह्मण का अन्न अमृत होता है, क्षत्रिय का अन्न दूध माना गया है, वैश्य का अन्न अन्न होता है, शूद्र का अन्न रुधिर माना गया है ।

वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्च्चनैर्जपः ।
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजु.सामसंस्कृतम् ।।१४।।

वैश्वदेव यज्ञ से, होम से, देवताओं की पूजा से, जपों से और ऋग्, यजु, साम मन्त्रों से चूंकि शुद्ध किया होता है, इस लिये ब्राह्मण का अन्न अमृत होता है।

व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम् ।
क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ।।१५।।

व्यवहार के अनुकूल धर्म के द्वारा छल के बिना (अर्जित किया हुआ) और जोकि प्रजाओं का पालन करने वाला होता है, इसलिए क्षत्रिय का अन्न दूध है।

स्वकर्म्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्यशक्तितः ।
खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नन्तेन संस्कृतम् ।।१६।।

स्वयं काम करके और यथाशक्ति बैलों से काम लेने आदि से चूंकि अर्जित किया होता है, और खलियान, यज्ञ तथा आतिथ्य से पवित्र किया होता है, इस लिये वैश्य का अन्न शुद्ध होता है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य मद्यपानरतस्य च ।
रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमन्त्रविवर्जितम् ।।१७।।

अज्ञान के अन्धकार से अंधे, सुरापान में निरत शूद्र का अन्न विधि-विधान और मन्त्र से चूंकि हीन होता है, इस लिये रुधिर होता है।

आममांसं मधु घृत धानाः क्षीरं तथैव च ।
गुडतक्ररसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ।।१८।।

कच्चा मांस, मधु, घी, धान और दूध, एवं गुड, छाछ और रस —ये वस्तुएं लोक से निवृत्त पुरुष (संन्यासी) को भी शूद्र से ले लेनी चाहियें।

शाकं मांसं मृणालानि तुम्बुरु सक्तवस्तिलाः ।
रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ।।१९।।

शाक, मांस, भीसें, तूम्बा, सत्तू, तिल, रस, फल और खली - ये वस्तुएं सभी से ग्राह्य हैं।

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदा वा शतं जपेत् ।।२०।।

यदि ब्राह्मण के द्वारा आपत्काल में शूद्र के घर में भोजन कर लिया गया हो तो मनस्ताप (मानसिक पश्चात्ताप) से ही शुद्ध हो जाता है, अथवा (शुद्धि के लिये) सौ द्रुपद मन्त्र का जप करे।

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित्।
तद् द्विजेन न भोक्तव्यमापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ॥२१॥

यदि खाद्य पदार्थ हाथ में लिये हुए ब्राह्मण को उच्छिष्ट शूद्र कहीं छू दे तो ब्राह्मण को यह नही खाना चाहिये, यह बात आपस्तम्ब मुनि ने कही है।

इत्यापस्तम्बीये धर्म्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् स्रवते गुदम्।
उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१॥

यदि ब्राह्मण को भोजन करते समय कभी गुदा-स्रवण (दस्त) हो जाए, तो उस उच्छिष्ट और अपवित्र (ब्राह्मण) का प्रायश्चित्त कैसे होता है (यह बताता हूं)।

पूर्वं शौचन्तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२॥

पहले शौच को निपटा कर उसके पश्चात् आचमन करे। फिर एक दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु यवान् पीत्वा विशुध्यति ॥३॥

अज्ञान के कारण अथवा शौच किये बिना सारा ही अन्न खाकर तीन रातों तक जौ पीकर भली प्रकार शुद्ध होता है।

प्रसृतं यवशस्येन पलमेकन्तु सर्पिषा।
पलानि पञ्च गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥४॥

एक प्रसृत (अंगूठे को खुले हाथ के साथ मिलाकर उस पर जितना अन्न रखा जा सके ; दो पल) जौ के अन्न के साथ और एक पल घी के साथ पांच पल गो-मूत्र मिलाए। इससे अधिक न खाए।

अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणाञ्च भक्षणे।
रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥५॥

जो पदार्थ चाटने योग्य नहीं है, जो पीने योग्य नहीं हैं और जो खाने योग्य नहीं हैं उन्हें खाकर और वीर्य, मूत्र और मल को खाकर प्रायश्चित्त किस प्रकार होता है (वह बताता हूं)।

पद्मोदुम्बरबिल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशका:।
एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुध्यति ॥६॥

कमल, उदुम्बर(गूलर), बेल, कुशाएं, पीपल और ढाक—इन सब के जल को पीकर छः रात्रियों में भली प्रकार शुद्ध होता है।

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादिषु।
अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षतः ॥७॥
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वा।
जातकर्मादिभिः सर्वे पुनः संस्कारभागिनः।
तेषां सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा ॥८॥

जिन ब्राह्मणों ने संन्यास, अग्नि और जल आदि की क्रियाओं का प्रत्यवसान (समाप्ति, परित्याग) कर दिया हो, जो अनशन (उपवास आदि) से निवृत्त हो गए हों और गृहस्थ धर्म के इच्छुक हो गए हों, वे (प्रायश्चित्त के लिये) तीन कृच्छ्र करें अथवा तीन चान्द्रायण व्रत करें। वे सभी जातकर्म आदि के द्वारा पुनः संस्कार के भागी हैं। उनके लिये सान्तपन कृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रत का विधान है।

यद्वेष्टितं काकबलाकचिल्लै-
रमेध्यलिप्तञ्च भवेच्छरीरम्।
श्रोत्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक्
स्नानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः ॥९॥

जिस शरीर को कौवा, बगला या चील लिपट जाए या जो अमेध्य (मलादि) से लिप्त हो जाए, और यदि कान, मुख में मलादि चला जाए, तो ऐसे लेप से अपवित्र हुए की भली प्रकार स्नान करने से शुद्धि होती है।

ऊद्ध्र्व नाभेः करौ मुक्त्वा यदङ्गमुपहन्यते ।
ऊद्ध्र्व स्नानमधः शौचमात्रेणैव विशुध्यति ।।१०।।

नाभि से ऊपर हाथों को छोड़कर जो अङ्ग अपवित्र हो जाता है, तो ऊपर की ओर स्नान से और (नाभि से) नीचे की ओर शौच मात्र से ही भली प्रकार शुद्धि होती है।

उपानहावमेध्य वा यस्य संस्पृशते मुखम् ।
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पञ्चगव्यं विशोधनम् ।।११।।

जूते अथवा मल जिसके मुख को छू जाए, मिट्टी से सफाई, स्नान और पञ्चगव्य उसकी शुद्धि है ।

दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ।।१२।।

ब्राह्मण अपनी जाति में जन्म और मृत्यु का अशौच होने पर दस दिन से शुद्ध होता है । क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपनी-अपनी जातियों में (जन्म और मृत्यु का अशौच होने पर क्रमशः) छः, तीन और एक दिन में पवित्र होते हैं ।

उपनीतं यदा त्वन्न भोक्तारं समुपस्थितम् ।
प्रमीतवत् समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ।।१३।।

पास आए भोक्ता को खाने के लिये दिया हुआ अन्न यदि उसके द्वारा त्याग दिया गया है, तो वह मरे पशु के समान है । उसे न तो किसी को खाने के लिये दे और न उससे होम करे।

अन्ने भोजनसम्पन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ।
अनन्तरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ।।१४।।

भोजन पक जाने पर यदि (वह) अन्न मक्खी अथवा केश से दूषित हो जाए तो तुरन्त आचमन करे और भोजन को भस्म से छुआए ।

शुष्कमांसमयं चान्न शूद्रान्नं वाप्यकामतः ।
भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात् कृच्छ्रत्रयं चरेत् ।।१५।।

सूखे मांस से बना हुआ जो भोजन है, और जो शूद्र (के घर) का भोजन है—उसे बिना जाने खाकर कृच्छ्र करे । यदि जान-बूझ कर खाया हो तो तीन कृच्छ्र करे ।

अभुक्ते मुञ्चते यश्च भुञ्जन् यश्चापि मुच्यते ।
भोक्ता च मोचकश्चैव पङ्क्त्या गच्छति दुष्कृतम् ॥१६॥

जो बिना खाए(बीच में ही)भोजन को छोड़ देता है, और जो खा तो रहा है पर जिससे भोजन छुड़वा लिया जाता है, (ऐसी स्थिति में) खाने वाला और छुड़ाने वाला दोनो पंक्ति सहित पाप को प्राप्त होते हैं ।

यश्च भुङ्क्ते तु भुक्त वा दुष्टं वाऽपि विशेषतः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥१७॥

जो खाए हुए अन्न को खाता है, और विशेष रूप से सदोष अन्न को खाता है, वह एक दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ।

उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः ।
पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतः शुचिः ॥१८॥

जल में स्थित मनुष्य जल में और स्थल में स्थित मनुष्य स्थल में शुद्ध होता है । दोनों स्थानों में पाँवों को स्थापित कर आचमन करके दोनों जगह ही शुद्ध हो जाता है ।

उत्तीर्य्याचम्य उदकादवतीर्य्यं उपस्पृशेत् ।
एवन्तु श्रेयसा युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते ॥१९॥

(जल में स्थित मनुष्य) जल से बाहर निकल कर आचमन करे और (स्थल में स्थित मनुष्य) जल में उतर कर आचमन करे । इस प्रकार कल्याण से युक्त पुरुष वरुण के द्वारा भी पूजा जाता है ।

अग्न्यगारे गवा गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥२०॥

यज्ञशाला में, गऊओं के गोष्ठ मे और ब्राह्मणो की संनिधि में, एवं स्वाध्याय (वेदपाठ) और भोजन में पादुकाओं (खड़ाऊओं) को उतार देना चाहिये ।

जन्मप्रभृतिसस्कारे श्मशानान्ते च भोजनम् ।
असपिण्डैर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥२१॥

जातकर्म आदि सस्कार में और श्मशानान्त (मृतक की) क्रिया में सपिण्डों से भिन्न के साथ भोजन न करे, चूड़ाकरण संस्कार मे विशेष रुप से न करे ।

याजकान्नं नवश्राद्धं सग्रहे चैव भोजनम् ।
स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।२२।।

याजक के अन्न को, मरने से ग्यारहवें दिन होने वाले श्राद्ध (नवश्राद्ध), भण्डार घर में भोजन, और प्रथम गर्भाधान संस्कार में भोजन खाकर चान्द्रायण व्रत करे ।

ब्रह्मौदनेऽवसाने च सीमन्तोन्नयने तथा ।
अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।२३।।

ब्रह्मौदन (उपनयन सस्कार में पकाए जाने वाले भात) में, अवसान (मृत्यु होने पर दिये जाने वाले भोज) में, सीमन्तोन्नयन सस्कार में, अन्न-श्राद्ध में और मृत-श्राद्ध में भोजन करके चान्द्रायण व्रत करे ।

अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्नीयादेव तद्गृहे ।
अथ भुञ्जीत मोहाद् यः पूयं स नरकं व्रजेत् ।।२४।।

जो नारी सन्तानहीन है, उसके घर में भोजन न करे । और जो मोहवश खा लेता है, वह पूय नरक में जाता है ।

अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ।
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते ।।२५।।

जो पिता थोड़ा सा भी शुल्क (मूल्य) लेकर कन्या को देता है, वह रौरव नरक में बहुत वर्षों तक मल और मूत्र का भोग करता है ।

स्त्रीधनानि च ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ।
स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यान्त्यधोगतिम् ।।२६।।

(स्त्री के) जो बान्धव अज्ञान के कारण स्त्री-धन से जीवन-निर्वाह करते है, (उसके) स्वर्ण, यान (सवारी) और वस्त्रो का उपभोग करते है, वे पापी अधोगति को प्राप्त होते है ।

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्च्चसम् ।
असंस्कृतन्तु यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ।।२७।।

राजा का अन्न ओज को ले लेता है, शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को ले लेता है । जो मनुष्य संस्कारहीन (अपवित्र) भोजन को खाता है, वह पृथ्वी के मल को खाता है ।

मृतके सूतके चैव गृहीते शशिभास्करे ।
हस्तिच्छायान्तु यो भुङ्क्ते पापः स पुरुषो भवेत् ।।२८।।

मृतक (मरण) और सूतक (जन्म) में, चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में और गज-छाया[1] में जो खाता है, वह मनुष्य पापी होता है।

पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधा कामचारिणी ।
आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२६॥

जिस विधवा का पुनर्विवाह हुआ हो, जिसने एक पुरुष से वीर्य धारण करके दूसरे से वीर्य धारण किया हो, जिसने जिस किसी से वीर्य धारण किया हो और जो मनमाना आचरण करने वाली हो, ऐसी स्त्रियों के प्रथम गर्भाधान संस्कार में भोजन करके चान्द्रायण करे।

मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ।
विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चान्द्रायण चरेत् ॥३०॥

माता का हत्यारा, पिता का हत्यारा, ब्राह्मण का हत्यारा और गुरु-पत्नी से संभोग करने वाला—इन मनुष्यों का जिसने विशेष रूप से अन्न खाया है, वह खाकर चान्द्रायण करे।

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ।
भुक्त्वैषा ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ॥३१॥

धोबी, व्याध, नट, बांस और चमड़े से आजीविका करने वाले—इनका अन्न यदि ब्राह्मण खा ले, तो चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है।

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ।
सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत् ॥३२॥

यदि किसी समय अपने वर्ण के उच्छिष्ट मनुष्य से छूकर मनुष्य उच्छिष्ट हो जाए, तो उठकर आचमन करके शुद्ध होता है।

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥३३॥

जो ब्राह्मण उच्छिष्ट के छूने से उच्छिष्ट हुआ हो, अथवा जो कुत्ते या शूद्र के द्वारा छुआ गया हो, वह एक रात भर उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

ब्राह्मणस्य सदा कालं शूद्रे प्रेषणकारिणः ।
भूमावन्न प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥३४॥

---

१. कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को जब सूर्य हस्त नक्षत्र पर हो, और चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर हो तो उसे गजच्छाया योग कहते हैं।

शूद्र के लिये दास-कर्म करने वाले ब्राह्मण को हमेशा धरती पर भोजन देना चाहिये, क्योंकि जैसा कुत्ता है, वैसा ही वह है।

अनूदकेष्वरण्येषु चौरव्याघ्राकुले पथि ।
कृत्वा मूत्रं पुरीषञ्च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः ॥३५॥

जलहीन जंगलों में और चोरों तथा व्याघ्र (आदि हिंसक जन्तुओं) से भरे मार्ग में (भोजन आदि) द्रव्य को हाथ में लिये हुए पुरुष मूत्र और मल (का त्याग) करके कैसे पवित्र होता है (वह बताता हूं)।

भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः ।
उत्सङ्गे गृह्य पक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥३६॥

अन्न को भूमि पर रखकर, समुचित रूप से शौच करके, (फिर उस) पके हुए अन्न को गोदी में लेकर और उसके पश्चात् आचमन करके शुद्ध होता है।

मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु गव्यं पीत्वा विशुध्यति ॥३७॥

मूत्र और मल (का त्याग) करके अपना शौच किये बिना यदि ब्राह्मण मोहवश भोजन कर ले, तो वह तीन रात तक पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है।

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ।
चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥३८॥

यदि काम के वश में होकर ब्राह्मण रजस्वला से संभोग करले, तो चान्द्रायण व्रत करके और ब्राह्मणों के भोजन से शुद्ध होता है।

भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा ।
प्रमादाद् यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥३९॥
स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ।
स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४०॥

यदि ज्ञान में दुर्बल ब्राह्मण भोजन करने से उच्छिष्ट हो गया हो और उसने आचमन न किया हो, और प्रमादवश चाण्डाल अथवा श्वपच के द्वारा छू लिया गया हो, तो स्नान करके त्रिषवण करे, ब्रह्मचर्य को धारण करे, धरती पर सोए, वह इस प्रकार तीन रात तक उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

चाण्डालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुध्यति ॥४१॥

चाण्डाल के द्वारा छू देने पर जो ब्राह्मण जल पी लेता है, वह एक दिन-रात उपवास करके त्रिषवण से शुद्ध होता है।

सायं प्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य त विदुः ।
सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥४२॥
दिनद्वयञ्च नाश्नीयात् कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ।
प्रायश्चित्तं लघुध्वेतत्पापेषु तु यथाऽर्हतः ॥४३॥

दिन-रात में सायं-प्रातः (जो भोजन किया जाता है) वह कृच्छ्र का चौथाई भाग होता है। उसी प्रकार एक दिन साय और प्रातः भोजन करे, और दो दिन तक बिना मांगे जो मिल जाए उसे ही खाए और फिर दो दिन तक बिल्कुल भोजन न करे, वह आधा कृच्छ्र कहा जाता है। छोटे पापों में यह यथायोग्य प्रायश्चित्त है।

कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानाञ्च विक्रयी ।
प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत् ॥४४॥

काले हिरण की खाल और तिलों का जो दान लेता है, जो हाथी और घोड़ों का विक्रय करता है और जो प्रेतनिर्यातक (मुरदों को ढोने वाला) है, वह पुनः (अगले जन्म में) पुरुष नहीं बनता।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद् यावन्नोद्ध्रियते जलम् ।
उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद् यावद् भूमिर्न लिप्यते ॥१॥
भूमावपि च लिप्तायां तावत् स्यादशुचिः पुमान् ।
आसनादुत्थितस्तस्माद् यावन्नाऽऽक्रमते महीम् ॥२॥

आचमन (कुल्ला आदि) करने पर भी मनुष्य तब तक अपवित्र रहता है, जब तक (धरती पर पड़े) जल को उठाकर दूर नहीं डाला जाता। जल को उठाकर दूर डाल देने पर भी वह तब तक अपवित्र रहता है, जब तक वह भूमि लीपी नहीं जाती। भूमि लीप देने पर भी वह मनुष्य तब तक अपवित्र रहता है, जब तक वह उस आसन से उठकर (उस) भूमि पर नहीं चलता।

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते।
आत्मा संयमितो येन त यमः किं करिष्यति ॥३॥

यम को यम नहीं कहते, अपना आपा ही यम कहा जाता है। जिसने आपा वश में कर लिया है, यम उसका क्या कर लेगा (अर्थात् कुछ नहीं बिगाड़ सकता)।

न तथाऽसिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः।
यथा क्रोधो हि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥४॥

तलवार भी उतनी तेज नहीं होती और न ही बांमी में स्थित सांप इतना तीखा होता है जितना कि जन्तुओं का शरीरस्थ क्रोध विनाशकारी होता है।

क्षमा गुणो हि जन्तूनामिहामुत्र सुखप्रदः।
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥५॥

प्राणियों का क्षमा नामक गुण इस लोक और परलोक में सुख देने वाला होता है। क्षमावानों में एक ही दोष होता है, दूसरा और कोई नहीं मिलता, कि क्षमा से युक्त इन मनुष्यों को लोग कमजोर समझते हैं।

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो
न चैव रम्यावसथप्रियस्य।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य
एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य ॥६॥
मोक्षो भवेत् प्रीतिनिवर्त्तकस्य
अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यक्।
मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य
स्वाध्याययोगागतमानसस्य ॥७॥

न शब्द-शास्त्र (व्याकरण) में रमण करने वाले को, न ही रमणीय घर से प्यार करने वाले को और न ही भोजन-वस्त्र (आदि के उपार्जन) में तत्पर मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है। जो एकान्त के स्वभाव वाला है, जो दृढ़ व्रत वाला है, जो (सांसारिक) प्रीति से निवृत्त हो गया है और अध्यात्म-योग मात्र में भली प्रकार निरत है उसे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो नित्य ही अहिंसक है और जो स्वाध्याय और योग में लगे हुए मन वाला है, उसे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोधयुक्तो यद् यजते यज्जुहोति यदर्च्चति ।
सर्वं हरति तत्तस्य आमकुम्भ इवोदकम् ॥८॥

क्रोध से युक्त मनुष्य जो भोजन करता है, जो आहुति डालता है और जो पूजा करता है, वह क्रोध उसका सब कुछ हर लेता है, जैसे कच्चे घड़े से जल रिस जाता है।

अपमानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः ।
अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति ॥९॥

अपमान से तप की वृद्धि होती है, सम्मान से तप का ह्रास होता है। अर्चित और पूजित ब्राह्मण दुही हुई गाय की तरह अवसाद को प्राप्त हो जाता है।

आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसम्भवैः ।
एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥१०॥

जिस प्रकार गऊ जल (अमृत) से उत्पन्न घास से पुनः दूध से पूरित हो जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मण जपों और होमों से पुनः पूरित हो जाता है।

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥११॥

जो मनुष्य पर-स्त्री को माता के समान, पराए धन को मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान देखता है, वही(ठीक) देखता है।

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ।
यो भुङ्क्ते भक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ॥१२॥

धोबी, व्याध, नट, बांस और चमड़े से आजीविका कमाने वालों के भात (अन्न) को जो खाता है, प्राजापत्य व्रत ही उसकी शुद्धि करने वाला है।

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
शुद्धि चान्द्रायणं कृत्वा अथर्वोक्तं तथैव च ॥१३॥

संभोग के अयोग्य स्त्री का संभोग करके और अभक्ष्य का भक्षण करके चान्द्रायण व्रत और अथर्वा ऋषि से बताई विधि को करके शुद्धि को प्राप्त होता है।

अग्निहोत्र त्यजेद् यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ।
तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चान्द्रायणादृते ॥१४॥

जो अग्निहोत्र का त्याग कर देता है वह मनुष्य वीर (पुत्र) की हत्या करने वाला होता है। चान्द्रायण व्रत के विना किसी अन्य शुद्धि का उसके लिये विधान नहीं है।

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
सद्यः शुद्धि विजानीयात् पूर्वं सङ्कल्पितं चरेत् ॥१५॥

विवाह, उत्सव और यज्ञ में यदि बीच में ही मौत या सूतक (शिशु-जन्म) हो जाए, (तो ऐसे अशौच की) तुरन्त शुद्धि जाननी चाहिये। पहिले से किये संकल्प को पूरा करे।

देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रततेषु च ।
कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके ॥१६॥

देवद्रोणी (तीर्थ अथवा प्याऊ) में, विवाहों में और वितान किये यज्ञों में बना हुआ भोजन मरण और सूतक में भी (अशुद्ध नहीं होता), क्योंकि अशौच नहीं होता।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।
समाप्ता चेयमापस्तम्बस्मृतिः ।

॥ अथ ॥

॥ बृहस्पतिस्मृतिः ॥

इष्ट्वा क्रतुशतं राजा समाप्तवरदक्षिणम् ।
मघवान् वाग्विदां श्रेष्ठं पर्य्यपृच्छद् बृहस्पतिम् ॥१॥

(ब्राह्मणों द्वारा) प्राप्त की उत्तम दक्षिणाओं वाले सौ यज्ञों का यजन करके राजा इन्द्र ने श्रेष्ठ गुरु बृहस्पति को पूछा।

भगवन् केन दानेन सर्वतः सुखमेधते ।
यदक्षयं महार्थं च तन्मे ब्रूहि महातप ॥२॥

हे भगवन् ! किस दान से मनुष्य सब ओर से सुख को प्राप्त करता है। जो (दान) क्षीण न होने वाला और महान् फल देने वाला है, हे महान् तप वाले, उसका मुझे उपदेश दीजिये।

एवमिन्द्रेण पृष्टोऽसौ देवदेवपुरोहितः ।
वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्तिरुवाच ह ॥३॥

इस प्रकार इन्द्र के द्वारा पूछे जाने पर देवों के देव इन्द्र के पुरोहित, वाणी के स्वामी, महाप्राज्ञ उस बृहस्पति ने उत्तर दिया।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वासव ।
एतत् प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥

हे इन्द्र, सोने का दान, गाय का दान और भूमि का दान—इन दानों को देता हुआ (मनुष्य) सब पापों से मुक्त हो जाता है।

सुवर्ण रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव ।
सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥५॥

और हे वासव ! जो मनुष्य भूमि का दान करता है, उसके द्वारा (मानो) सोना, चाँदी, वस्त्र, मणियां और रत्न सभी दान में दे दिये जाते है।

फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सस्यशालिनीम् ।
यावत् सूर्य्यकरा लोकास्तावत् स्वर्गे महीयते ॥६॥

(हल के) फाले से जुती हुई, बीज पड़ी हुई, सस्य से शोभायमान भूमि का दान करके मनुष्य तब तक स्वर्ग में महानता को प्राप्त करता है, जब तक ये लोक सूर्य की किरणों से युक्त हैं ।

यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः ।
अपि गोचर्म्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥७॥

आजीविका से दुःखी मनुष्य जो कुछ भी पाप करता है, वह गोचर्म मात्र भूमि के दान से शुद्ध हो जाता है ।

दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डानि वर्त्तनम् ।
दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥८॥

दस हाथ के डंडे से तीस दण्ड भर (सीधे) जाना, और वही दस दण्ड भर चौड़ाई में (जाना) --यह महान् फल देने वाला गोचर्म होता है ।

सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् ।
बालवत्सप्रसूतानां तद् गोचर्म इति स्मृतम् ॥९॥

वृषभ सहित तन्द्रारहित एक हजार गौवें और प्रसूता गौवों के छोटे बछड़े भी जितने स्थान में खड़े हो सकें वह गोचर्म जाना जाता है ।

विप्राय दद्याच्च गुणन्विताय
तपोनियुक्ताय जितेन्द्रियाय ।
यावन्मही तिष्ठति सागरान्ता
तावत् फल तस्य भवेदनन्तम् ॥१०॥

(एक गोचर्म मात्र भूमि जो मनुष्य) गुणों से युक्त, तप में लगे हुए और जितेन्द्रिय ब्राह्मण को देता है, तो जब तक सागर के किनारों वाली पृथिवी स्थित है तब तक उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।

यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ।
एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः ॥११॥

जिस प्रकार भूतल पर प्रकीर्ण (बोए हुए) बीज उगते है, उसी प्रकार भूमि के दान से अर्जित किये हुए काम (कामनाए) उगते (और फलते-फूलते) हैं ।

यथाप्सु पतितः शक्र तैलबिन्दुः प्रसर्पति ।
एवं भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये प्ररोहति ॥१२॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार जल में पड़े तेल की बूंद फैल जाती है, उसी प्रकार भूमि का किया हुआ दान प्रत्येक फसल में बढ़ता जाता है ।

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ।
स नरः सर्वदो भूपो यो ददाति वसुन्धराम् ॥१३॥

अन्न के दानी नित्य सुखी रहते हैं, वस्त्र का दान करने वाला रूपवान् हो जाता है। वह मनुष्य सर्वस्व दानी राजा हो जाता है, जो भूमि का दान करता है ।

यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ।
एवं दत्ता सहस्राक्ष ! भूमिर्भरति भूमिदम् ॥१४॥

जिस प्रकार दूध देने वाली गाय दूध देकर बछड़े का भरण-पोषण करती है, उसी प्रकार, हे इन्द्र, दान की हुई भूमि भूमि का दान करने वाले का भरण-पोषण करती है । ।

शङ्खं भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ।
भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरन्दर ॥१५॥

शंख, भद्रासन, छत्र, चल और अचल (सम्पत्ति) और हाथी, हे इन्द्र ! ये भूमि-दान के पुण्य हैं, और स्वर्ग फल है ।

आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।
शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥१६॥

सूर्य, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, हुताशन और भगवान् शूलपाणि (शिव) भूमि का दान करने वाले का अभिनन्दन करते हैं ।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रहर्षन्ति पितामहाः ।
भूमिदाता कुले जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥१७॥

पितर खम ठोकते है, पितामह प्रसन्न होते हैं, कि (हमारे) कुल में जो भूमि का दान करने वाला उत्पन्न हुआ है वह हमारा त्राता होगा ।

त्रीण्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।
तारयन्ति हि दातारं सर्वात्पापादसशयम् ।।१८।।

तीन ही महान् दान बताते हैं—गौवें, पृथ्वी और विद्या । ये दाता को निस्सन्देह सब पापों से तार देते हैं ।

प्रावृता वस्त्रदा यान्ति नग्ना यान्ति त्ववस्त्रदाः ।
तृप्ता यान्त्यग्निदातारः क्षुधिता यान्त्यनन्नदाः ।।१९।।

वस्त्र का दान करने वाले ढके हुए जाते हैं, वस्त्र का दान न करने वाले नंगे जाते हैं, अन्न का दान करने वाले तृप्त हो कर जाते हैं, अन्न का दान न करने वाले भूखे जाते हैं ।

काङ्क्षन्ति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ।
गयां यो यास्यति पुत्रःस नस्त्राता भविष्यति ।।२०।।

नरक के भय से डरे हुए सभी पितर यह कामना करते हैं, कि जो पुत्र गया जाएगा वह हमारा रक्षक होगा ।

एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।।२१।।

बहुत से पुत्रों की कामना करनी चाहिये, शायद उनमें से कोई एक गया चला जाए, अथवा (कोई एक) अश्वमेध यज्ञ करने वाला हो जाए, अथवा (कोई एक) नील वृषभ का उत्सर्जन करने वाला हो जाए ।

लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः ।
श्वेतः खुरविषाणाभ्या स नीलो वृष उच्यते ।।२२।।

जो वर्ण से लाल हो, पूंछ के अग्र भाग में जो पीतरवर्ण हो, खुर और सींग जिसके सफेद हों वह नील वृषभ कहा जाता है ।

नीलः पाण्डुरलाङ्गूलस्तृणमुद्धरते तु यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ।।२३।।

पीत वर्ण की दुम वाला छोड़ा हुआ जो नील वृषभ धरती से एक तिनका घास भी उठाता है, उससे (वृषोत्सर्ग करने वाले के) पितर बीस हजार वर्षों तक के लिये तृप्त हो जाते हैं ।

यच्च शृङ्गगतम्पङ्कं कूलात् तिष्ठति चोद्धृतम् ।
पितरस्तस्य गच्छन्ति सोमलोकं महाद्युतिम् ।।२४।।

(नदी के) किनारे से उखाड़ा हुआ कीचड़ जिसके सींग पर लगा रहता है, उस (वृषोत्सर्ग करने वाले) के पितर महान् प्रकाश वाले चन्द्र लोक में जाते हैं।

पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृगस्य नहुषस्य च।
अन्येषाञ्च नरेन्द्राणां पुनरन्या भविष्यति ॥२५॥

पृथु, यदु, दिलीप, नृग, नहुष और (भूमि का दान करने वाले) अन्य राजा फिर से अन्य पृथ्वी को प्राप्ति हो जाएंगे।

बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः।
यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य तथा फलम् ॥२६॥

सगर आदि बहुत से राजाओं के द्वारा पृथिवी का दान किया गया है। जिस-जिस ने जैसी भूमि दान में दी थी उसे उसका वैसा ही फल प्राप्त हुआ।

यस्तु ब्रह्मघ्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः।
गवां शतसहस्राणां हन्ता भवति दुष्कृती ॥२७॥

जो ब्राह्मण का हत्यारा अथवा स्त्री का हत्यारा अथवा पिता का हत्यारा होता है, वह दुष्कर्मी एक लाख गायों का हत्यारा होता है।

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम्।
श्वविष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥२८॥

जो अपने द्वारा दान की हुई अथवा दूसरे के द्वारा दान की हुई भूमि को छीनता है, वह कुत्ते की विष्ठा में कीड़ा होकर पितरों सहित पकाया जाता है।

आक्षेप्ता चानुमन्ता च तमेव नरकं व्रजेत्।
भूमिदो भूमिहर्त्ता च नापरं पुण्यपापयोः।
ऊर्ध्वाधो वाऽवतिष्ठेत यावदाभूतसंप्लवम् ॥२९॥

छीनने वाला और छीनने की अनुमति देने वाला दोनों एक ही नरक में जाते है अन्य में नहीं। भूमि का दान करने वाला और भूमि छीनने वाला दोनों अपने पुण्य और पाप के हेतु क्रमशः ऊपर (स्वर्ग में) और नीचे (नरक में) सृष्टि के प्रलय तक निवास करते हैं।

अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः।
लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता
यः काञ्चनं गां महीञ्च दद्यात् ॥३०॥

सोना अग्नि की प्रथम सन्तान है, भूमि विष्णु की पुत्री है, गौवें सूर्य की पुत्रियाँ हैं। इसने (मानो) तीनों ही लोक दान में दे दिये जो सोने, गऊ और भूमि का दान करता है।

षडशीतिसहस्राणा योजनानां वसुन्धरा ।
स्वतो दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ।।३१।।

भूमि छियासी हजार योजन के प्रमाण वाली है। स्वयं दान की हुई वह सर्वत्र सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाली होती है।

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ।।३२।।

जो भूमि का दान लेता है और जो भूमि का दान देता है, वे दोनों पुण्य कर्म करने वाले होते हैं और निश्चित रूप से स्वर्ग में जाते हैं।

सर्वेषामेव दानानां एकजन्मानुग फलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ।।३३।।

सभी दानों का फल एक जन्म तक मिलने वाला होता है, (पर) सोने, भूमि और गोरी गायों के दान का फल सात जन्मों तक मिलने वाला होता है।

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्राम चतुर्विधम् ।
तस्य देहाद्वियुक्तस्य भय नास्ति कदाचन ।।३४।।

"मैं ही आत्मा के रूप में सबके अन्दर निवास करता हूँ" ऐसा समझ कर जो चार प्रकार के प्राणि-समूह (जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज) की हिंसा नहीं करता, शरीर को छोड़ने पर उसे कभी भय नहीं होता।

अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्नरैरपहारिता ।
हरन्तो हारयन्तश्च हन्युस्ते सप्तम कुलम् ।।३५।।

अन्याय से जिनके द्वारा धरती छीनी गई है, और जिन के द्वारा छिनवाई गई है, वे छीनने वाले और छिनवाने वाले दोनों अपने सात कुलो का हनन करते हैं।

हरते हारयेद्यस्तु मन्दबुद्धिस्तमोवृत ।
स वध्यो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ।।३६।।

अज्ञान से आच्छादित, मन्द बुद्धि वाला जो मनुष्य (किसी की भूमि) छीनता है या छिनवाता है, वह वरुण के पाशों से बँधा हुआ तिर्यग् योनियों में उत्पन्न होता है।

अश्रुभिः पतितैस्तेषां दानानामपकीर्त्तनम् ।
ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हन्ति त्रिपुरुषं कुलम् ॥३७॥

ब्राह्मण का खेत छिनने पर उनके गिरे हुए आंसुओं से (छीनने वाला) अपने तीन कुलों को नष्ट करता है, और इससे दानों की बदनामी होती है ।

वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च ।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति ॥३८॥

एक हजार बावलियों और कूएं खुदवाने से, एक सौ अश्वमेध यज्ञ करने से और एक करोड़ गायों का दान देने से भी भूमि छीनने वाला शुद्ध नहीं होता ।

गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमङ्गुलम् ।
रुन्धन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९॥

एक गऊ को, सोने के एक सिक्के को और आधा अंगुल भी भूमि को छीनने वाला प्रलय-पर्यन्त नरक में पड़ता है ।

हुतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसञ्चितम् ।
अर्द्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति ॥४०॥

यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय और जो धर्म का संचय किया गया है, वह सारे का सारा आधा अंगुल (धरती की) सीमा का हरण तरने से नष्ट हो जाता है ।

गोवीथीं ग्रामरथ्याञ्च श्मशानं गोपितं तथा ।
सम्पीड्य नरक याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥४१॥

गौओं के मार्ग, गाँव की गली, श्मशान तथा संरक्षित स्थान को हड़पकर (मनुष्य) जग के प्रलय तक नरक में वास करता है ।

ऊषरे निर्जले स्थाने प्रास्त शस्य विवर्जयेत् ।
जलाधारश्च कर्तव्यो व्यासस्य वचन यथा ॥४२॥

ऊषर और निर्जल स्थान पर फसल उगाना छोड़ दे । जहां जल का आश्रय हो वहीं उगानी चाहिये, जैसा कि व्यास ऋषि का वचन है ।

पञ्च कन्यानृतं हन्ति दश हन्ति गवानृतम् ।
शतमश्वानृतं हन्ति सहस्रं पुरुषानृतम् ॥४३॥

कन्या के निमित्त बोला हुआ झूठ (झूठा दोषारोपण) पाँच को मारता है, गऊ के लिये बोला हुआ झूठ दस को मारता है, घोड़े के लिये बोला गया झूठ सौ को मारता है, पुरुष के निमित्त बोला गया झूठ एक हजार को मारता है।

हन्ति जातानजाताश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृतं हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥४४॥

सोने के लिये झूठ बोलता हुआ मनुष्य (अपने) उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए (अर्थात् जो आगे होंगे) उन सबको मारता है। भूमि के लिये बोला हुआ झूठ सब को मारता है, इसलिये भूमि के लिये झूठ मत बोल।

ब्रह्मस्वे मा रतिं कुर्याः प्राणैः कण्ठगतैरपि।
अनौषधमभैषज्यं विषमेतद् हलाहलम् ॥४५॥

यदि प्राण गले में आजाए (अर्थात् निकलने को हो जाएं) तो भी ब्राह्मण के धन में प्रीति (लालच) न कर, यह ऐसा हलाहल विष है, जिसकी न कोई दवा है और न इलाज।

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥४६॥

विष को विष नहीं कहते, ब्राह्मण का धन विष कहा जाता है। विष तो एक (खाने वाले) को ही मारता है, ब्राह्मण का धन पुत्र और पौत्र को भी मार देता है।

लोहखण्डाश्मचूर्णं च विषञ्च जरयेन्नरः।
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमान् जरयिष्यति ॥४७॥

मनुष्य लोहे के टुकड़े, पत्थर के चूर्ण और विष को भी पचा सकता है, तीनों लोकों में कौन मनुष्य है, जो ब्राह्मण के धन को पचा लेगा?

मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः।
शस्त्रमेकाकिनं हन्ति विप्रमन्युः कुलत्रयम् ॥४८॥

ब्राह्मण क्रोधरूपी हथियार वाले होते हैं, राजा लोग शस्त्रों को हाथ में धारण करने वाले होते हैं। शस्त्र तो एक को ही मारता है, ब्राह्मण का क्रोध तीन कुलों (पीढ़ियों) को मार देता है।

मन्युप्रहरणा विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः।
चक्रात्तीव्रतरो मन्युस्तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥४९॥

ब्राह्मण क्रोधरूपी हथियार वाले होते हैं, विष्णु चक्ररूपी हथियार वाला है। क्रोध चक्र से भी अधिक तेज होता है। इसलिये ब्राह्मण को क्रोध न दिलाए।

अग्निदग्धा प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च ।
मन्युदग्धस्य विप्राणामङ्कुरो न प्ररोहति ।।५०।।

अग्नि से जले हुए (पुनः) उग आते हैं, उसी प्रकार सूर्य से दग्ध हुए भी। ब्राह्मणो के क्रोध से दग्ध हुए का (एक) अंकुर भी नहीं उगता।

अग्निर्दहति तेजसा सूर्यो दहति रश्मिभिः ।
राजा दहति दण्डेन विप्रो दहति मन्युना ।।५१।।

अग्नि अपने तेज से जलाती है, सूर्य अपनी किरणों से जलाता है, राजा दण्ड से जलाता है, ब्राह्मण क्रोध से जलाता है।

ब्रह्मस्वेन तु यत् सौख्य देवस्वेन तु या रतिः ।
तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशनम् ।।५२।।

ब्राह्मण के धन से जो सुख मिलता है, देवों के धन से जो प्रसन्नता होती है, आत्मा का विनाश करने वाला वह धन कुल के नाश के लिये होता है।

ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ।
गुरुमित्रहिरण्यञ्च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ।।५३।।

ब्राह्मण का धन, ब्राह्मण की हत्या और दरिद्र का जो धन होता है, और गुरु एवं मित्र का सोना, स्वर्ग में वास करते हुए को भी दुःखी करता है।

ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्र न प्ररोहति ।
प्रच्छादयति तच्छिद्रमन्यत्र तु विसर्पति ।।५४।।

ब्राह्मण के धन से जो घाव होता है, वह घाव कभी नहीं भरता। अगर (मनुष्य) उसे छिपाता है तो वह दूसरी जगह से फूट पड़ता है।

ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ।
संग्रामे तानि लीयन्ते सिकतासु यथोदकम् ।।५५।।

ब्राह्मण के धन से पुष्ट हुए जो साधन और सेनाएं होती हैं, वे संग्राम में इस प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे रेत में जल।

श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ।
सन्तुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय च ।।५६।।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च सयमः ।
ईदृशाय सुरश्रेष्ठ ! यद्दत्तं हि तदक्षयम् ॥५७॥

हे इन्द्र ! वेदपाठी, कुलीन, दरिद्र, सन्तोषी, विनीत और सब प्राणियों के हित में लगे हुए, और हे सुरश्रेष्ठ ! जिसके पास वेदाभ्यास, तप, ज्ञान और इन्द्रियों का संयम है—ऐसे (ब्राह्मण) को जो दान दिया जाता है वही अनश्वर है ।

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ।
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ॥५८॥
एवं गाञ्च हिरण्यञ्च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ।
अविद्वान् प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥५९॥

जिस प्रकार कच्चे पात्र में रखा हुआ दूध, दही, घी और मधु पात्र की दुर्बलता के कारण नष्ट हो जाता है और वह पात्र (स्वयं) भी नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार जो मूर्ख (अनपढ़ ब्राह्मण) गऊ, सोना वस्त्र, अन्न, भूमि और तिलों का दान लेता है, वह लकड़ी की तरह भस्म हो जाता है ।

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ।
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ।
कुलं तारयते धीरः सप्त सप्त च वासव ॥६०॥

मूर्ख (ब्राह्मण) जिसके घर में है और विद्वान् दूर है, उसे विद्वान् को ही दान देना चाहिये, इस से मूर्ख का उल्लंघन नहीं होता । और हे इन्द्र ! वह बुद्धिमान् अपने सात (पिछले) और सात (अगले) कुलों (पीढ़ियों) को भवसागर से पार करता है ।

यस्तडाकं नव कुर्य्यात् पुराणं वाऽपि खानयेत् ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते ॥६१॥

जो नया तालाब बनवाता है अथवा पुराने को खुदवाता (जीर्णोद्धार कराता) है, वह अपने सारे कुल का उद्धार करके स्वर्ग लोक में महानता को प्राप्त करता है ।

वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च ।
पुनः सस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥६२॥

बावली, कूओं और तालाबों का तथा वनों और उपवनों का पुनः संस्कार (मुरम्मत)कराने वाला मूल रूप से बनवाने वाले के फल को प्राप्त करता है ।

निदाघकाले पानीय यस्य तिष्ठति वासव ।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥६३॥

हे इन्द्र ! ग्रीष्म ऋतु में जिस के घर में (दूसरों के लिये) पानी रहता है, वह कभी अत्यन्त विषम संकट को प्राप्त नहीं होता।

एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ।
कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥६४॥

हे नृपश्रेष्ठ ! जिसकी भूमि में एक दिन भी जल ठहरता है, वह अपनी सात (पिछली) पीढ़ियों और सात अगली पीढ़ियों को तार लेता है।

दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान् स भवेन्नरः ।
प्रोक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधाञ्च विन्दति ॥६५॥

दीप के प्रकाश को दान में देने वाला पुरुष सुन्दर शरीर वाला हो जाता है, और जल के दान से स्मृति और मेधा को प्राप्त करता है।

कृत्वाऽपि पापकर्म्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥६६॥

पाप कर्मों को करके भी जो मनुष्य याचक को अन्न देता है, विशेष रूप से ब्राह्मण को, वह पाप से लिप्त नहीं होता।

भूमिर्गावस्तथा दारा. प्रसह्य ह्रियन्ते यदा ।
न चाऽऽवेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६७॥

जब भूमि, गौवों तथा स्त्रियों का बलात् हरण किया जाया है, और जो (प्रत्यक्षदर्शी) इसकी सूचना राजा को नहीं देता, उसे ब्रह्मघातक कहते हैं।

निवेदितस्तु राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युपीडितैः ।
न निवारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६८॥

और जो राजा क्रोध में भड़के हुए ब्राह्मणों से सूचना पाकर (हरण करने वाले को) नहीं रोकता, उसे ब्रह्मघातक कहते हैं।

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ।
मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते क्रिमिः ॥६९॥

और हे इन्द्र ! विवाह, यज्ञ और दान का समय आने पर अज्ञानवश जो विघ्न डालता है, वह मरकर कृमि उत्पन्न होता है।

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ।
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ।।७०।।

धन दान से फल वान् होता है, जीवन जीवों की रक्षा करने से फलवान् होता है। मनुष्य रूप, ऐश्वर्य और आरोग्य को अहिंसा के फल के रूप में प्राप्त करता है।

फलमूलाशनात् पूज्यं स्वर्गं सत्येन लभ्यते ।
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वत्र सुखमश्नुते ।।७१।।

मनुष्य फल और मूल के आहार से पूज्य होता है, सत्य से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, और उपवास के द्वारा प्राणत्याग की प्रतीक्षा करने से राज्य और सब सुखों को भोगता है।

गवाढ्यः शक्र दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ।
स्त्रियस्त्रिषवणस्नायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ।।७२।।

हे इन्द्र ! दीक्षा से मनुष्य गवाढ्य (गायों के धन वाला) हो जाता है, त्रिषवण[1] में स्नान करने से स्त्रियों को और वायु-भक्षण से यज्ञ(-फल) को प्राप्त करता है।

नित्यस्नायी भवेदर्कः सन्ध्ये द्वे च जपन् द्विजः ।
नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ।।७३।।

नित्य स्नान करने वाला सूर्य (सूर्य के समान तेज वाला) हो जाता है, दो संध्या कालों में (गायत्री) जपता हुआ द्विज हो जाता है, और नए राज्य एवं उच्चतम अनश्वर स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ।
रसनाप्रतिसंहारे पशून् पुत्रांश्च विन्दति ।।७४।।

अग्नि प्रवेश के द्वारा निश्चित रूप से ब्रह्मलोक में पूजा जाता है, और जिह्वा को (उसके विषय से) रोक लेने से पशुओं और पुत्रों को प्राप्त करता है।

नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ।
सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ।।७५।।

---

१. उषा काल, मध्याह्न और सूर्यास्त होने पर तीन बार देवताओं को आहुति देने के लिये सोम का सवन स्नान करके या बिना स्नान किये होता था, जिसे त्रिषवण कहते हैं।

जो मनुष्य उपवास करने वाला होता है, वह चिरकाल तक स्वर्ग में वास करता है। जो हमेशा एक शय्या पर शयन करने वाला है (अर्थात् अपनी पत्नी में ही सन्तुष्ट है), वह मनचाही गति को प्राप्त करता है।

वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः।

अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्यु. सर्वकामागमास्तथा ॥७६॥

जो मनुष्य वीरासन, वीरशय्या और वीर-स्थान का सहारा लेता है, उसे अनश्वर लोकों की प्राप्ति होती है तथा उसकी सब कामनाओं की पूर्ति होती है।

उपवासञ्च दीक्षाञ्च अभिषेकञ्च वासव।

कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥७७॥

हे इन्द्र! बारह वर्ष तक उपवास, दीक्षा और अभिषेक को करके मनुष्य वीरस्थान का आश्रय लेने वाले से भी विशिष्ट हो जाता है।

अधीत्य सर्ववेदान् वै सद्यो दुःखात् प्रमुच्यते।

पावनं चरते धर्मं स्वर्गे लोके महीयते ॥७८॥

सब वेदों का अध्ययन करके तुरन्त दुःख से छूट जाता है, पावन धर्म का आचरण करता है और स्वर्ग लोक में पूजा जाता है।

बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजातयः।

चत्वारि तेषां वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥७९॥

जो द्विजन्मा लोग बृहस्पति के (इस) पवित्र मत को पढ़ते हैं, उनकी चार वस्तुएं बढ़ती हैं—आयु, विद्या, यश और बल।

इति बृहस्पतिप्रणीतं धर्म्मशास्त्रं सम्पूर्णम्।

समाप्ता चेयं बृहस्पतिस्मृतिः।

॥ अथ ॥

॥ कात्यायनस्मृतिः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

अथाचाराध्याय.

तत्रादौ यज्ञोपवीतकर्मप्रकरणवर्णनम् ।

अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम् ।
अस्पष्टानां विधि सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥१॥

अब इससे आगे गोभिल ऋषि द्वारा कहे हुए और अन्य अस्पष्ट कर्मों की विधि को दीपक की तरह भली प्रकार दिखाता हूं।

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् ।
त्रिवृतञ्चोपवीत स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥२॥

जिसमें तिहरे तीन तार ऊपर को बँटे हुए और नीचे को बँटे हुए हो ऐसा तीन तारो वाला उपवीत बनाना चाहिये। उसकी एक गांठ लगानी चाहिये।

पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लम्ब न चोच्छ्रितम् ॥३॥

पीठ के बांस (मेरुदण्ड) और नाभि पर धारण किया हुआ जो कटि प्रदेश तक पहुंचे वह धारण करने योग्य उपवीत है, न इससे लटकता हुआ और न ऊँचा।

सदोपवीतिना भाव्य सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम् ॥४॥

सदा उपवीत धारण किये रहना चाहिये, सदा शिखा को बांधे रखना चाहिये। बिना चोटी बांधे और बिना उपवीत धारण किये मनुष्य जो कार्य करता है वह न किया हुआ ही होता है।

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ।
आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभिवक्षःशिरोंऽसकान् ॥५॥

तीन बार जल का आचमन करके, दो बार मुख पोंछ कर इन का स्पर्श करे—मुख, नासिका, आंखों, कानों का, नाभि, छाती, सिर और कन्धों का ।

संहताभिस्त्र्यङ्गुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥६॥

मिली हुई तीन अंगुलियों से मुख का इस प्रकार स्पर्श करे और अंगूठे और प्रदेशिनी (कन्नो) से नासिका का इस प्रकार स्पर्श करे । अंगूठे और अनामिका से आंखों और कानों का इसी प्रकार बार-बार स्पर्श करे ।

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ।
सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद् बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥७॥

कनिष्ठा और अंगूठे से नाभि का और हथेली से हृदय का स्पर्श करे । सब अंगुलियों से सिर का स्पर्श करे । सबके पश्चात् हाथ के अग्र भाग से दोनों भुजाओं का स्पर्श करे ।

यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते ।
दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥८॥

जहां कर्म तो उपदिष्ट हो, पर करने वाले के अंग का कथन न किया गया हो, वहां कर्मों में पारगत दाहिना हाथ ही जानना चाहिये ।

यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु ।
तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्रीसौम्यापराजिताः ॥९॥

जहां जप, होम आदि कर्मों मे दिशा का नियम न हो, वहां तीन दिशाएं कही गई हैं—ऐन्द्री (पूर्वा), सौम्या (उत्तरा) और अपराजिता (पश्चिमा) ।

तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ।
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥१०॥

जहाँ ऐसा नियम नहीं है कि (कर्म को) खड़े हुए, बैठे हुए या झुककर करे, वह बैठकर करना चाहिये, न झुककर और न खड़े होकर ।

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥११॥

हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥१२॥

गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, हृष्टि, पुष्टि तथा आत्म-देवता सहित तुष्टि ये सोलह माताएं लोक माताएं हैं। गणेश को इनके साथ मिला कर, ये वृद्धि (नान्दी-मुख जो पुत्र-जन्म आदि में करते हैं) में पूजा के योग्य हैं।

कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः ।
पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥१३॥

सब कर्मों में माताएं गणेश सहित यत्नपूर्वक पूजा के योग्य हैं। वे पूजा की हुई मनुष्य को पूजा के योग्य बनाती हैं।

प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु ।
अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥१४॥

श्वेत प्रतिमाओं में अथवा पट आदि पर आलेखन करके अथवा अक्षतों (चावलों) के ढेरों में अलग-अलग प्रकार के नैवेद्यों से (इनकी पूजा करे)।

कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तधारां घृतेन तु ।
कारयेत् पञ्चधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम् ॥१५॥

और घृत से दीवार में लगी हुई सात धाराओं वाली अथवा पांच धाराओं वाली, न बहुत नीची और न बहुत ऊंची, धन की धारा का निर्माण कराए।

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ।
षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥१६॥

और वहां सावधान हो शान्ति के लिए आयुष्य मन्त्रों को जपकर तत्पश्चात् छः पितरों के लिये भक्ति के साथ श्राद्ध का उपक्रम करे।

अनिष्ट्वा तु पितॄंश्छ्राद्धे न कुर्यात् कर्म वैदिकम् ।
तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥१७॥

१—माताओं की संख्या कहीं सात, कहीं आठ, कहीं नौ और कहीं सोलह बताई गई है। यहाँ उनकी संख्या १६ बताई गई है, किन्तु नाम १४ के ही गिनाए गए हैं। यहाँ धृति और कुल-देवता के नाम नहीं गिनाए गए हैं, और शान्ति के स्थान पर हृष्टि नाम दिया गया है, ये शिव-पूजा से सम्बन्धित हैं और स्कन्द की रक्षिकाएं बताई गई हैं।

श्राद्ध में पितरों को पूजे बिना वैदिक कर्म न करे। उसमें भी माताएं सर्वप्रथम प्रयत्न के साथ पूजा करने योग्य है।

वसिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥१८॥

इस विषय में ऋषि वसिष्ठ प्रोक्त सम्पूर्ण निरामिष विधि का विचार करना चाहिये। अब इससे आगे इस विषय में जो विशेष है उसका प्रवचन करूंगा।

इति प्रथमः खण्डः।

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

अथ नित्यनैमित्तिक(श्राद्ध)कर्मवर्णनम्।

प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा।
उपवेश्य कुशान् दद्यादृजुनैव हि पाणिना ॥१॥

प्रातः काल आमन्त्रित किये हुए सम-संख्य ब्राह्मणों को दोनों ओर (पितृपक्ष और मातृपक्ष में) बिठा कर दाहिने हाथ से उनको कुशाएं दे।

हरिता यज्ञिया दर्भा. पीतकाः पाकयज्ञियाः।
समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥२॥

यज्ञ की कुशाएं हरी, पाक-यज्ञ की पीली, पितरों की पूजा के कर्म में जड़ों सहित और विश्वेदेवों के कर्म में काम आने वाली कुशाएं चितकबरी (काले बिन्दुओं वाली) होती है।

हरिता वै सपिञ्जलाः शुष्काः स्निग्धाः समाहिताः।
रत्निमात्रा प्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तृताः ॥३॥

हरी, पीले पत्तों वाली, सूखी, चिकनी, समाहित, लम्बाई में बालिश्त मात्र कुशाएं पितृतीर्थ (अंगूठे और अंगुलियों के बीच के स्थान) पर धारण की जाती हैं।

पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ।
धृतैः कृते च विण्मूत्रे त्यागस्तेषा विधीयते ॥४॥

जो कुशाएं पिण्ड के लिये तथा तर्पण के लिये धारण की गई हैं, मल और मूत्र त्याग करने पर धारण करने वालों के द्वारा उनका त्याग विधान किया गया है ।

दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरन् सदा ।
पातयेदितरज्जानु पितॄन् परिचरन्नपि ॥५॥

देवों की परिचर्या करता हुआ सदा दाहिने घुटने को धरती पर टेके, और पितरों की परिचर्या करते हुए दूसरे (अर्थात् बांए) घुटने को धरती पर टेके ।

निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित् ।
सदा परिचरेद्भक्त्या पितॄनप्यत्र देववत् ॥६॥

बाएं घुटने का टेकना अन्य किसी भी कर्म में विहित नहीं है, (बायां घुटना टेककर केवल) इस लोक में सदा देवों की तरह पितरों की भक्ति के साथ परिचर्या करे ।

पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान् ।
गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितॄनर्घं प्रदापयेत् ॥७॥

पितृभ्यः इत्यादि मन्त्र से दी हुई कुशाओं पर बिठाकर उन पितरों को गोत्र और नाम से बुला कर उन्हें अर्घ प्रदान करे ।

नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ।
पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव हि कारयेत् ॥८॥

इसमें अपसव्यकरण (प्रदक्षिणा) का विधान नहीं है, और न ही पितृ-तीर्थ अभीष्ट है । पात्रों को भरना आदि कर्म देव-तीर्थ (अंगुलियों के अग्र भाग) से ही करे ।

ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान् ।
कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥९॥

युगलों में से ज्येष्ठ ब्राह्मणों के हाथों को कनिष्ठ ब्राह्मणों के हाथों के ऊपर रखवाकर और हाथों के अगले भाग मे पवित्री को आगे कराकर अर्घ देना चाहिए। किसी भी अकेले से अर्घ नहीं दिया जाता।

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥१०॥

जिसके अन्दर गर्भ न हो (अर्थात् सीख उत्पन्न न हुई हो), जो अग्र भाग (चोटी) से युक्त हो, दो पत्तों वाली हो, परिमाण में बालिश्त भर की है, कुशा से बनी ऐसी को ही जहां-तहां (प्रत्येक कर्म में) पवित्री जानना चाहिये।

एतदेव हि पिञ्जल्या लक्षणं समुदाहृतम्।
आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु ॥११॥

पिञ्जली का यही लक्षण बताया गया है। जो घी को छानने के लिये होती है, वह भी इतने ही परिमाण की होती है।

एतत्प्रमाणामेवैके कौशीमेवार्द्रमञ्जरीम्।
शुष्कां वा शीर्णकुसुमां पिञ्जलीं परिचक्षते ॥१२॥

कुछ आचार्य इतने ही प्रमाण वाली कुशा की गीली मञ्जरी को, अथवा झड़े हुए कुसुमों वाली सूखी मञ्जरी को पिञ्जली कहते है।

पित्र्यमन्त्रानुद्रवण आत्मालम्भेऽधमेक्षणे।
अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥१३॥
मार्जारमूषकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे।
निमित्तेष्वेषु सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥१४॥

पितरों के मन्त्रों के अनुद्रवण (शीघ्रता से उच्चारण के कारण गड़बड़ा जाने) पर, शरीर का स्पर्श होने पर, नीच का दर्शन होने पर, अधोवायु (अपान वायु) के छूटने पर, हँसी आने पर, अनृत भाषण होने पर, बिलाव और चूहे का स्पर्श होने पर, चीख निकलने पर, क्रोध उत्पन्न होने पर, सब कर्मों में इन निमित्तों के होने पर, कर्म करता हुआ जलों का स्पर्श (अर्थात् आचमन) करे।

इति द्वितीयः खण्डः।

॥ तृतीयः खण्डः ॥

अथ त्रिविधक्रियावर्णनम् ।

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम् ।
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥१॥

कर्म करने वालों की अक्रिया (निन्दित क्रिया) को विद्वानों के द्वारा तीन प्रकार की बताया गया है। १—अक्रिया (कर्म को न करना)। २—परोक्ता (दूसरी शाखा के लिये कहे हुए कर्म को करना)। और ३—अयथाक्रिया (कर्म जैसे करना चाहिए था, वैसे न करना)।

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयञ्च यः ।
कर्त्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥२॥

अपनी शाखा से सम्बन्धित कर्म को छोड़कर जो दुष्टबुद्धि दूसरों की शाखा से सम्बन्धित कर्म को करना चाहता है, वह उसका चेष्टित निष्फल है।

यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥३॥

जिसका अपनी शाखा में उल्लेख नहीं है, जिसका दूसरों ने अपनी शाखा में उल्लेख किया है, परन्तु अपनी शाखा के विरोध में नहीं है, विद्वानों को उसका अनुष्ठान अग्निहोत्र आदि कर्मों के समान करना चाहिये।

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात् कथञ्चन ।
यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥४॥

यदि मनुष्य किसी प्रकार से अज्ञान के कारण प्रारम्भ किए हुए कार्य को जैसा करना चाहिये था उससे उलट कर दे, तो जहाँ से वह उल्टा हुआ है उसे वहीं से आरम्भ करके पूरा कर दे।

समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ।
तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥५॥

कर्म समाप्त (पूरा) होने पर यदि उसे पता चले कि मेरे द्वारा यह उलट कर दिया गया है, तो जितना कर्म अन्यथा हो गया है उतना ही फिर से कर दे, सम्पूर्ण कर्म की आवृत्ति उचित नहीं है।

प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः ।
तदङ्गस्याक्रियायाञ्च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥६॥

वह अन्यथा कर्म, जिसमें प्रधान कर्म अभी नहीं किया गया, उसे साङ्ग पुनः करना चाहिये। वह अन्यथा कर्म जिसमें अङ्ग-मात्र करने को शेष है, उसकी आवृत्ति नहीं करनी चाहिये और न वह अङ्ग-मात्र शेष कर्म करना चाहिये।

मधु मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्।
गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः ॥७॥

भोजन खाना चाहने वालों का इस विषय में मधु, मधु, मधु इस प्रकार का तीन बार करणीय जो जप है, वह इस (श्राद्ध) विषय में 'मधु वाता ऋतायते' (ऋ० १.९० ६) आदि मन्त्र को छोड़कर गायत्री के तुरन्त बाद करना चाहिये।

न चाश्नत्सु जपेदत्र कदाचित् पितृसंहिताम्।
अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः ॥८॥

इस (श्राद्ध-कर्म) में ब्राह्मणों के भोजन खाते हुए पितृ-संहिता का कभी जप न करे। अन्य ही सोम, साम आदि शुभ जप करना चाहिये।

यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद् यववत्तथा।
उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥९॥

इस (श्राद्ध) में तिल जैसा तथा जौ जैसा जो अन्न का पिण्ड (प्रकर पिण्ड) है, वह यहां उच्छिष्ट के समीप दिया जाना चाहिये। (ब्राह्मणों के) तृप्त हो जाने पर विपरीत स्थान पर (जहां उच्छिष्ट न हो) देना चाहिये।

सम्पन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते।
सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥१०॥

'क्या आप तृप्त हुए ?' इस प्रश्न के स्थान पर 'क्या (भोजन) रुचिकर है ?' यह बात यजमान को पूछनी होती है। 'बहुत रुचिकर है' (ब्राह्मणों के) ऐसा कहने पर शेष अन्न भी उन को दे दे।

प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्ववत्।
अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति पात्रतः ॥११॥

तत्पश्चात् पूर्व की ओर अग्रभाग वाली कुशाओं पर आद्य (पिता) को पूर्व (पिता) की तरह आमन्त्रित करके अवनेनिक्ष्व (भली प्रकार पवित्र करो) (कर्मप्रदीप १.३ ११) यह मन्त्र पढ़ कर पात्र से जलों को उन (कुशाओं) के मूल देश पर डाले।

द्वितीयञ्च तृतीयञ्च मध्यदेशाग्रदेशयोः ।
मातामहप्रभृतींस्त्रीनेतेषामेव वामतः ॥१२॥

दूसरे (पितामह) और तीसरे (प्रपितामह) को कुशाओं के मध्य भाग और अग्र भाग में जल दे। मातामह प्रभृति तीनों को भी इनकी ही बाईं ओर जल दे।

सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च ।
संयोज्य यवकर्कन्धूदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥१३॥

अवनेजनवत् पिण्डान् दत्त्वा बिल्वप्रमाणकान् ।
तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥१४॥

उसके बाद सारे (अन्न में) से अन्न निकालकर व्यञ्जन (शाक-भाजी) से उपसिक्त करके, जौ, बेर और दही मिलाकर, पूर्वाभिमुख हो जलसिंचन की तरह बेल के प्रमाण वाले पिण्डों को देकर उस पात्र को धोकर फिर से जलसिंचन करे।

इति तृतीयः खण्डः ।

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

अथ श्राद्धप्रकरणवर्णनम् ।

उत्तरोत्तरदानेन पिण्डानामुत्तरोत्तरः ।
भवेदधश्चाधराणामधरश्राद्धकर्मणि ॥१॥

उत्तरोत्तर क्रम से पिण्ड देने से पिण्डों में जो उत्तरोत्तर (पिछले से पिछला) पिण्ड है, वह नीचा हो जाता है। (इसलिये) श्राद्ध-कर्म में निचलों को नीची जगह पिण्ड देने चाहियें।

तस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च ।
मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तांश्च निर्वपेत् ॥२॥

इसलिए सब श्राद्धों में, चाहे वे वृद्धिमान् हों या दूसरे, मूल मध्य और अग्र भागों में कुछ लगा हुआ पिण्ड दे।

गन्धादीन्निःक्षिपेत्तूष्णीं तत आचामयेद् द्विजान् ।
अन्यत्राप्येष एव स्याद्यवादिरहितो विधिः ॥३॥

चुप रहकर गन्ध आदि दे, उसके पश्चात् ब्राह्मणों को आचमन कराए। अन्य (पार्वण आदि) श्राद्धों में भी जौ आदि से रहित यही विधि होती है।

दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिमुखस्य च ।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥४॥

दक्षिण की ओर नीचे स्थान पर दक्षिण की ओर मुख करके बैठे यजमान के लिए दक्षिण की ओर अग्र भाग वाली कुशाओं पर (पिण्ड दान की) अन्य श्राद्धों में यह विधि कही गई है।

अथाग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसंप्रोक्षितमस्त्विति ।
शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥५॥

तत्पश्चात् यजमान, 'सु सं प्रोक्षितमस्तु' (भली प्रकार सिंचा हुआ होवे) इस मन्त्र से अपने आगे की भूमि को सींचे (धरती पर जल छिड़के) और 'शिवा आपः सन्तु' (जल कल्याणकारी होवें) इस मन्त्र (मा०श्रौ० ११.९.४) से युग्मों (दो-दो पिण्डों) को जल से सींचे।

सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ।
अक्षतञ्चारिष्टं चास्त्वित्यक्षतान् प्रतिपादयेत् ॥६॥

'सौमनस्यमस्तु' (प्रसन्न-चित्तता होवे) इस (मा०श्रौ० ११.९.४) मन्त्र से पुष्प दे, और 'अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु' (अक्षीणता और नीरोगता होवे) (कर्म० १.४.६) इस मन्त्र से अक्षत (बिना टूटे चावल) दे।

अक्षय्योदकदानं तु अर्घ्यदानवदिष्यते ।
षष्ठ्यैव नित्यं तत् कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥७॥

अक्षय्य जल का दान अर्घ्य दान के समान दिया जाना चाहिये। वह अक्षय्योदक दान षष्ठी विभक्ति (पितुः आदि) बोल कर दिया जाना चाहिये। चतुर्थी विभक्ति (पित्रे आदि) बोल कर कभी नहीं।

अर्घ्येऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने ।
तन्त्रस्य तु निवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च ॥८॥

अर्घ्य-दान में, अक्षय्योदक-दान में, पिण्ड-दान में, अवनेजन में और स्वधा-वाचन मे तन्त्र (एक संकल्प में सब को अर्घ आदि देने) की निवृत्ति (मनाही) होती है।

प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्वास्वेव द्विजोत्तमैः ।
पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत् ॥९॥

(यजमान की) सभी प्रार्थनाओं का श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा उत्तर दिए जाने के पश्चात् अर्घ के पात्रों को सीधा करके पवित्रियों से ढके हुए पिण्डों को सींचे ।

युग्मानेव स्वस्ति वाच्यमङ्गुष्ठाग्रग्रहं सदा ।
कृत्वा धुर्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥१०॥

हमेशा दो-दो ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन कराकर और अगूठे के अग्र भाग का ग्रहण कर मुख्य ब्राह्मण को प्रणाम कर उसके पीछे-पीछे चले ।

एष श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया ।
ये विन्दन्ति न मुह्यन्ति श्राद्धकर्मसु ते क्वचित् ॥११॥

यह श्राद्ध की सम्पूर्ण विधि मेरे द्वारा संक्षेप में कह दी गई है । जो इसे ग्रहण करते है वे श्राद्ध-कर्मों मे कहीं भी मोह को प्राप्त नहीं होते ।

इदं शास्त्रञ्च गुह्यञ्च परिसंख्यानमेव च ।
वसिष्ठोक्तञ्च यो वेद स श्राद्ध वेद नेतरः ॥१२॥

जो इस शास्त्र को, इस शास्त्र की गुप्त विधि को, इसमे परिगणित सभी क्रियाओं को और वसिष्ठोक्त शास्त्र को जानता है, वही श्राद्ध को जानता है, दूसरा नहीं ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

अथ श्राद्धप्रकरणवर्णनम् ।

असकृद् यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः ।
प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च ॥१॥

कर्म करने वालों के द्वारा जो कर्म बार-बार किये जाते हैं, उनमें से प्रत्येक के प्रयोग में ये (सोलह) माताएं और श्राद्ध (नान्दीमुख) नहीं होते ।

आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ।
बलिकर्मणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च ॥२॥
नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येव मनीषिणः ।
एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक् ॥३॥

गर्भाधान में, दोनों काल के होमों में, वैश्वदेव में, बलि कर्म में, अमावस्या के यज्ञ में और पूर्णिमा के यज्ञ में और नव-यज्ञ के विषय मे यज्ञ को जानने वाले मनीषी लोग ऐसा कहते है कि इनमे एक ही श्राद्ध होता है, पृथक्-पृथक् नहीं ।

नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते ।
न सोष्यन्तीजातकर्म प्रोषितागतकर्मसु ॥४॥

अष्टकाओं मे श्राद्ध नही होता, श्राद्ध के अन्दर श्राद्ध अभीष्ट नहीं है । प्रवास से लौटी हुई स्त्री के कर्मों में सोष्यन्ती (शिशु को जन्म देने वाली स्त्री) के शिशु का जातकर्म नही होता ।

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो
गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ।
विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्
छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥५॥

विवाह आदि का जो कर्म-समूह कहा गया है, और उसके पश्चात् जो गर्भाधान संस्कार हम सुनते है—इस सम्बन्ध मे विवाह के आदि मे ही एक श्राद्ध को करे । प्रत्येक कर्म के आदि में श्राद्ध नहीं होता ।

प्रदोषे श्राद्धमेकं स्याद् गोनिष्क्रामप्रवेशयोः ।
न श्राद्धं युज्यते कर्तुं प्रथमे पुष्टिकर्मणि ॥६॥

प्रदोष मे एक ही श्राद्ध होता है । गायों के निष्क्रमण और प्रवेश में भी एक ही श्राद्ध होता है । प्रथम पुष्टि-कर्म में श्राद्ध करना उचित नहीं है ।

हलाभियोगादिषु तु षट्सु कुर्यात् पृथक् पृथक् ।
प्रतिप्रयोगमप्येषामादावेकन्तु कारयेत् ॥७॥

हल-जोतना आदि छः कर्मों मे पृथक्-पृथक् श्राद्ध करे । इनके प्रत्येक कर्म के आदि में एक श्राद्ध कराए ।

बृहत्पत्रिक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थं परिविष्यतोः ।
सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते ॥८॥

बड़े पक्षी और छोटे पशुओं के कल्याणार्थ किये गए कर्मों में, परिविष्ट (कुण्डली मारे) सूर्य और चन्द्रमा के जो दो कर्म हैं, उनमें श्राद्ध नहीं होता ।

न दशाग्रन्थिके चैव विषवद्दष्टकर्मणि ।
कृमिदष्टचिकित्सायां नैव शेषेषु विद्यते ॥९॥

न दशाग्रन्थि(वस्त्र के कोनों में गांठ लगाना) कर्म में, न विषैले जन्तु के द्वारा डसे जाने पर किये जाने वाले कर्म में, न कीड़े के द्वारा काटे जाने पर की गई चिकित्सा में, और न ही शेष कर्मों में श्राद्ध होता है ।

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ।
सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥१०॥

गणानुसार क्रियाओं के किये जाने पर माताओं का पूजन एक बार होता है, आदि में एक बार ही श्राद्ध होता है, सबके आदि में अलग-अलग नहीं होता ।

यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ।
प्रासङ्गिकमिदं प्रोक्तमतः प्रकृतमुच्यते ॥११॥

जहां-जहां श्राद्ध होता है, वहां-वहां (सोलह) माताओं (की पूजा) होती है । यह प्रसङ्ग वश कहा गया है, अब प्रकृत (मूल विषय) कहा जाएगा ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

॥ षष्ठः खण्डः ॥

अथानेककर्मवर्णनम् ।

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चाग्नियोनयः ।
तदाश्रयोऽग्निमादध्यादग्निमानग्रजो यदि ॥१॥

जो अग्नि के आधान के समय बताए गए हैं तथा जो अग्नियोनियां (अग्नि के स्थान) हैं, अग्नि का आधान करने वाला यदि ज्येष्ठ भ्राता है तो उन्हीं का आश्रय लेकर अग्न्याधान करे ।

दाराधिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्रिमः ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥२॥

यदि (छोटा भाई) अग्रज से आगे बढ़कर (अर्थात् पहले) विवाह और अग्न्याधान करता है तो उसे परिवेत्ता कहते हैं और बड़ा भाई परिवित्ति कहलाता है ।

परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम् ।
अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥३॥

परिवित्ति और परिवेत्ता निश्चय से दोनों नरक में जाते हैं । यदि वे दोनों प्रायश्चित्त करें तो भी तीन चौथाई फल के भागी होते हैं ।

देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् ।
वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥४॥
जडमूकान्धवधिरकुब्जवामनकुण्डकान् ।
अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥५॥
धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा ।
कुलटोन्मत्तचौरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥६॥

परदेश में स्थित, नपुंसक, एक वृषण (अण्डकोष) वाले, जो सगे भाई नहीं हैं, वेश्या में अत्यासक्त, पतित, शूद्र के समान जीवन वाले, अत्यन्त रोगी, जड़ (महा अज्ञानी), गूंगे, अन्धे, बहरे, कूबे, बावने, कुण्डक (पिता के जीवित रहते जार से उत्पन्न), अत्यन्त वृद्ध, भार्या-रहित, राजा की खेती में लगे हुए तथा स्वेच्छारी, कुलट (घर-घर घूमने वाले), उन्मत्त और चोर—इन बड़े भाइयों को पीछे छोड़ कर विवाह और अग्न्याधान करने वाला छोटा भाई दोषी नहीं होता ।

धनवार्द्धुषिकं राजसेवकं कर्षकं तथा ।
प्रोषितञ्च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥७॥

(ब्याज से) धन को बढ़ाने में लगे हुए, राजा के सेवक, खेती करने में लगे हुए और प्रवास में गए हुए बड़े भाई की जल्दी करने वाला भी छोटा भाई तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

प्रोषितं यद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत् ।
आगते तु पुनस्तस्मिन् पादं तच्छुद्धये चरेत् ॥८॥

यदि (बड़ा भाई) प्रवास में हो और उसके (जीवित होने के) बारे में सुना न जा रहा हो तो एक वर्ष के पश्चात् (विवाह और अग्न्याधान) कर ले। उसके पश्चात् यदि वह लौट आए तो एक चौथाई प्रायश्चित्त करे।

लक्षणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशाङ्गुलम्।
तन्मूलसक्ता योदीची तस्या एतन्नवोत्तरम् ॥९॥

लक्षण (वेदि पर खींची हुई रेखाओं) के विषय में पूर्व की ओर स्थित का प्रमाण बारह अंगुल का बताया गया है। उसके मूल से सटी हुई जो उदीची (उत्तर दिशा में स्थित) नाम की रेखा है, उसका प्रमाण नौ अंगुल अधिक अर्थात् इक्कीस अंगुल होता है।

उदग्गताया· सलग्ना. शेषा· प्रादेशमात्रिका: ।
सप्त सप्ताङ्गुलांस्त्यक्त्वा कुशेनैव समुल्लिखेत् ॥१०॥

उत्तर की ओर स्थित (उदीची) से संलग्न शेष सभी रेखाएं एक बालिश्त मात्र की होती हैं। (यज्ञकुण्ड से) सात-सात अंगुल का अन्तर छोड़कर कुशा से ही उल्लेखन कार्य करे।

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि।
मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥११॥

जहां प्रमाण क्रिया तो कह दी गई हो पर प्रमाणकर्त्ता का कथन न किया गया हो, वहां यजमान ही प्रमाणकर्ता होता है, विद्वानों का यही निश्चय है।

पुण्यवानादधीताग्नि स हि सर्वैः प्रशस्यते।
अनद्‌र्धुकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥१२॥

पुण्यवान् ही अग्नि का आधान करे; उसकी ही सबके द्वारा प्रशंसा होती है। वह जो उस (अग्नि) का सब ओर न बढ़ना है, वह काम्य कर्मों के द्वारा शान्त हो जाता है।

यस्य दत्ता भवेत् कन्या वाचा सत्येन केनचित्।
सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नादधीतैव नान्यथा ॥१३॥

जिसको किसी सच्चे मनुष्य के द्वारा कन्या दे दी गई हो (अर्थात् कन्या देने का वचन दे दिया गया हो), वह पिछली समिधा का आधान (विवाह का होम) करना चाहता हुआ किसी अन्य स्त्री के साथ उसका आधान न करे (अर्थात् उसी के साथ करे)।

अनूढैव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
न तथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्वहेत् ।।१४।।

यदि वह कन्या बिना विवाह कराए ही मर जाए, तो इस प्रकार उसके व्रत का लोप नहीं होता । उसी (अग्नि) से वह अन्य कन्या से विवाह कर ले ।

अथ चेन्न लभेतान्या याचमानोऽपि कन्यकाम् ।
तमग्निमात्मसात् कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ।।१५।।

और यदि याचना करने पर भी उसे दूसरी कन्या न मिले, तो उस अग्नि को आत्मसात् करके उत्तराश्रमी (वानप्रस्थी या संन्यासी) हो जाए ।

इति षष्ठ खण्डः ।

।। सप्तमः खण्ड ।।

अथ शमीगर्भाद्यनेकप्रकरणवर्णनम् ।

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ।
तस्य या प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोर्ध्वगापि वा ।।१।।
अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मय्येवोत्तरारणिः ।
सारवद्दारवञ्चत्रमोविली च प्रशस्यते ।।२।।

उत्तम पृथ्वी में उत्पन्न हुआ, शमी वृक्ष के गर्भ वाला (जिसके अन्दर शमी वृक्ष उगा हुआ हो) जो पीपल का वृक्ष होता है उस की जो पूर्वाभिमुखी शाखा या उत्तर की ओर निकली हुई शाखा या ऊपर को गई हुई शाखा है, उससे बनी हुई अरणि और उसी से बनी हुई उत्तरारणि (ऊपर की अरणि) कही गई है । उसी की मजबूत लकड़ी से बना हुआ चत्र (अरणि की खूंटी) और ओविली (मथानी का चाक) उत्तम माने गए हैं ।

संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते ।
अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ।।३।।

जिस पीपल में शमी की गड़ी हुई जड़ होती है, उसे शमी के गर्भ वाला कहा जाता है । यदि शमी के गर्भ वाला न मिले तो जो शमी के गर्भ वाला नहीं उसी पीपल की शाखा को तुरन्त उखाड़ ले ।

चतुर्विंशतिरङ्गुष्ठदैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ।
चत्वार उच्छ्रये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥४॥

चौबीस अंगुल की लम्बाई, छः अंगुल की चौड़ाई और चार अंगुल की ऊँचाई यह दोनों अरणियों का प्रमाण बताया गया है ।

अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चत्रं स्याद् द्वादशाङ्गुलम् ।
ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम् ॥५॥

आठ अंगुल का प्रमन्थ (बर्मा) होता है, बारह अंगुल का चत्र होता है, ओविली भी बारह अंगुल की होती है— ये सब मिला कर मन्थन-यन्त्र बनता है ।

अङ्गुष्ठाङ्गुलमानन्तु यत्र यत्रोपदिश्यते ।
तत्र तत्र बृहत्पर्वग्रन्थिभिर्मिनुयात् सदा ॥६॥

जहाँ-जहाँ अंगुष्ठ या अंगुल के प्रमाण का निर्देश किया जाता है, वहाँ-वहाँ हमेशा बृहत्पर्वग्रन्थि (बड़े पोरो की गाठों) से ही नापना चाहिये ।

गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ।
व्यामप्रमाणं नेत्र स्यात् प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥७॥

शण मिले गाय के बालों से तेलड़ बँटा हुआ, स्वच्छ, पाच बालिश्त के प्रमाण वाला नेत्र (नेती) होता है । उससे ही अग्नि-मन्थन किया जाता है ।

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ।
अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुष्ठं वक्ष उच्यते ॥८॥

अरणि का सिर, आंख, कान, मुख और पांचवीं ग्रीवा—ये सब एक-एक अंगुष्ठ मात्र के होते हैं, छाती दो अंगुष्ठ मात्र की कही गई है ।

अङ्गुष्ठमात्रं हृदय त्र्यङ्गुष्ठमुदरं स्मृतम् ।
एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ वस्ति द्वौ च गुह्यकम् ॥९॥

हृदय एक अंगुष्ठ मात्र का, उदर तीन अंगुष्ठ मात्र का माना गया है । कटि एक अंगुष्ठ मात्र की मानी गई है, दो अंगुष्ठ मात्र की बस्ति(नाभि के नीचे का प्रदेश) और दो अंगुष्ठ मात्र की ही गुदा होती है ।

ऊरू जङ्घे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम् ।
अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥१०॥

ऊरु (रानें), जंघा (पिंडली) और पांव क्रमशः चार, तीन और एक अंगुष्ठ मात्र के होते हैं—याज्ञिकों के द्वारा ये ही अरणि के अवयव कहे गए हैं।

यत्तद् गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोच्यते।
अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥११॥

वह जिसे गुह्य कहा गया है, उसे देवयोनि कहते हैं। इसमें जो अग्नि उत्पन्न होती है उसे कल्याण करने वाली कहा गया है।

अन्येषु ये तु मथ्नन्ति ते रोगभयमाप्नुयुः।
प्रथमे मन्थने त्वेष नियमो नोत्तरेषु च ॥१२॥

अन्य स्थानों में जो अग्नि का मन्थन करते हैं वे रोग और भय को प्राप्त होते हैं। प्रथम मन्थन में यह नियम है, उत्तर मन्थनों में ऐसा नियम नहीं है।

उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमन्थः सर्वदा भवेत्।
योनिसङ्करदोषेण युज्यते ह्यन्यमन्थकृत् ॥१३॥

उत्तरा (ऊपर वाली) अरणि से निष्पन्न मन्थ ही सदा प्रमन्थ होता है। अन्य-मन्थकृत् (अधर अरणि से मन्थ को निष्पन्न करने वाला) योनि-सकर दोष से युक्त हो जाता है।

आर्द्रा सशुषिरा चैव घूर्णाङ्गी पाटिता तथा।
न हिता यजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥१४॥

गीली, बीच में खोखली, घुन लगी हुई और फटे हुए अंगों वाली (अधरा) अरणि और उत्तरा अरणि यजमानों के हित के लिए नहीं होतीं।

इति सप्तमः खण्डः।

॥ अष्टमः खण्डः ॥

अथ सयज्ञस्रुवसमिधलक्षणवर्णनम्।

परिधायाहतं वास प्रावृत्य च यथाविधि।
बिभृयात् प्राङ्मुखो यन्त्रमावृता वक्ष्यमाणया ॥१॥

धुला हुआ वस्त्र धारण कर, विधि के अनुसार (यन्त्र की) प्रदक्षिणा करके, पूर्वाभिमुख होकर आगे कहे जाने वाले क्रम से यन्त्र को धारण करे।

चत्रवृध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ।
कृत्वोत्तराग्रामरणिं तद् वृध्नमुपरि न्यसेत् ।।२।।

बुद्धिमान् मनुष्य चत्र और वृध्न को और प्रमन्थ के अग्रभाग को जोर से पकड़कर अरणि के अग्रभाग को ऊपर करके उस वृध्न को ऊपर रख दे।

चत्राधःकीलकाग्रस्थामोविलीमुदगग्रकाम् ।
विष्टम्भाद्धारयेद्यन्त्रं निष्कम्पं प्रयतः शुचिः ।।३।।

चत्र के नीचे की कील के अग्र भाग में टिकी हुई और ऊपर को उठे अग्र भाग वाली ओविली को थामकर जितेन्द्रिय और पवित्र यजमान बिना हिले-डुले यन्त्र को धारण करे।

त्रिरुद्वेष्ट्याथ नेत्रेण चत्रं पत्न्यो हृतांशुकाः ।
पूर्वं मथ्नन्त्यरण्यान्त्याः प्राच्यग्नेः स्याद्यथा च्युतिः ।।४।।

उसके पश्चात् नए कपड़ों वाली (यजमान-)पत्नियां चत्र को नेत्र (नेती) से तीन बार लपेट कर (यजमान से) पूर्व इस प्रकार मथे जिससे अग्नि का पात पूर्व दिशा में हो।

नैकयापि विना कार्य्यमाधानं भार्य्यया द्विजैः ।
अकृतं तद्विजानीयात् सर्व्वान्वाचारभन्ति यत् ।।५।।

द्विजों को एक भी पत्नी के बिना अग्न्याधान नहीं करना चाहिये। (यदि कर लिया जाए) तो उसे न किया हुआ ही जानना चाहिये, क्योंकि वे सब को वाणी से वश में करती है।

वर्णज्यैष्ठ्येन बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः ।
कार्य्यमग्निच्युतेराभिः साध्वीभिर्मथनं पुनः ।।६।।

यदि बहुत सी पत्नियां हों तो उनमें जो ज्येष्ठ वर्ण की हो उसके साथ, यदि सभी समान वर्ण की हों तो जो जन्म से (अवस्था में) बड़ी हो उसके साथ अग्न्याधान करना चाहिये। यदि अग्नि बुझ जाए तो इन साध्वी पत्नियों के द्वारा पुनः अग्नि को मथा जाना चाहिये।

नात्र शूद्रीं प्रयुञ्जीत न द्रोहद्वेषकारिणीम् ।
न चैवाव्रतस्थां नान्यपुंसा च सह सङ्गताम् ।।७।।

इस (अग्नि-मन्थन) कार्य मे न तो शूद्र वर्ण की पत्नी को नियुक्त करे, न द्रोह और द्वेष करने वाली को, न ही व्रत का पालन न करने वाली को और न ही अन्य पुरुष का सहवास करने वाली को (नियुक्त करे)।

ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरापि वा ।
उपेतानां वान्यतमा मन्थेदग्निं निकामतः ॥८॥

उसके पश्चात् जो इन में से अधिक शक्ति वाली हो, चाहे वह कोई सी हो, अथवा (यज्ञ मे) आई हुई मे से कोई सी हो, इच्छानुसार अग्निमन्थन करे ।

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च ।
आधाय समिधं चैव ब्रह्माणं चोपवेशयेत् ॥९॥

जब वह उत्पन्न हो जाए तो धरती पर रेखाओं से उसका लक्षण बनाकर, उसको (यज्ञशाला) में ले जाकर, प्रज्वलित कर और उसपर समिधाओं का आधान करके ब्रह्मा को (वहां) बिठाए ।

ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्वमन्त्रसमन्विताम् ।
गां दद्याद् यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥१०॥

उसके पश्चात् सब मन्त्रों से युक्त पूर्णाहुति करके यजमान ब्रह्मा को गाय दे और वस्त्रों का जोड़ा दे ।

होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये स्रुवः स्मृतः ।
पाणिरेवेतरस्मिंस्तु स्रुचैवात्र तु हूयते ॥११॥

जहां होम पात्र का नामोल्लेख न हो, वहां पिघले द्रव्य (घी आदि) के प्रसङ्ग में पात्र से स्रुव का ग्रहण करना चाहिये, अन्य प्रसंग में हाथ समझा जाना चाहिये । यज्ञ में स्रुक् के द्वारा ही होम किया जाता है।

खादिरो वाऽथ पालाशो द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः ।
स्रुग्बाहुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥१२॥

खैर की लकड़ी का बना हुआ अथवा पलाश (ढाक) की लकड़ी का बना हुआ दो बालिश्त का स्रुवा होता है । स्रुक् भुजा के प्रमाण की होती है । इन दोनों के पकड़ने का स्थान (दस्ता) गोल होता है ।

स्रुवाग्रे घ्राणवत् खातं द्व्यङ्गुष्ठपरिमण्डलम् ।
जुह्वाः शराववत् खातं सनिर्वाहं षडङ्गुलम् ॥१३॥

स्रुव के अग्रभाग में नालिका के समान दो-अंगुष्ठ प्रमाण के घेरे वाला गड्ढा होता है। जुहू का गड्ढा शराव (शिकोरे) के समान, परनाले वाला और छः अङ्गुल के प्रमाण का होता है।

तेषां प्राक्शः कुशैः कार्य्यः संप्रमार्गो जुहूषता।
प्रतापनञ्च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥१४॥

होम करना चाहने वाले के द्वारा पूर्वकथित क्रम से उनका कुशाओं से प्रमार्जन (मँजाई) करना चाहिये। यदि वे घी आदि से लिप्त हों तो उन्हें गर्म पानी से धोकर तपा लेना चाहिये।

प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः।
तत्तथासादयेद् द्रव्य यद्यथा विनियुज्यते ॥१५॥

पूर्व-पूर्व द्रव्य को उत्तर की अग्नि के समीप उत्तर की ओर आगे की तरफ इस प्रकार रखे जिस प्रकार उसका विनियोग किया गया है।

आज्यं हव्यमनादेशे जुहोति च विधीयते।
मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥१६॥

यजन करते समय यदि द्रव्य का नामोल्लेख न हो तो आज्य (पिघला घी) ही हव्य होता है, ऐसा विधान है। यदि मन्त्र के देवता का नामोल्लेख नहीं है तो प्रजापति ही उस मन्त्र का देवता होता है, ऐसी स्थिति है।

नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित् स्थूलतया क्वचित्।
न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥१७॥

(यज्ञ में) कहीं भी मोटाई में अंगूठे से अधिक मोटी समिधा ग्राह्य नहीं है, न ही वक्कल से हीन, न कीड़ों वाली और न ही फाड़ी हुई (ग्राह्य है)।

प्रादेशान्नाधिका नोना तथा न स्याद्विशाखिका।
न सपर्णा न निर्व्वीर्य्या होमेषु च विजानता ॥१८॥

ज्ञानवान् (याज्ञिक) को होम में (ऐसी समिधा का प्रयोग करना चाहिये), जो बालिश्त से न अधिक हो न कम हो, तथा शाखाओं से हीन न हो, न पत्तों वाली हो और न बेजान (थोथी) हो।

प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं परिकीर्तितम्।
एवंविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्म्मसु ॥१९॥

ईंधन का प्रमाण दो बालिश्त कहा गया है। इस (यज्ञ-कार्य) में सब क्रियाओं में समिधाएं इस प्रकार की ही होनी चाहियें।

समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ।

दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्यासु विंशतिः ॥२०॥

विद्वान् लोग दर्श (अमावस के यज्ञ) और पौर्णमास (पूर्णिमा के यज्ञ) में ईंधन की अठारह समिधाएं बताते है, अन्य क्रियाओं में बीस।

समिदादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता ।

पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च हीन्धनार्थं समिद्भवेत् ॥२१॥

समिधा आदि वाले होमों में पहले और पीछे ईंधन के लिये देवता और मन्त्र से रहित समिधा होती है।

इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्हविराहुतिषु स्मृतः ।

यत्र चास्य निवृत्तिः स्यात्तत् स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥२२॥

अग्निप्रज्वालन के लिये जो ईंधन है, आचार्यों के द्वारा वह आहुतियों में हवि के रूप में भी माना गया है। जहां इस को प्रवृत्ति नहीं है मैं उसे स्पष्ट करता हूँ।

अङ्गहोमसमित्तन्त्रसोष्यन्त्याख्येषु कर्मसु ।

येषां चैतदुपर्य्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥२३॥

अक्षभङ्गादिविपदि जलहोमादिकर्म्मणि ।

सोमाहुतिषु सर्व्वासु नैतेष्विध्म विधीयते ॥२४॥

अंगहोम (जो किसी बड़े यज्ञ के अंग के रूप में किया जा रहा हो), समितन्त्र, सोष्यन्ती (गर्भाधान आदि) नामक कर्मों में, जिनके सम्बन्ध में यह बात पहले कही जा चुकी है, उसी प्रकार के अन्य कर्मों में, नेत्र-भङ्ग (आंख का फूटना) आदि विपत्ति में, जल-होम आदि के कर्म में, सोम और अदिति के निमित्त की गई सभी क्रियाओं में, इन सब में इध्म का विधान नहीं है।

इति अष्टमः खण्डः ।

॥ नवमः खण्डः ॥

अथ सन्ध्याकालाद्युद्दिश्य कर्मवर्णनम् ।

सूर्य्येऽस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदाङ्गुलैः ।

प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासाञ्च दर्शनात् ॥१॥

सदा सूर्य के अस्ताचल पर पहुंचने से पूर्व उसके छत्तीस अंगुल ऊपर रहते हुए (सायंकाल में) और सूर्यरश्मियों के दीखने पर (प्रातः काल में) अग्नियों को प्रज्वलित करे।

हस्तादूर्द्ध्वं रविर्यावत् गिरिं हित्वा न गच्छति।
तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥२॥

जब तक सूर्य (उदय)गिरि को छोड़ कर एक हाथ ऊपर नहीं चला जाता, तब तक प्रातःकाल में होम करने वालों की पवित्र होम-विधि का अतिक्रमण नहीं होता।

यावत् सम्यग् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः।
न च लौहित्यमापैति तावत् सायञ्च हूयते ॥३॥

जब तक आकाश में सब ओर तारे भली प्रकार नहीं दिखाई देते, और जब तक आकाश की लाली दूर नहीं हो जाती तब तक सायंकाल में हवन किया जाता है।

रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ।
सन्ध्यामुद्दिश्य जुहुयाद् हुतमस्य न लुप्यते ॥४॥

सूर्य के धूल, धुन्ध, धूएं, बादल और वृक्षों की चोटियों से ढके होने पर सन्ध्याकाल (प्रातः-सायं) के उद्देश्य से हवन करे, उसका किया हुआ होम नष्ट नहीं होता।

न कुर्य्यात् क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम्।
विरूपाक्षञ्च न जपेत् प्रपदञ्च विवर्जयेत् ॥५॥

क्षिप्रहोमों में द्विज परिसमूहन (कुशाओं से वेदि की सफाई) न करे, वैरूपाक्ष मन्त्र को न जपे और प्रपद[1] को भी छोड़ दे।

पर्य्युक्षणञ्च सर्वत्र कर्त्तव्यमदितेन्विति।
अन्ते च वामदेवस्य गानं कुर्य्यादृचस्त्रिधा ॥६॥

अदिते ऽनु मन्यस्व (तै० सं० 2 3 1.2.) आदि मन्त्रों से सर्वत्र जल का छिड़काव करना चाहिये। और अन्त में वामदेव की ऋचा का तीन बार गान करे।

---

१. प्रपद एक विशेष प्रकार के उच्चारण का नाम है, जिसमें वैदिक मन्त्रों को उनके अर्थ और रचना पर ध्यान न देते हुए अक्षरों की बराबर संख्या वाले भागों में विभक्त कर लिया जाता है, और इन भागों के बीच में 'प्रपद्ये' शब्द से युक्त विशेष वाक्यांश डाल दिये जाते हैं।

अहोमकेष्वपि भवेद् यथोक्तं चन्द्रदर्शनम् ।
वामदेव्यं गणेष्वन्ते कल्पान्ते वैश्वदेविके ॥७॥

जिन कर्मों में होम नहीं होता उनमें चन्द्रमा का दर्शन तो यथोक्त प्रकार से होता है। (यज्ञों के) गणों (समूहों) के अन्त में और बलिवैश्वदेव के अन्त में वामदेव्य मन्त्र का जाप होता है।

यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ।
एककार्य्यार्थसाध्यत्वात् परिधीनपि वर्जयेत् ॥८॥

जिन कर्मों के करते समय पहले से ही कुशाए बिछी हुई हों उनमे कुशाएं नहीं बिछाई जाती। एक कार्य का प्रयोजन साध्य होने के कारण परिधियां (यज्ञकुण्ड के चारों ओर बनाई जाने वाली मर्यादाए) भी वर्जित होती हैं।

बर्हिः पर्य्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ।
कृत्वाहुतिषु सर्वासु त्रिकमेतन्न विद्यते ॥९॥

बर्हि (कुशाओं को बिछाना), पर्युक्षण (जल का छिड़काव) और वामदेव्य (सोममन्त्रों) का जप—ये तीन क्रियाए यज्ञ की सब आहुतियों में नहीं होतीं (अर्थात् कहीं होती है, कहीं नहीं)।

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ।
माषकोद्रवगौरादि सर्व्वालाभेऽपि वर्जयेत् ॥१०॥

हविष्यों (हवि के पदार्थो) में जौ मुख्य है। उसके पश्चात् व्रीहि (चावल) माने गए हैं। इन सब के न मिलने पर भी माष (उड़द), कोदों, पीली सरसों आदि की आहुति वर्जित है।

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका
कंसादिना चेत् स्रुवमात्रपूरिका ।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः
स्वङ्गारिणि स्वर्च्चिषि तच्च पावके ॥११॥

जो आहुति हाथ से दी जाती है वह चारों अंगुलियों के) बारह पर्वो को भरकर देनी चाहिये। अगर कंस आदि (पात्र) से दी जाए तो स्रुवा की मात्रा में भर कर देनी चाहिये। हवि (आहुति) दैव तीर्थ (अंगुलियो के अग्र भाग) से देनी चाहिये और वह उत्तम अंगारों वाली और उत्तम लपटों वाली अग्नि में दी जानी चाहिये।

योऽनर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥१२॥

जो मनुष्य बिना लपटों वाली और बिना अगारों वाली अग्नि में हवन करता है वह मन्दाग्नि, रोगी और दरिद्र हो जाता है ।

तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीम्पराम् ॥१३॥

इस लिये आरोग्य, आयु और अत्यधिक परम श्री को चाहने वाले मनुष्य को भली प्रकार प्रज्वलित अग्नि में ही आहुति डालनी चाहिये, अप्रज्वलित में कभी नहीं ।

होतव्ये च हुते चैव पाणिसूर्पस्फ्यदारुभिः ।
न कुर्य्यादग्निधमनं कुर्य्याद्वा व्यजनादिना ॥१४॥

जिस अग्नि में हवन करना है, अथवा कर लिया गया है उसमें हाथ, सूप या स्फ्य (यज्ञ मे काम आने वाला लकड़ी का चपटा, तलवार जैसा बना एक औजार) और लकड़ी से हवा नहीं करनी चाहिये । करनी ही पड़े तो पंखे आदि से करे ।

मुखेनैके धमन्त्यग्नि मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ।
नाग्नि मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत् ॥१५॥

कुछ लोग मुख से अग्नि में फूंक मारते है, क्योंकि यह अग्नि मुख से ही उत्पन्न हुई है । यह जो कहा गया है कि अग्नि में मुह से फूंक न मारे उसे वे लौकिक अग्नि से जोड़ते है (अर्थात् लौकिक अग्नि के बारे में बताते है) ।

इति नवमः खण्डः ।

॥ दशमः खण्डः ॥

अथ प्रातःकालिकस्नानादिक्रियावर्णनम् ।

यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः ।
दन्तान् प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ॥१॥

रोग-रहित मनुष्य जिस प्रकार दिन में उसी प्रकार प्रातःकाल में दांत साफ करके नदी आदि में नित्य स्नान करे। यदि घर में करे तो वह बिना मन्त्रोच्चारण के करे।

नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टाङ्गुलमपाटितम् ।
सत्वच दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ।।२।।

जो दातुन नारद आदि ऋषियों द्वारा बताए वृक्षों की हो, आठ अंगुल के प्रमाण की हो, बिना फटी हो, वक्कल वाली हो, उसके अग्रभाग से (दांतों को) भली प्रकार साफ करे।

उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेद्दन्तधावनम् ।।३।।

उठकर, आंखे धोकर, सावधानी के साथ शौच आदि से निवृत्त होकर, मन्त्र का जप करके दातुन को चबाए।

आयुर्बलं यशो वर्च्चः प्रजाः पशून् वसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वन्नो धेहि वनस्पते ।।४।।

(मन्त्र यह है) "हे वनस्पते (वृक्षों के स्वामी) तू हमें आयु, बल, यश, तेज, उत्तम सन्तान, पशु, धन, वेद, प्रज्ञा और मेधा दे।"

मासद्वयं श्रावणादि सर्व्वा नद्यो रजस्वलाः ।
तासु स्नानं न कुर्व्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ।।५।।

श्रावण आदि दो महीनों में सब नदियां रजस्वला (गधली) होती है। समुद्रगा नदियों को छोड़कर उनमें स्नान न करे।

धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ।
न ता नदीः शब्दवहा गर्त्तान्ताः परिकीर्तिताः ।।६।।

जिन नदियों की गति आठ हजार धनुष[1] तक नहीं है (अर्थात् जो आठ हजार धनुष तक नहीं जातीं, उन्हे नदी शब्द से नहीं पुकारा जाता। वे तो गर्त कहलाती हैं।

उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ।।७।।

---

१. एक धनुष चार हाथ के बराबर होता है।

उपाकर्म[1] से, (वेदाभ्यास के) उत्सर्ग में, तथा प्रेत के निमित्त किये गए स्नान में, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में रजोदोष नहीं होता (अर्थात् गंधले पानी में स्नान करने से दोष नहीं लगता)।

वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ।
जलार्थिनोऽथ पितरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥८॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः ।
यियासूननुगच्छन्ति सन्तुष्टाः स्वशरीरिणः ॥९॥

वेद, सब छन्द ब्रह्मा आदि देवता, जल चाहने वाले पितर, और उसी प्रकार मरीचि आदि ऋषि प्रसन्नचित्त हो अपने शरीरों के साथ, उपाकर्म और उत्सर्ग में स्नान के लिये जाते हुए ब्रह्मवादियों का अनुगमन करते हैं।

समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्यादयो मलाः ।
नूनं सर्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥१०॥

जहाँ इनका समागम होता है वहाँ हत्या आदि दोष निश्चित रूप से सबके सब क्षीण हो जाते हैं, नदी के गंधले जल में स्नान करने से उत्पन्न एक मात्र दोष की तो बात ही क्या है।

ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ।
संपिबेद् यः शरीरेण पर्षन्मुक्तजलच्छटाः ॥११॥
विद्यादीन् ब्राह्मणः कामान् वरादीन् कन्यका ध्रुवम् ।
आमुष्मिकाण्यपि सुखान्याप्नुयात् स न संशयः ॥१२॥

(जल से) सींचे जाते हुए ऋषियों के मध्य में स्थित भीगता हुआ जो मनुष्य उनके शरीर से छूटे हुए जल-समूह को अपने शरीर से पीता है, वह यदि ब्राह्मण है तो विद्या आदि मनोरथों को और कन्या निश्चित रूप से वर को प्राप्त करती है। ऐसा वह मनुष्य पारलौकिक सुखों को भी प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं।

अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्तर्जलादिना ।
अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥१३॥

---

१. वर्षाकाल के पश्चात् वेदाध्ययन से पूर्व किये जाने वाले कर्म को उपाकर्म कहते हैं। यह श्रावणी को होता है।

अपवित्र, जल के अन्दर स्थित मनुष्य के द्वारा अपवित्र, कच्चे (गन्धले) दिये हुए जल को जिनको मरे अभी दस दिन नही बीते ऐसे प्रेत और राक्षस पीते हैं।

स्वर्धुन्यम्भःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले।
कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥१४॥

चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण मे पृथ्वी पर स्थित सभी जल और कूए मे स्थित जल भी (स्नान के लिये) गङ्गाजल के समान होते है, इसमें संशय नहीं है।

इति दशमः खण्डः।

॥ एकादशः खण्ड ॥

अथ सन्ध्योपासनविधिवर्णनम्।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम्।
अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः ॥१॥

इससे आगे मै सन्ध्योपासन की विधि का प्रवचन करूंगा, क्योंकि सन्ध्या से हीन ब्राह्मण सब कर्मो के अयोग्य माना गया है।

सव्ये पाणौ कुशान् कृत्वा कुर्यादाचमनक्रियाम्।
ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु बर्हिषः ॥२॥

बाए हाथ मे कुशाओं को लेकर आचमन की क्रिया करे। छोटी, काम में लाई जाने योग्य कुशाएं होती हैं, लम्बी बर्हि कहलाती है।

दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः सन्ध्यादिकर्मणि।
सव्यः सोपग्रहः कार्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥३॥

इस लिये सन्ध्या आदि कर्म मे कुशाओं को पवित्र कहा गया है। बायें हाथ को उपग्रह (मुट्ठी भर कुशाओं) से युक्त करे और दाहिने को पवित्र से।

रक्षयेद्वारिणात्मानं परिक्षिप्य समन्ततः।
शिरसो मार्जनं कुर्यात् कुशैः सोदकबिन्दुभिः ॥४॥

जल को शरीर के सब ओर फैंक कर उससे अपनी रक्षा करे। जल की बूंदों वाली कुशाओं से सिर का मार्जन करे।

प्रणवो भूर्भुवःस्वश्च सावित्री च तृतीयका।
अब्दैवत्यं त्र्यृचञ्चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥५॥

प्रणव (ओम्), भूर्भुवः स्वः (यह व्याहृति), और तीसरी सावित्री (गायत्री), और चौथी जल देवता वाली (आपो हि ष्ठा इत्यादि) तीन ऋचाएं, यह मार्जन है।

भूराद्यास्तिस्र एवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
महर्जनस्तपः सत्यं गायत्री च शिरस्तथा ॥६॥

भूः आदि (अर्थात् भूः भुवः स्वः) ये तीन अव्यय (नष्ट न होने वाली) तीन महाव्याहृतियां है। महः, जनः, तपः, सत्य और गायत्री तथा शिर भी अव्यय ही हैं।

आपोज्योतीरमोऽमृत ब्रह्मभूर्भुवः स्वरिति शिरः।
प्रतिप्रतीक प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥७॥

'आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वः' यह शिर (मन्त्र) है। प्रत्येक मन्त्र के पूर्व और शिर के अन्त मे, प्रणव का उच्चारण करे।

एता एतां सहानेन तथैभिर्दशभिः सह।
त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥८॥

इन (सात व्याहृतियों) का, इस गायत्री), इस शिर और ओंकार सहित इन दस के साथ सांस को रोक कर यदि तीन बार जप करे तो वह प्राणायाम कहा जाता है।

करेणोद्धृत्य सलिल घ्राणमासज्य तत्र च।
जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥९॥

हाथ से जल उठाकर और उसमें नासिका को लगाकर प्राणो को रोक कर अथवा बिना रोके तीन बार अथवा एक बार अघमर्षण (ऋतं च सत्य च आदि) मन्त्र का जप करे।

उत्थायार्कं प्रतिप्रोहेत्त्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः।
उच्चित्रमृग्द्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥१०॥

उठकर सूर्य के प्रति जल की तीन अञ्जलियां समर्पित करे। और उसके

पश्चात् 'उदु त्य जातवेदस०' (ऋ० १ ५०.१.) और चित्र देवानाम्० (ऋ० १.११५.१.) इन दो ऋचाओं से उसकी स्तुति करे।

सन्ध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ।
मध्ये त्वह्न उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥११॥

ज्ञानवान् कहते हैं कि दोनो सन्ध्याओं में (सूर्य का) यही उपस्थान (स्तुति) है। दिन के मध्य भाग (मध्याह्न) मे यदि इसे करे तो इसके साथ विभ्राड् (ऋ० १०.१७०.१.) आदि का स्वेच्छा से जप करे।

तदससक्तपार्ष्णिर्वा एकपादर्द्धपादपि ।
कुर्यात् कृताञ्जलिर्वापि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा ॥१२॥

(सूर्य की) उस (स्तुति) को धरती पर बिना एड़ी टिकाए, या एक पाँव पर खड़े होकर, या आधे पाँव पर खड़े होकर, हाथ जोड़ कर अथवा भुजाएं ऊपर को उठा कर करे।

यत्र स्यात् कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ।
भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते ॥१३॥

जिस कार्य में कष्ट अत्यधिक होता है, ज्ञानवान् उसमें कल्याण भी अत्यधिक बताते हैं, क्योंकि कष्ट से ही कल्याण प्राप्त होता है।

तिष्ठेदुदयनात् पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः ।
आसीनोद्गमाच्चान्त्यां सन्ध्यां पूर्वत्रिकं जपन् ॥१४॥

पूर्वा (प्रातःकालीन) सध्या को सूर्योदय से पूर्व खड़ा होकर, मध्यमा (मध्याह्न की) संध्या को भी यथाशक्ति खड़ा होकर और अन्त्या (सायंकालीन) सन्ध्या को तारागण के उदय से पूर्व बैठ कर पूर्वोक्त तीन मन्त्रो का जप करता हुआ करे।

एतत् सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति ।
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥१५॥

ये तीन सध्याएं कही गई हैं, जिन में ब्राह्मणत्व की स्थिति है। जिसकी इनमें आस्था नही है, वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं है।

सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ।
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥१६॥

जिसे सन्ध्या न करने से भय होता है और जो सदा स्नान करने के

स्वभाव वाला है, दोष उसके पास इस प्रकार नहीं फटकते, जिस प्रकार गरुड़ के पास सांप।

वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्ज्जपेत्।
उपतिष्ठेत्ततो रुद्र सर्वाद्वा वैदिकाज्जपात् ॥१७॥

वेद को आदि से आरम्भ करके यथाशक्ति प्रतिदिन उसका पाठ करे। उस वैदिक जप के पश्चात् अथवा पूर्व रुद्र की स्तुति करे।

इति एकादशः खण्ड.।

॥ द्वादश. खण्ड. ॥

अथ तर्पणविधिवर्णनम्।

अथाद्भिस्तर्पयेद्देवान् सतिलाभिः पितॄनपि।
नमोऽन्ते तर्पयामीति आदावोमिति च ब्रुवन् ॥१

फिर आदि मे ओम् और अन्त में 'नम' तर्पयामि' ('ओं ब्रह्मणे नमस्तर्पयामि' आदि) का उच्चारण करते हुए जलों से देवो का तर्पण करे और तिलों वाले जलों से पितरों का।

ब्रह्माणं विष्णुं रुद्र प्रजापति वेदान् देवांश्छन्दांस्यृषीन् पुराणानाचार्यान् गन्धर्वानितरान्मास संवत्सर सावयवं देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान् सागरान् पर्वतान् सरितो दिव्यान् मनुष्यानितरान् मनुष्यान् यक्षान् रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान् पृथिवीमोषधी पशून् वनस्पतीन् भूतग्रामं चतुर्विधमित्युपवीत्यथप्राचीनावीती यम यमपुरुषान् कव्यवाहमनल सोम यममर्य्यमणमग्निष्वात्तान् सोमपीथान् बर्हिषदोऽथ स्वान् पितॄन् सकृत् सकृन्मातामहाश्चेति प्रतिपुरुषमभ्यस्येज्ज्येष्ठभ्रातृश्वशुरपितृव्यमातुलाश्च पितृवशमातृवंशौ ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति तास्तर्पयामीत्ययमवसानाञ्जलिरथ श्लोका. ॥२॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, वेदों, देवों, छन्दों, ऋषियों, प्राचीन आचार्यों, गन्धर्वों, अन्यों (यक्ष, किन्नर आदि), मास, अवयवों सहित संवत्सर, देवियों, अप्सराओं, देवों का अनुगमन करने वालों, नागों, सागरों, पर्वतों, नदियों, दिव्य मनुष्यों, अन्य मनुष्यों, यक्षों, राक्षसों, गरुड़ों, पिशाचों, पृथिवी, ओषधियों, पशुओं, वनस्पतियों चतुर्विध भूतग्राम का उपवीती होकर, और प्राचीनावीती होकर यम, यमपुरुषों, कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अयमा, अग्निष्वात्त (चिता की अग्नि मे संस्कृत अथवा अग्निहोत्र में प्रमाद करने वाला पितरों का एक वर्ग), सोमपान करने वालों (सोमपीथ), और कुशासन पर बैठने वालों और उसके पश्चात् अपने पितरों और मातामहों का एक-एक बार तर्पण करे। प्रत्येक पुरुष को नाम लेकर बुलाए। ज्येष्ठ भ्राता, श्वशुर, चाचाओं और मामाओं का, पितृवंश और मातृवंश वालों का और जो अन्य मुझसे जल के भागी है, उन सबको मैं तर्पण करता हूं। यह अन्तिम अञ्जलि है। इसके पश्चात् ये श्लोक है-

छायां यथेच्छेच्छरदातपार्तः
पयः पिपासुः क्षुधितोऽलमन्नम् ।
बालो जनित्रीं जननी च बालं
योषित् पुमांसं पुरुषश्च योषाम् ॥३॥
तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्धि सः ॥४॥

शरद् काल की धूप से पीडित मनुष्य जिस प्रकार छाया की इच्छा करता है, प्यासा पानी की, भूखा पर्याप्त अन्न की, बालक माता की, माता बालक की, स्त्री पुरुष की और पुरुष स्त्री की, उसी प्रकार स्थावर और जङ्गम सब प्राणी ब्राह्मण से जल की इच्छा करते है, क्योंकि वह सबका अभ्युदय करने वाला है।

तस्मात् सदैव कर्तव्यमकुर्वन्महतैनसा ।
युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन्विश्वमेतद्बिभर्ति हि ॥५॥

इस लिये सदा ही (तर्पण) करना चाहिये। तर्पण न करने वाला ब्राह्मण महापाप से युक्त हो जाता है, और (तर्पण) करता हुआ ब्राह्मण पुण्य से युक्त हो जाता है और इस समस्त (जगत) का भरण-पोषण करता है।

अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात् स्नानकर्मणः ।
प्रातर्न तनुयात् स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥६॥

होम का समय थोड़ा होने के कारण, स्नान का समय अधिक होने के कारण प्रातःकाल स्नान के समय को लम्बा न करे। (ऐसा न करने से होम का लोप होता है) और होम का लोप निन्दनीय है।

इति द्वादशः खण्डः।

॥ त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमहायज्ञविधिवर्णनम्।

पञ्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः।
यैरिष्ट्वा सततं विप्रः प्राप्नुयात् सद्म शाश्वतम् ॥१॥

अब पाँच महान् सत्रो (यज्ञों) की विधि कही जाती है, जिनके द्वारा निरन्तर यजन करके ब्राह्मण शाश्वत धाम को प्राप्त करता है।

देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात्।
महासत्राणि जानीयात् त एवेह महामखाः ॥२॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्ययज्ञ— इनको क्रमशः महायज्ञ जाने। ये ही इस लोक मे महायज्ञ है।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥३॥

अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, होम देवयज्ञ है, बलि देना भूतयज्ञ है और अतिथि सेवा मनुष्ययज्ञ है।

श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात् पित्र्यो बलिरथापि वा।
यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स वोच्यते ॥४॥

अथवा श्राद्ध या पितरों को बलि देना पितृयज्ञ होता है, और जो वेद का पाठ कहा गया है वह ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है।

स चार्वाक् तर्पणात् कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः।
वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रर्तौ निमित्तकात् ॥५॥

और वह तर्पण से पहले किया जाना चाहिये, या प्रातः के होम के पश्चात् अथवा वैश्यदेव के अवसान पर, किन्तु बिना किसी निमित्त के अन्य काल में न करे।

अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये।
अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥६॥

यदि अन्य भोक्ता अथवा भोजन उपलब्ध नहीं है तो देवयज्ञ (किन्हीं के विचार में बलिवैश्वदेव यज्ञ) के बिना ही पितृयज्ञ की सिद्धि के लिये एक ब्राह्मण को भोजन कराए।

अप्युद्धृत्य यथाशक्त्या किञ्चिदन्न यथाविधि।
पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥७॥

पितरों और मनुष्यों के निमित्त यथाशक्ति विधिपूर्वक कुछ अन्न निकाल कर प्रतिदिन ब्राह्मण को दे।

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत्।
हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदर्द्धे निनयेदपः ॥८॥

'पितृभ्य इदम्' ('यह पितरों के लिये है') ऐसा कहकर स्वधा शब्द का उच्चारण करे। 'मनुष्येभ्य इदम्' ('यह मनुष्यों के लिये है') ऐसा कहकर हन्त शब्द का उच्चारण करे। उसके बीच मे जल दे।

मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम्।
अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धप्रथमयामान्ते ॥९॥

मुनियों ने मर्त्यलोक में निवास करने वाले ब्राह्मणों के लिये दिन तथा रात्रि में, पहला डेढ पहर काल बीतने तक, नित्य दो बार भोजन करना कहा है।

साय प्रातर्वैश्वदेवः कर्त्तव्यो बलिकर्म च।
अनश्नतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥१०॥

यदि भोजन न करे तो भी सायं और प्रातः निरन्तर वैश्वदेव यज्ञ और बलिकर्म करे, नहीं तो पाप का भागी होता है।

अमुष्मै नम इत्येवं बलिदान विधीयते।
बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो यतः ॥११॥

"[1]अमुष्मै नमः' ('उसको नमस्कार है') ऐसा कहकर बलि देने का विधान है, क्योंकि बलि देने के लिये नमस्कार का विधान किया गया है।

स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम् ।
स्वधाकारः पितॄणाञ्च हन्तकारो नृणां कृतः ॥१२॥

देवताओं के लिये स्वाहा, वषट् और नमः शब्दों का, पितरों के लिये स्वधा शब्द का और मनुष्यों के लिये हन्त शब्द का विधान किया गया है।

स्वधाकारेण निनयेत् पित्र्यं बलिमतः सदा ।
तदप्येके नमस्कारं कुर्वते नेति गौतमः ॥१३॥

इस लिये स्वधा कहकर पितरों को बलि दें। कुछ आचार्य इस नमस्कार का विधान करते हैं, किन्तु गौतम का यह मत नहीं है।

नावराद्ध्यर्या बलयो भवन्ति महामार्गश्रवणप्रमाणात् ।
एकत्र चेदविकृष्टा भवन्तीतरेतरससक्ताश्च ॥१४॥

अपनी ऋद्धि से घटिया बलियां नहीं दी जाती (अर्थात् बलि अपनी समृद्धि के अनुसार देनी चाहिये)। सनातन परम्परा का जो श्रवण (जनश्रुति) है, वही इसमें प्रमाण है। यदि व्यवधान न हो और एक दूसरे से सम्बद्ध हों तो बलियां एक स्थान पर ही दे देनी चाहिये।

इति त्रयोदशः खण्डः ।

॥ चतुर्दशः खण्डः ॥

अथ ब्रह्मयज्ञविधिवर्णनम् ।

अथ तद्विन्यासो वृद्धिपिण्डानिवोत्तरांश्चतुरो बलीन्निदध्यात् पृथिव्यै वायवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः प्रजापतय इति सव्यत एतेषामेकैकमद्भ्य ओषधिवनस्पतिभ्य आकाशाय कामायेत्येतेषामपि मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येतेषामपि

---

१ 'अमुष्मै' के स्थान पर जिसे नमस्कार किया जा रहा है, उसे रखे; यथा—'ब्रह्मणे नमः' आदि।

रक्षोजनेभ्य इति सर्वेषां दक्षिणत. पितृभ्य इति चतुर्दश
नित्या आशस्थप्रभृतय. काम्याः सर्वेषामुभयतोऽद्भिः परिषेक
पिण्डवच्च पश्चिमा प्रतिपत्तिः ।।१।।

अब उस (बलि) के विन्यास को कहा जा रहा है –वृद्धिपिण्डों (नान्दीमुख के पिण्डों) जैसी चार बलियो को—'यह पृथिवी के लिये है', 'यह विश्वेदेवों के लिये है', 'यह प्रजापति के लिये है' ऐसा कहकर उत्तर की ओर रखे। इनके दक्षिण की ओर एक एक बलि जलों, ओषधि और वनस्पति, आकाश और काम के लिये, इनसे भी (दक्षिण की ओर) मन्यु, इन्द्र, वासुकि और ब्रह्मा के लिये, इनसे भी (दक्षिण की ओर) राक्षसजनों के लिये। सबसे दक्षिण की ओर पितरों के लिये। आशस्य आदि ये चौदह बलिया नित्य और कामना के योग्य है। सब के दोनों ओर जलों से परिषेक (सिञ्चन) हो। इससे पिछली क्रिया पिण्ड की क्रिया के समान है।

न स्यातां काम्यसामान्ये जुहोतिबलिकर्मणी ।
पूर्वं नित्यविशेषोक्त जुहोतिबलिकर्मणो. ।।२।।

होम और बलि-कर्म सामान्य काम्य कर्म नही होते, क्योंकि होम और बलि-कर्म को पहले नित्य और विशेष कहा गया है।

काममन्ते भवेयातां न तु मध्ये कदाचन ।
नैकस्मिन् कर्मणि तते कर्मान्यत्तायते यतः ।।३।।

भले ही ये अन्त में कर लिये जाए, पर मध्य मे कभी नही किये जाते, क्योंकि एक कर्म का फैलाव होते हुए दूसरे कर्म का विस्तार नही किया जाता।

अग्न्यादिर्गोतमाद्युक्तो होमः शाकल एव च ।
अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बलिभिः सह ।।४।।

गोतम आदि के द्वारा विहित अग्नि आदि कर्म और शाकल के द्वारा विहित होम, यह बलियो सहित उसे भी करणीय है जिसने अग्नि का आधान नहीं किया है।

स्पृष्ट्वापो वीक्षमाणोऽग्निं कृताञ्जलिपुटस्ततः ।
वामदेव्यजपात् पूर्वं प्रार्थयेद् द्रविणोदयम् ।।५।।

उसके पश्चात् जलों का स्पर्श (आचमन) करके, अग्नि को देखता हुआ, हाथ जोड़े हुए वामदेव्य जप से पहले धन की वृद्धि की प्रार्थना करे।

आरोग्यमायुरैश्वर्य्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः ।
ओजो वर्च्चः पशून् वीर्यं ब्रह्म ब्रह्मण्यमेव च ॥६॥
सौभाग्य कर्मसिद्धिञ्च कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम् ।
सर्वमेतत् सर्वसाक्षिन् द्रविणोद रिरीहि णः ॥७॥

आरोग्य, आयु, ऐश्वर्य, धी, धृति, शान्ति, बल, यश, ओज, तेज, पशु, वीर्य, ज्ञान और ब्राह्मणत्व, सौभाग्य, कर्मसिद्धि, कुल की उत्तमता और शुभकर्म—यह सब हे सब के साक्षी धनद (कुबेर) हम मांगने वालों को दीजिये ।

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो
न तत्प्रदानात् परमस्ति दानम् ।
सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदाना
नान्तो दृष्टः कैश्चिदस्य द्विकस्य ॥८॥

ब्रह्मयज्ञ से बढ़कर यज्ञ नहीं है, और उस (वेद) के दान से बढ़कर दान नहीं है। दान सहित सब यज्ञ उसी के अन्त वाले हैं (अर्थात् सब यज्ञों का अवसान इसी यज्ञ में होता है)। किन्हीं के द्वारा इन दोनों का अन्त नहीं देखा गया ।

ऋचः पठन् मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत् सुरान् ।
घृतामृतौघकुल्याभिर्यजूंष्यपि पठन् सदा ॥९॥

ऋचाओं को पढ़ता हुआ (द्विज) मधु और दुग्ध की नदियों से देवों को तृप्त करे । सदा यजुः मन्त्रों को पढ़ता हुआ घी और अमृत समूह की नदियों से (देवों को तृप्त करे ।)

सामान्यपि पठन् सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ।
मेदःकुल्याभिरपि च आथर्वाङ्गिरसः पठन् ॥१०॥

प्रतिदिन साम मन्त्रों का पाठ करता हुआ सोम और घी की नदियों से, और अथर्व और अङ्गिरा ऋषियों के मन्त्रों (अथर्ववेद) को पढ़ने से मेद (चर्बी) की नदियों से (देवताओं को तृप्त करे) ।

मांसक्षीरौदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत् पठन् ।
वाकोवाक्यं पुराणानि इतिहासानि चान्वहम् ॥११॥

वाकोवाक्य, पुराण और इतिहास को प्रतिदिन पढ़ते हुए मांस, दूध, भात और मधु की नदियों से (देवताओं को) तृप्त करे ।

ऋगादीनामन्यतममेतेषां शक्तितोऽन्वहम् ।
पठन् मध्वाज्यकुल्याभिः पितॄनपि च तर्पयेत् ॥१२॥

इन ऋग्वेद आदि में से किसी एक को प्रतिदिन यथाशक्ति पढ़ता हुआ मधु और घी की नदियों से पितरों को भी तृप्त करे।

ते तृप्तास्तर्पयन्त्येन जीवन्तं प्रेतमेव च ।
कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसद्मसु ॥१३॥

तृप्त हुए वे पितर इस मनुष्य को जीते और मरे हुए को भी तृप्त करते हैं। यह सब सुरलोकों में स्वेच्छा से विचरण करने वाला हो जाता है।

गुर्व्वप्येनो न तं स्पृशेत् पंक्तिञ्चैव पुनाति सः ।
यं यं क्रतुञ्च पठति फलभाक्तस्य तस्य च ॥२४॥

बड़े से बड़ा पाप भी उसे छू नहीं पाता। वह जिस पंक्ति में बैठता है उसे पवित्र कर देता है। वह जिस-जिस यज्ञ कर्म का पाठ करता है उस उसके फल का भागी हो जाता है।

वसुपूर्णां वसुमतीं त्रिर्दानफलमाप्नुयात् ।
ब्रह्मयज्ञादपि ब्रह्मदानमेवातिरिच्यते ॥१५॥

धन से भरी धरती को तीन बार दान में देने से जो फल प्राप्त होता है (वही फल वेदविद्या के दान से होता है)। ब्रह्मदान (वेदविद्या का दान) ब्रह्मयज्ञ से भी बढ़ कर है।

इति चतुर्दशः खण्डः ।

॥ पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ यज्ञविधिवर्णनम् ।

ब्रह्मणो दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्तिता ।
कर्मान्तेऽनुच्यमानाऽपि पूर्णपात्रादिका भवेत् ॥१॥

जिस कर्म में जितनी दक्षिणा विहित है ब्रह्मा को उतनी दक्षिणा देनी चाहिये। यदि दक्षिणा कही नहीं गई है तो भी कर्म के अन्त में पात्र-भर या उसके अनुरूप दक्षिणा दे।

यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्ति. पर्णेन विद्यते ।
नावरार्द्धं गमत कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥२॥

जितने भरे पात्र से बहुभोजी की तृप्ति होती है, पूर्ण पात्र को उससे न कम करे यही मर्यादा है ।

विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्द्धहरो भवेत् ।
स्वयञ्चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ॥३॥

(यदि यह समझे कि) अन्य (अर्थात् ब्रह्मा) आधी दक्षिणा लेगा (और आधी होता लेगा) तो होता से ही कर्म करा ले। यदि दोनों कर्म (ब्रह्मा और होता का कर्म) स्वयं करे, तो दक्षिणा किसी और को दे दे। अर्थात् दक्षिणा अवश्य दे, स्वयं न रखे।

कुलर्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ।
नातिक्रामेत् सदा दित्सन् य इच्छेदात्मनो हितम् ॥४॥

यदि अपना हित अभीष्ट है तो दान देते समय पढ़े-लिखे कुल-ऋत्विज और निकटवर्ती गुरु का अतिक्रमण न करे ।

अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ।
नैतावपृष्ट्वा ददतः पात्रेऽपि फलमस्ति हि ॥५॥

'मैं इसे दे रहा हूं' इस प्रकार कहकर दान दिया जाता है। इन दोनों (कुल-पुरोहित और गुरु) को पूछे बिना पात्र को दान देने पर भी फल की प्राप्ति नहीं होती।

दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् ।
इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥६॥

दूर देश में स्थित भी इन दोनों को मन से उत्तम वस्तु दान में देकर उसके बाद दूसरों को दान दे।। यही दान की उत्तम विधि है।

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
यद्ददाति तमुल्लङ्घ्य ततः स्तेयेन युज्यते ॥७॥

निकट में विद्यमान अधीत ब्राह्मण का जो उल्लंघन करता है, और इस प्रकार उसका उल्लंघन करके जो दान देता है, वह चोरी का भागी होता है ।

यस्य त्वेको गृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः ।
गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥८॥

अनपढ़ (ब्राह्मण) जिसके अपने घर में है और गुणवान् दूर है, उसे गुणवान् को ही दान देना चाहिये, ऐसा करने से उल्लंघन नहीं होता।

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥९॥

वेद से हीन ब्राह्मण को छोड़कर ज्ञानवान् ब्राह्मण को देने से ब्राह्मण का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि प्रज्वलित अग्नि को छोड़कर राख में हवन नहीं किया जाता।

आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा।
महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥१०॥

आज्य (पिघले हुए घी) की सब आहुतियाँ देने में प्रकाशमान द्रव्य (सुवर्ण) से बनी आज्य-स्थाली (घृत-पात्र) का प्रयोग करना चाहिये, अथवा मिट्टी से बनी आज्य-स्थाली का।

आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामन्तु कारयेत्।
सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते ॥११॥

आज्यस्थाली (घृतपात्र) का प्रमाण इच्छानुसार रखे। (विद्वान्) मजबूत, छेदरहित और सुन्दर को ही आज्यस्थाली कहते हैं।

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी।
मृन्मय्यौदुम्बरी वाऽपि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥१२॥

तिरछी और ऊँची, समिधा के माप वाली, मजबूत और जिस का मुंह बहुत बड़ा न हो, जो मिट्टी से बनी हुई या उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी से बनी हुई हो, वह चरुस्थाली (साकल्य-पात्र) बढ़िया होता है।

स्वशाखोक्तः प्रसुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः।
न चातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥१३॥

अपनी शाखा में विहित भली प्रकार पकाया हुआ, बिना जला हुआ, कोमल, सुन्दर, जो अधिक ढीला न हो और जो नीरस न हो, ऐसा चरु पकाना चाहिये।

इध्मजातीयमिध्मार्द्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत्।
वृत्तं चाङ्गुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् ॥१४॥

इंधन की जाति का अर्थात् जिस वृक्ष की लकड़ी का इंधन हो उसी वृक्ष की लकड़ी का बना हुआ), ईंधन के प्रमाण से आधे प्रमाण वाला, गोल, अंगूठे

के समान मोटे अग्र-भाग वाला और (चरु को) निकालने की क्रिया में समर्थ मेक्षण (कड़छी) होता है।

एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे ।
दर्वी द्व्यङ्गुलपृथ्वग्रा तुरीयोऽनन्तमेक्षणम् ।।१५।।

यही दर्वी (कड़छी) होती है । जो इसमें विशेष है वह मैं बताता हूं । दर्वी दो अंगुल मोटे अग्रभाग वाली होती है। मेक्षण उससे चौथाई भाग कम मोटा होता है ।

मुसलोलूखले वार्क्षे स्वायत्ते सुदृढे तथा ।
इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च ।।१६।।

मूसल और ओखल वृक्ष (की लकड़ी) के बने हुए, खूब चौड़े तथा सुदृढ़ और इच्छानुसार प्रमाण वाले होते हैं। और सूप (छाज) वेणु (बांस) का ही होना है ।

दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च ।
करं करस्य कुर्वीत करणेऽन्यच्च कर्मणः ।।१७।।

दाहिने हाथ को बाए हाथ से बाहर की ओर और अपने सामने रखे । अन्य कर्म के करने में भी (ऐसा ही करे) ।

कृत्वाग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंयतौ ।
प्रदक्षिणं तथासीनः कुर्यात् परिसमूहनम् ।।१८।।

अपने स्थान पर स्थित, भली प्रकार संयत दोनों हाथों को अग्नि के सामने करके दाहिनी ओर उसी प्रकार बैठा हुआ परिसमूहन करे (बुहार कर अग्नि-कणों को इकट्ठा करे)।

बाहुमात्राः परिधय ऋजवः सत्वचोऽव्रणाः ।
त्रयो भवन्ति शीर्णाग्रा एकेषान्तु चतुर्दिशम् ।।१९।।

भुजा के माप वाली, सीधी, छाल वाली, बिना व्रण (घुन के द्वारा बनाए सूराखों) वाली, आगे से शीर्ण (फटी हुई) तीन परिधियां होती है । कुछ ऋषियों के मत में चारों दिशाओं में (चार) होती हैं।

प्रागग्रावभितः पश्चादुदग्रमथवापरम् ।
न्यसेत् परिधिमन्यञ्चेदुदगग्रः स पूर्वतः ।।२०।।

दोनों ओर दो परिधियां (नीचे रखी जाने वाली लकड़ियां) पूर्व की ओर अग्र भाग वाली होती है । और पश्चिम की ओर परिधि को रखे तो उसका

अग्रभाग उत्तर की ओर हो। यदि अन्य (अर्थात् तीसरी) परिधि को रखे तो उसका अग्रभाग भी उत्तर की ओर हो और वह पूर्व की ओर रखी जाए।

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥२१॥

जैसी वस्तु कही गई है यदि वैसी न मिले तो जो उसका अनुकरण करने वाली (अर्थात् सदृश) वस्तु हो उसको ग्रहण करना चाहिये, जैसे जौ के सदृश गेहूं होते हैं और व्रीहि (धान) के सदृश शालि (सफेद चावल) होते है।

इति पञ्चदशः खण्डः।

॥ षोडशः खण्डः ॥

अथ श्राद्धतिथिविशेषेण विधिवर्णनम्

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्ध क्षीणे राजनि शस्यते।
वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥१॥

पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध राजा (सोम, चन्द्रमा) के क्षीण होने पर (अर्थात् अमावस्या को), दिन के तीसरे पहर में पर सायंकाल के अधिक निकट नहीं (अर्थात् सन्ध्या से कुछ पहले) उत्तम होता है।

यदा चतुर्दशी याम तुरीयमनुपूरयेत्।
अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥२॥

जब चतुर्दशी एक पहर दिन चढ़े तक हो और अमावस्या की हानि हो, तभी श्राद्ध करना चाहिये।

यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः।
अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥३॥

यह जो कहा है कि जिस दिन चन्द्रमा के दर्शन न हों (उस दिन श्राद्ध करे) वह इस (अमावस्या) की अपेक्षा से चतुर्दशी में चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर भी श्राद्ध करे ऐसा जानना चाहिये।

यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया।
अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्वपेत् ॥४॥

और जो यह कहा गया है कि चन्द्रमा के दिखाई देने पर (श्राद्ध करे) यह चतुर्दशी की अपेक्षा से कहा गया है। अमावस्या की प्रतीक्षा करे अथवा चतुर्दशी के अन्त में पिंड दे दे।

अष्टमेंऽशे चतुर्दश्या क्षीणो भवति चन्द्रमाः।
अमावास्याष्टमांशे च पुन किल भवेदणुः ॥५॥

चतुर्दशी के आठवे अश में चन्द्रमा का क्षय हो जाता है और अमावस्या के आठवें अश में वह पुनः अपने सूक्ष्म रूप में होता है।

आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत्।
विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जना ॥६॥

आग्रहायणी की अमावस्या और जो ज्येष्ठ मास की अमावस्या होती है, चन्द्रमा की गति को जानने वाले लोग इन दोनों के विषय में कुछ विशेष कहते हैं।

अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते
चतुर्थभागो न कलावशिष्टः।
तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्न-
मेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ॥७॥

इनमें चन्द्रमा पहले पहर में रहता है। दिन के चौथे भाग में चन्द्रमा की कोई कला शेष नहीं रह जाती। उस अंतिम भाग में वह पूर्ण क्षय को प्राप्त होता है, ऐसा ज्योतिश्चक्रविद् (ज्योतिषी) कहते हैं।

यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्यस्-
तस्मिस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायते।
एव चार चन्द्रमसो विदित्वा
क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ॥८॥

जिस वर्ष मे तेरह महीने होते हैं, उसमें तीसरे पहर के पश्चात् चतुर्दशी का चन्द्रमा दिखाई नही देता। इस प्रकार चन्द्रमा की गति को देखकर उसका क्षय हो जाने पर अपराह्ण में (पिंड) दे।

सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत् क्वचित्।
खर्वितां तां विदुः केचित् गताध्वामिति चापरे ॥९॥

यदि कहीं अमावस्या चतुर्दशी से मिश्रित हो तो उसे कुछ (यजुर्वेदी) खर्विता (हीन) कहते है और दूसरे (ऋग्वेदी) गताध्वा (उत्तम)।

वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चेदपरेऽहनि ।
यामांस्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥१०॥

यदि अगले दिन तीन पहर तक या उससे भी अधिक बढ़ी हुई अमावस्या मिले, तो (उस दिन) पितृयज्ञ (श्राद्ध) हो सकता है।

पक्षादावेव कुर्व्वीत सदा पक्षादिकं चरुम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्व्वन्ति विद्धेऽप्यन्ये मनीषिणः ॥११॥

पक्ष के चरु (व्रीहि, यव, मुद्ग आदि को घी दूध आदि के साथ पकाकर तैयार की गई हवि को सदा पक्ष के आदि में ही बनाए। उसे पूर्वाह्ण में ही बनाते हैं। उसे दूसरे दिन बनाए, ऐसा दूसरे विद्वानों का मत है।

स्वपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते ।
न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः ॥१२॥

(पुत्र) पिता के पितृकर्मों मे अधिकारी नहीं होता (अर्थात् जीवित पिता के पितरों को श्राद्ध नहीं दे सकता)। इसलिए जीवित पिता का उल्लघन करके श्राद्ध नहीं देना चाहिये। यह श्रुति का मत है।

पितामहे ध्रियते च पितुः प्रेतस्य निर्वपेत् ।
पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत् प्रतितामहः ॥१३॥
पितुः पितु. पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च ।
कुर्य्यात् पिण्डत्रय यस्य संस्थित प्रपितामहः ॥१४॥

पितामह के जीवित रहते (केवल) मृत पिता का श्राद्ध करे। उस (पिता) के मरे हुए पिता (अर्थात् पितामह) का भी करे यदि प्रपितामह जीवित हो। पिता, पिता के पिता (अर्थात् पितामह) उसके पिता (अर्थात् प्रपितामह) इन तीनों को वह तीन पिण्ड दे, जिस का वृद्ध पितामह (प्रप्रपितामह) जीवित है।

जीवन्तमति दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विज. ।
पितुः पितृभ्यो वा दद्यात् स्वपितेत्यपरा श्रुतिः ॥१५॥

ब्राह्मण जीवित (पिता का) अतिक्रमण करके मृत को अन्न और जल दे। अथवा पिता अपने पितरों को दे, यह दूसरी श्रुति का मत है।

पितामहः पितु पश्चात् पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
पौत्रेणैकादशाहादि कर्त्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥१६॥

यदि पितामह पिता के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होता है, तो पौत्र को एकादशाह (ग्यारहवां) आदि सोलह श्राद्ध करने चाहिए।

नैतत् पौत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रवाश्चेत् पितामहः।
पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्य्यान्मासानुमासिकम् ॥१७॥

यदि पितामह का (कोई अन्य) पुत्र हो, तो पौत्र को यह कर्म नहीं करना चाहिये। पिता की सपिण्डी करके मासानुमास श्राद्ध करे।

असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्व्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः।
पितरं तत्र संस्कुर्य्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥१८॥

पौत्रों और प्रपौत्रों के द्वारा संस्कार न हुए दो पूर्वजों (पितामह और प्रपितामह) का संस्कार (दाहादि) नहीं किया जाना चाहिये। पुत्र केवल पिता का ही संस्कार करे। यह कात्यायन का कथन है।

पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्ध पापकृतापि वा।
पितामहेन पितरं सस्कुर्य्यादिति निश्चयः ॥१९॥

अत्यन्त पापी पिता का भी शुद्ध पितामह के साथ और शुद्ध पिता का पाप कमाने वाले पितामह के साथ संस्कार करे, (स्मृतियों का) यही निश्चय है।

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥२०॥

पिता यदि ब्राह्मण आदि के द्वारा मारा गया हो, या पतित हो गया हो, या सत्सङ्गहीन हो गया हो, या फांसी आदि से मर गया हो तो उसे पिण्ड देना चाहिये, और जिनको वह देता था उनको भी दे।

मातुः सपिण्डीकरणं पितामह्या सहोदितम्।
यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्रिकया न चेत् सुतः ॥२१॥

माता का सपिण्डीकरण दादी के साथ कहा गया है। इसे जैसा शास्त्रोक्त विधान है, उसी प्रकार करे, यदि पुत्रिका[1] का पुत्र न हो तो।

---

१. पुत्रिका वह पुत्री होती है, जिसका विवाह पुत्रहीन पिता इस सङ्कल्प से करता है कि इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसे वह गोद लेगा।

न योषिद्भ्यः पृथग् दद्यादवसानदिनादृते ।
स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥२२॥

अवसान (मृत्यु) के दिन को छोड़कर स्त्रियों को अलग से पिण्ड न दे, क्योंकि इनका तर्पण अपने पतियों के पिण्ड के अंशों से माना गया है।

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपेत् पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयन्तु पितुस्तस्यास्तृतीयन्तु पितुः पितुः ॥२३॥

पुत्रिका से उत्पन्न पुत्र सर्वप्रथम अपनी माता को पिण्ड दे, दूसरा पिण्ड उसके पिता को (अर्थात् अपने नाना को) और तीसरा पिण्ड उसके पिता के पिता को दे।

इति षोडशः खण्डः ।

॥ सप्तदशः खण्डः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम्

पुरतो यात्मनः कर्षूः सा पूर्व्वा परिकीर्त्यते ।
मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तद्दक्षिणत उत्तमा ॥१॥

जो कर्षू (खोदी गई लकीर) आगे की ओर होती है उसे पूर्वा (प्रथमा) कहा जाता है। उसके दक्षिण की ओर मध्यमा और उसके भी दक्षिण की ओर उत्तमा (अन्तिमा) कही जाती है।

वाय्वग्निदिङ्मुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धाङ्गुलान्तराः ।
तीक्ष्णान्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥२॥

इनका मुख वायु-दिशा (उत्तर-पश्चिम) की ओर, अन्तिम भाग अग्नि-दिशा (दक्षिण-पूर्व) की ओर बनाना चाहिए। इनका अन्तर डेढ़ अंगुल का होना चाहिए। अन्तिम भाग पैने, बीच का भाग जौ के आकार का हो। इनके मध्य भाग को नाव के आकार का खोदे।

शङ्कुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः ।
शङ्कुश्चैवोपवेशश्च द्वादशाङ्गुल इष्यते ॥३॥

शंकु (खूंटा) खैर की लकड़ी का और चांदी से अलंकृत बनाना चाहिये। शंकु और उपवेश (पितरों के बैठने का स्थान) बारह-बारह अंगुल के होने चाहियें।

अग्न्याशाग्रैः कुशैः कार्य्य कर्षूणां स्तरणं घनैः ।
दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत् ॥४॥

अग्नि-दिक् (दक्षिण-पूर्व दिशा) की ओर अग्र भाग वाली घनी कुशाओं को कर्षुओं पर बिछाना चाहिए। पितृश्राद्ध में दक्षिण छोर को उसी ओर अग्रभाग वाली कुशाओं से आच्छादित करे।

स्थगरं सुरभिज्ञेयं चन्दनादि विलेपनम् ।
सौवीराञ्जनमित्युक्त पिञ्जलीना यदञ्जनम् ॥५॥

तगर को सुगन्ध कहते हैं, चन्दन आदि को विलेपन। और जो पिञ्जलियों (कुशा की गुच्छियों) का (कूटकर तैयार किया गया) चूर्ण है, वह सौवीराञ्जन कहा गया है।

स्वस्तरे सर्व्वमासाद्य यथावदुपयुज्यते ।
देवपूर्वं ततः श्राद्धमत्वरः शुचिरारभेत् ॥६॥

अच्छे आसन पर सब कुछ रखकर उसका यथोचित रूप से उपयोग किया जाता है। पवित्र होकर, देवपूजापूर्वक, शीघ्रता न करते हुए श्राद्ध आरम्भ करे।

आसनाद्यर्घपर्य्यन्त वसिष्ठेन यथोरितम् ।
कृत्वा कर्माथ पात्रेषु उक्त दद्यात् तिलोदकम् ॥७॥

आसन ग्रहण करने से अर्घ पर्यन्त, ऋषि वसिष्ठ ने जैसे कहा है उस प्रकार कर्म करके, तत्पश्चात् पात्रों में उक्त तिलोदक दे।

तूष्णीं पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ।
गन्धोदकञ्च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥८॥

चुपचाप (मन मे) मन्त्र बोलकर अलग से जलों को देकर तिलोदक दे और सनिकर्ष (समीपता) के क्रम से गन्धोदक देना चाहिए।

आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ।
पितरस्तस्य नाश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च ॥९॥

जो मनुष्य आसुर पात्र से तिलोदक देता है उसके पितर पन्द्रह वर्षों तक (उसका दिया श्राद्ध) नहीं खाते।

कुलालचक्रनिष्पन्नमासुर मृण्मय स्मृतम् ।
तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविक भवेत् ॥१०॥

कुम्हार के चाक पर तैयार किया हुआ मिट्टी से बना पात्र आसुर (असुरों का) माना जाता है। वही स्थाली आदि पात्र यदि हाथ से बना हो तो दैविक (देवों का) कहा जाता है।

गन्धान् ब्राह्मणसात् कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवानि च ।
धूपञ्चैवानुपूर्वेण ह्यग्नौ कुर्य्यादनन्तरम् ॥११॥

गन्धों, ऋतु में उत्पन्न पुष्पों और धूप को क्रमशः ब्राह्मणों को अर्पित करके उसके पश्चात् अग्नि में होम (अग्नौकरण) करे।

अग्नौकरणहोमश्च कर्त्तव्य उपवीतिना ।
प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिश्रुतेः ॥१२॥

और अग्नौकरण होम उपवीती होकर करना चाहिये। पूर्व को मुख करके ही देवताओं को आहुति दी जाती है, ऐसी श्रुति सुनी गई है।

अपसव्येन वा कार्य्यो दक्षिणाभिमुखेन च ।
निरूप्य हविरन्यस्मा अन्यस्मै न हि हूयते ॥१३॥

अथवा अपसव्य होकर और दक्षिणाभिमुख होकर होम करना चाहिए। अन्य के लिए हविः का निरूपण करके वह अन्य को नहीं दी जाती।

स्वाहा कुर्य्यान्न चात्रान्ते न चैव जुहुयाद्धविः ।
स्वाहाकारेण हुत्वाग्नौ पश्चान्मन्त्रं समापयेत् ॥१४॥

इस (अग्नौकरण) होम में अन्त में स्वाहा का उच्चारण नहीं करना चाहिए और न ही हवि डालनी चाहिए। स्वाहा शब्द के साथ अग्नि में आहुति डालकर तत्पश्चात् मन्त्र को समाप्त करे।

पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमान् ।
हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णी पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१५॥

पितृकर्म में जो पंक्ति में मूर्धन्य है, अनग्निमान् (जो अग्निहोत्री नहीं है) उसके हाथ में (आहुति दे), और बिना मन्त्र हवन करके अन्यों के पात्रों में चुपचाप डाल दे।

नोङ् कुर्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषु कुत्रचित् ।
अन्येषाञ्चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना ॥१६॥

होम मन्त्रों आदि और अन्य निकटवर्ती मन्त्रों के आदि में, आचमन आदि के समय मे, कहीं भी अलग से ओं का उच्चारण न करे। (अर्थात् प्रत्येक मन्त्र के साथ करे)।

सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ।
परिग्रहणमात्रन्तत् सव्यस्यादिशति व्रतम् ॥१७॥

'बांये हाथ के साथ' यह जो यहाँ इस प्रकार कहा गया है, वह परिग्रहण (के अर्थ में) है और बाएं हाथ को व्रत का आदेश देता है।

पिञ्जूल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात् करात् ।
अन्वारभ्य च सव्येन कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥१८॥

दाहिने हाथ के द्वारा दूसरे (बायें) हाथ से पिंजूली (कुशा की जूड़ी) को लेकर और फिर उसे बाये से पकडकर उल्लेखन (लकीर खींचने) आदि का कार्य करे।

यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम् ।
चरुणा सह सन्नीय पिण्डान् दातुमुपक्रमेत् ॥१९॥

प्रयोजनानुसार हवि में से थोड़ा-थोड़ा लेकर और चरु के साथ मिलाकर पिण्ड देना आरम्भ करे।

पितुरुत्तरकर्ष्वंशे मध्यमे मध्यमस्य तु ।
दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान् पर्वणि निर्वपेत् ॥२०॥

उत्तर कर्षू के भाग में पिता को पिण्ड दे, मध्य में मध्य (पितामह) को और दक्षिण में उसके पिता (प्रपितामह) को पर्वो (अमावास्या आदि) में पिण्ड देवे।

वाममावर्त्तनं केचिदुदगन्तं प्रचक्षते ।
सर्व गौतमशाण्डिल्यौ शाण्डिल्यायन एव च ॥२१॥

कुछ ऋषि दक्षिण से समस्त (प्राणों को) मोड कर उत्तर तक ले जाने की बात कहते है (अर्थात् दाहिनी नासिका से आरम्भ करके बाईं नासिका से समाप्त करे)। गौतम और शाण्डिल्य और शाण्डिल्यायन का यही मत है।

आवृत्य प्राणमायम्य पितॄन् ध्यायन् यथार्थतः ।
जपस्तेनैव चावृत्य ततः प्राण प्रमोचयत् ॥२२॥

प्राणों को मोड़कर (ऊपर खींच कर) और रोककर यथार्थ रूप से पितरों का ध्यान करते हुए, (प्राणायाम के) उसी मन्त्र का जप करते हुए, फिर लौटा कर प्राणों को (सांस को) छोड़ दे।

शाकञ्च फाल्गुनाष्टम्या स्वय पत्न्यपि वा पचेत्।
यस्तु शाकादिको होमः कार्योऽपूपाष्टकावृत.॥२३॥

फाल्गुन मास की अष्टमी को स्वयं अथवा पत्नी शाक पकाए, जो शाक आदि का होम है वह अपूपाष्टमी के अनुसार करना चाहिये।

अन्वाष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगोतमौ।
वार्कंषण्डिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेऽष्टकासु च॥२४॥

अन्वाष्टक्य श्राद्ध को गोभिल और गोतम मध्यमा अष्टमी के दिन, और वार्कंषण्डि और कौत्स सभी अष्टमियों में मानते हैं।

स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यानुकल्पितम्।
श्रपयेत्त सवत्सायास्तरुण्या गोः पयस्यनु॥२५॥

यदि पशु का विधान हो तो पशु के स्थान पर स्थालीपाक बनाए और उसे बछड़े वाली तरुणी गाय के दूध में पकाए।

इति सप्तदशः खण्डः।

॥ अष्टादशः खण्डः॥

अथ विवाहाग्निहोमविधानवर्णनम्।

सायमादि प्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते।
दर्शान्तं पौर्णमासाद्यमेकमेव मनीषिणः॥१॥

बुद्धिमान् लोग सायंकाल से प्रारम्भ होकर प्रातःकाल में समाप्त होने वाले कर्म को एक ही कर्म कहते है, और पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर अमावस्या को अन्त होने वाले कर्म को भी एक ही कर्म कहते है।

ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि वाग्रिमः।
य आयाति स होतव्य. स एवादिरिति श्रुतिः॥२॥

(विवाह की) पूर्णाहुति के पश्चात् जो दर्श या पौर्णमास आगे आता है, उसका होम करना चाहिए, वही आदि है, यह श्रुति का मत है।

ऊर्द्ध्वं पूर्णाहुतेः कुर्यात् साय होमादनन्तरम् ।
वैश्वदेवन्तु पाकान्ते बलिकर्मसमन्वितम् ।।३।।

(विवाह की) पूर्णाहुति के पश्चात् सायकाल मे होम के पश्चात् पाक के अन्त में बलिकर्म से युक्त वैश्वदेव यज्ञ को करे।

ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चादभिरूपान् स्वशक्तितः ।
यजमानस्ततोऽश्नीयादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ।।४।।

उसके पश्चात् यजमान अपने सामर्थ्य के अनुसार योग्य ब्राह्मणो को भोजन कराये। उसके बाद स्वयं खाए, यह बात कात्यायन ने कही है।

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत सायंप्रातस्त्वतन्द्रित. ।
चतुर्थीकर्म कृत्वैतदेतच्छाट्यायनेर्मतम् ।।५।।

वैवाहिक अग्नि में चतुर्थी कर्म (विवाह के पश्चात् चौथे दिन किया जाने वाला कर्म) करके आलस्य त्याग कर प्रात' और सायं इस (बलि-वैश्वदेव) कर्म को करे। यह शाट्यायन का मत है।

ऊर्द्ध्वं पूर्णाहुते. प्रातर्हुत्वा ता सायमाहुतिम् ।
प्रातर्होमस्तदैव स्यादेष एवोत्तरो विधिः ।।६।।

पूर्णाहुति के पश्चात् प्रातः होम करके फिर सायकाल होम करे, फिर प्रातः को होम होता है, यही आगे की विधि है।

पौर्णमासात्यये हव्यं होता वा यदहर्भवेत् ।
तदहर्जुहुयादेवममावास्यात्ययेऽपि च ।।७।।

पौर्णमास का उल्लंघन होने पर (अर्थात् किसी कारण यदि पूर्णिमा को यज्ञ न हो सके) तो जिस दिन हव्य और होता उपलब्ध हों उसी दिन होम कर लेना चाहिए। इसी प्रकार अमावस्या का उल्लंघन होने प' भी।

अहूयमानेऽनश्नश्चेन्नयेत् काल समाहितः ।
सम्पन्ने तु यथा तत्र हूयते तदिहोच्यते ।।८।।

होम न किए जा सकने पर यदि भोजन भी न किया हो तो समाहित-चित्त होकर समय बिताए। सम्पन्न (भोजन) करने पर जैसे वहाँ होम करना चाहिए, वह यहाँ बताया जा रहा है।

अहुताः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत् ।
मन्त्रेण विधिवद् हुत्वाधिकमेवापरा अपि ॥९॥

(जितनी आहुतियां न दी हों) उन्हें गिनकर और उन्हें एक बार पात्र में रख कर, मन्त्र के साथ विधिवत् होम कर, यदि अधिक हो (तो उन को भी होम कर) अन्य (उस दिन की) आहुतियों को होमे ।

यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ।
चतस्रस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणिग्रहणे यथा ॥१०॥

जहाँ व्याहृतियों के साथ प्रायश्चित्तात्मक होम हो वहाँ चार आहुतियां होती हैं, जैसे स्त्री के पाणिग्रहण में होती हैं ।

अपि वाज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि चाहुतिः ।
होतव्या त्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥११॥

या तो अज्ञात० (शत० १.६.१९) इस मन्त्र से या प्राजापत्य मन्त्र से आहुति देनी चाहिए । यह तीन विकल्पों वाली प्रायश्चित्त विधि मानी गई है ।

यद्यग्निरग्निनान्येन सम्भवेदाहितः क्वचित् ।
अग्नये विविचय इति जुहुयाद्वा घृताहुतिम् ॥१२॥

यदि कहीं अग्नि अन्य अग्नि से आहित (आच्छादित) हो जाए तो 'अग्नये विविचये स्वाहा' (ऐ० ब्रा० ७.६.३) मन्त्र से आहुति दे, अथवा घृत की आहुति ही दे ।

अग्नयेऽप्सुमते चैव जुहुयाद्वैद्युतेन चेत् ।
अग्नये शुचये चैव जुहुयाच्चेदनग्निना ॥१३॥

यदि अग्नि विद्युत् की अग्नि से (आहित हो जाए) तो अग्नयेऽप्सुमते स्वाहा (ऐ० ब्रा० ७.७.२) मन्त्र से होम करे । यदि अग्नि से भिन्न किसी वस्तु से आहित हो जाए तो अग्नये शुचये स्वाहा (ऐ० ब्रा० ७.७.३) मन्त्र से होम करे ।

गृहदाहाग्निनाग्निस्तु यष्टव्यः क्षामवान् द्विजैः ।
दावाग्निना च संसर्गो हृदय यदि तप्यते ॥१४॥

गृहदाह की अग्नि से (अर्थात् घर में आग लग जाने से) अग्नि आहित होकर बुझ जाए तो ब्राह्मणों को उसका यजन करना चाहिए । और दावाग्नि का संसर्ग होने से यदि हृदय संतप्त होता है तो भी उसका यजन करना चाहिए ।

द्विर्भूतो यदि संसृज्येत् संसृष्टमुपशामयेत् ।
असंसृष्टं जागरयेद् गिरिशर्मैवमुक्तवान् ॥१५॥

इन दो प्रकार से अग्नि यदि (अन्य अग्नि से) संसृष्ट हो जाए तो संसृष्ट हुई अग्नि को शान्त करा दे। यदि संसृष्ट न हुई हो तो उसे जागृत करे। गिरिशर्मा ने ऐसा कहा है।

न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान् मुक्त्वैकां समिदाहुतिम् ।
स्वगर्भसत्क्रियार्थञ्च यावच्चासौ प्रजायते ॥१६॥

अपने गर्भ की पूजा के हेतु, और जब तक वह उत्पन्न होता है तब तक समिधा की एक आहुति को छोड़कर अपनी अग्नि में अन्य के लिए होम नहीं करना चाहिए।

अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः ।
न हि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित् ॥१७॥

नामकरण आदि संस्कार के होम मे सर्वत्र लौकिक अग्नि होती है। पिता के द्वारा लाई हुई (आधान की हुई) अग्नि कहीं भी पुत्र के लिये नहीं होती।

यस्याग्नावन्यहोमः स्यात् स वैश्वानरदैवतम् ।
चरुं निरूप्य जुहुयात् प्रायश्चित्त तु तस्य तत् ॥१८॥

जिस की अग्नि में किसी अन्य का होम हो जाए, वह वैश्वानर देवता का चरु बना कर होम करे, वही उसका प्रायश्चित्त है।

परेणाग्नौ हुते स्वार्थे परस्याग्नौ हुते स्वयम् ।
पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च ॥१९॥
अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ।
भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥२०॥

दूसरे के द्वारा अपनी अग्नि में हवन कर लेने पर, और पराई अग्नि में स्वयं हवन कर लेने पर, पितृयज्ञ का उल्लंघन होने पर, दो बलि वैश्वदेव यज्ञों का उल्लंघन होने पर, तथा नवान्न यज्ञ किये बिना नए अन्न को खा लेने पर, और पतित का भोजन कर लेने पर वैश्वानर चरु का विधान है।

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मसु ।
पिण्डानोद्वहनात्तेषा तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥२१॥

पुत्र के संस्कार-कर्मों में पिता अपने पितरों को पिण्ड दे, क्योंकि वही उन्हें पिण्ड देने वाला है। उसके अभाव में उसके क्रम से जो अन्य बन्धु हो वह पिण्ड दे।

भूतिप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत्।
रजोरोगादिना तत्र कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥२२॥

भूतिप्रवाचन (कल्याण के लिये ऋत्विजों से आशीर्वाद ग्रहण) के समय रजोदर्शन या रोगादि के कारण यदि पत्नी पास न हो तो याज्ञिक कैसे करते हैं (यह बताता हूं)।

महानसेऽन्नं या कुर्यात् सवर्णां तां प्रवाचयेत्।
प्रणवाद्यपि वा कुर्यात् कात्यायनवचो यथा ॥२३॥

रसोई-घर में जो भोजन बनाए उस सवर्णा स्त्री को भूति-प्रवाचन कराए। अथवा प्रणव आदि (का जप) कर ले, जैसा कि कात्यायन का वचन है।

यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तम्बे दर्भवटौ तथा।
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥२४॥

यज्ञशाला में, दर्भ-मुष्टि मे, दर्भ की पूली में और दर्भ की पुतली में दर्भ की गिनती निश्चित नहीं की गई है, और इसी प्रकार आसन और बिछौने में भी (गिनती निश्चित नही की गई है)।

इत्यष्टादशः खण्डः।

॥ एकोनविंशतितमः खण्डः ॥

अथ सकर्तव्यतास्त्रीधर्मवर्णनम्।

निःक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यार्त्विजं तथा।
प्रवसेत् कार्यवान् विप्रो मृषैव न चिरं क्वचित् ॥१॥

अग्नि (कर्म) को पत्नी को सौंप कर और ऋत्विज को नियुक्त करके काम-काजी ब्राह्मण वृथा ही कहीं चिरकाल तक प्रवास में न रहे।

मनसा नैत्यकं कर्म प्रवसन्नप्यतन्द्रितः ।
उपविश्य शुचिः सर्वं यथाकालमनुद्रवेत् ॥२॥

प्रवास में भी आलस्यरहित होकर, पवित्र हो, बैठकर समस्त नित्य-कर्म का काल के अनुसार मन से अनुष्ठान करे ।

पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ।
सौभाग्यवित्तावैधव्य-कामया भर्तृभक्तया ॥३॥

वियोग न चाहने वाली, विनीत, सौभाग्य, धन और अवैधव्य को चाहने वाली पति की भक्त पत्नी को भी अग्नि की सेवा (होम) करनी चाहिए ।

या वा स्याद्वीरसूरासामाज्ञासम्पादिनी प्रिया ।
दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥४॥

इन (पत्नियों) में से जो वीरों को जन्म देने वाली, आज्ञा का पालन करने वाली, प्रिया, (कार्य-)दक्ष, मधुरभाषिणी और पवित्र विचारों वाली हो, उसको ही इसमें नियुक्त करें ।

दिनत्रयेण वा कर्म यथाज्यैष्ठं स्वशक्तितः ।
विभज्य सह वा कुर्युर्यथाज्ञानञ्च शास्त्रवत् ॥५॥

अथवा तीन दिनों में वरिष्ठता के अनुसार (सब पत्नियां) काम को बांट कर या साथ मिलकर अपनी शक्ति, ज्ञान और शास्त्र की मर्यादा के अनुसार करें ।

स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठ्यं विद्ययैव द्विजन्मनाम् ।
नहि ख्यात्या न तपसा भर्त्ता तुष्यति योषिताम् ॥६॥

स्त्रियों की वरिष्ठता सुभगता (सौन्दर्य) से है और द्विजों की विद्या से । पति पत्नियों की न तो ख्याति से और न ही तप से प्रसन्न होता है ।

भर्त्तुरादेशवर्त्तिन्या यथोमा बहुभिर्व्रतैः ।
अग्निश्च तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥७॥

उमा की तरह बहुत से व्रतों के साथ पति की आज्ञा का पालन करने वाली जिस स्त्री ने पूर्वजन्म में अग्नि को प्रसन्न किया है, वह स्त्री सौभाग्य को प्राप्त होती है ।

विनयावनताऽपि स्त्री भर्त्तुर्या दुर्भगा भवेत् ।
अमुत्रोमाग्निभर्तॄणामवज्ञातिः कृता तया ॥८॥

विनय से अवनत भी जो स्त्री पति के लिए दुर्भगा (कुरूप) है (तो समझना चाहिए कि) पूर्व जन्म में उसने उमा, अग्नि और पति की अवहेलना की है।

श्रोत्रियं सुभगां गाञ्च अग्निमग्निचितिं तथा।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥९॥

प्रातः उठकर जो मनुष्य वेदपाठी ब्राह्मण, सुभगा स्त्री, गऊ, अग्नि और अग्निकुण्ड को देखता है, वह विपत्तियों से मुक्त हो जाता है।

पापिष्ठं दुर्भगामन्त्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्।
प्रातरुत्थाय यः पश्येत् स कलेरुपयुज्यते ॥१०॥

अत्यन्त पापी मनुष्य को, दुर्भगा स्त्री को, नीच जाति के मनुष्य को, और नकटे को, प्रातः उठकर जो देख ले वह कलि से युक्त हो जाता है।

पतिमुल्लङ्घ्य मोहात् स्त्री कं कं न नरकं व्रजेत्।
कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥११॥

बेसमझी के कारण पति का उल्लंघन करके स्त्री किस-किस नरक को प्राप्त नहीं होती, (और तत्पश्चात्) बड़ी कठिनाई से मनुष्यत्व को पाकर भी किस-किस दुःख को नहीं भोगती?

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान् समश्नुते।
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥१२॥

पति की सेवा से ही स्त्री (स्वर्गादि) किन लोकों में नहीं जाती। और फिर स्वर्ग से इस लोक में आकर सुखों का सागर हो जाती है।

सदारोऽन्यान् पुनर्दारान् कथञ्चित् कारणान्तरात्।
य इच्छेदग्निमान् कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते ॥१३॥

पत्नी वाला अग्निहोत्री पुरुष जो किसी प्रकार अन्य कारण से पुनः अन्य स्त्री को पत्नी बनाना चाहता है, उसका होम कहां कहा गया है? अर्थात् उसे होम का अधिकार नहीं है।

स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन।
न ह्याहिताग्नेः स्वं कर्म लौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥१४॥

अपनी अग्नि में ही होम होता है, लौकिक (साधारण) अग्नि में कभी नहीं होता। अग्नि का आधान करने वाले मनुष्य के लिये अपना कर्म लौकिक अग्नि में करने का अधिकार नहीं है।

षडाहुतिकमन्येन जुहुयाद् ध्रुवदर्शनात् ।
न ह्यात्मनोऽर्थं स्यात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥१५॥

ध्रुव का दर्शन[1] होने तक षडाहुतिक (छः आहुतियां) अन्य के द्वारा अग्नि में डलवाए। यह तब तक अपने आप नहीं होता जब तक विवाह नहीं हो जाता।

पुरस्तात् त्रिविकल्पं यत् प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ।
तत्षडाहुतिकं शिष्टैर्यज्ञविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥१६॥

पहले तीन प्रकार का जो प्रायश्चित्त कहा गया है, वही यज्ञवेत्ता शिष्टों के द्वारा षडाहुतिक कहा गया है।

एकोनविंशतितमः खण्डः

॥ अथ विंशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयादिस्त्रीकृते सति वैदिकाग्निवर्णनम् ।

असमक्षन्तु दम्पत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ।
द्वयोरप्यसमक्षं हि भवेद् हुतमनर्थकम् ॥१॥

ऋत्विग् आदि को पत्नी और पति के पीछे होम नहीं करना चाहिये (सामने ही करना चाहिये)। जो दोनों के पीछे किया जाता है, वह अनर्थक हो जाता है।

विहायाग्निं सभार्यश्चेत् सीमामुल्लङ्घ्य गच्छति ।
होमकालात्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥२॥

अग्नि को छोड़कर यदि मनुष्य सपत्नीक (ग्राम की) सीमा को छोड़कर चला जाए और होम का काल बीत जाए तो उसे पुनः अग्नि का आधान करना चाहिए।

अरण्योः क्षयनाशाग्निदाहेष्वग्निं समाहितः ।
पालयेदुपशान्तेऽस्मिन् पुनराधानमिष्यते ॥३॥

---

१. विवाह संस्कार में ध्रुव और अरुन्धती के दर्शन का विधान है।

अग्नि के दाह में अरणियों के क्षीण और नष्ट होने पर अग्नि की सावधान रहकर रक्षा करे। इसके बुझ जाने पर फिर से इसका आधान किया जाना चाहिए।

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्यस्य अतिचारेण गच्छति।
पुनराधानमत्रैक इच्छन्ति न तु गौतमः ॥४॥

बहुपत्नीक पुरुष की ज्येष्ठ पत्नी यदि आचार का उल्लंघन करती है, तो ऐसी स्थिति में ऋषि पुनः अग्न्याधान चाहते हैं, पर गौतम ऋषि नहीं।

दाहयित्वाग्निभिर्भार्यां सदृशीं पूर्वसंस्थिताम्।
पात्रैश्चाथाग्निमादध्यात् कृतदारोऽविलम्बितः ॥५॥

जो पहले जीवित थी (पर अब मर गई है) ऐसी अनुरूप पत्नी का अग्नियों और होम के पात्रों से दाह संस्कार कराकर तदनन्तर अविलम्ब दूसरा विवाह करके अग्न्याधान करे।

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वसारिणीम्।
दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥६॥
द्वितीयाञ्चैव यः पत्नी दहेद्वैतानिकाग्निभिः।
जीवत्यां प्रथमायान्तु ब्रह्मघ्नेन समं हि तत् ॥७॥

आगे-आगे चलने वाली, इस प्रकार मरी हुई अपने वर्ण की स्त्री को अग्निहोत्र और यज्ञपात्रों से दाह संस्कार कराकर जो धर्मज्ञ ब्राह्मण दूसरी पत्नी को भी वैतानिक (यज्ञ की) अग्नियों से जलाता है, (अथवा) पहली पत्नी के जीवित रहते भी (दूसरी पत्नी को वैतानिक अग्नियों से जलाता है) उसका वह कर्म ब्रह्म-हत्या के समान है।

मृतायान्तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत्।
ब्रह्मोज्झं तं विजानीयाद् यश्च कामात् समुत्सृजेत् ॥८॥

दूसरी पत्नी के मर जाने पर जो मनुष्य अग्निहोत्र को त्याग देता है और जो इच्छा से छोड़ देता है, उसे वेद का त्याग करने वाला जानना चाहिए।

मृतायामपि भार्य्यायां वैदिकाग्निं न हि त्यजेत्।
उपाधिनापि तत् कर्म यावज्जीवं समापयेत् ॥९॥

पत्नी के मर जाने पर भी वैदिक अग्नि का त्याग नहीं करना चाहिए। उपाधि (कुशा या धातु की स्त्री बना कर) उस कर्म को जीवन भर करे।

रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ।
ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥१०॥

और राम ने भी यशस्विनी सीता को सोने की बनवाकर भाइयों के साथ बहुत प्रकार के यज्ञों का यजन किया ।

यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्य्यां कथञ्चन ।
स स्त्री सम्पद्यते तेन भार्य्या वास्य पुमान् भवेत् ॥११॥

जो किसी प्रकार अपने अग्निहोत्र से पत्नी को जलाता है, वह उस कर्म को करने से (अगले जन्म मे) स्त्री हो जाता है और उसकी पत्नी पुरुष बन जाती है ।

भार्य्या मरणमापन्ना देशान्तरगतापि वा ।
अधिकारी भवेत्पुत्रो महापातकिनि द्विजे ॥१२॥

(यदि) द्विज महापातकी हो और (उसकी) भार्या मर गई हो अथवा परदेश में चली गई हो तो पुत्र (यज्ञ का) अधिकारी होता है ।

मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्य्या पतिविमानिता ।
त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥१३॥

मान के योग्य होती हुई भी पत्नी यदि पति से अपमानित होकर मर जाती है, तो वह तीन जन्मों तक पुरुषत्व और पुरुष स्त्रीत्व का अधिकारी हो जाता है ।

पूर्वैव योनिः पूर्वावृत् पुनराधानकर्मणि ।
विशेषोऽत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकं तथा ॥१४॥

(अग्नि के) पुनराधान कर्म में पहले वाली ही योनि (अरणी) और पहले वाली ही आवृत् (विधि) होती है । केवल अग्नि का उपस्थान (स्तुति) और आठ आज्याहुतियां विशेष होती हैं ।

कृत्वा व्याहृतिहोमान्तमुपतिष्ठेत पावकम् ।
अध्यायः केवलाग्नेयः कस्ते जामिर मानसः ॥१५॥
अग्निमीले अग्न आयाह्यग्न आयाहि वीतये ।
तिस्रो ऽग्निर्ज्योतिरित्यग्निं दूतमग्ने मृडेति च ॥१६॥

इत्यष्टावाहुतीर्हुत्वा यथाविध्यनुपूर्वशः ।
पूर्णाहुत्यादिकं सर्वमन्यत् पूर्ववदाचरेत् ॥१७॥

व्याहृतिहोम के अन्त तक का कर्म करके अग्नि की स्तुति करे । 'कस्ते जामिर मानसः' इस अग्नि देवता मात्र के अध्याय का पाठ करे । अग्निमीले पुरोहितं (ऋ० १.१.१) । अग्न आयाह्यग्निभिः (ऋ० ८.६०.१)। अग्न आयाहि वीतये (ऋ० ६.१६.१), अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नि' स्वाहा (वा०सं० ३.६) आदि तीन आहुतियाँ, अग्निं दूतं० (ऋ० १.१२.१), अग्ने मृड (ऋ० ४.६.१) इन आठ आहुतियों को विधिपूर्वक क्रम से देकर पूर्णाहुति आदि शेष सब कुछ पहले की तरह करे ।

अरण्योरल्पमप्यङ्गं यावत्तिष्ठति पूर्वयोः ।
न तावत् पुनराधानमन्यारण्योर्विधीयते ॥१८॥

जब तक पूर्व अरणियों का थोड़ा सा भी अग शेष है, तब तक अन्य (दो) अरणियों का फिर से आधान न करे ।

विनष्टं स्रुक् स्रुवं न्युब्जं प्रत्यक्स्थलमुदर्च्चिषि ।
प्रत्यगग्रञ्च मुसलं प्रहरेज्जातवेदसि ॥१९॥

भली प्रकार नष्ट हुए स्रुक और स्रुवे को धरती पर ओंधा करके और मूसल को सीधा करके उठती हुई ज्वालाओं वाली अग्नि में डाल दे ।

इति विंशः खण्डः ।

॥ अथैकविंशः खण्डः ॥

अथ मृतदाहसंस्कारवर्णनम् ।

स्वयं होमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ।
तत्राप्यशक्तस्य सतः शयनाच्चोपवेशनम् ॥१॥

यदि स्वयं होम करने में असमर्थ हो तो अग्नि के समीप जाकर बैठे । यदि ऐसा करने मे भी असमर्थ हो तो पलंग से नीचे उतरकर बैठे ।

हुतायां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद् गृही भवेत् ।
प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चेच्छुः पुनर्न वा ॥२॥

सायंकाल आहुति के हुत होने पर यदि गृही दुर्बल (मरणासन्न) हो जाए तो प्रातः का होम तभी होगा यदि वह जीवित रहेगा, और वह होम करने का इच्छुक होगा। नहीं तो नहीं होगा।

दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसवृतम्।
दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्या निवेशयेत् ॥३॥

दुर्बल (मरणासन्न) गृही को स्नान कराकर, साफ कपड़े पहनाकर, दक्षिण की ओर सिर करके कुशा से आच्छादित धरती पर लिटाए।

घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम्।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥४॥
हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु।
मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥५॥

घी से मले हुए शरीर वाले, वस्त्रों सहित स्नान कराकर उपवीत धारण कराए हुए, चन्दन से चर्चित सब अंगों वाले, पुष्पों से विभूषित, इस के सात छिद्रों में सोने के टुकड़े डालकर मुख को ढककर पुत्रादि इस (मृत को श्मशान में) ले जाएं।

आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम्।
एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पथ्युत्सृजेद्भुवि ॥६॥

एक मनुष्य कच्चे पात्र में अन्न को लेकर आगे-आगे है अग्नि जिसके ऐसे प्रेत (शव) के पीछे-पीछे चले, और आधे मार्ग में पहुंचकर आधे अन्न को धरती पर डाल दे।

अर्द्धमादहनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः।
सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिल पिण्डदानवत् ॥७॥

आधे को जलाने के स्थान पर पहुंचकर दक्षिण की ओर मुख करके बैठा हुआ, बायें घुटने को टेककर धीरे-धीरे तिलों सहित पिण्डदान की तरह दे।

अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्दारुचयं महत्।
भूप्रदेशे शुचौ दशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥८॥

और उसके पश्चात् पुत्रादि उसे नहलाकर चिता आदि के लिये उचित पवित्र भू-स्थल पर लकड़ियों की बड़ी चिता बनाए।

ततोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ।
आज्यपूर्णां स्रुचं दद्याद् दक्षिणाग्रां नसि स्रुवम् ॥९॥

दक्षिण दिशा में सिर वाले इस को उस (चिता) में सीधा लेटाकर आज्य से भरी स्रुक को मुख में और दक्षिण की ओर अग्रभाग वाले स्रुवे को नाक में रख दे ।

पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ।
पार्श्वयोः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥१०॥

निचली अरणी को दोनों पांवों के आगे और दूसरी (ऊपर वाली) को छाती पर, सूप और चमस को क्रमशः बायें और दाहिने पासों में रख दें ।

मुसलेन सह न्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम् ।
चत्रौवीलीकमत्रैवमनश्रुनयनो विभीः ॥११॥

मूसल के साथ औंधे ओखल को दोनों जाघों के बीच में चत्र और ओवीली को भी यहीं आँखों में आंसू न लाता हुआ निर्भय (पुत्र) रख दे ।

अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः ।
अथाग्निं सव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥१२॥
अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥१३॥

तत्पश्चात् इसे दाहिने रखकर, वाणी को नियन्त्रण में रखकर (चुपचाप) पितृदिशा (दक्षिण दिशा) में मुख करके बाए घुटने को टेक कर धीरे-धीरे दक्षिण की ओर से अस्मात् त्वमधि जातो ऽसि त्वदयं जायतां पुनः, असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा (वा० सं० ३५.२२) (इस अग्नि से तू उत्पन्न हुआ था, हे अग्नि यह तुझ से पुन. उत्पन्न हो जाए, अमुकनामा स्वर्ग लोक के लिये) यह यजुर्वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए अग्नि दे ।

एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् ।
यश्चैनं दाहयेत् सोऽपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥१४॥

इस प्रकार दाह-संस्कार किया हुआ गृहस्थ सब पापों को दग्ध कर देता है । और जो इसका दाह-संस्कार करता है वह भी उत्तम सन्तान को प्राप्त करता है ।

यथा स्वायुधधृक् पान्थो ह्यरण्यान्यपि निर्भयः ।
अतिक्रम्यात्मनोऽभीष्टं स्थानमिष्टांश्च विन्दति ॥१५॥

एवमेषोऽग्निमान् यज्ञपात्रायुधविभूषितः ।
लोकानन्यानतिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥१६॥

जिस प्रकार उत्तम आयुधों (शस्त्रों) को धारण करने वाला पथिक निर्भय होकर वनों को भी लांघ कर अपने अभीष्ट स्थान और अभीष्ट (कामों) को पा लेता है, उसी प्रकार यह अग्निहोत्री भी यज्ञपात्र रूपी आयुधों से विभूषित होकर अन्य लोकों को लांघ कर परब्रह्म को ही पा लेता है ।

इत्येकविंशः खण्डः ।

॥ अथ द्वाविंशः खण्डः ॥

अथ दाहसंस्कारवर्णनम् ।

अथानवेक्षमेत्यापः सर्व एव शवस्पृशः ।
स्नात्वा सचैलमाचम्य दद्युरस्योदकं स्थले ॥१॥

इसके पश्चात् शव का स्पर्श करने वाले सभी लोग (चिता को) न देखते हुए, कपड़ों सहित स्नान करके और आचमन करके उसे भूमि पर जल दें ।

गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनन्तरम् ।
दक्षिणाग्रान् कुशान् कृत्वा सतिलन्तु पृथक् पृथक् ॥२॥

(प्रेत के) गोत्र और नामसंकीर्तन के अन्त मे तर्पयामि (मैं तृप्त करता हू) ऐसा कहें और उसके पश्चात् दक्षिण की ओर अग्रभाग वाली कुशाओं को बिछाकर तिलों सहित अलग-अलग (जल दे) ।

एवं कृतोदकान् सम्यक् सर्वान् शाद्वलसंस्थितान् ।
आप्लुत्य पुनराचान्तान् वदेयुस्तेऽनुयायिनः ॥३॥

सम्यक् की हुई जलदान की क्रिया वाले, स्नान करके किये हुए आचमन वाले हरी घास के मैदान में बैठे हुए, (उन) सब बान्धव जनों को (शव के) पीछे-पीछे चलने वाले वे इस प्रकार कहें ।

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन् प्राणधर्मणि ।
धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति ॥४॥

चूंकि प्रत्येक प्राणधारी अनित्य है इसलिये तुम शोक मत करो। यत्न से धर्म कमाओ, जो तुम्हारे साथ जाएगा।

मानुष्ये कदलीस्तम्भे निःसारे सारमार्गणम्।
यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥५॥

केले के स्तम्भ (के समान दुर्बल), जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर निःसार मनुष्य जीवन में जो सार ढूंढता है, वह अज्ञानी है।

गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर्दैवतानि च।
फेनप्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥६॥

पृथिवी नाश को प्राप्त होने वाली है। समुद्र और देवता भी (नश्वर हैं)। फेन के समान दिखाई देने वाला यह मर्त्यलोक कैसे नष्ट नहीं होगा?

पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः।
कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥७॥

पांच कारणों (तत्त्वों) से तैय्यार हुआ शरीर यदि अपने से उत्पन्न कर्मों के कारण पाँच तत्त्वों में बट गया है (नष्ट हो गया है), तो उसमें शोक की कौन सी बात है?

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥८॥

सब संचय क्षय में अन्त होने वाले हैं, ऊंचाइयां पतन के अन्त वाली हैं, संयोग वियोग के अन्त वाले हैं, जीवन मरण के अन्त वाला है।

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः।
अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥९॥

चूंकि बान्धवों के द्वारा छोड़े हुए श्लेष्मा और आंसुओं को प्रेत को अवश्य पीना पड़ता है, इसलिये रोना नहीं चाहिए, अपितु क्रियाओं को यत्न से करना चाहिये।

एवमुक्त्वा व्रजेयुस्ते गृहाँल्लघुपुरःसराः।
स्नानाग्निस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरे कृतैः ॥१०॥

इस प्रकार उपदेश दिये हुए वे लोग छोटों को आगे-आगे करके अपने घर जाएं, और दूसरे लोग स्नान, करके अग्नि-स्पर्श और घृत भोजन से शुद्ध होवें।

इति द्वाविंशः खण्डः।

।। अथ त्रयोविंशः खण्डः ।।

अथ विदेशस्थमृतपुरुषाणां दाहसंस्कारवर्णनम् ।

एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ।
कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ।।१।।

इसी प्रकार (विदेश में मरे हुए) अग्निहोत्री का भी पात्र-न्यास (चिता में यज्ञ पात्रों को रखना) आदि होता है। शास्त्र-विहित काली मृगछाला आदि कर्म इसमें अधिक है।

विदेशमरणेऽस्थीनि ह्याहृत्याभ्यज्य सर्पिषा ।
दाहयेदूर्णयाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ।।२।।

विदेश में मृत्यु होने पर अस्थियों को लाकर, घी से भिगोकर और ऊन से ढककर दाह कराए। पात्रन्यास आदि की क्रिया पूर्ववत् है।

अस्थ्नामलाभे पर्णानि सकलान्युक्तयावृता ।
भर्ज्जयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ।।३।।

अस्थियां न मिलने पर अस्थियों की गिनती के पत्ते लेकर उन सबको उक्त रीति से जलाए। उसी दिन से सूतक आरम्भ हो।

महापातकसंयुक्तो दैवात् स्यादग्निमान् यदि ।
पुत्रादिः पालयेदग्निं युक्त आदोषसंक्षयात् ।।४।।

यदि अग्निहोत्री दुर्भाग्य से महापातक से लिप्त हो गया हो, तो पुत्र आदि कोई व्यक्ति सावधान होकर पाप की निवृत्ति होने तक अग्नि का पालन करे।

प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन् वा म्रियते यदि ।
गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत् सपरिच्छदम् ।।५।।

यदि (महापातक का) प्रायश्चित्त (जीवन में) न कर पाए, अथवा जो करता हुआ मर जाए तो (उसकी) गृह्य अग्नि को शान्त करा दिया जाए और (समस्त) सामग्री सहित श्रौत अग्नि को जल में फेंक दिया जाए।

सादयेदुभयं वाप्सु ह्यद्भ्योऽग्निरभवद्यतः ।
पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ।।६।।

अथवा दोनों अग्नियों को जलों में डलवा दे, क्योंकि जलों से ही अग्नि उत्पन्न हुई है। पात्र ब्राह्मण को दे दे, जला दे या जल में ही डाल दे।

अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता ।
अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥७॥

इसी रीति से (अग्निहोत्री की) मर्यादा का पालन करने वाली पत्नी का दाह-संस्कार किया जाना चाहिये। (चिता में) अग्नि देने के मन्त्र का इसके लिये प्रयोग नहीं किया जाता, ऐसी मर्यादा है।

अग्निनैव दहेद् भार्यां स्वतन्त्रा पतिता न चेत् ।
तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत् पृथगन्तिके ॥८॥

अग्नि से ही पत्नी का दाह-संस्कार करे, अगर वह मनमानी करने वाली और पतित नहीं है। उसके निकट उत्तर की ओर पात्रों का अलग से दाह कराए।

अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थ्ना सञ्चयनं भवेत् ।
यस्तत्र विधिरादिष्ट ऋषिभिः सोऽधुनोच्यते ॥९॥

अगले दिन अथवा तीसरे दिन अस्थियों का सचयन होता है। उसमें जो विधि ऋषियों द्वारा आदिष्ट है, वह अब कही जाती है।

स्नानान्त पूर्ववत् कृत्वा गव्येन पयसा ततः ।
सिञ्चेदस्थीनि सर्वाणि प्राचीनावीत्यभाषयन् ॥१०॥

स्नान तक के कार्यों को पूर्ववत् करके तत्पश्चात् प्राचीनावीती होकर चुपचाप सारी अस्थियों को गाय के दूध से सींचे।

शमीपलाशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्य भस्मतः ।
आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयेद् गन्धवारिणा ॥११॥

शमी और पलाश की दो टहनियों से (अस्थियों को) भस्म से उठाकर, गाय के घी से भिगोकर उनपर सुगंधित जल छिड़के।

मृत्पात्रसंपुटं कृत्वा सूत्रेण परिवेष्ट्य च ।
श्वभ्रं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेद्दक्षिणामुखः ॥१२॥

मिट्टी के पात्र की मञ्जूषा बनाकर, उसे सूत से लपेटकर, शुद्ध भूमि में गढ्ढा खोदकर, दक्षिण की ओर मुँह करके उसे उसमें गाड़ दे।

पूरयित्वावटं पङ्कपिण्डशैवालसंयुतम् ।
दत्त्वोपरि समं शेषं कुर्यात् पूर्वाह्णकर्मणा ॥१३॥

शैवाल मिले हुए गारे के लौंदे से गढ़े को पूरकर, उसे ऊपर से समतल करके शेष सब क्रियाएँ पूर्वाह्ण कर्मानुसार करे।

एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते ।
स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥१४॥

इसी प्रकार अन्याधान न करने वाले प्रेत की (दाह-)विधि अभीष्ट है। उसकी चिता में अग्नि देने की क्रिया स्त्रियों की चिता में अग्नि देने की क्रिया के समान है। अब इसके बाद जो नहीं कहा गया, उसे कहते हैं।

इति त्रयोविंशः खण्डः ।

॥ चतुर्विंशः खण्डः ॥

सूतके कर्मत्यागः षोडशश्राद्धविधानवर्णनञ्च ।

सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते ।
होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ॥१॥

सूतक में संध्या आदि कर्मों के त्याग का विधान किया गया है। श्रौत-कर्म विहित होम तो सूखे अन्न या फलों से करना ही चाहिए।

अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ।
कृतं वा हावयेदन्नमन्वारम्भविधानतः ॥२॥

स्मृति-कर्म में अकृत (बिना पके अन्न) की आहुति देनी चाहिये। उसके अभाव में कृत-अकृत (कच्चे-पक्के अन्न) की अथवा कृत (पके हुए) की आहुति अन्वारम्भ विधि (पीछे से आरम्भ करने की विधि) से देनी चाहिए।

कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृताम् ।
व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥३॥

ओदन, सक्तु आदि को कृत (पका हुआ), तण्डुल आदि को कृत अकृत (कच्चा-पक्का), व्रीहि आदि को अकृत (कच्चा)—यह तीन प्रकार का हव्य विद्वानों के द्वारा कहा गया है।

सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ।
एवमादिनिमित्तेषु हावयेदिति योजयेत् ॥४॥

सूतक में, प्रवासों में, कमजोरी में, श्राद्ध-भोजन में—इस प्रकार के निमित्तों में (इन तीन प्रकार के हव्यों से) होम कराए, ऐसा समझना चाहिए।

न त्यजेत् सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित् ।
न दीक्षणात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥५॥

ब्रह्मचारी किसी भी अवस्था में सूतक के अन्दर अपने कर्म का त्याग न करे। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् न यज्ञ में और न ही कृच्छ्रादि तप का आचरण करते हुए (निज कर्म का परित्याग करे)।

पितर्य्यपि मृते नैषा दोषो भवति कर्हिचित् ।
अशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात् त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणः ॥६॥

पिता की मृत्यु हो जाने पर भी इनको कभी दोष नहीं लगता। अथवा (अन्त्येष्टि) कर्म के अन्त में ब्रह्मचारी के लिये तीन दिन का अशौच होता है।

श्राद्धमग्निमतः कार्य्यं दाहादेकादशेऽहनि ।
प्रत्याब्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥७॥

अग्निहोत्री का श्राद्ध दाह-संस्कार के ग्यारहवें दिन करना चाहिये। प्रति-वर्ष के श्राद्ध को सदा मृत्यु वाले दिन करे।

द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा ।
सपिण्डीकरणञ्चैव एतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥८॥

प्रति-मास किये जाने वाले बारह श्राद्ध आदि में किये जाने वाला एक श्राद्ध तथा छः-छः महीने में किये जाने वाले दो श्राद्ध और सपिण्डीकरण—ये सोलह श्राद्ध हैं।

एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ।
न्यूनाः सवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तथा ॥९॥

जब छः महीने या वर्ष पूरा होने में एक दिन या तीन दिन कम हों, तब ये षाण्मासिक और वार्षिक श्राद्ध किये जाते हैं।

यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु ।
एकस्मिन्नह्नि देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा ॥१०॥

ये जो आदि के अन्य पन्द्रह श्राद्ध हैं, पुत्रहीन मनुष्य के एक ही दिन में दे दिये जाने चाहियें। पुत्र वाले को सदा अलग-अलग दिये जाने चाहियें।

न योषायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ।
न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाग्रजः ॥११॥

पुत्रहीना स्त्री को किसी भी अवस्था में पति श्राद्ध न दे, पिता पुत्र को न दे और बड़ा भाई छोटे भाई को न दे ।

एकादशेऽह्नि निर्वर्त्यं अर्वाग्दर्शाद् यथाविधि ।
प्रकुर्वीताग्निमान् पुत्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् ।।१२।।

ग्यारहवें दिन अमावस्या से पूर्व विधिपूर्वक कर्म से निवृत्त होकर अग्निहोत्री पुत्र माता और पिता का सपिण्डीकरण करे ।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं स दद्यात् प्रतिमासिकम् ।
एकोद्दिष्टेन विधिना दद्यादित्याह गौतमः ।।१३।।

सपिण्डीकरण के पश्चात् एकोद्दिष्ट[1] विधि से प्रतिमास दिये जाने वाले श्राद्ध को दे, गौतम ने ऐसा कहा है ।

कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् ।
प्रत्याब्दिकञ्च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ।।१४।।

कर्षू सहित आद्य श्राद्ध को, सोलह श्राद्धों को और प्रतिवर्ष होने वाले श्राद्ध को छोड़कर शेष श्राद्धों में छः पिण्ड होते हैं, ऐसी मर्यादा है ।

अर्घेऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने ।
तन्त्रस्य तु निवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च ।।१५।।

अर्घ में, अक्षय्योदक में, पिण्डदान में, अवनेजन में और स्वधावाचन में तन्त्र (मुख्य कर्म) की निवृत्ति हो जाती है ।

ब्रह्मदण्डादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया ।
श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित् ।।१६।।

ब्रह्मदण्ड (शाप) आदि से युक्त जो मनुष्य अग्नि(-दाह) आदि शुभकर्म के अधिकारी नहीं हैं, वे किसी भी अवस्था में इस लोक में श्राद्ध आदि उत्तम क्रियाओं के भागी नहीं होते ।

इति चतुर्विंशः खण्डः ।

---

१. एकोद्दिष्ट वह श्राद्ध होता है जिसमें निकट भूत में मरे एक ही मनुष्य को श्राद्ध दिया जाता है, और जिसमे सामान्यतः अन्य पितरों को सम्मिलित नहीं किया जाता ।

॥ पञ्चविंशः खण्डः ॥

नवयज्ञेन विना नवान्नभोजने प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

मन्त्राम्नायेऽग्न इत्येतत् पञ्चकं लाघवार्थिभिः ।
पठ्यते तत्प्रयोगे स्यान्मन्त्राणामेव विंशतिः ॥१॥

मन्त्रों के संग्रह में लाघव (त्वरा, अविलम्बता) चाहने वाले (ऋषियों) के द्वारा अग्ने इत्यादि जो पांच मन्त्र पढ़े हैं वे प्रयोग (काल) में बीस हो जाते हैं।

अग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्य्या बहुवदूह्य च ।
समस्य पञ्चमीसूत्रे चतुश्चतुरिति श्रुतेः ॥२॥

अग्नि के स्थान पर वायु, चन्द्र और सूर्य इनकी अनेक प्रकार से ऊहा करके और इन चार-चार को पांचों मन्त्रों के साथ सूत्र में डालकर (बीस मन्त्र हो जाते हैं), यह श्रुति का तात्पर्य है।

प्रथमे पञ्चके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत् ।
अपि पञ्चसु मन्त्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥३॥

प्रथम पंचक (पांचों मन्त्रो) में 'पापी लक्ष्मीः' यह पद होता है। यह यज्ञ को जानने वाले सब जानते है।

द्वितीये तु पतिघ्नी स्यादपुत्रेति तृतीयके ।
चतुर्थे त्वपसव्येति इदमाहुतिविंशकम् ॥४॥

दूसरे (पंचक के पांच मन्त्रों) में 'पतिघ्नी' पद होता है, तीसरे में 'अपुत्रा' और चौथे में 'अपसव्या'। ये बीस आहुतियां हैं।

धृतिहोमे न प्रयुञ्ज्याद् गोनामसु तथाष्टसु ।
चतुर्थ्यामघ्न्य इत्येतद् गोनामसु हि हूयते ॥५॥

धृति-होम में तथा आठ गो-नाम आहुतियों में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग न करे। गोनाम आहुतियों में अघ्न्ये यह कहकर आहुति डाली जाती है।

लताग्रपल्लवो बुध्नः शुङ्गेति परिकीर्त्यते ।
पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबन्धुस्तथाऽश्रुतः ॥६॥

टहनी के अग्रभाग में जो गूढ पल्लव होता है वह शुंगा कहलाता है। पतिव्रता व्रतवती कहलाती है और वेद न पढ़ा हुआ ब्राह्मण ब्रह्मबन्धु कहलाता है।

शलाटु नीलमित्युक्तं ग्रथनं स्तबक उच्यते ।
कपुष्णिकाभित. केशान् मूर्द्धिन पश्चात् कपुच्छलम् ।।७।।

शलाटु (कच्चा फल) नील कहलाता है, स्तबक ग्रथन कहलाता है। सिर के चारों ओर पड़े केश कपुष्णिका कहलाते हैं और सिर के पीछे की ओर(पूंछ की तरह लटकते हुए) केश कपुच्छल कहलाते हैं।

श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः ।
तिलतण्डुलसम्पक्वः कृसरः सोऽभिधीयते ।।८।।

सेह को शलाका और शलली कहते हैं और शर वीरतर कहलाता है। तिलों और तण्डुलों से पका भोजन कृसर कहलाता है।

नामधेये मुनिवसुपिशाचा बहुवत् सदा ।
यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यास्तिथिदेवताः ।।९।।

नामकरण में मुनि, वसु, पिशाच, यक्ष, पितर, देव और अतिथि देवों की बहुवचन में उच्चारण करके पूजा करे।

आग्नेयाद्येऽथ सार्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च ।
आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ।।१०।।

कृत्तिका आदि, आश्लेष आदि, विशाखा आदि, अषाढा आदि, धनिष्ठा आदि और अश्विनी आदि नक्षत्रो में (उपर्युक्त की पूजा करे)।

द्वन्द्वान्येतानि बहुवदृक्षाणां जुहुयात् सदा ।
द्वन्द्वद्वय द्विवच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत् ।।११।।

ये नक्षत्रों के द्वन्द्व है। इनका सदा बहुवचन में प्रयोग करके यजन होना चाहिये। शेष दो द्वन्द्वों का द्विवचन में और बाकी सब का एक वचन में प्रयोग होना चाहिये।

देवतास्वपि हूयन्ते बहुवत् सर्पवस्वपः ।
देवाश्च पितरश्चैव द्विवदेवाश्विनौ सदा ।।१२।।

(उनके) देवताओं में भी सर्प, वायु, जल, विश्वे देवों और पितरों को बहुवचन में आहुति दी जाती है, और अश्वि देवों को सदा द्विवचन में।

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि ।
बाढमोमिति वा ब्रूयात्तत्तथैवानुपालयेत् ।।१३।।

गुरु के द्वारा व्रतकर्म के लिये आदिष्ट ब्रह्मचारी बाढम् (बहुत अच्छा) अथवा ओं (स्वीकार है) ऐसा बोले और तदनुसार उसका पालन करे।

सशिखं वपनं कार्यमास्नास्नाद् ब्रह्मचारिणा ।
आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्यं न चेद्भवेत् ॥१४॥

शरीर छूटने तक (—मृत्युपर्यन्त) यदि ब्रह्मचर्य न रह सके तो ब्रह्मचारी को अन्तिम स्नान तक शिखा को छोड़कर मुण्डन कराना चाहिये।

न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन ।
जलक्रीडामलङ्कारान् व्रती दण्ड इवाप्लवेत् ॥१५॥

आपद् को छोड़कर कभी शरीर पर उबटन न लगाए, जलक्रीडा न करे और आभूषणों को धारण न करे । व्रत का पालन करते हुए दण्ड (डंडे) की तरह स्नान करे ।

देवतानां विपर्यास जुहोतिषु कथं भवेत् ।
सर्वप्रायश्चितं हुत्वा क्रमेण जुहुयात् पुनः ॥१६॥

होमों में देवताओं का विपर्यास (क्रम-परिवर्तन) होने पर कैसे हो ? (इस का उत्तर यह है कि) प्रायश्चित की सब आहुतियां देकर पुनः क्रम से आहुतियां दे ।

सस्कारा अतिपद्येरन् स्वकालाच्चेत् कथञ्चन ।
हुत्वैतदेव कर्तव्या ये तूपनयनादधः ॥१७॥

यदि जो उपनयन से पहले के संस्कार है उनका किसी कारण से अपने समय से अतिक्रमण हो जाए तो उस (पायश्चित्त) को आहुतियाँ देने के पश्चात् ही वे किये जाने चाहियें ।

अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नं योऽत्त्यकामत. ।
वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥१८॥

जो मनुष्य अनजाने में नवयज्ञ से यजन किये बिना नए अन्न का भक्षण करता है, उसके लिये वैश्वानर चरु के प्रायश्चित्त का विधान किया गया गया है ।

इति पञ्चविशः खण्डः ।

।। अथ षड्विंशः खण्डः ।।

नवयज्ञकालाभिधानवर्णनम् ।

चरुः समशनीयो यस्तथा गोयज्ञकर्मणि ।
वृषभोत्सर्ज्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ।।१।।
श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृष्यारम्भे तथैव च ।
कथमेतेषु निर्वापाः कथञ्चैव जुहोतयः ।।२।।

जो मिलकर खाने योग्य चरु है, गोयज्ञ कर्म में, वृषभ के उत्सर्ग में, अश्वयज्ञ में, श्रावणी-कर्म में, प्रदोष में तथा कृष्यारभ-कर्म में—इन सभी कर्मों में निर्वाप कैसे होते है और आहुतियां कैसे दी जाती हैं (उन्हें मैं बताता हूं) ।

देवतासङ्ख्यया ग्राह्या निर्व्वापास्तु पृथक् पृथक् ।
तूष्णी द्विरेव गृह्णीयाद्धोमश्चापि पृथक् पृथक् ।।३।।

निर्वाप देवताओं की संख्या के अनुसार अलग-अलग ग्रहण किये जाने चाहियें और होम भी चुपचाप (बिना मन्त्रोच्चारण के) दो बार अलग-अलग ग्रहण किया जाए।

यावता होमनिर्वृत्तिर्भवेद्या यत्र कीर्तिता ।
शेषं चैव भवेत् किञ्चित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ।।४।।

जो (रीति) जहां विधान की गई है, (तदनुसार) जितने (चरु) से उसमें होम निवृत्त हो जाए, और कुछ शेष भी बच जाए, उतना ही चरु बनाए ।

चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरो तथा ।
होतव्य मेक्षणेनान्य उपस्तीर्णाभिधारितम् ।।५।।

मिलकर खाने योग्य चरु में से और पितृयज्ञ के चरु में से तो मेक्षण (लकड़ी के चम्मच) के द्वारा होम करना चाहिये और अन्य आचार्यों के अनुसार फैलाकर घी छिड़के हुए चरु की आहुति डालनी चाहिये ।

कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ।
वृषोत्सर्गे यतो नाऽत्र गोभिलेन तु भाषितः ।।६।।

वृषोत्सर्ग के विषय में समय और विधि कात्यायन के द्वारा संक्षेप से कह दिये गए है । क्योंकि इस विषय मे गोभिल के द्वारा कुछ नहीं कहा गया था ।

पारिभाषिक एव स्यात् कालो गोवाजियज्ञयोः ।
अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥७॥

गोयज्ञ और अश्वयज्ञ में समय पारम्परिक होता है । अन्य ऋषि के विधान के अनुसार स्वस्तरारोहण (स्वय बिछाई कुशा पर आरोहण) का भी यही समय होता है ।

अथवा मार्गपाल्येऽह्नि कालो गोयज्ञकर्मणः ।
नीराजनेऽह्नि वाश्वानामिति तन्त्रान्तरे विधिः ॥८॥

अथवा गोपाली (मार्गरक्षिका) देवी की पूजा के दिन गो-यज्ञ कर्म का काल होता है और अश्व-नीराजन[1] के दिन अश्व-यज्ञ कर्म का । अन्य स्मृति में यह विधि बताई गई है ।

शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ।
धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः ॥९॥

कुछ ऋषि शरत्काल और वसन्त में नवयज्ञ का विधान करते हैं । अन्य धान्य के पकने के कारण धान्य पकने का समय कहते है । श्यामाक वानप्रस्थी का भोजन माना गया है (इसलिये उसे श्यामाक पकने पर नवयज्ञ करना चाहिए) ।

आश्वयुज्यां तथा कृष्यां वास्तुकर्मणि याज्ञिकाः ।
यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥१०॥

यज्ञकर्म के तत्त्व को जानने वाले याज्ञिक लोग आश्वयुजी पूर्णिमा को कृषिकर्म में और वास्तुकर्म में इस प्रकार होम का विधान करते हैं ।

द्वे पञ्च द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ।
शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥११॥

क्रम से दो, पांच और दो ये हव्य की आहुतियां मानी गई हैं । शेष (आहुतियां) आज्य (पिघले घी) से देनी चाहियें, यह कात्यायन ने कहा है ।

पयो यदाज्यसंयुक्तं तत् पृषातकमुच्यते ।
दध्येके तदुपासाद्य कर्तव्यः पायसश्चरुः ॥१२॥

---

१. शरत्काल में राजा लोग अपनी विजय-यात्रा से पूर्व शस्त्र-पूजा और अश्व-नीराजना करते थे । द्रष्टव्य रघु० ४-२५.

आज्यमिश्रित जो दूध होता है, वह पृषातक कहलाता है। कुछ का विचार है कि दही मिलाकर पायस चरु बनाना चाहिये।

व्रीह्यः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः।
यवाश्चौषधयः सप्त विपदं घ्नन्ति धारिताः ॥१३॥

व्रीहि, शालि, मूंग, गेहू, सरसों, तिल और जौ, ये सात ओषधियाँ धारण की हुई विपद् का विनाश करती हैं।

संस्काराः पुरुषस्यैते स्मर्य्यन्ते गौतमादिभिः।
अतोऽष्टकादयः कार्याः सर्वे कालक्रमोदिताः ॥१४॥

गौतम आदि ऋषियों के द्वारा पुरुष के ये संस्कार बताए गए हैं। इसलिये कालक्रम से कहे हुए अष्टका आदि सब कर्म करने चाहियें।

सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात् कर्माणि यो द्विजः।
स पङ्क्तिपावनो भूत्वा लोकान् प्रैति घृतश्च्युतः ॥१५॥

जो द्विज एक बार भी अष्टका आदि कर्मों को करता है, वह अपनी पंक्ति को पवित्र करने वाला होकर घी से सिंचे हुए लोकों को प्राप्त करता है।

एकाहमपि कर्मस्थो योऽग्निशुश्रूषकः शुचिः।
नयत्यत्र तदेवास्य शताहं दिवि जायते ॥१६॥

अग्नि की सेवा करने वाला जो मनुष्य पवित्र होकर इस लोक में जिस एक दिन को कर्म में स्थित होकर बिताता है, वही स्वर्गलोक में उसके लिये सौ दिन हो जाता है।

यस्त्वाधायाग्निमाशास्य देवादीन्नैभिरिष्टवान्।
निराकर्तामरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥१७॥

जो मनुष्य अग्नि का आधान करके, देवों आदि को आशा दिलाकर इन (अग्नियों) से उनको आहुतियां नहीं देता है, देवों आदि का निराकरण करने वाले उस मनुष्य को निन्दित जानना चाहिये।

इति षड्विंशः खण्डः।

।। अथ सप्तविंशः खण्डः ।।

अथ प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत् ।
आमावास्यं द्वितीयं यदन्वाहार्य्यं तदुच्यते ।।१।।

कर्मों के आदि में जो श्राद्ध होता है, और जो अन्त में दक्षिणा होती है, जो अमावस्या को दूसरा श्राद्ध होता है वह अन्याहार्य कहा जाता है ।

एकसाध्येष्वबर्हिःषु न स्यात् परिसमूहनम् ।
नोदगासादनञ्चैव क्षिप्रहोमा हि ते मताः ।।२।।

एक दिन में पूरा होने वाले और बर्हि (कुशा) के आच्छादन से रहित होमों में परिसमूहन नहीं होता, और जल को रखना भी नहीं होता, क्योंकि वे क्षिप्रहोम माने गए हैं ।

अभावे व्रीहियवयोर्द्ध्ना वा पयसापि वा ।
तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा ।।३।।

चावल और जौ के अभाव में दही से अथवा दूध से, और उनके भी अभाव में यवागू अथवा जल से हवि प्रदान करे ।

रौद्रन्तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिचारिकम् ।
उक्त्वा मन्त्रं स्पृशेदप आलभ्यात्मानमेव च ।।४।।

रुद्र के मन्त्र, राक्षसों के मन्त्र, पितरों के मन्त्र, असुरों के मन्त्र और अभिचार के मन्त्र को उच्चारण करके अपने आप को स्पर्श करके आचमन करे ।

यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते ।
तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दण्डं दद्याद् द्विजातये ।।५।।

यज्ञ के दिन चन्द्रमा यदि वारुणी (पश्चिम) दिशा में दिखाई दे तो व्याहृति (भूर्भुवः स्वः) से आहुतियां डालकर ब्राह्मण को दण्ड (डंडा) प्रदान करे ।

लवणं मधु मांसञ्च क्षारांशो येन हूयते ।
उपवासे न भुञ्जीत नोरु रात्रौ न किञ्चन ।।६।।

लवण, मधु, मांस और क्षार का अंश जिसके द्वारा होम किया जाता है, वह उपवास में कुछ न खाए और रात्रि को भी कुछ अधिक न खाए ।

स्वकाले सायमाहुत्या अप्राप्तौ होतृहव्ययोः ।
प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते हुते सति ॥७॥

सायकाल की आहुति के अपने काल मे होता और हव्य न मिलने पर प्रातः काल की आहुति से पूर्व प्रायश्चित्त की आहुति दे देने पर (सायं की आहुति का) काल है।

प्राक् सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ।
प्राक् पौर्णमासाद् दर्शस्य प्राग्दर्शादितरस्य तु ॥८॥

(प्रायश्चित्त का होम कर देने पर) सायं की आहुति से पूर्व प्रातः के होम के काल का अतिक्रमण नहीं होता, पौर्णमास होम से पूर्व दर्श होम का, और दर्श होम से पूर्व इतर (पौर्णमास) का।

वैश्वदेवे त्वतिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ।
प्रायश्चित्तमथो हुत्वा पुनः सन्तनुयाद् व्रतम् ॥९॥

वैश्वदेव का अतिक्रमण होने पर एक दिन-रात भोजन न करे। उसके पश्चात् प्रायश्चित्त होम करके पुनः व्रत का अनुष्ठान करे।

होमद्वयात्यये दर्शपौर्णमासात्यये तथा ।
पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥१०॥

(प्रातः और सायं के) दो होमों का उल्लंघन हो जाने पर तथा दर्श और पौर्णमास का उल्लंघन हो जाने पर फिर से अग्नि का आधान करे, यह भार्गव ऋषि का आदेश है।

अनृचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः ।
रुरुर्गौरमृगः प्रोक्तस्तम्बलः शोण उच्यते ॥११॥

ऋचाओं से हीन मनुष्य माणव (घटिया मनुष्य) माना जाता है। काला मृग एण कहलाता है, गौरमृग रुरु और लाल तम्बल कहा जाता है।

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः ।
ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥१२॥

ब्राह्मण का दण्ड (डंडा, लाठी) प्रमाण में केशों तक पहुंचने वाला होना चाहिये, क्षत्रिय का माथे तक के माप का होता है, और वैश्य का नासिका तक पहुंचने वाला होता है।

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥१३॥

वे सब के सब सीधे, व्रण (सूराख) रहित, देखने में सुहावने, मनुष्यों में उद्वेग उत्पन्न न करने वाले, छाल वाले, और अग्नि से न जले हुए होने चाहियें।

गौर्विशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते ।
न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद् गौर्वर उच्यते ॥१४॥

वेदों में भी ऋषियों के द्वारा गऊ को विशिष्टतम कहा गया है। चूंकि उससे उत्तम और कोई वस्तु नहीं है, इसलिये गऊ को वर कहा गया है।

येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ।
वरस्तत्र भवेद्दानमपि वाच्छादयेद् गुरुम् ॥१५॥

जिन व्रतों के अन्त में दक्षिणा का विधान नहीं है, वहां गऊ का दान होना चाहिये, अथवा गुरु को (वस्त्रों से) आच्छादित कर दे।

अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ।
प्रामादिकं श्रुतौ यत् स्याद्यातयामत्वकारि तत् ॥१६॥

वेद (पाठ) में अस्थान से, ऊँचे श्वास के साथ, बीच में रुककर, घोषणा अध्यापन आदि में जो प्रमाद के साथ किया गया उच्चारण है, वह (वेदपाठ की) प्रगति को बाधित करने वाला है।

प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवद् द्विजैः ।
क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥१७॥

द्विजों के द्वारा प्रतिवर्ष विधिवत् जो उपाकर्म उत्सर्गसहित किया जाता है, उससे मन्त्रों की पुन आपूर्ति हो जाती है।

अयातयामैश्छन्दोभिर्यत् कर्म क्रियते द्विजैः ।
क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥१८॥

अयातयाम सुपयोगी मन्त्रों से क्रीडामात्र से भी द्विजों के द्वारा जो कर्म किया जाता है, वह उनकी सिद्धि करने वाला होता है।

गायत्रीञ्च सगायत्रां बार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ।
शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकुर्यात्ततः श्रुतिम् ॥१९॥

गायत्र-सहित गायत्री और बार्हस्पत्य इन तीनों को शिष्यों को पढ़ाकर तत्पश्चात् विधिवत् वेद का उपाकर्म करे।

छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम् ।
तच्छन्दस्काभिरेवर्ग्भिर्राद्याभिर्होम इष्यते ॥२०॥

संहिता में (गायत्री आदि) क्रम से इक्कीस छन्द हैं । इन छन्दों वाली आद्य ऋचाओं से होम किया जाना अभीष्ट है ।

पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेषूत्तरादिभिः ।
अङ्गेषु चर्च्चामन्त्रेषु इति षष्टिर्जुहोतयः ॥२१॥

पर्वों सहित (साम के) गानो में, उत्तर अंशों सहित ब्राह्मणों में, अङ्गों में और चर्चा-मन्त्रों में साठ आहुतियां (कही गई) है ।

इति सप्तविंशः खण्डः ।

॥ अथ अष्टाविंशः खण्डः ॥

अथ प्रायश्चित्तवर्णनमुपाकर्मणः फलनिरूपणवर्णनम् ।
अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ।
भृष्टास्तु व्रीहयो लाजा घटाः स्वाण्डिक उच्यते ॥१॥

उत्तम जो अक्षत कहलाते है, वही भुने हुए धान कहलाते हैं, भुने हुए उत्तम व्रीहि लाज (खील) कहलाते है, छिलके उतरे जो स्वाण्डिक कहलाते हैं ।

नाधीयीत रहस्यानि सोत्तराणि विचक्षणः ।
न चोपनिषदश्चैव षण्मासान् दक्षिणायनात् ॥२॥

दक्षिणायन के आरम्भ से लेकर छ महीनों तक विद्वान् उत्तर अंशों सहित रहस्यों (आरण्यकों) को न पढ़े, और उपनिषदों को भी न पढ़े ।

उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्मवित् ।
उत्सर्गश्चैक एवैषां तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥३॥

उत्तरायण में उपाकर्म करके तत्पश्चात् धर्मज्ञ (इन्हें) पढ़े । इन का उत्सर्ग भी पौष की पूर्णिमा को या भाद्रपद में एक ही है ।

अजातव्यञ्जना लोम्नी न तया सह संविशेत् ।
अयुगूः काकबन्ध्याया जातां तां न विवाहयेत् ॥४॥

जो अनुत्पन्न यौवन के चिह्नों वाली और शरीर पर बड़े-उड़े बालों वाली हो, उससे संभोग न करे। काकवन्ध्या (इकलौती सन्तान को जन्म देने वाली स्त्री) से उत्पन्न जो इकलौती कन्या (अयुगूः) हो, उससे विवाह न करे।

संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः।
स्मार्त्ते कर्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ॥५॥

मिलाकर रखे गए पदों वाला तीन पदों का विन्यास प्रक्रम कहलाता हैं। यह स्मार्त्त कर्म मे सर्वत्र होता है और श्रौत में जहां अध्वर्यु के द्वारा कहा जाता है, वहाँ होता है।

यस्यां दिशि बलिं दद्यात्तामेवाभिमुखो बलिम्।
श्रवणाकर्मणि भवेन्न्यञ्च कर्म न सर्वदा ॥६॥

जिस दिशा में बलि दे, उसी दिशा में मुख करके श्रवणा-कर्म में भी सदा बलि होती है, न्यञ्चकर्म (औंधे मुहं लेटना) नहीं होता।

बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा।
प्रत्यहं न भवेयातामुल्मुकन्तु भवेत् सदा ॥७॥

बलिशेष का हवन और अग्नि-प्रणयन प्रतिदिन नहीं होते। उल्मुक[1] तो सदा होता है।

पृषातकप्रेषणयोर्नवस्य हविषस्तथा।
शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वेऽधिकारिणः ॥८॥

पृषातक (घी मिश्रित दूध) और प्रेषण में, तथा नई हवि के और शिष्ट के प्राशन में मन्त्र होता है। उसमे सब अधिकारी हैं।

ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेव पृषातकम्।
अवेक्षेद्धविषः शेष नवयज्ञेऽपि भक्षयेत् ॥९॥

ब्राह्मण जब निकट में न हों तो (यजमान) स्वयं पृषातक को देखे, और हवि के शेष का नवयज्ञ में भी भक्षण करे।

सफला बदरीशाखा फलवत्यभिधीयते।
घना विसिकताशङ्काः स्मृता जातशिलास्तु ताः ॥१०॥

फल वाली बेर की शाखा फलवती कहलाती है; घनी, सिकता और शङ्का से जो रहित होती हैं वे जातशिला कहलाती है।

---

१. वह अंगारी जिसे अग्नि प्रज्वलित अरने के लिये काम में लाया जाता है।

नष्टो विनष्टो मणिकः शिलानाशे तथैव च ।
तदैवाऽऽहृत्य संस्कार्यो न क्षिपेदाग्रहायणीम् ॥११॥

और शिला के भी नष्ट हो जाने पर जब मटका टूट-फूट जाए तो उसी को लाकर सस्कार किया जाना चाहिये, आग्रहायणी की प्रतीक्षा न करे।

श्रवणाकर्म लुप्तञ्चेत् कथञ्चित् सूतकादिना ।
आग्रहायणिकं कुर्याद्बलिवर्जमशेषतः ॥१२॥

किसी प्रकार सूतक आदि के कारण यदि श्रवणा-कर्म लुप्त हो जाए तो बलि को छोड़कर आग्रहायणी के कर्म को सम्पूर्ण रूप से करे।

ऊर्ध्वं स्वस्तरशायी स्यान्मासमर्द्धमथापि वा ।
सप्तरात्रं त्रिरात्र वा एकां वा सद्य एव वा ॥१३॥

उसके पश्चात् स्वय बनाए कुशा के आस्तरण पर एक मास या आधा मास, अथवा सात रात, तीन रात, एक रात अथवा कुछ क्षण के लिये ही शयन करे।

नोर्ध्वं मन्त्रप्रयोगः स्यान्नाग्न्यगारं नियम्यते ।
नाहृतास्तरणञ्चैव न पार्श्वञ्चापि दक्षिणम् ॥१४॥

इससे आगे मन्त्र का प्रयोग नहीं होता और न ही अग्न्यगार का नियम है। न ही नये बिछौने और दक्षिण पार्श्व का विधान है।

दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्तावपि कर्मणः ।
कुम्भौ मन्त्रवदासिञ्चेत् प्रतिकुम्भमृचं पठेत् ॥१५॥

अगर मनुष्य दृढ़ (स्वस्थ) है तो आग्रहायणी में कर्म की आवृत्ति होने पर भी दो घड़ों को मन्त्र के साथ सींचे, और प्रत्येक घड़े को सींचते समयमन्त्र पढ़े।

अल्पानां यो विघातः स्यात् स बाधो बहुभिः स्मृतः ।
प्राणसम्मित इत्यादि वासिष्ठं बाधितं यथा ॥१६॥

छोटे (कर्मों) का जो विनाश है, बहुत से ऋषियों के द्वारा उसे बाध कहा गया है, जैसे प्राणसम्मित इत्यादि वसिष्ठ के द्वारा कहा गया बाधित है।

विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ।
तुल्यप्रमाणकत्वे तु न्याय एवं प्रकीर्तितः ॥१७॥

जहां वचनों का विरोध होता है, वहां अधिक (ऋषियों) के वचनों को प्रमाण माना जाता है। तुल्य प्रामाणिकता से न्याय-युक्त वचन की ही प्रमाणिकता है।

त्रैयम्बकं करतलमपूपा मण्डकाः स्मृताः ।
पालाशा गोलकाश्चैव लोहचूर्णञ्च चीवरम् ॥१८॥

करतल को त्रैयम्बक और अपूपों का मण्डक कहते हैं । गोलकों को पालाश और लोहचूर्ण को चीवर कहते हैं ।

स्पृशन्ननामिकाग्रेण क्वचिदालोकयन्नपि ।
अनुमन्त्रणीयं सर्वत्र सदैवमनुमन्त्रयेत् ॥१९॥

(इनको कहीं तो) अनामिका के अग्रभाग से स्पर्श करे और कहीं देखता हुआ भी सर्वत्र मन्त्र का पाठ करे। सदा इसी प्रकार मन्त्र का पाठ करना चाहिये ।

इत्यष्टाविंशः खण्डः ।

॥ अथ एकोनत्रिंशः खण्डः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम् ।

क्षालनं दर्भकूर्चेन सर्वत्र स्रोतसां पशोः ।
तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वसार्थे पार्णदारुणी ॥१॥

पशु के स्रोतों (मुखादि सूराखों) को सर्वत्र कुशा की कूची से चुपचाप (बिना मन्त्र पढ़े) ऐच्छिक क्रम से धोए, वसा के लिये पत्तों के दो पात्र होते हैं ।

सप्त तावन्मूर्द्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ।
नाभिः श्रोणिरपानञ्च गोस्रोतांसि चतुर्दश ॥२॥

गाय के चौदह स्रोत हैं, सात सिर में स्थित (अर्थात् दो आँखे, दो कान, दो नासिकाएं और एक मुख), चार थन, नाभि, श्रोणि(योनि) और अपान(गुदा) ।

क्षुरो मांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्टकृदावृता ।
वपामादाय जुहुयात्तत्र मन्त्रं समापयेत् ॥३॥

मांस के अवदान के लिये छुरा होता है । सम्पूर्ण वपा को स्विष्टकृत् की रीति से लेकर होम करे, और वहीं पर मन्त्र का समापन कर दे ।

हृज्जिह्वा क्रोडमस्थीनि यकृद् वृक्कौ गुदं स्तना. ।
श्रोणिस्कन्धसटापार्श्वे पश्वङ्गानि प्रचक्षते ॥४॥

हृदय, जिह्वा, छाती, जांघे, जिगर, गुरदे, गुदा, थन श्रोणि, स्कन्ध और सटा (ठाठ) के पासे—इन्हें पशु के अङ्ग कहते हैं।

एकादशानामङ्गानामवदानानि सङ्ख्यया ।
पार्श्वस्य वृक्कसक्थ्नोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥५॥

ग्यारह अंगों के अवदान गिनती में पासों, गुरदों और जांघों के दो-दो होने के कारण चौदह कहे गए हैं।

चरितार्था श्रुतिः कार्या यस्मादप्यनुकल्पतः ।
अतो ह्यार्चेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥६॥

चूंकि प्रत्येक कल्प के अनुसार श्रुति को चरितार्थ करना होता है, इस लिये छाग के यज्ञ-पक्ष में भी चरु में आठ ऋचाओं से होम होता है।

अवदानानि यावन्ति क्रियेरन् प्रस्तरे पशो. ।
तावत पायसान् पिण्डान् पश्वभावेऽपि कारयेत् ॥७॥

पशु के वेदि पर जितने अवदान किये जाते हैं, पशु न मिलने पर उतने ही पायस (क्षीर-भोजन) के पिण्डों को रखवाए ।

औदनव्यञ्जनार्थन्तु पश्वभावेऽपि पायसम् ।
सद्रवं श्रपयेत्तद्वदन्वष्टक्येऽपि कर्मणि ॥८॥

पशु के अभाव में ओदन से बने व्यञ्जन के स्थान पर खीर का विधान है। उसी प्रकार अन्वष्टक्य कर्म में भी। पर वहां उसे पतली (ढीली) पकाना चाहिये।

प्राधान्यं पिण्डदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ।
गयादौ पिण्डमात्रस्य दीयमानत्वदर्शनात् ॥९॥

गया आदि (तीर्थों) में पिण्ड मात्र के दिये जाने के विचार से कुछ मनीषी पिण्डदान का ही प्राधान्य बताते हैं।

भोजनस्य प्रधानत्वं वदन्त्यन्ये महर्षयः ।
ब्राह्मणस्य परीक्षाया महायत्नप्रदर्शनात् ॥१०॥

ब्राह्मण की परीक्षा में महान् यत्न के देखे जाने के कारण अन्य महर्षि भोजन की ही प्रधानता बताते हैं।

आमश्राद्धविधानस्य विना पिण्डैः क्रियाविधिः ।
तदालभ्याप्यनध्यायविधानश्रवणादपि ॥११॥

उस (ब्राह्मण) के मिल जाने पर भी अनध्याय का विधान चूंकि सुना जाता है, इस लिये आमश्राद्ध (विना पके अन्न से किये जाने वाले श्राद्ध) के विधान की क्रिया-विधि पिण्डों के विना है।

विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद् धृदि स्थितम् ।
प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेष समुच्चयः ॥१२॥

विद्वानों का मत जानकर और मेरे भी हृदय में यही बात है ऐसा विचार कर, चूंकि इसमें दोनों के विचारों का प्राधान्य है इस लिये यह समुच्चय (मत) है।

प्राचीनावीतिना कार्यं पित्र्येषु प्रोक्षणं पशोः ।
दक्षिणोद्वासनान्तञ्च चरोर्निर्वपणादिकम् ॥१३॥

पितरों के कर्मों में पशु का प्रोक्षण (मन्त्र से जलसिञ्चन) प्राचीनावीति होकर करना चाहिये। दक्षिणा (गऊ) को (हनन के लिये) बाहर ले जाने तक के कार्य और चरु के निर्वपण आदि के कार्य को भी प्राचीनावीति होकर करे।

सन्नपशववदानानां प्रधानार्थो न हीतरः ।
प्रधानं हवनञ्चैव शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ॥१४॥

मरे पशु के अवदानों का प्रयोजन ही प्रधान है, और कोई नहीं। हवन भी प्रधान है, शेष कर्म स्वाभाविक रूप से होना चाहिये।

द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादा चैवेष्टका स्मृता ।
कीलिनं सजलं प्रोक्तं दूरखातोदको मरुः ॥१५॥

ऊँचे (स्थान) को द्वीप कहते हैं, ईंट को शादा कहते हैं, जल से युक्त (स्थान) को कीलिन कहते हैं, दूर तक खोदने पर जिसमें जल मिले उसे मरु कहते हैं।

द्वारे गवाक्षस्तम्भैः कर्दमभित्त्यन्तकोणैश्च ।
नेष्टं वास्तुद्वारं विद्धमनाक्रान्तमार्यैश्च ॥१६॥

द्वार में झरोखों और स्तम्भों से युक्त, गारे से बनी भीतर की ओर निकले कोनों वाली दीवारो और सूराखों से युक्त मकान इष्ट नहीं है, और जिसमें सज्जनों का आवागमन नहीं होता वह भी इष्ट नहीं है।

वशङ्गमाविति ब्रीहीञ्छङ्खश्चेति यवांस्तथा ।
असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात् क्षिप्रहोमवत् ।।१७।।

वशङ्गमौ (गोभिल गृ० ४.८.७.) इत्यादि मन्त्र से धानों को तथा शङ्खश्च (वही) इत्यादि मन्त्र से जौ को और 'असौ' इसके स्थान पर नामोच्चारण के साथ क्षिप्रहोम की तरह होम करे।

साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम् ।
अर्घ्यं दधिमधुभ्याञ्च मधुपर्को विधीयते ।।१८।।

अक्षतों वाला, पुष्पों से युक्त, जल और दही मिला हुआ अर्घ्य होता है। और दही और मधु से मधुपर्क बनाया जाता है।

कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमञ्जलौ ।
कांस्यापिधानं कांस्यस्थं मधुपर्कं समर्पयेत् ।।१९।।

काँसे के पात्र के द्वारा ही अर्घ्य के योग्य मनुष्य की अञ्जलि में अर्घ्य दे। (इसी प्रकार) कांसे के पात्र से ढके हुए और कांसे के पात्र में रखे हुए मधुपर्क को ही दे।

इति कात्यायनविरचिते (गोभिलप्रोक्ते) कर्मप्रदीपे तृतीयः प्रपाठकः ।

इत्येकोनत्रिंशः खण्डः ।

समाप्ता चेयं कात्यायनस्मृतिः

अथ

।। पराशरस्मृतिः ।।

प्रथमोऽध्यायः ।

धर्मोपदेशः तल्लक्षणं च ।

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ।।१।।

पुराने समय में हिमालय की चोटी पर देवदारु के वृक्षों के वन में बने आश्रम में एकाग्रचित्त बैठे व्यास को ऋषियों ने पूछा ।

मानुषाणा हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौ युगे ।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ! ।।२।।

हे सत्यवती के पुत्र ! वर्तमान कलियुग में मनुष्यों के हितकारी धर्म और शौच एवं आचार का यथावत् उपदेश कीजिये ।

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यन्तु समिद्धाग्न्यर्कसन्निभः ।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ।।३।।

ऋषियों के उस वचन को सुनकर प्रज्वलित अग्नि और सूर्य जैसे, महातेजस्वी, श्रुति और स्मृति में चतुर व्यास ने उत्तर दिया ।

न चाहं सर्व्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहं ।
अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ।।४।।

(पराशर का) पुत्र व्यास बोला—मैं सब तत्त्वों का ज्ञाता नहीं हूं । मैं धर्म का उपदेश कैसे करूं ? (इस विषय में तो) मेरे पिता को ही पूछा जाए ।

ततस्ते ऋषयः सर्व्वे धर्मतत्त्वार्थकाङ्क्षिणः ।
ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता वदरिकाश्रमे ।।५।।

नानावृक्षसमाकीर्णं फलपुष्पोपशोभितम् ।
नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थैरलङ्कृतम् ॥६॥
मृगपक्षिनिनादञ्च देवतायतनावृतम् ।
यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च नृत्यगीतैरलङ्कृतम् ॥७॥

तब धर्म के तत्त्व के अर्थ को जानना चाहने वाले सब के सब ऋषि व्यास को आगे करके नाना वृक्षों और बेलों से भरे हुए, फलों और पुष्पों से अलंकृत, नदियों और झरनों से युक्त, पवित्र तीर्थों से सुशोभित, पशु और पक्षियों की आवाजों से समृद्ध, देवताओं के निवासों से घिरे हुए, यक्षों गन्धर्वों और सिद्धों के द्वारा नृत्य और गीतों से मण्डित बदरिकाश्रम चले गए।

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ।
सुखासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतम् ॥८॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभि. सह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभि· समपूजयत् ॥९॥

उस (बदरिकाश्रम में) ऋषियों की सभा के बीच में आराम से बैठे हुए, मुख्य मुनियों के समूह से घिरे हुए, शक्ति के पुत्र, महात्मा पराशर की ऋषियों के साथ हाथ जोड़कर व्यास ने परिक्रमा, नमस्कारों और स्तुतियों से पूजा की।

अथ सन्तुष्टमनसा पराशरमहामुनिः ।
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ॥१०॥

उसके पश्चात् सन्तुष्ट मन के साथ, (आराम से) बैठे हुए, मुनियों में पुङ्गव जैसे (अर्थात् श्रेष्ठ), महामुनि पराशर ने (व्यास) को कहा—(तुम्हारा) सुस्वागत है, (अपने आने का प्रयोजन) बताओ।

व्यास सुस्वागतं ये च ऋषयश्च समन्ततः ।
कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यतः परम् ॥११॥
यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल !
धर्मं कथय मे तात ! अनुग्राह्योह्यहं तव ॥१२॥

"व्यास ! तेरा सुस्वागत है ! और जो ऋषि तुझे सब ओर से घेरे हुए हैं (उनका भी स्वागत है)। क्या तू कुशल पूर्वक है ?" "मैं कुशल हूं" ऐसा कह कर तत्पश्चात् व्यास ने प्रश्न किया—"हे भक्तवत्सल ! हे तात ! यदि

आप मेरी भक्ति को जानते हैं, अथवा स्नेह के कारण मुझे धर्म का उपदेश कीजिये। मैं आप की कृपा का पात्र हूं।"

श्रुता मे मानवा धर्म्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा।
गार्गेया गौतमाश्चैव तथा चौशनसाः स्मृताः ॥१३॥
अत्रेर्विष्णोश्च सांवर्त्ता दाक्षा आङ्गिरसास्तथा।
शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृताश्च ये ॥१४॥
कात्यायनकृताश्चैव प्राचेतसकृताश्च ये।
आपस्तम्बकृता धर्म्माः शङ्खस्य लिखितस्य च ॥१५॥
श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थास्ते न विस्मृताः।

मनु के द्वारा कहे हुए धर्मों को, वसिष्ठ के द्वारा कहे हुए, कश्यप के द्वारा कहे हुए, गर्ग के द्वारा कहे हुए और गौतम के द्वारा कहे हुए तथा जिन्हें उशना ऋषि द्वारा कहे हुए माना गया है, इन सब धर्मों को मैंने सुना है। अत्रि के, विष्णु के, सवर्त के द्वारा कहे हुए, दक्ष द्वारा कहे हुए तथा अङ्गिरा द्वारा कहे हुए, शातातप द्वारा कहे हुए, हरित द्वारा कहे हुए, और जो याज्ञवल्क्यकृत है, जो कात्यायनकृत है, जो प्रचेता द्वारा कृत है, जो आपस्तम्बकृत धर्म हैं, और जो शङ्ख और लिखित के धर्म हैं—ये सब श्रुतिसम्मत धर्म आप के द्वारा उपदेश करने पर मैं ने सुने हैं और वे मुझे भूले नहीं हैं।

अस्मिन्मन्वन्तरे धर्म्माः कृतत्रेतादिके युगे ॥१६॥
सर्व्वे धर्म्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे।

इस मन्वन्तर में जो धर्म थे, कृत और त्रेता आदि युगों में जो धर्म थे, वे सब धर्म कृतयुग में उत्पन्न हुए थे, और वे सब के सब कलियुग में नष्ट हो गए।

चातुर्वण्यसमाचारं किञ्चित् साधारण वद ॥१७॥
चतुर्णामपि वर्णाणां कर्तव्य धर्मकोविदैः।
ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥१८॥

चारों वर्णों का जो कुछ साधारण धर्म है, उस का उपदेश कीजिये। चारों वर्णों के धर्म-ज्ञानियों के द्वारा जो करणीय है, हे धर्म के स्वरूप को जानने वाले, उस सूक्ष्म और स्थूल धर्म का विस्तार से उपदेश कीजिये।

व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः ।
धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलञ्च विस्तरात् ।
शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्येऽहं शृण्वन्तु ऋषयस्तथा ॥१९॥

व्यास के वचन की समाप्ति पर मुनियों में मुख्य पराशर ने धर्म के सूक्ष्म और स्थूल निर्णय को विस्तार से कहा । हे पुत्र ! सुन, तथा सब ऋषि भी सुनें । मैं बताता हूं ।

कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः निर्णेतव्याश्च सर्वदा ॥२०॥

प्रत्येक कल्प में क्षय और उत्पत्ति में ब्रह्मा विष्णु और महेश (ही कारण हैं) । और (प्रत्येक कल्प में) सदा श्रुति, स्मृति और सदाचार निर्णय करने के योग्य हैं ।

न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुखः ।
तथैव धर्मं स्मरति मनुः कल्पान्तरान्तरे ॥२१॥

वेद का कर्ता कोई नहीं है । चतुर्मुख (ब्रह्मा) वेद का स्मरण करने वाला है । उसी प्रकार मनु प्रत्येक कल्प में धर्म का स्मरण करता है ।

अन्ये कृतयुगे धर्म्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः ॥२२॥

युग-युग के अनुसार मनुष्यों के सत्ययुग में अन्य धर्म है, त्रेता और द्वापर में अन्य है, और कलियुग में अन्य हैं ।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे ॥२३॥

सत्ययुग में तप मुख्य है, त्रेता में ज्ञान मुख्य कहा गया है, द्वापर में यज्ञ को मुख्य कहते हैं, और कलियुग में एक मात्र दान मुख्य है ।

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः ।
द्वापरे शङ्खलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः ॥२४॥

कृतयुग में मनु-प्रोक्त धर्म को मुख्य माना गया हैं, त्रेता में गौतम के धर्म को द्वापर में शङ्खलिखित धर्म को और कलि में पराशर के धर्म को मुख्य माना गया है ।

त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ।
द्वापरे कुलमेकन्तु कर्त्तारञ्च कलौ युगे ॥२५॥

(यदि कहीं कोई पापाचरण करता है) तो सत्ययुग में उस देश को ही छोड़ दे, त्रेता में ग्राम को छोड़ दे, द्वापर में कुल को छोड़ दे, और कलियुग में एक मात्र करने वाले को छोड़ दे।

कृते सम्भाषणात् पापं त्रेतायाञ्चैव दर्शनात् ।
द्वापरे चान्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥२६॥

सत्ययुग में (पापाचरण करने वाले के साथ) बोलने से, त्रेता में उसका स्पर्श करने से, द्वापर में उससे अन्न लेकर (खाने से) और कलि में (अपने दुष्ट) कर्म से पतित होता है।

कृते तु तत्क्षणाच्छापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ।
द्वापरे मासमात्रेण कलौ संवत्सरेण तु ॥२७॥

सत्ययुग मे शाप तत्क्षण लग जाता है, त्रेता में दस दिनों में, द्वापर में मास भर में और कलि में एक वर्ष में।

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥२८॥

सत्ययुग में दान पास जाकर दिया जाता है, त्रेता में बुलाकर दिया जाता है, द्वापर में मांगने वाले को दिया जाता है और कलि में सेवा करने पर दिया जाता है।

अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम् ।
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम् ॥२९॥

पास जाकर दिया हुआ दान उत्तम होता है, बुलाकर दिया हुआ दान मध्यम होता है, मांगने पर दिया हुआ दान अधम होता है और सेवा करने से दिया हुआ दान निष्फल होता है।

कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेताया मांससंस्थिताः ।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ॥३०॥

कृतयुग में प्राण हड्डियों में स्थित होते है, त्रेता में मांस मे स्थित होते हैं, द्वापर में रुधिर तक होते हैं और कलि में अन्नादि मे स्थित होते हैं।

धर्मो जितो ह्यधर्मेण जितः सत्योऽनृतेन च ।
जिता भृत्यैस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥३१॥

(कलियुग में) अधर्म ने धर्म को जीत लिया, झूठ ने सत्य को जीत लिया, राजाओं को सेवकों ने जीत लिया और स्त्रियों ने पुरुषों को जीत लिया है।

सीदन्ति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ।
कुमार्य्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे सदा ॥३२॥

उस कलि युग में सदा अग्निहोत्रों का ह्रास होता है, बड़ों की पूजा का विनाश होता है और कुमारी कन्याए बच्चों को जन्मती हैं।

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥३३॥

प्रत्येक युग में जो धर्म है, और उस-उस युग में जो द्विज है, हे ब्राह्मणो, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे अपने युग के अनुरूप ही है।

युगे युगे च सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ।
पराशरेण चाप्युक्त प्रायश्चित्तं प्रधीयते ॥३४॥

प्रत्येक युग मे जो सामर्थ्य शेष रह जाता है, जिसका (अन्य) मुनियों ने वर्णन किया है और जिसके विषय मे पराशर ने भी कहा है, उसी के अनुसार प्रायश्चित्त किया जाता है।

अहमद्यैव तद्धर्ममनुस्मृत्य ब्रवीमि वः ।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं श्रृणुध्वं मुनिपुङ्गवा ॥३५॥

मैं अभी उस धर्म और चारों वर्णों के आचार का अनुस्मरण करके तुम्हें बताता हूं, हे श्रेष्ठ मुनियो ! सुनो।

पाराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३६॥

पराशर का मत पुनीत है, पवित्र है और पाप का नाश करने वाला है। वह विचार किया हुआ ब्राह्मणों के हित के लिये और धर्म की स्थापना के लिये है।

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥३७॥

चारों वर्णों का आचार ही धर्म का पालन करने वाला होता है। धर्म भी आचार से भ्रष्ट शरीर वालों की ओर से मुँह मोड़ लेता है।

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥३८॥

नित्य छ कर्मों में भली प्रकार लगा हुआ, देवताओं और अतिथियों की पूजा करने वाला और यज्ञशेष खाने वाला ब्राह्मण कभी अधोगति को प्राप्त नहीं होता।

सन्ध्यास्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
वैश्वदेवातिथेयञ्च षट्कर्म्माणि दिने दिने ॥३९॥

दोनों सन्ध्याओं (प्रातः और सायं) में स्नान, जप, होम, देवताओं की पूजा, अतिथि सत्कार और वैश्वदेव यज्ञ—ये प्रतिदिन के छः कर्म हैं।

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा।
वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४०॥

चाहे प्यारा हो चाहे वैरी हो, चाहे मूर्ख हो और चाहे पण्डित हो, वैश्वदेव में आया वह अतिथि स्वर्ग का सेतु है।

दूराद्ध्वानं पथि श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम्।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥४१॥

लम्बी यात्रा वाले, मार्ग में थके हुए, वैश्वदेव में पहुंचे हुए उस मनुष्य को ही अतिथि जानो, पहले से आया हुआ अतिथि नहीं होता।

न पृच्छेद् गोत्रचरणं न स्वाध्यायव्रतानि च।
हृदयं कल्पयेत्तस्मिन् सर्वदेवमयो हि सः ॥४२॥

उसके गोत्र और चरण को न पूछे और न ही स्वाध्याय और व्रतों को पूछे। उसमें हृदय को समर्पित करदे, क्योंकि वह सर्वदेव-स्वरूप है।

नैकग्रामीणमतिथिं सगृह्णीत कदाचन।
अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥४३॥

एक ही ग्राम में (नित्य) निवास करने वाले को कभी अतिथि स्वीकार न करे। चूंकि प्रतिदिन नहीं आता, इस लिये अतिथि कहा जाता है।

अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत् स्वागतादिना।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥४४॥

वहां आए हुए अतिथि को स्वागत आदि से पूजा करे और आसन देकर और चरण धोकर उसकी पूजा करे।

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥४५॥

श्रद्धापूर्वक अन्न देकर, मीठे प्रश्नोत्तर के द्वारा और जाते हुए का अनुगमन करके गृहस्थ उसकी प्रसन्नता को उत्पन्न करे।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
पितरस्तस्य नाश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्च च ॥४६॥

जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसके अन्न को पितर पन्द्रह वर्ष तक ग्रहण नहीं करते।

काष्ठभारसहस्रेण घृतकुम्भशतेन च।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥४७॥

अतिथि जिसके घर से निराश (लौटता है) एक हजार लकड़ी के गट्ठड़ों से और सौ घी के कुंभों से (किया हुआ भी) उस का होम निरर्थक हो जाता है।

सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं सुपात्रे निक्षिपेद् धनम्।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥४८॥

उत्तम खेत में ही बीज बोए, सुपात्र को ही धन दान में दे। उत्तम खेत में बोया (बीज) और सुपात्र को दिया हुआ (दान) कभी नष्ट नहीं होता।

अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वो वातिथिस्तथा।
वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥४९॥

उत्तम व्रत वाला ब्राह्मण अपूर्व होता है, तथा अतिथि अपूर्व होता है, नित्य वेदाभ्यास में निरत (ब्राह्मण) अपूर्व होता है। ये तीनों प्रतिदिन अपूर्व होते हैं।

वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते भिक्षुके गृहमागते।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥५०॥

वैश्वदेव का समय होने पर और भिक्षुक के घर आजाने पर, वैश्वदेव के लिये (अन्न) निकाल कर (भिक्षुक को) भिक्षा देकर विदा करे।

यती च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ।
तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥५१॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों पके हुए अन्न के स्वामी (अधिकारी) हैं। इन दोनों को अन्न दिये बिना जो खाए वह चान्द्रायण व्रत करे।

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात् पुनर्जलम्।
तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥५२॥

संन्यासी के हाथ में (पहले) जल दे, (फिर) भिक्षा दे, पुनः जल दे। वह भिक्षा मेरु पर्वत के समान है और वह जल सागर के समान।

वैश्वदेवकृतान् दोषान् शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥५३॥

वैश्वदेव (न करने) से उत्पन्न दोषों को भिक्षु दूर करने में समर्थ है। पर भिक्षु (को भिक्षा न देने) से उत्पन्न दोषों को वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता।

न गृह्णाति तु यो विप्रो ह्यतिथिं वेदपारगम् ।
अददन्नमात्रन्तु भुक्त्वा भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ॥५४॥

जो ब्राह्मण वेदों में पारंगत अतिथि को ग्रहण नहीं करता, और अन्न को (अतिथि को) दिये बिना स्वयं खाता है, वह पाप खाता है।

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुपममकण्टकम् ।
वापयेत् सर्व्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥५५॥

ब्राह्मण का मुख बिना काँटों का निरुपम खेत है। उसी में सब बीजों को बोए, वही सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली खेती है।

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपुत्रे दापयेद्धनं ।
सुक्षेत्रे च सुपुत्रे च यत्क्षिप्तं नैव नश्यति ॥५६॥

बीज उत्तम खेत में बोना चाहिये। धन उत्तम पुत्र को देना चाहिये। उत्तम खेत और उत्तम पुत्र में जो डाला जाता है वह (कभी) नष्ट नहीं होता।

अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः ॥५७॥

जहां व्रत का पालन न करने वाले और वेदों का अध्ययन न करने वाले ब्राह्मण भिक्षाचरण करते हैं, राजा उस ग्राम को दण्डित करे, क्योंकि वह चोरों को भात देने वाला (चोरों का पालन-पोषण करने वाला) है।

क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रचण्डवत् ।
विजित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥५८॥

शस्त्र को हाथ में धारण करने वाला, प्रकर्ष दण्ड वाला क्षत्रिय प्रजाओं की रक्षा करता हुआ शत्रु-सेनाओं को जीतकर धरा का धर्म के साथ पालन करे।

न श्रीः कुलक्रमायाता स्वरूपाल्लिखितापि वा ।
खड्गेनाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्या वसुन्धरा ।।५९।।

कुलक्रम से आई हुई और (चित्र आदि के अन्दर) आलेखन की हुई भी लक्ष्मीः (स्थिर) नहीं रहती । उसे तलवार से प्राप्त करके भोगे, (क्योंकि) पृथिवी (का राज्य) वीरों के द्वारा ही भोगा जाता है ।

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवोद्याने न यथाङ्गारकारक. ।।६०।।

बाग में माली की तरह एक-एक फूल को चुने । कोयला बनाने वाले की तरह उसका मूलोच्छेद न करे ।

लोहकर्म तथा रत्नं गवाञ्च प्रतिपालनम् ।
वाणिज्य कृषिकर्माणि वैश्यवृत्तिरुदाहृता ।।६१।।

लोहे का काम, रत्नों का काम, गोपालन, वाणिज्य और खेती के काम—यह वैश्य की आजीविका कही गई है ।

शूद्राणां द्विजशुश्रूषा परो धर्म. प्रकीर्त्तितः ।
अन्यथा कुरुते किञ्चित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ।।६२।।

द्विजों (ब्राह्मण. क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा शूद्रों का परम धर्म कहा गया है । यदि वह कुछ इसके विपरीत करता है तो वह उसका निष्फल हो जाता है ।

लवण मधु तैलञ्च दधि तक्रं घृतं पयः ।
न दुष्येच्छूद्रजातीना कुर्य्यात् सर्वस्य विक्रयम् ।।६३।।

लवण, मधु, तेल, दही, छाछ, घी और दूध—ये शूद्र जातियों (के छूने) से दूषित नहीं होते । वह सब का विक्रय करे ।

अविक्रयं मद्यमांसमभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
अगम्यागमनञ्चैव शूद्रोऽपि नरकं व्रजेत् ।।६४।।

मद्य और मांसों का विक्रय, अभक्ष्य का भक्षण और संभोग के अयोग्य स्त्री का सभोग—इनको करके शूद्र भी नरक में जाता है ।

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ।।६५।।

कपिला गऊ का दूध पीने से, ब्राह्मणी के साथ संभोग करने से और वेद के अक्षरों का विचार करने से शूद्र को निश्चित रूप से नरक की प्राप्ति होती है।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम ।

अतः परं गृहस्थस्य धर्माचार कलौ युगे ।
धर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥१॥
सप्रवक्ष्याम्यहं भूयः पराशरवचो यथा ।
षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत् ॥२॥

इससे आगे मैं कलियुग में गृहस्थ के कर्म और आचार का, चारों वर्णों और आश्रमों के साधारण धर्म का पराशर मुनि के कथनानुसार यथाशक्ति पुनः प्रवचन करूंगा। षट्कर्म में निरत ब्राह्मण कृषिकर्म भी कराए।

क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलीवर्दं न योजयेत् ।
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीवं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥३॥

भूखे प्यासे और थके हुए बैल को न जोते। अङ्ग से हीन (विकलाङ्ग), रोगी, और नपुंसक (वध्रि) बैल को ब्राह्मण न बाहे (हल और गाड़ी में न चलाए)।

स्थिराङ्गं नीरुजं तृप्तं वृषभं षण्डवर्जितम् ।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥४॥

दृढ़ अंगों वाले, नीरोग, रजे हुए और नपुंसकता से रहित बैल को आधे दिन तक चलाए, उसके पश्चात् स्नान करे।

जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं साङ्गमभ्यसेत् ।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेत् स्नातकान् द्विजः ॥५॥

द्विज जप, देवपूजा, होम करे और अपने वेद का अङ्गों सहित अभ्यास करे, और एक, अथवा दो, अथवा तीन, अथवा चार स्नातक ब्राह्मणों को भोजन कराए।

स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितै. ।
निर्वपेत् पञ्च यज्ञांश्च क्रतुदीक्षाञ्च कारयेत् ॥६॥

इस प्रकार स्वयं खेत को जोतकर स्वय उत्पन्न किये हुए अन्नों से पांच (महा) यज्ञों को करे और यज्ञ की दीक्षा भी कराए ।

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समा ।
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रय. ॥७॥

तिल और रस विक्रय के योग्य नहीं हैं । अन्न और उस जैसी वस्तुएं विक्रय के योग्य हैं । घास और काष्ठा आदि का विक्रय भी हो सकता है । ब्राह्मण की इसी प्रकार की आजीविका है ।

हलमष्टगव धर्म्य षड्गव वृत्तिलक्षणम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगव वृषघातिनाम् ॥८॥

आठ बैलों वाला हल धर्म का हल है, छः बैलो वाला हल वृत्ति का लक्षण है (अर्थात् आजीविका के लिये हो सकता है), चार बैलो वाला हल दया हीनों का होता है और दो बैलों वाला बैलों को मारने वालों का होता है ।

द्विगवं वाहयेत् पादं मध्याह्नं तु चतुर्गवम् ।
षड्गव तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ॥९॥

दो बैलों वाले हल को दिन के चौथाई भाग तक चलाए, चार बैलों वाले को दोपहर तक, छः बैलों वाले को दिन के तीन पहर तक, और आठ बैलों से सारा दिन हल चलाए ।

न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विज ।
दानं दद्याच्चैवेतेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥१०॥

इस प्रकार आचरण करता हुआ ब्राह्मण नरक में नहीं जाता । वह दान भी अवश्य दे । यह उनके लिये स्वर्ग प्राप्ति का उत्तम साधन है ।

ब्राह्मणस्तु कृषि कृत्वा महादोषमवाप्नुयात् ।
सवत्सरेण यत्पाप मत्स्यघाती समाप्नुयात् ।
अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ॥११॥

ब्राह्मण तो खेती करके महादोष का भागी होता है । वर्ष भर में जो पाप मछली पकड़ने वाले को लगता है, वही दोष लोहे के मुँह वाली लकड़ी (हल) से हल चलाने वाले को एक दिन में लग जाता है ।

पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ।
अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ॥१२॥

जाल बिछाकर जीवों को पकड़ने वाला, मछेरा, बहेलिया, चिड़ीमार और दान न करने वाला किसान—ये पाँचों समान (पाप के) भागी हैं ।

कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी ।
पञ्च सूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्त्तते ॥१३॥

ओखली, चक्की, चूल्हा, जल का घड़ा और झाड़ू—गृहस्थ के घर में प्रतिदिन चलने वाले पाँच वध-स्थल हैं ।

वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोग्रासो हन्तकारक. ।
गृहस्थः प्रत्यह कुर्यात्सूनादोषैर्न लिप्यते ॥१४॥

वैश्वदेव यज्ञ, बलिकर्म, भिक्षा देना, गाय को ग्रास देना, और हन्तकार इन को प्रतिदिन करता हुआ गृहस्थ (उपर्युक्त पाँच) हत्याओं के दोष से लिप्त नहीं होता ।

वृक्षान् छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा तु मृगकीटकान् ।
कर्षकः खलु यज्ञेन सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥१५॥

वृक्षों को काटकर, भूमि का भेदन करके और पशुओं एवं कीड़ों को मार कर किसान यज्ञ के द्वारा निश्चय से सब पापों से छूट जाता है ।

यो न दद्याद् द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ।
स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥१६॥

जो (किसान) अन्न के ढेर के पास बैठा हुआ (उसमे से) ब्राह्मणो को नहीं देता, वह चोर और पापी है । उसे ब्रह्मघाती पुकारना चाहिये ।

राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानाञ्चैकविंशकम् ।
विप्राणां त्रिंशकं भागं कृषिकर्त्ता न लिप्यते ॥१७॥

राजा को छठा, देवताओं को इक्कीसवाँ और ब्राह्मणों को तीसवां भाग देकर खेती करने वाला (पाप से) लिप्त नहीं होता ।

क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा द्विजान् देवांश्च पूजयेत् ।
वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात् कृषिवाणिज्यशिल्पकान् ॥१८॥

क्षत्रिय भी कृषि करके ब्राह्मणों और देवों की पूजा करे । वैश्य और शूद्र भी उसी प्रकार खेती, व्यापार और दस्तकारी के काम करे ।

विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिता. ।
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेषु च ॥१९॥

द्विजों की सेवा से हटकर यदि शूद्र भिन्न कर्म करते है, तो वे निश्चय ही थोड़ी आयु वाले होते है और नरको में गिरते हैं।

चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥२०॥

चारों ही वर्णों का यह परम्परागत धर्म है।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्याय. ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

अशौचव्यवस्थावर्णनम् ।

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।
दिनत्रयेण शुध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥१॥

क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकै. ।
शूद्रः शुध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥२॥

इस से आगे मैं जन्म (सूतक) और मरण (प्रेत, पातक) में शुद्धि का वर्णन करता हूं। जैसा कि पराशर का वचन है, मृत्यु और जन्म में ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध होते हैं, क्षत्रिय बारह दिन से, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में।

उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिस्तु जायते ।
ब्राह्मणाना प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥३॥

देवपूजा के कारण ब्राह्मणों के अंग की शुद्धि हो जाती है। प्रसव की (अशुद्धि) में भी ब्राह्मणों के शरीर के स्पर्श का विधान है।

जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शृध्यति ॥४॥

सूतक में ब्राह्मण दस दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है।

एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वित.।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥५॥

अग्नि(-होत्र) और वेद(-पाठ) से युक्त विप्र एक दिन में शुद्ध होता है। जो केवल वेद(-पाठ) से युक्त है, वह तीन दिनों में, और जो इन दोनों से हीन है वह दस दिनों में।

जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः।
नामधारकविप्रस्य दशाह सूतकं भवेत् ॥६॥

जो जन्म और कर्म से भ्रष्ट है और सन्ध्योपासना से हीन है, ऐसे नामधारी ब्राह्मण के यहां दस दिन का सूतक होता है।

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका।
दश रात्रेण संशुध्येत् भूमिस्थं च नवोदकम् ॥७॥

बकरियाँ गौएं और भैंसें, तथा नव प्रसूता ब्राह्मणी और भूमि पर पड़ा हुआ नया (वर्षा का) जल दस दिनों में शुद्ध होता है।

एकपिण्डास्तु दायादा पृथग्दारनिकेतनाः।
जन्मन्यपि विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् ॥८॥

जो समान पिंडो वाले, दाय में भागीदार, पृथक् पत्नियों और घरों वाले है, जन्म और मृत्यु में होने वाला वह सूतक (आदि) उनका भी होता है।

उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुञ्जते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते ॥९॥

दोनों स्थितियों में दस दिन तक (उस) कुल का अन्न नहीं खाते। दान देना, दान लेना, होम और स्वाध्याय रुक जाता है।

प्राप्नोति सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवशजः ॥१०॥

गोत्र में चौथी पीढ़ी तक वह सूतक चलता है। अपने वंश में पांचवां पुरुष दाय से विच्छेद को प्राप्त होता है।

चतुर्थे दशरात्र स्यात् षण्णिशाः पुंसि पञ्चमे।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयम् ॥११॥

पुरुष के सूतक और पातक में चौथी पीढ़ी में दस दिन की, पांचवीं पीढ़ी में छः दिन तक, छठी पीढ़ी में चार दिन तक और सातवीं पीढ़ी में तीन तक

अशुद्धि रहती है।

पञ्चभिः पुरुषैर्युक्तः अश्राद्धेया सगोत्रिणः।

ततः षट्पुरुषाद्यश्च श्राद्धे भोज्याः सगोत्रिणः ॥१२॥

पांच पीढ़ियों तक सगोत्र श्राद्ध में भोजन के योग्य नहीं होते। उसके पश्चात् छठी पीढ़ी से लेकर गोत्र वाले श्राद्ध-भोजन के योग्य होते हैं।

भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा।

बाले प्रेते च सन्न्यासे सद्यः शौचं विधीयते ॥१३॥

भृगुओं की (पवित्र) अग्नि में मृत्यु होने पर, तथा विदेश में मृत्यु होने पर, बालक और संन्यासी के मर जाने पर तुरन्त शौच हो जाता है।

दशरात्रेष्वतीतेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते।

ततः संवत्सरादूर्ध्वं सचैल स्नानमाचरेत् ॥१४॥

दस दिन बीत जाने पर (यदि मृत्यु की सूचना मिले तो अगले) तीन दिन में शुद्धि होती है। एक वर्ष के पश्चात् यदि पता लगे तो वस्त्रों सहित स्नान करके शुद्धि हो जाती है।

देशान्तरमृत. कश्चित् सगोत्रः श्रूयते यदि।

न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा विशुध्यति ॥१५॥

यदि विदेश में मरे किसी सगोत्र को सुने, तो न तीन दिन का अशौच न एक दिन का, वरन् तुरन्त स्नान करके शुद्धि हो जाती है।

आ त्रिपक्षात्त्रिरात्र स्यादाषण्मासाच्च पक्षिणी।

अहः संवत्सरादर्वाक् सद्यः शौचं विधीयते ॥१६॥

तीन पक्षों तक सुन ले तो तीन रात की अशुद्धि होती है, छः महीने तक सुने तो दो दिनों से युक्त एक रात की अशुद्धि, एक वर्ष तक एक दिन की अशुद्धि, (और उसके पश्चात्) तुरन्त शुद्धि हो जाती है।

देशान्तरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात्।

देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥१७॥

कृष्णाष्टमी त्वमावस्या कृष्णा चैकादशी तथा।

उदकं पिण्डं दानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥१८॥

यदि विदेश में गया ब्राह्मण काल के द्वारा कराए गए प्रयास से देह नाश को प्राप्त हो जाए और (मृत्यु की) तिथि का पता न चले तो उसमें कृष्ण पक्ष

की अष्टमी, अमावस्या और कृष्ण पक्ष की एकादशी को जल और पिण्ड दे और श्राद्ध कराए।

अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः।
न तेषामग्निसस्कारो नाशौच नोदकक्रिया ॥१९॥

न उत्पन्न हुए दाँतो वाले जो बालक है, और जो (अभी-अभी) गर्भ से निकले हैं (और मर गए हैं), न उनका अग्नि-दाह संस्कार होता है, न अशौच होता है और न जलक्रिया होती है।

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वाऽपि योषिताम्।
यावन्मासं स्थितो गर्भो दिन तावत् स सूतकः ॥२०॥

यदि स्त्रियों का गर्भ नष्ट हो जाए अथवा गर्भ स्राव हो जाए, तो जितने महीने गर्भ की स्थिति रही है, उतने ही दिन का वह सूतक होता है।

आ चतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयो.।
अत ऊद्ध्र्व प्रसूतिः स्याद् दशाहं सूतक भवेत् ॥२१।

चौथे महीने तक (गर्भ) स्राव होता है, पांचवे और छठे में (गर्भ-)पात होता है। इससे आगे प्रसूति होती है, और उसमें दस दिन का सूतक होता है।

प्रसूतिकाले संप्राप्ते प्रसवे यदि योषिताम्।
जीवापत्ये तु गोत्रस्य मृते मातुश्च सूतकम् ॥२२॥

स्त्रियों का प्रसूति-काल आने पर और प्रसव हो जाने पर यदि सन्तान जीवित रहे तो (समस्त) गोत्र का सूतक होता है, सन्तान के मर जाने पर माता का सूतक होता है।

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके।
पूर्वमेव दिन ग्राह्य यावन्नोदयते रविः ॥२३॥

रात्रि में उत्पन्न होकर यदि (बच्चा) सूर्य उदित होने से पहले ही अन्धेरे में ही मर जाए, तो सूतक में पहले दिन का ग्रहण (गणना) होता है।

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते।
अग्निसस्करण तेषां त्रिरात्रं सूतकं भवेत् ॥२४॥

दाँत उत्पन्न होने पर, दाँत उत्पन्न होने के तुरन्त बाद, और चूड़ा कर्म करने के पश्चात् (मृत्यु होने पर) उन (बच्चों) का अग्नि मे दाह-सस्कार होता है, और तीन दिन का सूतक होता है।

आ दन्तजननात् सद्य आचूडान्नैशिकः स्मृतः ।
त्रिरात्रमाव्रतात्तेषा दशरात्रमत परम् ॥२५॥

दाँत उत्पन्न होने से पहले (उनकी मृत्यु होने पर) सद्य (तुरन्त) शौच होता है, चूड़ाकरण तक एक रात का (अशौच) माना गया है, और (उपनयन) व्रत तक तीन दिन का, इस से आगे दस दिन का अशौच माना गया है ।

ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशने ।
सम्पर्कं न च कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भवेत् ॥२६॥

जिनके घर में ब्रह्मचारी हो और अग्नि होम हो रहा हो, यदि वे (सूतक वाले का) स्पर्श न करें तो उनका सूतक नहीं होता ।

सम्पर्काद् दुष्यते विप्रो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।
सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥२७॥

सूतक तथा पातक में ब्राह्मण सम्पर्क (स्पर्श) से दूषित होता है । संपर्क से दूर रहने वाले ब्राह्मण का न पातक होता है, न सूतक ।

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः ।
श्रोत्रियाश्चैव राजानः सद्यःशौचाः प्रकीर्त्तिताः ॥२८॥

शिल्पी, कारीगर, वैद्य, दासी और दास, नाई, क्षत्रिय और राजा लोग—ये सब सद्यःशौच (तुरन्त शुद्ध होने वाले) कहे गए हैं ।

सव्रतो मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥२९॥

जो ब्राह्मण व्रत को धारण किये हुए है, मन्त्र से पवित्र है और जिसने अग्नि का आधान किया हुआ है—उसका और राजा का, और जिसका राजा चाहे उसका सूतक नहीं होता ।

उद्यतो निर्धने दाने आर्त्तो विप्रो निमन्त्रितः ।
तदेव ऋषिभिर्दिष्टं यथाकालेन शुध्यति ॥३०॥

जो निर्धन को दान देने के लिये उद्यत है और जिसने आर्त ब्राह्मण को (भोजन के लिये) निमन्त्रित किया हुआ है, (यदि उसका निधन हो जाए) तो यथाकाल (दान के निश्चित समय पर) शुद्ध हो जाता है, यह ऋषियों का विचार है ।

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात् सङ्करं यदि ।
दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥३१॥

यदि गृहस्थ प्रसव में (पत्नी से) सम्पृक्त न हो तो (शिशु की) माता दस दिन में शुद्ध होती है और पिता जल में अवगाहन (स्नान) कर तुरन्त शुद्ध हो जाता है।

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥३२॥

शव से होने वाला अशौच सब को होता है, सूतक माता और पिता को ही होता है। सूतक (वास्तव में) माता को ही लगता है, पिता तो उपस्पर्श (आचमन या स्नान) करके ही शुद्ध हो जाता है।

यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्क कुरुते द्विजः ।
सूतकन्तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥३३।

यदि पत्नी के प्रसूता होने पर ब्राह्मण उससे सम्पृक्त हो, तो चाहे ब्राह्मण छः अङ्गों को जानने वाला भी क्यों न हो उसे सूतक हो ही जाता है।

सम्पर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सम्पर्क वर्जयेद् द्विजः ॥३४॥

दोष सम्पर्क से उत्पन्न होता है, ब्राह्मण में और कोई दोष नहीं होता। इस लिये ब्राह्मण सब प्रकार के प्रयत्न से सम्पर्क को त्याग दे।

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वं सङ्कल्पित द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥३५॥

विवाह, उत्सव और यज्ञों में यदि पातक और सूतक बीच में आजाएं तो पहले से सङ्कल्प किया हुआ द्रव्य दान किया जाता हुआ दूषित नहीं होता।

अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम् ॥३६॥

दस दिन के शौच के अन्दर यदि पुनः मृत्यु या जन्म हो जाए, तो ब्राह्मण उन दस दिनों का अतिक्रमण किये बिना (अर्थात् उन्हीं दस दिनों तक) अशुद्ध रहता है।

ब्राह्मणार्थे विपन्नानां वन्दिगोग्रहणे तथा ।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रन्तु सूतकम् ॥३७॥

ब्राह्मण के लिये मरने वालों, कैदो, और गऊ को पकड़ने में (मरने वालों) और युद्ध में मरने वालों का एक दिन का सूतक होता है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदकौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चारिमुखे हतः ॥३८॥

लोक में ये दो पुरुष सूर्यमण्डल का भेदन करने वाले है, (एक तो) योग से युक्त संन्यासी और (दूसरा) आमने-सामने के युद्ध में मरा हुआ (क्षत्रिय) ।

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।
अक्षयांल्लभते लोकान् यदि क्लीबं न भाषते ॥३९॥

जहां-जहां शूर शत्रुओं से घिरा होकर मारा जाता है, (वहां-वहां) वह शाश्वत लोकों को प्राप्त करता है, यदि वह कायरतापूर्ण भाषण नहीं करता (दीन वचन नहीं बोलता) ।

जितेन लभते लक्ष्मीं मृतेनापि सुराङ्गनाः ।
क्षणविध्वंसिकेऽमुष्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥४०॥

विजय से (राज्य-)लक्ष्मी को प्राप्त करता है, मरने से सुराङ्गनाओं को । क्षण-भङ्गुर इस (लोक) में युद्ध में मर जाने में क्या चिन्ता ?

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
परित्राता यदा गच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत् ॥४१॥

जो सेनाओं के भाग-खड़ा होने पर और इधर-उधर दौड़ जाने पर जब (उनका) त्राता (बनकर) उन के पास जाता है, तो वह यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ।

यस्य च्छेदक्षतं गात्र शरशक्त्यृष्टिमुद्गरैः ।
देवकन्यास्तु तं वीरं गायन्ति रमयन्ति च ॥४२॥

जिस का शरीर बाण, शक्ति, ऋष्टि और मुद्गरों के द्वारा घावों से जख्मी है, देवकन्याएं उस वीर की स्तुति करती हैं और उसका मन बहलाती हैं ।

देवाङ्गनासहस्राणि शूरमायोधने हतं ।
नागकन्याश्च धावन्ति मम भर्त्ता भवेदिति ॥४३॥

युद्ध में मरे (और इसी लिये स्वर्ग में गए) शूर की ओर हजारों देवाङ्गनाएं और नाग-कन्याएं (इस कामना से) दौड़ती हैं, कि यह मेरा पति बने ।

ललाटदेशाद्रुधिरं हि यस्य
तप्तस्य जन्तोः प्रविशेच्च वक्त्रे ।

तत् सोमपानेन हि तस्य तुल्यं
संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥४४॥

(युद्ध में) तपे हुए जिस (वीर-)प्राणी का खून ललाट प्रदेश से (बहकर) उसके मुख में प्रवेश करता है, संग्रामरूपी उस यज्ञ में वह उसका सोमपान के तुल्य है। यह (ऋषियों का) विधिपूर्वक किया हुआ विचार है।

यं यज्ञसंघैस्तपसा च विद्यया
स्वर्गैषिणो वात्र यथैव विप्राः।
क्षणेन यान्त्येव हि तत्र वीराः
प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्तः ॥४५॥

इस लोक में, स्वर्ग की कामना करने वाले ब्राह्मण लोग असंख्य यज्ञों, तप और विद्या के द्वारा जहां जैसे-तैसे पहुंचते हैं, उत्तम युद्ध में प्राणों का त्याग करने वाले वीर लोग वहां क्षण भर में पहुंच जाते हैं।

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्वाल्लभन्ति ते ॥४६॥

जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) मरे हुए अनाथ ब्राह्मण को (अर्थी पर) वहन करते हैं, वे पग-पग पर क्रमशः यज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं।

असगोत्रमबन्धुञ्च प्रेतीभूतञ्च ब्राह्मणम्।
नीत्वा च दाहयित्वा च प्राणायामेन शुध्यति ॥४७॥

जो अपने गोत्र का नहीं है और अपना बन्धु नहीं है, ऐसे मरे हुए ब्राह्मण को (श्मशान में) ले जाकर और दाह-संस्कार करके (द्विज) प्राणायाम (मात्र) से शुद्ध हो जाता है।

न तेषामशुभं किञ्चिद् द्विजानां शुभकर्मणि।
जलावगाहनात्तेषां शुद्धिः स्मृतिभिरीरिता ॥४८॥

(इस) शुभ कर्म में उन द्विजों का कुछ भी अशुभ नहीं होता। जल में अवगाहन (मात्र) से उनकी शुद्धि स्मृतियों के द्वारा कही गई है।

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥४९॥

चाहे अपना बन्धु हो और चाहे अपना बन्धु न हो, ऐसे प्रेत (मरे हुए) का (श्मशान में ले जाए जाते हुए का) इच्छा से अनुगमन करके सचैल स्नान कर, अग्नि का स्पर्श कर और घी खाकर शुद्ध हो जाता है।

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५०॥

जो ब्राह्मण मरे हुए क्षत्रिय का (श्मशान में ले जाए जाते हुए का) अनजाने में अनुगमन करता है, वह एक दिन तक अशुद्ध रहकर पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

शवञ्च वैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
कृत्वा शौचं द्विरात्रञ्च प्राणायामान् षडाचरेत् ॥५१॥

जो ब्राह्मण वैश्य के शव का अनजाने में अनुगमन करता है, वह दो दिन तक शौच करके छः प्राणायाम करे।

प्रेतीभूतन्तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
नयन्तमनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥५२॥

ज्ञान में दुर्बल जो ब्राह्मण मरे हुए और श्मशान में ले जाए जाते हुए शूद्र का अनुगमन करे, वह तीन रात तक अशुद्ध रहता है।

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥५३॥

तीन दिन पूरे हो जाने पर, तत्पश्चात् समुद्र-गामिनी नदी पर जाकर सौ प्राणायाम करके और घी खाकर भली प्रकार शुद्ध होता है।

विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या इति धर्मविदो विधिः ॥५४॥

जब शूद्र श्मशान से लौटकर जल के निकट उपस्थित हों, तब द्विज उनका अनुगमन करे। यही धर्म को जानने वाले की विधि है।

तस्माद् द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ।
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥५५॥

इस लिये द्विज न तो मरे हुए शूद्र का स्पर्श करे और न दाह करे। यदि उसके दर्शन हो जाएं तो सूर्यदर्शन से शुद्धि होती है। यही शुद्धि की पुरातन विधि है।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

अनेकविधप्रकरणप्रायश्चित्तम् ।

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ।
उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते ।।१।।

अति मान के कारण, अति क्रोध के कारण, स्नेह के कारण अथवा भय के कारण यदि स्त्री अथवा पुरुष अपने को फांसी पर चढ़ा ले, तो (उसकी) यह गति होती है ।

पूयशोणितसंपूर्णे अन्धे तमसि मज्जति ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ।।२।।

वह राध और शोणित से भरे घोर अन्धकार में गोते खाता है, और साठ हजार वर्षों तक नरक में पड़ता है ।

नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातञ्च कारयेत् ।
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ।
तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ।।३।।

(उसका) अशौच, जलदान, अग्निदाह और अश्रुपात (रोना-धोना) न कराए । (उसके शव का) वहन करने वाले, (उसको चिता मे) अग्नि देने वाले, तथा (उसके) पासों को काटने वाले तप्तकृच्छ्र से शुद्ध होते है । प्रजापति का यह वचन है ।

गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ।
संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ।।४।।
अन्येऽपि वानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये ।
तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति कुर्य्युर्ब्राह्मणभोजनम् ।।५।।

गाय-बैलों से मारे हुए, फांसी लेकर मरे हुए और ब्राह्मण के द्वारा मारे हुए का जो ब्राह्मण स्पर्श करते है, और जो उस (के शव) का वहन करते हैं और (उसकी चिता में) अग्नि देते हैं, और जो अन्य लोग उस (के शव) का अनुगमन करते है, और जो उस के पासों को काटते है, वे तप्तकृच्छ्र से शुद्ध होते हैं और वे ब्राह्मणों को भोजन खिलाएँ ।

अनडुत्सहितां गाञ्च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम् ।
त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥६॥

बैल सहित एक गाय ब्राह्मण को दक्षिणा में दें । तीन दिन तक गर्म पानी पिये और तीन दिन तक गर्म दूध पिये ; फिर तीन दिन तक गर्म घी पीकर तीन दिन तक वायुभक्षण करे (अर्थात् वायु के सिवा और कुछ न लेता हुआ उपवास करे) ।

षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपल पयः पिबेत् ।
पलमेकं पिबेत् सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥७॥

छः पल जल पिये, तीन पल दूध पिये, एक पल घी पिये । यह तप्तकृच्छ्र होता है ।

यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ।
पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥८॥
मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा ।
अब्दार्द्धमब्दमेकं वा तदूर्ध्वं चैव तत्समः ॥९॥

जो ब्राह्मण बिना चाहे पतित आदियों से पांच दिन, अथवा दस दिन अथवा बारह दिन, आधा महीना, एक महीना अथवा दो मास, आधा वर्ष, एक वर्ष अथवा उससे भी अधिक विचरण करे, वह पूर्वोक्त दोषी के समान ही दोषी होता है ।

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ।
तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥१०॥
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् पराकः पञ्चमे मतः ।
कुर्य्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दवद्वयम् ॥११॥
शुध्द्यर्थमष्टमे चैव षण्मासात् कृच्छ्रमाचरेत् ।
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥१२॥

प्रथम पक्ष में तीन रात का उपवास करे, दूसरे पक्ष में कृच्छ्र करे, तीसरे पक्ष में सान्तपन कृच्छ्र करे, चौथे पक्ष में दस रात का उपवास करे, पांचवें में पराक माना गया है । छठे में एक चान्द्रायण करे और सातवें में दो चान्द्रायण करे, और छः महीने से अधिक की शुद्धि के लिये आठवें पक्ष में कृच्छ्र करे । पक्षों की संख्या के प्रमाण से सुवर्ण (मुद्राएं) भी दक्षिणा में दे ।

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति ।
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ।।१३।।

ऋतु में स्नान की हुई जो नारी अपने पति के पास नहीं जाती है, वह मर कर नरक में जाती है और बार-बार विधवा होती है ।

ऋतौ स्नातान्तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति ।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ।।१४।।

ऋतु मे स्नान की हुई पत्नी के पास जो पति नहीं जाता है, वह घोर भ्रूणहत्या से युक्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है ।

अदुष्टापतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत् ।
सप्त जन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः ।।१५।।

निर्दोष और सती पत्नी को जो (पति) यौवन में छोड़ देता है, वह सात जन्म तक स्त्री बनता है, और बार-बार वैधव्य को प्राप्त होता है ।

दरिद्रं व्याधित मूर्खं भर्त्तारं या न मन्यते ।
सा मृता जायते व्याली वैधव्यञ्च पुनः पुनः ।।१६।।

दरिद्र, रोगी, और मूर्ख पति का जो (पत्नी) मान नहीं करती है, वह मरकर सांपिन बनती है और बार-बार वैधव्य को प्राप्त होती है ।

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ।।१७।।

पति के जीते हुए जो नारी उपवास करके व्रत करती है, वह पति की आयु को कम करती है और स्वयं नरक में जाती है ।

अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ।
सर्वं तद्राक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ।।१८।।

पति के पूछे बिना जो नारी व्रत करती है, उसका वह सारा व्रत राक्षसों को प्राप्त हो जाता है, ऐसा मनु ने कहा है ।

बान्धवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ।
गर्भपातं च या कुर्यान् न तां संभाषयेत् क्वचित् ।।१९।।

जो स्त्री बान्धुओं और समान जाति वालों के साथ दुष्ट आचरण करती है, और जो गर्भपात करती है, उसके साथ कभी बात न करे ।

यत् पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने ।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥२०॥

ब्रह्महत्या का जो पाप है, गर्भपात में उससे दुगुना पाप होता है। उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। उस स्त्री के त्याग का विधान है।

न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः ।
स भवेत् कर्मचाण्डालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥२१॥

जिसका गृहस्थकर्मों से कोई प्रयोजन नहीं है, और न ही अग्निहोत्र से कोई प्रयोजन है, और जो धर्म से पराङ्मुख है, वह कर्मचाण्डाल होता है।

ओघवाताहृतं बीजं यथा क्षेत्रे प्ररोहति ।
क्षेत्री तल्लभते बीज न बीजी भागमर्हति ॥२२॥

आँधी के द्वारा उड़ाकर लाया हुआ बीज जिसके खेत मे (गिरकर) उग जाता है, वह खेत का स्वामी ही उस बीज (के फल) को प्राप्त करता है, बीज वाला उसमें हिस्सेदार नहीं है।

तद्वत् परस्त्रिया. पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्त्तरि गोलकः ॥२३॥

इसी प्रकार पराई स्त्री के (किसी के बीज से) जो दो पुत्र उत्पन्न हों (वे भी उसी के होते हैं, जिसकी वह पत्नी है)। वे दो पुत्र कुण्ड और गोलक (कहलाते) हैं। पति के जीवित रहते (जो उत्पन्न होता है वह) कुण्ड होता है, पति के मरने पर (जो उत्पन्न होता है वह) गोलक होता है।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ।
दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥२४॥

पुत्र (चार प्रकार का होता है)—औरस, क्षेत्रज, दत्तक और कृत्रिम। माता अथवा पिता जिसे (किसी को) दे दें, वह पुत्र दत्तक होता है।

परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥२५॥

परिवित्ति (जिसके छोटे भाई ने उस से पहले विवाह कर लिया है), परिवेत्ता (जो बड़े भाई से पहले विवाह करे), जिस कन्या के साथ (परिवेत्ता) विवाह करता है, (कन्या) दान करने वाला और पांचवां याजक (विवाह संस्कार कराने वाला)—ये सब नरक में जाते हैं।

दाराग्निहोत्रसंयोग यः कुर्य्यादग्रजे सति ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्व्वज. ॥२६॥

बड़े भाई के होते हुए जो (छोटा भाई) विवाह, अग्न्याधान और पत्नी भोग करता है, वह परिवेत्ता जाना जाता है, अग्रज परिवित्ति होता है ।

द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चान्द्रायणञ्चरेत् ॥२७॥

परिवित्ति के दो कृच्छ्र होते हैं, कन्या का एक ही कृच्छ्र होता है, कन्यादान करने वाले के कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र (दोनों) होते हैं, और होता (विवाह-संस्कार कराने वाला) चान्द्रायण व्रत करे ।

कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥२८॥

कुबड़े, बावने, नपुंसक, तोतले, मूर्ख, जन्मान्ध, बहरे और गूंगे बड़े भाइयों के रहते यदि छोटा भाई विवाह करता है, तो दोष नहीं है ।

पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा ।
दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥२९॥

(यदि बड़ा भाई) चाचा का पुत्र हो, मौसी का पुत्र हो, तथा परनारी का पुत्र हो तो पहले विवाह करने से विवाह, अग्निहोत्र और पत्नी संभोग का दोष नहीं लगता ।

ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चिन्तयेत् ।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥३०॥

ज्येष्ठ भ्राता जब तक विद्यमान है तो अग्न्याधान का विचार न करे । आज्ञा लेकर कर सकता है, जैसाकि शंख ऋषि का वचन है ।

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥३१॥

पति के खो जाने पर (या गुम हो जाने पर), मर जाने पर, संन्यास ले लेने पर, नपुंसक हो जाने पर और पतित हो जाने पर—इन पांच विपत्तियों के आने पर नारियों के लिए अन्य पति का विधान है ।

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता ।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥३२॥

पति के मर जाने पर जो नारी ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहती है (अर्थात् पुनर्विवाह नहीं करती), वह मरकर उत्तम ब्रह्मचारियों की तरह स्वर्ग को प्राप्त करती है।

तिस्रः कोट्यर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे ।
तावत् कालं वसेत् स्वर्गे भर्त्तारं यानुगच्छति ।।३३।।

जो नारी पति का अनुगमन (व्रत का पालन) करती है। वह जो मनुष्य के शरीर पर साढ़े तीन करोड़ लोम है, उतने काल तक स्वर्ग में वास करती है।

व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात् ।
एवमुद्धृत्य भर्त्तारं तेनैव सह मोदते ।।३४।।

सपेरा जिस प्रकार बलपूर्वक सांप को बिल से निकाल लेता है, उसी प्रकार (पतिव्रता) स्त्री पति को (अन्य जन्म में) प्राप्त करके उसके साथ ही आनन्द को प्राप्त करती है।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।।

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

श्ववृकाभ्यां शृगालाद्यैर्यदि दष्टस्तु ब्राह्मण. ।
स्नात्वा जपेत गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ।।१।।

यदि कुत्ता, भेड़िया, गीदड़ आदि ब्राह्मण को काट खाए, तो वह स्नान करके वेदमाता पवित्र गायत्री का जप करे।

गवां शृङ्गोदके स्नातो महानद्यास्तु सङ्गमे ।
समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ।।२।।

कुत्ते के द्वारा काटा हुआ गौओं के सींगों से प्रताडित जल में और दो महानदियों (सम्भवतः गङ्गा और यमुना) के सङ्गम पर स्नान करके अथवा समुद्रदर्शन से शुद्ध होता है।

वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ।।३।।

वेद-विद्या के व्रत मे स्नात ब्राह्मण को यदि कुत्ता काटे, तो वह सोना डाले जल से स्नान करके और घी खाकर भली प्रकार शुद्ध होता है ।

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रं समुपोषितः ।
घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ।।४।।

कुत्ते के द्वारा काटा हुआ व्रतधारी (ब्राह्मण) तीन रात तक उपवास करके घी और कुशा का जल पीकर शेष व्रत का समापन करे ।

अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद् द्विजः ।
प्रणिपत्य भवेत् पूतो विप्रैश्चानुनिरीक्षितः ।।५।।

बिना व्रत वाले अथवा व्रत वाले ब्राह्मण को यदि कुत्ते ने काटा हो (तो ब्राह्मणों को) प्रणाम करके और उनके द्वारा देखे जाने से पवित्र हो जाता है ।

शुना घ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।
अद्भिः प्रक्षालानाच्छुद्धिरग्निना चोपचूलनम् ।।६।।

कुत्ते के द्वारा मुँह लगाए हुए और नाखूनों से नखोटे हुए (पदार्थ) की शुद्धि जल से धोने और तपाने से होती है ।

शुना च ब्राह्मणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
उदितं सोमनक्षात्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ।।७।।

यदि ब्राह्मणी को कुत्ता, गीदड़ या भेड़िया काट खाए तो उदित हुए चन्द्रमा और तारों को देखकर तुरन्त शुद्ध हो जाती है ।

कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ।
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशञ्चावलोकयेत् ।।८।।

यदि कृष्णपक्ष में कभी चन्द्रमा दिखाई न पड़े, तो जिस दिशा में चन्द्रमा जाता है, उस दिशा का अवलोकन करे ।

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नानाद्विशुध्यति ।।९।।

दुष्ट ब्राह्मणों के गाँव में यदि ब्राह्मण को कुत्ता काटे तो वृषभ की प्रदक्षिणा कर स्नान करने से तुरन्त भली प्रकार शुद्ध हो जाता है ।

चाण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ।
आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्महतो यदि ।
दहेत्त ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ।।१०।।

यदि अग्निहोत्री ब्राह्मण चाण्डाल, श्वपाक, गायों और ब्राह्मणों के द्वारा मारा गया हो, या उसने विष खाकर आत्महत्या की हो, तो ब्राह्मण उस ब्राह्मण का लौकिक अग्नि के मन्त्रों के बिना दाह-संस्कार करे ।

स्पृष्ट्वा चोह्य च दग्ध्वा च सपिण्डेषु च सर्व्वथा ।
प्राजापत्यं चरेत् पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ।।११।।

और यदि वह सपिण्डों में से है तो उसका सब प्रकार से स्पर्श, वहन और दाह करके बाद मे ब्राह्मणों की आज्ञा से प्राजापत्य व्रत करे ।

दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद् द्विजः ।
पुनर्दहेत् स्वकाग्नौ तन्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ।।१२।।

जलाकर अस्थियो को फिर से लेकर ब्राह्मण उनको दूध से धोए । उनको फिर से अपनी अग्नि मे अपने मन्त्रो से पृथक्-पृथक् जलाए ।

आहिताग्निर्द्विज. कश्चित् प्रवसन् कालचोदितः ।
देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वर्तते गृहे ।
प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृषिसत्तमा. ।।१३।।

अग्न्याधान करने वाला कोई ब्राह्मण काल से प्रेरित होकर प्रवास करता हुआ देहान्त को प्राप्त हो जाए और अग्नि (यज्ञ) उसके घर में विद्यमान हो, तो हे श्रेष्ठ ऋषियो ! उस प्रेत (मृत) के अग्निहोत्र और संस्कार के विषय में सुनिये ।

कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ।
षट् शतानि शतञ्चैव पलाशानाञ्च वृन्तकम् ।।१४।।
चत्वारिंशच्छिरे दद्यात् शतं कण्ठे तु विन्यसेत् ।
बाहुभ्यां दशकं दद्यादङ्गुलीषु दशैव तु ।।१५।।
शतं तु जघने दद्यात् द्विशतं तूदरे तथा ।
अष्टौ वृषणयोर्दद्यात् पञ्च मेढ्रे च विन्यसेत् ।।१६।।

एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानुजङ्घयोः ।
पादाङ्गुष्ठेषु दद्यात् षट् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥१७॥

काली मृगछाला बिछाकर उसपर कुशाओं से पुरुष की आकृति बनाए और उसपर पलाश के सात सौ वृन्त (डंठल) लगाए। चालीस सिर पर रखे। सौ कण्ठ पर रखे। दोनों भुजाओं पर दस-दस रखे। और (हाथ एवं पाँव की) अंगुलिओं में भी दस-दस रखे। जघन प्रदेश पर सौ रखे, उदर पर दो सौ रखे। अण्डकोशों मे आठ रखे और जननेन्द्रिय पर पांच रखे। दोनों ऊरुओं पर इक्कीस रखे। दोनों जानु और दोनों जंघाओं पर दो सौ, पाँवों के दोनों अगूठों पर छः रखे। उसके पश्चात् (यज्ञ-)पात्रों को रखे।

शम्यां शिश्ने विनिःक्षिप्य अरणीं वृषणे तथा ।
जुहूं च दक्षिणहस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥१८॥
पृष्ठे तूलूखलं दद्यात् पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् ।
निक्षिप्योरसि दृशदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥१९॥
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषोः ।
कर्णे. नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं क्षिपेत् ॥२०॥

शमी को शिश्न पर रखकर अरणी को उसी प्रकार से अण्डकोश पर रखे। जुहू को दक्षिण हाथ पर और बाएं हाथ पर उपभृत को रखे। पीठ पर ओखल रखकर फिर मूसल को भी पीठ पर ही रख दे। दृषद् (पत्थर) को छाती पर रखकर चावल, घी और तिलों को मुख में डाल दे। प्रोक्षणी को कान में रखे, और घृतपात्र को आंखों पर रख दे। कान, आंख, मुख और नासिका में सोने की डली डाले।

अग्निहोत्रोपकरणं गात्रे शेषं प्रविन्यसेत् ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति च घृताहुतीः ॥२१॥
दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राता ह्यन्ये वापि स्वधर्मिणः ।
यथा दहनसस्कारस्तथा कार्य्यं विचक्षणैः ॥२२॥

अग्निहोत्र के शेष उपकरणों को भी (मृत के) शरीर पर रखदे। "असौ ('असौ' इस के स्थान पर मृत का नाम उच्चारण कर) स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' कहकर पुत्र अथवा भाई घी की आहुतियां डाले और अन्य स्वधर्मी भी डालें। जिस प्रकार से दाहसंस्कार होता है, विद्वानों को उसी प्रकार से सारा कर्म करना चाहिये।

ईदृशन्तु विधिं कुर्य्याद् ब्रह्मलोके गतिर्ध्रुवम् ।
ये दहन्ति द्विजास्तन्तु ते यान्ति परमां गतिम् ॥२३॥

यदि मनुष्य इस प्रकार से विधि करे तो (मृत की) ब्रह्मलोक में गति निश्चित हो जाती है। जो द्विज इस प्रकार उस (मृतक को) जलाते हैं, वे भी परम गति को प्राप्त होते हैं।

अन्यथा कुर्व्वते किञ्चिदात्मबुद्धिप्रबोधिताः ।
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरके ध्रुवम् ॥२४॥

जो अपनी बुद्धि से विचार कर कुछ शास्त्रोक्त विधि के विपरीत करते हैं, वे थोड़ी आयु वाले होते हैं और निश्चित रूप से नरक में पड़ते हैं।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

प्राणिहत्याप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ।
पराशरेण पूर्व्वोक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्मृताम् ॥१॥

इससे आगे मैं प्राणि-हत्या के प्रायश्चित्त का वर्णन करूंगा, जिसका पूर्व काल में पराशर के द्वारा तो वर्णन किया गया है, पर मनु संहिता में जिसे छोड़ दिया गया है।

हंससारसक्रौञ्चांश्च चक्रवाकं सकुक्कुटम् ।
जालपादांश्च शरभमहोरात्रेण शुध्यति ॥२॥

हंस, सारस और क्रौञ्च(कूंज)को, कुक्कुट सहित चकवे को, जालपाद और शरभ को (मारकर) एक दिन-रात में शुद्ध होता है।

वलाकाटिट्टिभानाञ्च शुकपारावतादिनाम् ।
आटीनाञ्च वकानाञ्च शुध्यते नक्तभोजनात् ॥३॥

बगलों, टि्टिभों (टिटिहरियों), तोतों और कबूतरों आदि की, आटियों और बगुलों की (हत्या करके) केवल रात्रि को भोजन के करने से शुद्ध होता है।

भासकाकपोतानां च सारीतित्तिरिघातकः ।
अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणयामेन शुध्यति ॥४॥

शिकारी पक्षी कौए और कपोतों को, और मैना एवं तीतर को मारने वाला दो संध्याओं (प्रातः और सायं) में जल के अन्दर प्राणायाम करके शुद्ध होता है।

गृध्रश्येनशिखिग्राहचाषोलूकनिपातने ।
अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥५॥

गीध, श्येन, मोर, ग्राह, (ग्राहक—सांपों को पकड़ने वाला एक बाज), चाष और उल्लू को मारने में दिनभर पका भोजन न खाए और तीनों काल वायु-भक्षण करके (निराहार) रहे।

वल्गुलीचटकानाञ्च कोकिलाखञ्जरीटकान् ।
लावकारक्तपादांश्च शुध्यन्ते नक्तभोजनात् ॥६॥

चमगादड़ों, चिड़ियों, कोयलों और खंजन पक्षियों, तथा बटेरों और रक्त-पाद पक्षियों को मारकर रात को (एक समय) भोजन करने से (मारने वाले) शुद्ध होते है।

कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्य च ।
भारद्वाजनिहन्ता च शुध्यते शिवपूजनात् ॥७॥

कारण्डव (हंस विशेष) और चकोरों की, पिंगला (छोटा उल्लू) और कुरट की और भारद्वाज (पक्षी विशेष) आदि की हत्या करके शिव की पूजा करने से शुद्ध होता है।

भेरुण्डश्येनभासांश्च पारावतकपिञ्जलान् ।
पक्षिणामेव सर्वेषामहोरात्रेण शुध्यति ॥८॥

भेरुण्ड, श्येन, भास, पारावत, कपिञ्जल और अन्य सब पक्षियों की (हिंसा करके) एक दिन-रात के उपवास से शुद्ध होता है।

हत्वा नकुलमार्जारसर्पाजगरडुण्डुभान् ।
कृशरं भोजयेद्विप्रान् लोहदण्डञ्च दक्षिणाम् ॥९॥

नेवले, बिलाव, सांप, अजगर और डुंडुभ को मारकर ब्राह्मणों को कृसर (खिचड़ी) खिलाए और लोह-दण्ड दक्षिणा में दे ।

शल्लकीशशकागोधामत्स्यकूर्म्माभिपातने ।
वृन्ताकफलभोक्ता च ह्यहोरात्रेण शुध्यति ॥१०॥

सेह, खरगोश, गोह, मछली, और कछुए की हिंसा करके और बैंगन को खाकर एक दिन-रात के व्रत से शुद्ध होता है ।

वृकजम्बुकऋक्षाणां तरक्षूणाञ्च घातने ।
तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥११॥

भेड़िये, गीदड़, रीछ, और लक्कड़भग्गे की हिंसा होने पर ब्राह्मण को प्रस्थ भर तिल दान करे और तीन दिन तक वायु मात्र पर निर्वाह करे । जल आदि न पिये ।

गजगवयतुरङ्गाणां महिषोष्ट्रनिपातने ।
शुध्यते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१२॥

हाथी, गवय, घोड़े, भैंस और ऊँट की हिंसा करने पर सात दिन के व्रत और ब्राह्मणों को तृप्त करने से शुद्ध होता है ।

कुरङ्गं वानरं सिंह चित्रं व्याघ्रं च घातयेत् ।
शुध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१३॥

कुरंग, बंदर, शेर, चीते, और बघेरे को जो मार दे, वह तीन रात के व्रत और ब्राह्मणों को तृप्त करने से शुद्ध होता है ।

मृग रुरुं वराहञ्च अज्ञानाद्यस्तु घातयेत् ।
अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रेण शुध्यति ॥१४॥

जो मनुष्य मृग, रुरु और सूअर को अनजाने में मार दे, वह बिना हल चलाए उत्पन्न अन्न का भोजन करे । इस प्रकार एक दिन-रात के व्रत से शुद्ध होता है ।

एवं चतुष्पदानाञ्च सर्वेषां वनचारिणाम् ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज् जपन् वै जातवेदसम् ॥१५॥

इस प्रकार वन में विचरण करने वाले सभी चौपायों की हिंसा होने पर जातवेदस (अग्नि के मन्त्र, का जप करता हुआ एक दिन-रात उपवास करे ।

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ।
प्राजापत्यद्वयं कुर्याद् वृषैकादश दक्षिणा ।।१६।।

जो मनुष्य शिल्पी, कारीगर, शूद्र अथवा स्त्री को मार दे, वह प्राजापत्य व्रत करे, और ग्यारह बैल दक्षिणा में दे ।

वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषमभिघातयेत् ।
सोऽतिकृच्छ्रद्वय कुर्याद् गोर्विंशं दक्षिणा ददेत् ।।१७।।

जो मनुष्य किसी निर्दोष वैश्य अथवा क्षत्रिय को मार डाले, तो वह दो अतिकृच्छ्र करे, और बीस गायों (बैलों) की दक्षिणा दे ।

वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् ।
हत्वा चान्द्रायणं कुर्याद्दद्याद् गोत्रिंशद् दक्षिणाम् ।।१८।।

कार्य में लगे हुए वैश्य और शूद्र को और दुष्कर्म में प्रवृत्त द्विजातियों में उत्तम (ब्राह्मण) को मारकर चान्द्रायण करे और तीस गायें (बैल) दक्षिणा में दे ।

चाण्डालं हतवान् कश्चिद् ब्राह्मणो यदि कञ्चन ।
प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ।।१९।।

यदि किसी ब्राह्मण ने किसी चाण्डाल को मार दिया हो तो वह प्राजापत्य कृच्छ्र करे और दो गायें (बैल) दक्षिणा में दे ।

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण वा ।
चाण्डालवधसंप्राप्तः कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ।।२०।।

यदि क्षत्रिय के द्वारा, वैश्य के द्वारा, शूद्र के द्वारा अथवा किसी अन्य के द्वारा चाण्डाल का वध हो गया हो, तो (वध करने वाला) अर्द्ध-कृच्छ्र से भली प्रकार शुद्ध होता है ।

चौराः श्वपाकचाण्डाला विप्रेणापि हता यदि ।
अहोरात्रोपवासेन प्राणायामेन शुध्यति ।।२१।।

यदि चोर, श्वपाक और चाण्डाल ब्राह्मण के द्वारा मारे गए हों, तो (वह ब्राह्मण) दिन-रात के उपवास और प्राणायाम से शुद्ध होता है ।

श्वपाकं वापि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि ।
द्विजसम्भाषणं कुर्याद् गायत्रीं वा सकृज्जपेत् ।।२२।।

यदि ब्राह्मण श्वपाक अथवा चाण्डाल से सम्भाषण (बात-चीत) करे, तो वह (शुद्धि के लिए) द्विज के साथ सम्भाषण करे, अथवा एक बार गायत्री का जप करे।

चाण्डालैः सह सुप्तन्तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ।
चाण्डालैकपथङ्गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥२३॥

यदि ब्राह्मण के द्वारा चाण्डालों के साथ सोया गया हो, तो वह तीन रात तक उपवास करे। चाण्डाल के साथ समान मार्ग पर चलकर गायत्री के स्मरण से पवित्र होता है।

चाण्डालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत् ।
चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥२४॥

चाण्डाल का दर्शन होने पर तुरन्त सूर्य का अवलोकन करे, और चाण्डाल का स्पर्श होने पर सचैल स्नान करे।

चाण्डालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः ।
अज्ञानाच्चैव नक्तेन त्वहोरात्रेण शुध्यति ॥२५॥

ऊंची जाति का मनुष्य अनजाने में रात्रि को चाण्डालों के द्वारा खोदी हुई बावलियो में यदि जल पी ले तो एक दिन-रात के व्रत से शुद्ध होता है।

चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम् ।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात्॥२६॥

चाण्डाल के पात्र (डोल) से छुए हुए कूएँ में पडे जल को पीकर गो-मूत्र और जौ के आहार से तीन रात में शुद्धि को प्राप्त करता है।

चाण्डालोदकभाण्डे तु अज्ञानात् पिबते जलम् ।
तत्क्षणात् क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२७॥

यदि अनजाने मे चाण्डाल के जलपात्र में जल पी ले और (पता चलने पर उसे) तत्क्षण निकाल दे, तो प्राजापत्य व्रत करे।

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्य्यति ।
प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२८॥

यदि वह उसे नहीं निकालता, और जल उसके शरीर में पच जाता है, तो उसे प्राजापत्य न कराए। वह तो सान्तपन कृच्छ्र ही करे।

चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु क्षत्रियः ।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२९॥

ब्राह्मण सान्तपन करे, क्षत्रिय प्राजापत्य करे, वैश्य उससे आधा (प्राजापत्य) करे और शूद्र से एक चौथाई (प्राजापत्य) कराए ।

भाण्डस्थमन्त्यजानान्तु जलं दधि पयः पिबेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥३०॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनान्तु निष्कृतिः ।
शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥३१॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रमादवश बर्तन में रखे अन्त्यजों के जल, दही या दूध को पी ले, तो द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) का पश्चाताप ब्रह्मकूर्च (=पञ्चगव्य) और उपवास से होता है, और शूद्र उपवास से तथा यथाशक्ति दान से (प्रायश्चित्त करता है)।

ब्राह्मणो ज्ञानतो भुङ्क्ते चाण्डालान्नं कदाचन ।
गोमूत्रयावकाहाराद्दशरात्रेण शुध्यति ॥३२॥

यदि कभी ब्राह्मण जान-बूझ कर चाण्डाल के अन्न को खाए, तो गोमूत्र और जौ के आहार से तीन रात्रियों में शुद्ध होता है ।

एकैकं ग्रासमश्नीयाद् गोमूत्रयावकस्य च ।
दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तत्र विनिर्दिशेत् ॥३३॥

वह गो-मूत्र के साथ जौ के आहार के एक-एक ग्रास को खाए । इस विषय में नियम में स्थित मनुष्य के लिये दस दिन के व्रत का भली प्रकार निर्देश करे ।

अविज्ञातञ्च चाण्डालः सन्तिष्ठेत्तस्य वेश्मनि ।
विज्ञाते तूपसंन्यस्य द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥३४॥

यदि बिना पता चले चाण्डाल उन (द्विजों) के घर में ठहरे, तो पता चलने पर (बिना दण्डित किये) उसे निकाल कर द्विज उस पर अनुग्रह करते हैं ।

ऋषिवक्त्राच्छ्रुत्वा धर्म्मास्त्रायन्ते वेदपावनाः ।
पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात् ॥३५॥

ऋषियों के मुख से सुने हुए ज्ञान को पवित्र करने वाले धर्म (मनुष्यों की) रक्षा करते हैं । जो उन धर्मों को जानते हैं, वे धर्म से पतित होते हुए का पाप रूपी संकट से उद्धार कर देते है ।

दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ।
भुञ्जीत सह भृत्यैश्च त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।।३६।।

गोमूत्र और यवाहार का दही, घी और दूध के साथ कुटुम्बियों सहित भोजन करे, और तीन सध्याओं तक नदी अथवा तालाब में स्नान करे ।

त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा ।
त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम् ।।३७।।

तीन दिन तक दही से खाए, तीन दीन तक घी से खाए, और तीन दिन तक दूध से खाए । इस प्रकार एक-एक के साथ तीन दिन तक खाए ।

भावदुष्टं न भुञ्जीयान्नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ।
त्रिपलं दधिदुग्धस्य पलमेकन्तु सर्पिषः ।।३८।।

न तो विचारों से दूषित (जिसे बनाते समय बनाने वाले के मन में दूषित विचार रहे हों) अन्न को खाए, और न ही उच्छिष्ट और कीट आदि से दूषित अन्न को । दही और दूध के तीन पल और घी का एक पल खाए ।

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोस्ताम्रकांस्ययोः ।
जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ।।३९।।

तांबे और कांसे इन दोनों के बर्तनों की शुद्धि राख से होती है, वस्त्रों की शुद्धि जल में धोने से और मिट्टी से बने बर्तनों की उनके परित्याग से होती है ।

कुसुम्भगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिषी ।
द्वारे कृत्वा तु धान्यादि गृहे दद्याद्धुताशनम् ।।४०।।

कुसुम्भ, गुड, कपास, नमक, तेल और घी, एव अनाज को द्वार पर रख कर घर मे आग लगा दे ।

एवं शुद्धस्ततः पश्चात् कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
त्रिशतं गा वृषञ्चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ।।४१।।

इस प्रकार शुद्धि होती है । उसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन खिलाए और तीन सौ गायें और एक बैल ब्राह्मणो को दक्षिणा में दे ।

पुनर्लेपनखातेन होमजप्येन शुध्यति ।
आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ।।४२।।

दोबारा लेपा देने से, खोद डालने से, होम तथा जप से, और ब्राह्मणों का आधार बनने (बैठने) से (भूमि) शुद्ध होती है । भूमि मे दोष नहीं होता ।

चाण्डालैः सह सम्पर्कं मासं मासार्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुध्यति ।।४३।।

यदि एक मास अथवा आधे मास तक चाण्डालों के साथ सम्पर्क हो, तो गोमूत्र और जौ के आहार के द्वारा आधे मास में भली प्रकार शुद्ध होता है।

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीवनी ।
चातुर्वर्ण्यगृहे यस्य ह्यज्ञानादधितिष्ठति ।।४४।।
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्य्यात् पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ।
गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वञ्च कारयेत् ।।४५।।

यदि धोबिन, चमारी, व्याध की स्त्री, और बांस से आजीविका करने वाले की स्त्री चारों वर्णों के घर में बिना जाने ठहर जाए, तो पता लग जाने पर पूर्वोक्त से आधा प्रायश्चित्त करे । गृह-दाह न करे । शेष सब कुछ करे ।

गृहस्याभ्यन्तरे गच्छेच्चाण्डालो यस्य कस्यचित् ।
तस्माद् गृहाद्विनिःसार्य मृद्भाण्डानि विसर्जयेत् ।।४६।।

जिस किसी के घर के अन्दर चाण्डाल चला जाए, तो उसको उस घर से निकाल कर मिट्टी के बर्तनों को घर से बाहर फैंक दे।

रसपूर्णन्तु मृद्भाण्डं न त्यजेच्च कदाचन ।
गोरसेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेत् समन्ततः ।।४७।।

रस (घी, दूध) से भरे बर्तन को कभी न फैंके। गोरस (दूध) से मिश्रित जलों से (घर में) सब ओर छिड़काव कराए।

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे ।
कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।।४८।।

जिस ब्राह्मण के घाव के मुंह पर राध और शोणित आ जाएं और कीड़े पड़ जाएं, तो प्रायश्चित्त किस प्रकार हो (वह बताता हू) ।

गवां मूत्रपुरीषेण दध्ना क्षीरेण सर्पिषा ।
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ।।४९।।

गायों के मूत्र, गोबर, दही, दूध और घी (के मिश्रण) से तीन दिन स्नान करके और (उसी को) पीकर कीड़ों से दोषी बना ब्राह्मण शुद्ध होता है।

क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पञ्च माषान् प्रदापयेत् ।
गोदक्षिणान्तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥५०॥

क्षत्रिय (के घाव में यदि कीड़े पड़ जाएं तो उससे प्रायश्चित्त के लिये) पांच माषे सोना दान कराए, वैश्य से गऊ दक्षिणा में दिलाए और उसे उपवास का निर्देश करे ।

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ।
ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५१॥

शूद्रों का उपवास नहीं होता । शूद्र दान से शुद्ध होता है । वह ब्राह्मणों को नमस्कार करके पञ्चगव्य (के पान) से शुद्ध होता है ।

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ।
प्रणम्य शिरसा धार्य्यमग्निष्टोमफल हि तत् ॥५२॥

'दोष-हीन है' ऐसे जिस वाक्य को भू-देवता (ब्राह्मण) कहते है, उसे प्रणाम करके शिरोधार्य करना चाहिए, (क्योंकि) वह अग्निष्टोम यज्ञ के फल को देने वाला है ।

व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ।
उपवासो व्रतो होमो द्विजसम्पादितानि वा ॥५३॥

व्याधि के सकट में, थकावट होने पर, दुर्भिक्ष और अफसोस के समय में ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराए हुए उपवास, होम, व्रत आदि कर्म (दोष से रहित होते हैं) ।

अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः स्वयं कुर्वन्त्यनुग्रहम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति द्विजसम्पादितैरिह ॥५४॥

अथवा स्वयं प्रसन्न हुए ब्राह्मण अनुग्रह करते है । इस लोक में ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न कराए हुए कर्मों के द्वारा मनुष्य सब कामनाओं को पूर्ण करता है ।

दुर्ब्बलेऽनुग्रहः कार्य्यस्तथा वै बालवृद्धयोः ।
अतोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥५५॥

दुर्बल पर अनुग्रह करना चाहिए, और उसी प्रकार बच्चों और बूढ़ों पर भी अनुग्रह करना चाहिये । इसके विपरीत करने से दोष उत्पन्न होता है, इस लिये उसपर अनुग्रह नहीं किया जाता ।

स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।

कुर्वन्त्यनुग्रहं ये वै तत्पापं तेषु गच्छति ॥५६॥

स्नेह के कारण अथवा लोभ के कारण अथवा भय के कारण बिना सोचे-समझे जो अनुग्रह करते है, तो उससे उत्पन्न होने वाला पाप उनको लग जाता है।

शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमन्तु ये ।

महत्कार्य्योपरोधे न स्वस्थस्य कदाचन ॥५७॥

शरीर को जोखिम आ जाने पर जो (ब्राह्मण) नियम का कथन करते हैं, और कार्यों में महान् उपरोध उत्पन्न होने के भय से स्वस्थ जन के लिये नियम का कथन नहीं करते (वे ठीक करते है) ।

स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति नियमन्तु वदन्ति ये ।

ते तस्य विघ्नकर्त्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥५८॥

जो स्वस्थ के लिये नियम का कथन और विधान करते है, वे मूर्ख उसके कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने वाले हैं। इसलिये घोर नरक में पड़ते है ।

स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ।

वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥५९॥

जो स्वयं ही व्रत करके ब्राह्मण का तिरस्कार करता है, उसका वह उपवास व्यर्थ हो जाता है। उसे पुण्य प्राप्त नहीं होता ।

स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद् द्विजः ।

कुर्य्याद्वाक्यं द्विजानाञ्च अकुर्वन् ब्रह्महा भवेत् ॥६०॥

वही नियम ग्राह्य है, जिसका एक भी ब्राह्मण कथन करता है। ब्राह्मणों के वचन का पालन करे, अगर न करे तो ब्रह्मघातक हो जाता है।

उपवासो व्रतञ्चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ।

विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत् ॥६१॥

जिस मनुष्य का उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ, जप और तप ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराया गया है, वही उसका सम्पन्न होता है।

व्रतच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ।
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥६२॥

व्रत का दोष, तप का दोष और यज्ञकर्म मे जो दोष हो जाता है, ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराने पर वह सारे का सारा दोषरहित हो जाता है ।

ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्जलं सर्वकामदम् ।
तेषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना जनाः ॥६३॥

ब्राह्मण विना जल वाले, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले, चलते-फिरते तीर्थ है । (दोष से) मलिन लोग उनके वचन रूपी जल से ही शुद्ध हो जाते है ।

ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ।
सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥६४॥

ब्राह्मण जिन वचनों को बोलते हैं, देवता उन्हें स्वीकार करते हैं । ब्राह्मण सर्वदेवमय (सब देवताओ का रूप) हैं । उनका वचन व्यर्थ नही जाता ।

अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ।
अन्तरा सस्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥६५॥

भोजन में यदि कीट आदि मिल जाए, और यदि वह केश, मक्खी आदि से दूषित हो जाए, तो बीच में ही कुल्ला करे और उस अन्न में भस्म डाल दे ।

भुञ्जानो हि यदा विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ।
उच्छिष्ट हि स वै भुङ्क्ते भुङ्क्ते यो भूक्तभाजने ॥६६॥

जब भोजन करता हुआ ब्राह्मण पाँव को हाथ से छू दे, और जो ब्राह्मण झूठे बर्तन में खाता है, वह निश्चय से उच्छिष्ट ही खाता है ।

पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्य्यङ्के संस्थितोऽपिवा ।
शुना चाण्डालदृष्टो वा भोजनं परिवर्जयेत् ॥६७॥

जूते पहनकर और पलग पर बैठकर भोजन न करे । यदि भोजन करता हुआ कुत्ते और चाण्डाल के द्वारा देख लिया जाए, तो उस भोजन को त्याग दे ।

पक्वान्नञ्च निषिद्धं यदन्नशुद्धिस्तथैव च ।
यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥६८॥

जो पका हुआ अन्न प्रतिषिद्ध है, तथा अन्न की जिस प्रकार से शुद्धि होती है, पराशर के द्वारा जैसे बताया गया है, वैसे ही मै तुम्हें बताता हूं ।

श्रृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम् ।
केनैतच्छुध्यते चान्न ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥६९॥

एक द्रोण भर और एक आढक भर पका हुआ अन्न यदि कौए अथवा कुत्ते के द्वारा अपवित्र कर दिया गया हो, तो वह अन्न किस प्रकार शुद्ध हो यह ब्राह्मणों से निवेदन करे ।

काकश्वानावलीढन्तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ।
वेदवेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥७०॥

"कौए और कुत्ते द्वारा झूठा किये हुए द्रोण भर अन्न को न फेंके", धर्मशास्त्र के आदेशों का पालन करने वाले और वेद-वेदाङ्गों को जानने वाले, ब्राह्मणों के द्वारा (ऐसा बताया जाए) ।

प्रस्था द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः ।
ततो द्रोणाढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥७१॥

बत्तीस प्रस्थों का एक द्रोण और दो प्रस्थों का एक आढक माना गया है । श्रुति और स्मृति के जानकार आचार्य द्रोण और आढक की मात्रा इतनी ही बताते हैं ।[1]

काकश्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा ।
स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥७२॥

ब्राह्मण को चाहिये कि वह कौए और कुत्ते के द्वारा झूठा किये हुए और गऊ अथवा गधे के द्वारा मुँह लगाए हुए अन्न में से थोड़ा सा अन्न (जिसे छुआ गया है) फेंक दे, इस प्रकार द्रोण और आढक भर अन्न की शुद्धि हो जाती है ।

अन्यस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च नोपहतं भवेत् ।
सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशनेन तापयेत् ॥७३॥

(जितना मुँह आदि से छुआ गया हो) उतनी ही मात्रा में अन्न को निकाल कर, जो न छुआ गया हो उसपर सुवर्ण-जल (सोने से छुआ हुआ जल) छिड़क कर उसे अग्नि से तपाए ।

---

१. द्रोण, आढक, प्रस्थ आदि के माप-तोल बहुत निश्चित नहीं हैं । भिन्न-भिन्न आचार्यों के अनुसार ये भिन्न-भिन्न हैं । विशेष जानकारी के लिये द्रष्टव्य सर मोनियर विलियम्स् कृत संस्कृत-इंग्लिश शब्द-कोश ।

हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ।
विप्राणा ब्रह्मघोषेण भोज्य भवति तत्क्षणात् ।।७४।।

अग्नि और सुवर्ण-जल से संस्पृष्ट और ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चारण से वह तुरन्त खाने के योग्य हो जाता है ।

अल्प परित्यजेत् तत्र स्नेहस्योत्पवनेन च ।
अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ।।७५।।

(घी, तेल, आदि) चिकने पदार्थ और दूध इनमें शुद्धि कैसे हो, (यह बताते हैं) । घी आदि चिकने पदार्थ मे से थोड़ा सा (जो अपवित्र हो गया हो, उसे) फैंक दे । और शेष को छानने से वह शुद्ध हो जाता है । दूध की शुद्धि अग्नि की ज्वाला से (तपाने से) होती है ।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।।

।। अथ सप्तमोऽध्याय. ।।

द्रव्यशुद्धिवर्णनम् ।

अथातो द्रव्यसंशुद्धिः पराशरवचो यथा ।
दारवाणान्तु पात्राणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।।१।।

अब यहाँ से लेकर पराशर के मतानुसार द्रव्यों की शुद्धि का कथन होगा । काठ के बने पात्रों की तो तुरन्त शुद्धि मानी जाती है ।

मार्ज्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणाञ्च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ।।२।।

यज्ञकर्म में यज्ञ-पात्रों की शुद्धि हाथ से मांजने से और चमसों (सोम-पात्रों) और ग्रहों (चिमटा आदि) की शुद्ध जल में धोने से होती है ।

चरूणां स्रुक्स्रुवाणाञ्च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।।३।।

चरु, स्रुक और स्रुवों की शुद्धि गर्म जल से होती है । कांसी का बर्तन राख से शुद्ध होता है, तांबे का बर्तन खटाई से शुद्ध होता है ।

रजसा शुध्यते नारी विकलं या न गच्छति ।
नदी वेगेन शुध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥४॥

नारी रजोनिवृत्ति से शुद्ध होती है, यदि वह अस्वस्थता को प्राप्त न हो तो, नदी वेग से शुद्ध होती है, यदि उसमें मैल दिखाई न दे ।

वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथञ्चन ।
उद्धृत्य वै घटशतं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५॥

बावली, कूएं और तालाबों के किसी कारण के अपवित्र हो जाने पर, उनमें से सौ घड़े पानी निकालकर और उनमें पञ्चगव्य डालकर शुद्धि होती है ।

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला ॥६॥

आठ वर्ष की बालिका गौरी होती है, नौ वर्ष की रोहिणी होती है, दस वर्ष की कन्या होती है और उसके पश्चात् वह रजस्वला हो जाती है ।

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम् ॥७॥

बारह वर्ष की हो जाने पर जो पिता कन्या का विवाह नहीं करता तो प्रतिमास उसकी रज को स्वयं उसके पितर पीते हैं ।

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम् ॥८॥

माता, पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता—ये तीनों कन्या को रजस्वला देखकर नरक में जाते हैं ।

यस्तां समुद्वहेत् कन्या ब्राह्मणोऽज्ञानमोहितः ।
असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥९॥

अज्ञान के कारण किंकर्तव्य-मूढ बना हुआ जो ब्राह्मण उस कन्या से विवाह करता है, शूद्रा का पति वह ब्राह्मण न तो सम्भाषण के योग्य है, और न ब्राह्मणों की पंक्ति मे भोजन करने योग्य है ।

यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ।
स भैक्षभुग्जपन्नित्य त्रिभिर्वर्षैर्विशुध्यति ॥१०॥

जो ब्राह्मण एक रात भर शूद्रा का सेवन करता है, वह नित्य-प्रति भिक्षा का भोग और जप करता हुआ तीन वर्षों में भली प्रकार शुद्ध होता है ।

अस्तं गते यदा सूर्य्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम् ।
सूतिकां स्पृशते चैव कथ शुद्धिर्विधीयते ॥११॥

सूर्य अस्त हो जाने पर जब कोई (ब्राह्मण) चाण्डाल, पतित जन अथवा सूतिका स्त्री का स्पर्श कर ले, तो उस की कैसे शुद्धि होती है (वह मै बताता हूं)।

जातवेदं सुवर्णञ्च सोममार्ग विलोक्य च ।
ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥१२॥

अग्नि, सुवर्ण और चन्द्रमा के मार्ग का दर्शन करके, ब्राह्मणों के पीछे चल कर और स्नान करके भली प्रकार शुद्ध होता है।

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा ।
यावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१३॥

यदि एक रजस्वला ब्राह्मणी और दूसरी रजस्वला ब्राह्मणी एक दूसरी का (परस्पर) स्पर्श करे तो उनमें से प्रत्येक (तीन रातों) तक निराहार रहे और तीन रातों में शुद्ध होती है।

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा ।
अर्द्धकृच्छ्र चरेत् पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥१४॥

यदि रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला क्षत्रिया एक-दूसरी का (परस्पर) स्पर्श करे तो पहली (अर्थात् ब्राह्मणी) अर्द्धकृच्छ्र करे और दूसरी (अर्थात् क्षत्रिया) एक चौथाई कृच्छ्र करे।

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा ।
पादोनं चैव पूर्व्वायाः परायाः कृच्छ्रपादकम् ॥१५॥

यदि रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला वैश्या एक-दूसरी का (परस्पर) स्पर्श करे तो पहली (अर्थात् ब्राह्मणी) का तीन चौथाई कृच्छ्र और दूसरी (अर्थात् वैश्या) का एक चोथाई कृच्छ्र होता है।

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा ।
कृच्छ्रेण शुध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति ॥१६॥

यदि रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला शूद्रा एक-दूसरी का (परस्पर) स्पर्श करें तो पहली (अर्थात् ब्राह्मणी) एक कृच्छ्र से शुद्ध होती है और शूद्रा दान से शुद्ध होती है।

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति ।
कुर्य्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ।।१७।।

जो रजस्वला स्त्री होती है वह चौथे दिन स्नान करने पर शुद्ध होती है। वह रजोनिवृत्त होने पर देवों और पितरों के प्रति करणीय कर्मों को करे।

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहन्तु प्रवर्तते ।
नाशुचिः सा ततस्तेन तत् स्याद्वैकारिकं मतम् ।।१८।।

रोग के कारण स्त्रियों का जो रज प्रतिदिन जाता रहता है, तो स्त्री उससे अपवित्र नहीं होती, क्योंकि उसे विकार से उत्पन्न माना गया है।

साध्वाचारा न तावत् स्याद् रजो यावत् प्रवर्तते ।
रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ।।१९।।

(रजस्वला स्त्री का) जब तक रज जाता रहता है, तब तक वह उत्तम आचार वाली नहीं होती। रजोनिवृत्ति होने पर ही स्त्री संभोग के योग्य और गृह कार्यों के योग्य होती है।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ।।२०।।

(रजस्वला स्त्री) पहले दिन चाण्डाली होती है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन धोबिन होती है, और चौथे दिन पवित्र हो जाती है।

आतुरे स्नानमुत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत् स आतुरः ।।२१।।

यदि किसी रोगी को (शुद्धि के लिये) स्नान का विधान हो तो नीरोग मनुष्य (उसके लिये) दस बार स्नान कर कर के उसका स्पर्श करे, तब वह रोगी मनुष्य शुद्ध होता है।

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ।।२२।।

उच्छिष्ट से उच्छिष्ट के द्वारा छुआ हुआ अथवा कुत्ते या शूद्र के द्वारा छुआ हुआ द्विज एक रात तक उपवास करके पञ्चगव्य के द्वारा शुद्ध होता है।

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्नानं स्पर्शे विधीयते ।
उच्छिष्टेन च संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ।।२३।।

अनुच्छिष्ट शूद्र के द्वारा स्पर्श होने पर स्नान कहा गया है। उच्छिष्ट के द्वारा छुआ हुआ (द्विज) प्राजापत्य व्रत करे।

भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ।
सुरामात्रेण संस्पृष्ट. शुध्यतेऽग्न्युपलेपनै· ॥२४॥

जिस कांसी के पात्र में सुरा नहीं लगी है, वह राख से शुद्ध हो जाता है। और जिसमें सुरा लग गई है वह अग्नि में तपाने और (गाय के गोबर से)लीपने से शुद्ध होता है।

गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ।
शुध्यन्ति दशभि क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥२५॥

गऊ के द्वारा मुंह लगाए हुए और कुत्तों और कौओं के द्वारा अपवित्र किये हुए कांसी के बर्तन, और जो शूद्र के द्वारा उच्छिष्ट किये गए हैं—वे दस क्षारों से शुद्ध होते हैं।

गण्डूषं पादशौचञ्च कृत्वा वै कांस्यभाजने ।
षण्मासाद् भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥२६॥

कांसी के बर्तन में कुल्ला करके और पांव धोकर उसे छः मास तक धरती में गाड़ दे और फिर निकाल कर प्रयोग में लाए।

आयसेष्वपसारेण सीसस्याग्नौ विशोधनम् ।
दन्तमस्थि तथा शृङ्ग रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥२७॥
मणिपाषाणशङ्खाश्च एतान् प्रक्षालयेज्जलैः ।
पाषाणे तु पुनर्घृष्टिरेषा शुद्धिरुदाहृता ॥२८॥

लोहे से बने बर्तनो के विषय में उनके परित्याग से शुद्धि होती है, जस्ते के बर्तन की शुद्धि अग्नि से होती है। दांत, हड्डी, सींग, चांदी और सोने से बने बर्तन, मणि, पाषाण और शङ्ख—इन सबको जल से धोए। पाषाण से बने बर्तन के विषय में तो फिर से घिसाई करना, यह शुद्धि बताई गई है।

मृद्भाण्डदहनाच्छुद्धिर्धान्याना मार्जनादपि ॥२९॥

मिट्टी के बर्तनो को अग्नि से जलाने से शुद्धि होती है, और अनाजों की सफाई करने से शुद्धि होती है।

अद्भिस्तु प्रोक्षण शौच बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥३०॥

अनाज के बड़े कपड़ों (बोरी आदि) की जलो के द्वारा छिड़काव करने से शुद्धि होती है, छोटे कपड़ों को जलों से धोने से शुद्धि होती है।

वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ।
और्णानां नेत्रपट्टानां जलाच्छौचं विधीयते ॥३१॥

बांस और छाल से बने चीरों को क्षुमा (linseed) और कपास से बने वस्त्रों को, ऊनी वस्त्रों को और (बैल आदि पशुओं की) आंखों पर बांधने वाले पट्टों को जल से शुद्धि होती है ।

तूलिकाद्युपधानानि पीतरक्ताम्बराणि च ।
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षयित्वा शुचिर्भवेत् ॥३२॥

रूई से बने गद्दों और उपधानों को, तथा पीले और लाल कपड़ों को सूरज की धूप में सुखाकर जल का छींटा देने से शुद्धि हो जाती है ।

मुञ्जोपस्करसूर्पाणां शाणस्य फलचर्मणाम् ।
तृणकाष्ठादिरज्जूनामुदकप्रोक्षणं मतम् ॥३३॥

मूंज से बने घरेलू समान, सूप, सन से बनी वस्तुओ, फलों और चमड़ों से बनी वस्तुओं, घास-फूस और लकडियों आदि को बांधने के लिए प्रयोग मे आने वाली रस्सियों (की शुद्धि के) लिये जल का छींटा कहा गया है ।

मार्जारमक्षिकाकीटपतङ्गकृमिदर्दुराः ।
मेध्यामेध्यं स्पृशन्त्येव नोच्छिष्टान् मनुरब्रवीत् ॥३४।

बिल्ली, मक्खी, कीडा, पतंगा, कृमि और मेंडक यदि पवित्र या अपवित्र वस्तु का स्पर्श करते है, तो वे उन्हें उच्छिष्ट नहीं करते, ऐसा मनु ने कहा है ।

भूमिं स्पृष्ट्वा गतं तोयं यश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ।
भुक्त्वोच्छिष्टं तथा स्नेह नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥३५॥

भूमि पर पड़कर बहा हुआ जल, परस्पर बातचीत करते समय गिरने वाले थूक के कण, भोजन करने के पश्चात् बचा घी-तेल आदि—ये झूठे नहीं होते, ऐसा मनु ने कहा है।

ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ।
मधुपर्के च सोमे नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥३६॥

प्रयोग में लाने के पश्चात् बचा हुआ पान, गन्ना, फल, तेल आदि चिकना पदार्थ, उबटना, मधुपर्क, और सोम— इनमें झूठा नहीं होता । ऐसा मनु ने कहा है ।

रथ्याकर्दमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ।
मरुतार्केण शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥३७॥

रथों के मार्ग, कीचड़, जल, नावें, रास्ते, घास-फूस, और पक्की ईंटों से चुने हुए मन्दिर, भवन आदि वायु और सूर्य की किरणों से शुद्ध होते हैं।

अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥३८॥

निर्दोष, निरन्तर बहने वाली जल की धाराएं, वायु से उड़ाए हुए धूली के कण, स्त्रियां, वृद्ध, और बालक कभी दूषित नहीं होते।

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।
पतितानाञ्च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥३९॥

छींक आ जाने पर, थूकने पर, दांतों के बीच में झूठ अटक जाने पर, झूठ बोले जाने पर, पतितों के साथ संभाषण (वार्तालाप) करने पर दाहिने कान का स्पर्श करे।

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्य्यानिलास्तथा ।
एते सर्व्वेऽपि विप्राणा श्रोत्र तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥४०॥

अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु – ये सब के सब ब्राह्मणों के दाहिने कान मे निवास करते हैं।

प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥४१॥

प्रभास आदि तीर्थों तथा गंगा आदि नदियों की ब्राह्मण के दाहिने कान में उपस्थिति होती है, ऐसा मनु ने कहा है।

देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ।
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥४२॥

देश के टूटने पर, विदेश में होने पर, रोगों में और विपत्तियों में अपने शरीर आदि की रक्षा करे, उसके पश्चात् धर्म का पालन करे।

येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन च ।
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥४३॥

कोमल अथवा कठोर, जिस किसी धर्म के द्वारा दीन बने अपने आप को ऊपर उठाए, समर्थ हो जाने पर धर्म का आचरण करे।

आपत्काले तु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत् ।
स्वयं समुत्तरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्म्मं समाचरेत् ॥४४॥

आपत्काल आ जाने पर शौच और आचार की चिन्ता न करे। (पहले) अपना उद्धार करे, तत्पश्चात् स्वस्थ हुआ धर्म का आचरण करे।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

धर्माचरणवर्णनम्

गवां बन्धनयोक्त्रे तु भवेन्मृत्युरकामतः ।
अकामात् कृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१॥

गउओं के बांधने-जूड़ने में यदि न चाहते हुए भी उनकी मृत्यु हो जाए, तो अनचाहे किए गए पाप का प्रायश्चित्त कैसे हो (वह मैं तुम्हें बताता हूं)।

वेदवेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥२॥

वेद और वेदाङ्गों के विद्वानों, धर्मशास्त्र को जानने वालों, और अपने कर्मों में लगे हुए ब्राह्मणों के सम्मुख अपने पाप का कथन करे।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ।
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशनमर्हति ॥३॥

इससे आगे मैं (पाप के कथन के लिये) उपस्थित होने की विधि बताऊँगा, क्योंकि (उचित) रीति से उपस्थित हुआ नर ही उपदेश के योग्य होता है।

सद्यो निःशंसये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः ।
भुञ्जानो वर्द्धयेत् पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥४॥

पाप का तुरन्त निश्चय हो जाने पर, जहां विद्वत्परिषद् विद्यमान न हो, वहां उपस्थान किये बिना भोजन न करे। यदि भोजन करेगा तो पाप को और बढ़ाएगा।

शंसये तु न भोक्तव्यं यावत् कार्यविनिश्चयः ।
प्रमादश्च न कर्त्तव्यो यथैवाशंसयस्तथा ॥५॥

संशय होने पर तब तक भोजन न करे जब तक कार्य का भली प्रकार निश्चय न हो जाए, इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिये । जिस प्रकार संशय की निवृत्ति हो वैसा करना चाहिये ।

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमान विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥६॥

पाप करके उसे छुपाए न, क्योंकि छुपाया हुआ पाप बढ़ जाता है, पाप चाहे थोड़ा हो या अधिक, उसे धर्मविदों को बता दे ।

ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ॥७॥

जिस प्रकार बुद्धिमान् वैद्य लोग रोगी के रोग का निवारण करने वाले होते है, उसी प्रकार वे (धर्मविद्) ही पाप किये जाने पर पापों का विनाश करने वाले जानने चाहियें ।

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः ।
मृदुरार्जवसम्पन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥८॥

प्रायश्चित्त करणीय होने पर लज्जावान्, सत्य का आश्रय लेने वाला, सरल मनुष्य (प्रायश्चित्त करके) पुनः शुद्धि को प्राप्त हो जाता है।

सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्षदमाव्रजेत् ॥९॥

मौन रह सचैल स्नान करके, गीले वस्त्र पहिने, सावधान हो क्षत्रिय अथवा वैश्य (धर्म-)परिषद् में आ जाए ।

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्त्तिमान् धरणीं व्रजेत् ।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ॥१०॥

तत्पश्चात् जल्दी से उपस्थान करके (पाप का निवेदन करके) दुःख को प्राप्त हुआ शरीर के अगों और सिर से धरती पर गिर जाए (साष्टाङ्ग प्रणाम करे), और कुछ न बोले ।

सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ।
अज्ञानात् कृषिकर्त्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥११॥

सविता है देवता जिस का ऐसे गायत्री मन्त्र, एव संध्योपासन और यज्ञ-कर्म के अज्ञान के कारण खेती-बाड़ी करने वाले ब्राह्मण नाम मात्र के ब्राह्मण होते हैं।

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥१२॥

व्रतों का पालन न करने वाले, मन्त्र-हीन, जन्म मात्र के कारण ब्राह्मण की आजीविका करने वाले यदि हजारों की संख्या में भी एकत्रित हो जाएं तो वह (धर्म)परिषद नहीं हो जाती।

यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधि गच्छति ॥१३॥

अज्ञान के कारण मूढ़, मूर्ख, धर्म को न जानने वाले जब धर्म का उपदेश करते हैं, तो वह पाप सौ गुना होकर उसके उपदेश करने वालों को ही लग जाता है।

अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः।
प्रायश्चित्ती भवेत् पूतः किल्बिषं पर्षदि व्रजेत् ॥१४॥

धर्म-शास्त्रों को जाने बिना जो प्रायश्चित्त का आदेश देता है, तो प्राय-श्चित्त करने वाला तो पवित्र हो जाता है और पाप परिषद् को प्राप्त हो जाता है।

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥१५॥

चार अथवा तीन वेद पारंगत (विद्वान्) जिसका उपदेश करें, उसे ही धर्म जानना चाहिये। हजारों की संख्या में भी अन्यों के द्वारा कहा हुआ धर्म नहीं हो सकता।

प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै।
तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥१६॥

प्रमाण मार्ग का अन्वेषण करने वाले जो (विद्वान्) धर्म का उपदेश करते हैं, समस्त गुणों का प्रवचन करने वाले उन विद्वानों से पाप घबराता है।

यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुध्यति।
एवं परिषदादेशान्नाशयेत्तु दुष्कृतम् ॥१७॥

जिस प्रकार पत्थर पर स्थित जल वायु और सूर्य से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार परिषद् की आज्ञा से दुष्कर्म नष्ट हो जाता है।

नैव गच्छति कर्त्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ।
मारुतार्कादिसंयोगात् पाप नश्यति तोयवत् ॥१८॥

पाप न तो करने वाले को प्राप्त होता है और न ही (धर्म)परिषद् को प्राप्त होता है, वरन् इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार वायु और सूर्य के संयोग से जल नष्ट हो जाता है ।

चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः ।
ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत् सा विधीयते ॥१९॥

चार अथवा तीन जो वेदों के विद्वान्, अग्निहोत्री, ब्राह्मणों में समर्थ हों वही परिषद् कही जाती है ।

अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः ।
पञ्च त्रयो वा धर्म्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥२०॥

अग्नि का आधान न करने वाले, पर वेदों और वेदाङ्गों में पारगत, धर्म को जानने वाले जो अन्य पांच या तीन लोग होते है, उन्हे भी परिषद् कहा जाता है ।

मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ।
वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥२१॥

आत्मविद्या को जानने वाले मुनियों, यज्ञों से यजन करने वाले ब्राह्मणों और वेदों में व्रत को धारण करने वाले स्नातकों मे से यदि एक भी हो, तो वह परिषद् होता है ।

पञ्च पूर्व मया प्रोक्तास्तेषाञ्चैव त्वसम्भवे ।
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥२२॥

पहले मैं ने जैसे पांच (ब्राह्मण) कहे थे, उनके अभाव में जो अपनी आजीविका से सन्तुष्ट ब्राह्मण हों, वह भी परिषद् कहलाती है ।

अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ।
परिषत्त्वं न तेषां वै सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥

इससे आगे जो केवल नाम मात्र के ब्राह्मण हैं, उनकी परिषद् नहीं होती, चाहे वे हजार गुणा भी हों ।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥

जैसा काठ से बना हाथी होता है और जैसा चमड़े से बना मृग होता है, वैसा ही अनपढ़ ब्राह्मण होता है, ये तीनों नाम-मात्र के होते है।

ग्रामस्थान यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः।
यथा हुतमनग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥

जैसा सूना गाँव का स्थान होता है, जैसा बिना जल का कुआँ होता है, जैसा बिना अग्नि का होम होता है, वैसा ही मन्त्र से हीन ब्राह्मण होता है।

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराफला।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥२६॥

जैसे नपुंसक स्त्रियों में निष्फल होता है, जैसे बांझ गऊ निष्फल होती है, जैसे मूर्ख को दिया हुआ दान निष्फल होता है, वैसे ही ऋचाओं को न जानने वाला ब्राह्मण निष्फल होता है।

चित्रं कर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम् ॥२७॥

जिस प्रकार चित्र-रचना धीरे-धीरे अनेक अंगों के निर्माण से विकसित होती है, उसी प्रकार ब्राह्मणत्व भी (धीरे-धीरे) विधिपूर्वक किये गए संस्कारो से विकसित होता है।

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः।
ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥ २८ ॥

जो नामधारी ब्राह्मण प्रायश्चित्त कराते है, वे पाप कर्म करने वाले ब्राह्मण मिलकर नरक में जाते है।

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये।
त्रैलोक्यं धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण वेद पढ़ते हे और जो पञ्च महायज्ञों में लीन हैं, वे विषयों में रत पांचों इन्द्रियों वाले होते हुए भी तीनों लोकों को धारण कर रहे हैं।

सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः।
तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षश्च दैवतम् ॥ ३० ॥

जिस प्रकार श्मशानों में ले जाई गई और प्रदीप्त की हुई अग्नि सब का भक्षण करने वाली हो जाती है, उसी प्रकार वेद-ज्ञानी ब्राह्मण सब का भक्षण करने वाला (सब पापों को अपने अन्दर पचा लेने वाला) और देवता हो जाता है।

अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युदके यथा ।
तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षेप्तव्यं द्विजेऽमले ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार सब अपवित्र वस्तुओं को जल में फेंक देते है, उसी प्रकार समस्त पाप को (भस्म होने के लिये) पवित्र ब्राह्मण रूपी अग्नि में डाल देना चाहिये ।

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥

गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक अपवित्र होता है । गायत्री और ब्रह्म-तत्त्व को जानने वाले ब्राह्मण पूजे जाते है ।

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः ।
कः परीत्यज्य दुष्टाङ्गां दुहेच्छीलवती खरीम् ॥३३॥

दुःशील होते हुए भी ब्राह्मण पूज्य है, शूद्र जितेन्द्रिय होता हुआ भी पूज्य नहीं है । कौन मनुष्य दु,शील गऊ को छोड़कर सुशील गधी को दुहेगा ।

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यद् ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥३४॥

धर्मशास्त्र रूपी रथ पर चढ़े हुए, वेद रूपी खड्ग को धारण करने वाले ब्राह्मण लीला मात्र के लिये भी जो कह दें वह परम धर्म माना गया है ।

चातुर्वेद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपालकः ।
प्रपश्चाश्रमिणो मुख्या परिषत् स्युर्दशावराः ॥३५॥

चारों वेदों का ज्ञाता, मीमांसा दर्शन का विद्वान्, वेदाङ्गों को जानने वाला, धर्म का पालन करने वाला परिषद् होता है, अथवा मुख्य गृहस्थ जहाँ कम से कम दस हों, वह परिषद् कहलाती है ।

राज्ञाञ्चानुमते चैव प्रायश्चित्तं द्विजो वदेत् ।
स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कृतिः ॥३६॥

राजाओं की अनुमति से ही ब्राह्मण प्रायश्चित की घोषणा करे । प्रायश्चित्त के पालन की घोषणा ब्राह्मण को स्वयं नहीं करनी चाहिये ।

ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य राजा यत् कर्त्तुमिच्छति ।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमुपगच्छति ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणों का उल्लघन करके राजा जो कुछ करना चाहता है, तो वह पाप सौ प्रकार का होकर राजा को लग जाता है ।

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः ।
आत्मानं पावयेत् पश्चाज्जपन् वै वेदमातरम् ॥३८॥

ब्राह्मण सदा देव-मन्दिर के आगे प्रायश्चित्त की व्यवस्था दे। उसके पश्चात् वेदमाता (गायत्री) का जप करता हुआ अपने आप को पवित्र करे।

सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।
गवां गोष्ठे वसेद्रात्रौ दिवा ताः समनुव्रजेत् ॥३९॥

चोटी सहित मुण्डन कराकर तीन सन्ध्याओं तक नदी में स्नान करे। रात के समय गौओं के गोवाट में निवास करे और दिन के समय उनका सम्यक् अनुगमन करे।

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥४०॥

गर्मी में, बरसात में, शीत-काल में अथवा बहुत तेज हवा चलने पर सामर्थ्य के अनुसार गाय का बचाव किये बिना अपना बचाव न करे।

आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिबन्तञ्चैव वत्सकम् ॥४१॥

अपने अथवा दूसरों के घर में, खेत में अथवा खलिहान में खाती हुई गाय को और (अपनी माँ का दूध) पीते हुए बछड़े को किसी को न बताए।

पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत् ।
पतितां पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥४२॥

गायों के जल पी लेने पर स्वयं जल पिये और उनके विश्राम कर लेने पर स्वयं विश्राम करे। गिरी हुई और कीचड़ में फंसी हुई गाय को पूरी शक्ति के साथ बाहर निकाले।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याद्यैर्गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥४३॥

ब्राह्मण के लिये अथवा गऊ के लिये जो प्राणों को त्याग देता है, वह ब्रह्म-हत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है, तथा गऊ और ब्राह्मण का रक्षक हो जाता है।

गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ।
प्राजापत्यन्तु यत्कृच्छ्रं विभजेत्तच्चतुर्विधम् ॥४४॥

गो-वध के अनुरूप प्राजापत्य का निर्देश करे, और उस प्राजापत्य कृच्छ्र को चार प्रकार से बाँट ले।

एकाह्मेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः।
अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥४५॥

एक दिन भात मात्र को खाकर रहे, एक दिन केवल रात को भोजन करे, एक दिन बिना माँगे जो मिले उसे खाकर रहे और एक दिन केवल वायु-भक्षण करके रहे (उपवास करे) (यह प्रथम प्रकार का प्राजापत्य कृच्छ्र है)।

दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिन नक्तभोजनः।
दिनद्वयमयाची स्याद् द्विदिन मारुताशनः ॥४६॥

दो दिन भात मात्र खाकर रहे, दो दिन केवल रात को भोजन करे, दो दिन बिना मांगे जो मिले उसे खाकर रहे, और दो दिन केवल वायु-भक्षण करे (अर्थात् उपवास करे) (यह दूसरी प्रकार का प्राजापत्य कृच्छ्र है)।

त्रिदिनञ्चैकभक्ताशी त्रिदिन नक्तभोजनः।
दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥४७॥

तीन दिन भात मात्र खाकर रहे, तीन दिन केवल रात को भोजन करे, तीन दिन बिना मागे जो मिले उसे खाकर रहे, और तीन दिन केवल वायु-भक्षण करे (अर्थात् उपवास करे) (यह तीसरी प्रकार का प्राजापत्य कृच्छ्र है)।

चतुरहन्त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः।
चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरह मारुताशनः ॥४८॥

चार दिन भात मात्र खाकर रहे, चार दिन तक केवल रात को भोजन करे, चार दिन तक बिना मांगे जो मिल जाए उसे खाकर रहे और चार दिन तक वायु-भक्षण करे (अर्थात् उपवास करे) (यह चौथी प्रकार का प्राजापत्य कृच्छ्र है)।

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
विप्राय दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि जपेद् द्विजः ॥४९॥

प्रायश्चित्त पूरा कर लेने पर ब्राह्मणों को भोजन खिलाए, विप्रों को दक्षिणा दे और पवित्र करने वाले मन्त्रों का जप करे।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्धो न संशयः ॥५०॥

ब्राह्मणों को भोजन खिलाकर तो गऊ की हत्या करने वाला भी शुद्ध हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

गोसेवोपदेशवर्णनम् ।

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः ।
तद्वधन्तु न तं विद्यात् कामात् कामकृतन्तथा ॥१॥

गउओं की रक्षा के लिये उनको रोकने और बांधने मे दोष नहीं लगता। इस प्रकार जान-बूझकर किये गए रोकने और बांधने के कार्य मे यदि उस (गऊ) का वध हो जाए तो उसे जान-बूझकर किया हुआ वध नहीं मानना चाहिये ।

अङ्गुष्ठमात्रः स्थूलो वा बाहुमात्रः प्रमाणतः ।
आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥२॥

अंगूठे जितना मोटा, भुजा जितना लम्बा, गीला और पत्तो वाला दण्ड (डंडा) होता है, ऐसा कहा जाता है ।

दण्डादूर्ध्वं यदन्येन प्रहरेद्वा निपातयेत् ।
प्रायश्चित्तं चरेत् प्रोक्तं द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ॥३॥

यदि (उस) डंडे के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से प्रहार करे और गऊ को (धरती पर) गिरादे, तो (शास्त्र-)प्रोक्त प्रायश्चित्त करे और दुगुना गो-व्रत करे ।

रोधबन्धनयोक्त्राणि घातनञ्च चतुर्विधम् ।
एकपादञ्चरेद्रोधे द्विपादं बन्धने चरेत् ।
योक्त्रेषु पादहीनं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने ॥४॥

रोकना, बांधना, जोतना और मारना इन चारों से गऊ या बैल के मर-जाने पर चार प्रकार का प्रायश्चित्त है। रोकने से मरने मे एक चौथाई प्रायश्चित्त करे, बांधने से मरने में आधा, जोतने से मरने मे पौना और मारने से मार डालने में सम्पूर्ण प्रायश्चित्त करे ।

गोचरे च गृहे वापि दुर्गेष्वपि समेष्वपि ।
नदीष्वपि समुद्रेषु खातेऽप्यथ दरीमुखे ।
दग्धदेशे मृताः गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ।।५।।

चरागाह में, घर में, दुर्गम स्थानों में, समतल भूमियों पर, नदियों मे, समुद्रों में, गड्ढे में, गुफा-द्वार में और अग्नि से जले स्थान में रोक देने से यदि गोएं मर जाएं तो वह रोध कहलाता है।

योक्त्रदामकडोरैश्च घण्टाभरणभूषणैः ।
गृहे वापि वने वापि बद्धा स्याद् गौर्मृता यदि ।
तदेव बन्धन विद्यात् कामाकामकृतञ्च यत् ।।६।।

जोत, रस्सी, डोर, घंटी, आभरण और भूषणों से घर या वन में गऊ यदि मर जाए, तो जाने-अनजाने मे किया हुआ यह कर्म बन्धन जाना जाता है।

मृल्लेखे शकटे पंक्तौ भारे वा पीडितो नरैः ।
गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः ।।७।।

हल से बनी मिट्टी की रेखा (लाङ्गल-पद्धति) में, छकड़े में, (खलिहान में) पङ्क्तिबद्ध चलने में, अथवा बोझ ढोने में मनुष्यों द्वारा पीडित बैल यदि मर जाए, तो वह वध योक्त्र कहलाता है।

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाप्यचेतनः ।
कामाकामकृतक्रोधो दण्डैर्हन्यादथोपलैः ।
प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ।।८।।

मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, चेतन अथवा अचेतन, जाने-अनजाने मे उत्पन्न हुए क्रोध वाला मनुष्य यदि डडों या पत्थरों से गऊ को मारे, तो इस प्रकार प्रहार की हुई या मरी हुई जो गऊ है, उसके निपातन में उस डंडे अथवा पत्थरों से मारने को ही हेतु माना जाता है।

मूर्च्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतः स तु ।
उत्थितस्तु यदा गच्छेत् पञ्च सप्त दशैव वा ।।९।।
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोय वापि पिबेद्यदि ।
पूर्वव्याध्युपसृष्टश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।१०।।

डडे से पीटा हुआ वह (बैल) यदि गिरपड़े या मूर्च्छित हो जाए और फिर उठकर पांच, सात या दस कदम चले, घास खा ले अथवा पानी पी लें, अथवा यदि वह किसी पहली व्याधि से ग्रस्त है, तो प्रायश्चित नहीं होता।

पिण्डस्थे पादमेकन्तु द्वौ पादौ गर्भसम्मिते ।
पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥११॥

गर्भ यदि प्रारम्भिक अवस्था में हो तो एक चौथाई, यदि गर्भ पूरा हो गया हो तो आधा, यदि गर्भ पूरा तो हो गया हो पर उसमें चेतना न आई हो तो उस का हनन करने पर पौन व्रत करना बताया गया है।

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ।
त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखन्तु निपातने ॥१२॥

एक चौथाई (पश्चात्ताप) मे शरीर के रोमो का मुण्डन, आधे में दाढ़ी-मूंछ का भी मुण्डन, पौन में शिखा मात्र को छोड़ कर मुण्डन और निपातन (हत्या) होने पर शिखा-सहित मुण्डन कराए।

पादे वस्त्रयुगञ्चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् ।
पादोने गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥१३॥

एक चौथाई (प्रायश्चित्त) में वस्त्रों का जोड़ा, आधे में कांसी का बर्तन, पौन में बैल दान करे, और पूर्ण प्रायश्चित्त में दो बैल (या गउओं) का दान माना गया है।

निष्पन्नसर्वगात्रन्तु दृश्यते वा सचेतनम् ।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पन्ने द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥१४॥

(गर्भ के) सारे शरीर वाला हो जाने पर, अथवा यदि गर्भ चेतना से युक्त दिखाई दे और अङ्गों-प्रत्यङ्गों के पूरा हो जाने पर (यदि गऊ की हत्या हो) तो दुगुना गो-व्रत करे।

पाषाणेनैव दण्डेन गावो येनाभिघातिताः ।
शृङ्गभङ्गे चरेत् पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने ॥१५॥

लाङ्गूले कृच्छ्रपादन्तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने ।
त्रिपादञ्चैव कर्णे तु चरेत् सर्वं निपातने ॥१६॥

पत्थर से या डंडे से यदि गउओं पर चोट की गई हो तो इस प्रकार सींग टूट जाने पर एक चौथाई प्रायश्चित्त, आँख फूट जाने पर आधा प्रायश्चित्त, दुम टूट जाने पर एक चौथाई कृच्छ्र और हड्डी टूट जाने पर आधा कृच्छ्र करे। कान फट जाने पर पौना कृच्छ्र और हत्या हो जाने पर पूर्ण कृच्छ्र करे।

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च ।
यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१७॥

सींग टूटने पर, हड्डी टूटने पर तथा पीठ टूट जाने पर यदि (गऊ) छः महीने तक जीवित रहे, तो प्रायश्चित्त नहीं होता ।

व्रणभङ्गे च कर्त्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना ।
यवसश्चोपहर्त्तव्यो यावद् दृढबलो भवेत् ॥१८॥

यदि घाव फूट जाए तो हाथ से उसपर तेल का मरहम लगाए, और जब तक वह (बैल) दृढ़ बल वाला न हो जाए तब तक उसे चारा डालता रहे ।

यावत्सम्पूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तं पोषयेन्नरः ।
गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥१९॥

जब तक वह सब अङ्गों से पूरा नहीं हो जाता, तब तक मनुष्य उसका पोषण करता रहे । और फिर गो-रूप उस (बैल) को ब्राह्मण के आगे नमस्कार करके छोड़ दे ।

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा ।
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत् ॥२०॥

यदि वह उस समय तक सारे अङ्गों से पूरा न हुआ हो और कमजोर शरीर वाला हो तो ब्राह्मण उस गो-घातक के लिये प्रायश्चित्त का आदेश करे ।

काष्ठलोष्ठकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ।
व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धि विनिर्दिशेत् ॥२१॥

जो घमण्डी मनुष्य लकड़ी से, ढेले से; पत्थर से और शस्त्र से जबर्दस्ती गाय को मारता है, (ब्राह्मण) उसकी शुद्धि का निर्देश करे ।

चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यन्तु लोष्ठके ।
तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रे चैवातिकृच्छ्रकम् ॥२२॥

लकड़ी से मारने पर सान्तपन करे, ढेले से मारने पर प्राजापत्य, पत्थर से मारने पर तप्तकृच्छ्र और शस्त्र से मारने पर अतिकृच्छ्र करे ।

पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः ।
तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥२३॥

सांतपन में पांच गायें, प्राजापत्य में तीन, तप्तकृच्छ्र में आठ और अतिकृच्छ्र में तेरह गायें (दान के लिये) होती हैं ।

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ।
तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥२४॥

(पशु आदि) प्राणियों की हत्या करने पर हत्यारा (मृत पशु का) प्रतिरूपक (मृत पशु जैसा दूसरा पशु) उसके स्वामी को दे, या उसके अनुरूप मूल्य दे, ऐसा मनु ने कहा है ।

अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने दोहने तथा ।
सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥२५॥

अङ्क लगाने और चिह्न बनाने को छोड़कर (बैल को) हल गाड़ी आदि में चलाने तथा (गऊ को) दोहने में और रक्षा के लिये सायं काल रोकने और बांधने में मनुष्य दोष को प्राप्त नहीं होता ।

अतिदोहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ।
नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२६॥

(गऊ को) उचित मात्रा से अधिक दोहने में और (बैल को) उचित मात्रा से अधिक हल-गाड़ी आदि में चलाने मे, तथा (नाथ डालने के लिये) नासिका-भेदन में, नदी मे और पर्वत पर चलाने में (ब्राह्मण) मनुष्य के लिये प्रायश्चित्त का निर्देश करे ।

अतिदोहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।
नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२७॥

(गऊ को) उचित मात्रा से अधिक दोहने में एक चौथाई प्रायश्चित्त, (बैल को) उचित मात्रा से अधिक हल गाड़ी आदि में चलाने में आधा प्रायश्चित्त और निपातन (मार-डालने) मे सम्पूर्ण प्रायश्चित्त करे ।

दहनाच्च विपद्येत अबद्धो वापि यन्त्रितः ।
उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥२८॥

यदि जलाने से अथवा बिना बांधे वश में करने से (गऊ आदि पशु) मर जाए, तो पराशर के द्वारा जो एक-चौथाई प्रायश्चित्त कहा गया है, उसे विधि के अनुसार करे ।

रोधनं बन्धनं चैव भारः प्रहरणन्तथा ।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि वधस्य षट् ॥२९॥

रोधन, बन्धन, भार तथा प्रहार, पशुओं को दुर्गम स्थान में हांक देना और जोत—ये वध के छः निमित्त हैं ।

बन्धपाशसुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः ।
भवने तस्य पापं स्यात् पश्चात्तापार्द्धमर्हति ॥३०॥

यदि घर में बन्ध, पाश आदि के द्वारा भली प्रकार सुरक्षित शरीर वाला गऊ आदि पशु (बन्ध, पाश, आदि के कारण ही) मर जाता है, तो उस के घर में पाप लगता है और वह आधे पश्चात्ताप का भागी होता है ।

न नारिकेलैर्न च शाणबालै-
र्न चापि मौञ्जेन वल्कशृङ्खलैः ।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया
बद्ध्वा तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३१॥

न नारियल (से बनी रस्सियों) से, न सन और बालों की रस्सियों से, और न ही मूञ्ज की रस्सी से, और न छाल और जंजीरों से गउओं को बांधे यदि बांधे तो (आवश्यकता पड़ने पर उन्हें काटने के लिये) कुल्हाड़ा लेकर खड़ा रहे ।

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् गोपशुं दक्षिणामुखम् ।
पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३२॥

गऊ-बैल आदि पशुओं को दक्षिण की ओर मुख करके कुश और काश से बनी रस्सियों से बांधे । ऐसा करने पर यदि फाँसी लग जाए, अथवा वे आग से जल जाएँ तो प्रायश्चित नहीं होता ।

यदि तत्र भवेत् काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥३३॥

यदि वहां (फांसी लगने अथवा आग से जलने की) घटना हो जाए तो प्रायश्चित्त कैसे हो (वह मै बताता हू)—पवित्र करने वाली देवी (गायत्री) का जप करके मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है ।

प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३४॥

यदि वह उनको कूएँ, बावली आदि में हाँक दे, अथवा काटे जाते हुए वृक्षों के नीचे डाल दे, अथवा गो-भक्षियों के पास बेच दे तो गो-वध (के पाप) को प्राप्त होता है ।

आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूपसङ्कटे ॥३५॥

कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः ।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादांस्तु समाचरेत् ॥३६॥

सेवा किया गया जो कोई (बैल) जब अपनी कांख तुड़वा ले, उसके कान अथवा हृदय पर चोट लग जाए, अथवा कूएं या सकरे स्थान में गिर पड़े, और कूएं आदि से निकलते समय उसको गरदन, पांव आदि पर चोट लग जाए और वह वहीं मर जाए, तो तीन-चौथाई प्रायश्चित्त करे ।

कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ।
पानीयेषु विपन्नाना प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३७॥

कूएं-खड्डे आदि में, नदी के किनारे पर बांधने से, नदी में बांधने से, और प्याऊ आदि जल के स्थानों में मरने वाले पशुओं के लिये, प्रायश्चित्त नहीं होता ।

कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च ।
स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३८॥

कूआं खोदने में, किनारा खोदने में, तथा बड़ा तालाब आदि खोदने में, एव धर्म कृत्यों के लिये छोटे गड्ढे खोदने में (मरने वाले बैल आदि का) प्रायश्चित्त नहीं होता ।

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत् ॥३९॥

घर के द्वार पर और घरों में जो मनुष्य गड्ढा बनाता है, और यदि उसमें गऊ गिरकर मर जाए तो, वह अपने कार्य के लिये घर में बनाए गए गड्ढों के विषय में प्रायश्चित्त करे ।

निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०॥

रात्रि के समय (सुरक्षा के लिये) बांधने और रोकने से, सर्प अथवा बाघ के द्वारा मार दिये जाने पर, तथा अग्नि और बिजली से नष्ट हुए (पशुओं) का प्रायश्चित्त नहीं होता ।

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभङ्गनिपातने ।
अतिवृष्टिहतानाञ्च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४१॥

बाण-समूह से गांव का विनाश हो जाने पर, घर गिर जाने के कारण मर जाने पर, और अति-वृष्टि के कारण मरने वाले पशुओं का प्रायश्चित्त नहीं होता ।

संग्रामे प्रहतानाञ्च ये दग्धा वेश्मकेषु च ।
दावाग्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।४२।।

युद्ध में मरे हुओं का, और जो घरों के अन्दर जल गए हैं, अथवा जो जंगल की आग या ग्राम-विनाश में नष्ट हो गए हैं—उनका प्रायश्चित्त नहीं होता ।

यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ।
यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।४३।।

चिकित्सा के लिये, मरे हुए गर्भ को निकालने में यदि गऊ को जकड़ा गया है, और वह यत्न करने पर भी मर जाए, तो प्रायश्चित्त नहीं होता ।

व्यापन्नानां बहूनाञ्च बन्धने रोधनेऽपि वा ।
भिषग्मिथ्योपचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।४४।।

बांधने अथवा रोकने में जब बहुत से पशुओं का विनाश हो जाए, और जब वैद्य के द्वारा गलत उपचार करने पर हत्या हो जाए, तो प्रायश्चित्त का विधान करे ।

गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जना. ।
न वारयन्ति तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ।।४५।।

गायों और बैलों की विपत्ति में जितने भी मनुष्य प्रेक्षक हो, और वे उस (विपत्ति) का निवारण न करे, तो उन सब को पाप लगता है ।

एको हतो यैर्बहुभिः समेतै-
र्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिधानात् ।
दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता
निवर्त्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ।।४६।।

जिन बहुतों के द्वारा मिलकर एक (बैल) को मार दिया जाए और जिस के द्वारा मारा गाया है, उस के नाम का पता न चले, तो राजा के द्वारा नियुक्त (कर्मचारियों) को चाहिये कि दिव्य[1] के द्वारा उनमें से घातक का पता लगाकर (दण्डित कर) उसे आगे ऐसा करने से रोके ।

---

१. याज्ञवल्क्य-स्मृति के अनुसार तुला, अग्नि, जल, विष और कोश ये पांच दिव्य हैं । बृहस्पति-स्मृति में घट, अग्नि, जल, विष, कोश, तण्डुल और तप्त-माष ये सात दिव्य बताए गए हैं ।

एका चेद्बहुभिः क्वापि दैवाद् व्यापादिता भवेत् ।
पादं पादञ्च हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥४७॥

यदि कोई एक गाय दुर्दैव से बहुतों के द्वारा मार दी जाए, तो उन में से प्रत्येक पृथक्-पृथक् हत्या का एक चौथाई प्रायश्चित्त करे ।

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत् ।
लाला भवति दृष्टे तु एवमन्वेषणं भवेत् ॥४८॥

(गऊ आदि के) मरने पर खून देखना चाहिये (कि किसके कपड़ों को लगा है) । (मारने वाला चिन्ता के कारण) व्याधिग्रस्त और दुबला हो जाता है । देखे जाने पर उसकी लार टपकने लगती है । इस प्रकार (हत्यारे को) खोजा जाता है ।

मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ।
प्रायश्चित्तन्तु तेनोक्त गोघ्नः चान्द्रायणं चरेत् ॥४९॥

अकेले सब शास्त्रों को जानने वाले उस मनु के द्वारा इस प्रकार प्रायश्चित्त का विधान किया गया है, कि गो-घातक चान्द्रायण व्रत करे ।

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं गोव्रत चरेत् ।
द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥५०॥

केशों को (मुण्डन से) बचाने के लिये दुगुना गो-व्रत करे । दुगुने गो-व्रत का आदेश होने पर दक्षिणा भी दुगुनी हो जाती है ।

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ।
अकृत्वा वपनं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥५१॥

राजा अथवा राजकुमार अथवा विद्वान् ब्राह्मण उसका मुण्डन न कराकर उसे प्रायश्चित्त का आदेश दे ।

यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ।
तत्पापं तस्य तिष्ठेत वक्ता च नरकं व्रजेत् ॥५२॥

जिसने दुगुना दान न दिया और केशों का मुण्डन भी न कराया, उसका वह पाप टिका रहता है, और प्रायश्चित्त का आदेश देने वाला नरक में जाता है ।

यत्किञ्चित् क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ।
सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ॥५३॥

जो कुछ पाप किया जाता है, वह सारे केशों में टिक जाता है। (इस लिये) सब केशों को ऊपर उठाकर उन्हें दो अंगुल तक कटवा दे।

एवं नारीकुमारीणा शिरसो मुण्डन स्मृतम् ।
न स्त्रियाः केशवपनं न दूरे शयनाशनम् ॥५४॥

कुमारी नारियों के सिर का मुण्डन इसी प्रकार बताया गया है। (विवाहित) स्त्री के सिर का मुण्डन और (पति से) दूर शयन और भोजन नहीं कहा गया है।

न च गोष्ठे वसेद्रात्री न दिवा गा अनुव्रजेत् ।
नदीषु सङ्गमे चैव अरण्येषु विशेषत. ॥५५॥

(स्त्री) रात को गायो के बाड़े (गो-वाट) में न रहे और दिन मे गउओं के पीछे न जाए, विशेष रूप से नदियों पर, उनके सङ्गम में और वनो में न जाए।

न स्त्रीणामजिन वासो व्रतमेवं समाचरेत् ।
त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्च्चनं तथा ॥५६॥

स्त्रियों के लिये मृगछाला वस्त्र के रूप में विहित नहीं है। वह इस प्रकार व्रत करे। उसके लिये तीन समय स्नान और देवताओं की अर्चना बताई गई है।

बन्धुमध्ये व्रत तासां कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम् ।
गृहेषु नियतं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥५७॥

उनका कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत बन्धुओं के मध्य में होना चाहिये। वह निश्चित रूप से घर में रहे और पवित्र होकर नियम का पालन करे।

इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ।
स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥५८॥

जो मनुष्य इस लोक में गो-हत्या करके उसे छुपाना चाहता है, वह निस्सन्देह कालसूत्र नामक घोर नरक मे जाता है।

विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ।
क्लीबो दुःखी च कुष्ठो च सप्त जन्मानि वै नरः ॥५९॥

उस नरक से छूटकर वह मनुष्य मर्त्य-लोक में उत्पन्न होता है, और सात जन्मों तक नपुंसक, दुःखी और कुष्ठी बनकर रहता है।

तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ।
स्त्रीबालभृत्यगोविप्रेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥६०॥

इस लिये मनुष्य अपने पाप का प्रकाशन करे, अपने धर्म का निरन्तर पालन करे । स्त्रियों, बच्चों, सेवकों, गउओं और ब्राह्मणों के प्रति अति क्रोध को त्याग दे ।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

अगम्यागमनप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

चातुर्वर्ण्यस्य सर्वत्र हीयं प्रोक्ता तु निष्कृतिः ।
अगम्यागमने चैव शुद्धौ चान्द्रायणञ्चरेत् ॥१॥

सब शास्त्रों में चारों वर्णों के लिये यही निष्कृति बताई गई है, कि गमन के अयोग्य स्त्री से गमन करके शुद्धि के निमित्त चान्द्रायण व्रत करे ।

एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ।
अमावास्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः ॥२॥

कृष्ण-पक्ष में एक-एक ग्रास (पिण्ड) को कम करता जाए, शुक्ल-पक्ष में बढ़ाता जाए, अमावस्या को भोजन न करे, यह चान्द्रायण की विधि है ।

कुक्कुटाण्डप्रमाणन्तु ग्रासञ्च परिकल्पयेत् ।
अन्यथा भावदुष्टस्य न धर्मो नैव शुध्यति ॥३॥

मुरगी के अण्डे के परिमाण के ग्रास बनाए । अन्यथा करने वाले, दुष्ट विचारों वाले मनुष्य को न तो धर्म की प्राप्ति होती है, और न वह शुद्ध होता है ।

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
गोद्वयं वस्त्रयुग्मञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥४॥

प्रायश्चित्त करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराए । दो गउएं और वस्त्रों का एक जोड़ा ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे ।

चाण्डालीञ्च श्वपाकीञ्च ह्यभिगच्छति यो द्विजः ।
त्रिरात्रमुपवासी स्याद्विप्राणामनुशासनात् ॥५॥

जो द्विज चाण्डाली और श्वपाकी से भोग करता है, वह ब्राह्मणों की आज्ञा से तीन दिन तक उपवास करे ।

सशिखं वपनं कुर्यात् प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ।
ब्रह्मकूर्च्चं तत कृत्वा कुर्य्याद् ब्राह्मणतर्पणम् ॥६॥

शिखासहित मुण्डन कराए, तीन प्राजापत्य व्रत करे, उसके पश्चात ब्रह्म-कूर्च (एक विशेष प्रकार का व्रत जिसमे पञ्चगव्य का भक्षण किया जाता है) करके ब्राह्मणों को (भोजन से) तृप्त करे ।

गायत्रीञ्च जपेन्नित्यं दद्याद् गोमिथुनद्वयम् ।
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥७॥

नित्य गायत्री का जप करे, दो जोड़ी बैल दान में दे, ब्राह्मण को दक्षिणा दे, इस प्रकार निस्सन्देह वह शुद्धि को प्राप्त होता है ।

क्षत्रियश्चापि वैश्यो वा चाण्डालीं गच्छतो यदि ।
प्राजापत्यद्वयं कुर्य्याद्दद्याद् गोमिथुनन्तथा ॥८॥

यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य चाण्डाली से सभोग करे तो वह दो प्राजापत्य व्रत करे और उसी प्रकार एक जोड़ी बैल दान करे ।

श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वै यदि गच्छति ।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं दद्याद् गोमिथुनन्तथा ॥९॥

यदि शूद्र श्वपाकी अथवा चाण्डाली से संभोग करता है तो वह एक प्राजापत्य कृच्छ्र करे, तथा एक जोड़ी बैल दान में दे ।

मातरं यदि गच्छेत भगिनीं पुत्रिकान्तथा ।
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीन् कृच्छ्रांस्तु समाचरेत् ॥१०॥
चान्द्रायणत्रयं कुर्य्याच्छिश्नच्छेदेन शुध्यति ।
मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेढ्रनिकृन्तनम् ॥११॥

यदि माता, बहन अथवा पुत्रिका से संभोग करे, तो इन से अज्ञान-वश सभोग करने वाला मनुष्य तीन कृच्छ्र करे, तीन चान्द्रायण करे, और शिश्न कटवा कर शुद्ध होता है । माता की बहन (मासी) के साथ संभोग करके अपना लिङ्ग कटवा डालना ही प्रायश्चित्त है ।

अज्ञानात्तान्तु यो गच्छेत् कुर्य्याच्चान्द्रायणद्वयम् ।
दशगोमिथुनन्दद्याच्छुद्धिः पराशरोऽब्रवीत् ॥१२॥

अनजाने में जो सभोग करे, वह दो चान्द्रायण व्रत करे। दस जोड़ी बैल दान करे, यही शुद्धि है, ऐसा पराशर ने कहा है।

पितृदारान् समारुह्य मातुराप्ताञ्च भ्रातृजाम् ।
गुरुपत्नीं स्नुषाञ्चैव भ्रातृभार्य्यां तथैव च ॥१३॥
मातुलानीं सगोत्राञ्च प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ।
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा शुध्यते नात्र संशयः ॥१४॥

पिता की (माता से अन्य) पत्नी, माता की सहेली, भतीजी, गुरु-पत्नी, पुत्र-वधू, भावज, मामी और अपने गोत्र की स्त्री से संभोग करके तीन प्राजापत्य करे और दो गाएं दक्षिणा में देकर शुद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं है।

पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रीकपीस्तथा ।
खरीञ्च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥१५॥

पशु वेश्या आदि से सभोग करके, तथा भैंस, ऊँटनी और बन्दरिया से एवं गधी और सूअरी से संभोग करके प्राजापत्य करे।

गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददत् ।
महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुध्यति ॥१६॥

गऊ से सभोग करने वाला तीन रात का व्रत करके ब्राह्मण को एक गऊ का दान करके, और भैंस, ऊँटनी और गधी से संभोग करने वाला एक दिन-रात के व्रत से शुद्ध होता है

डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ।
बन्दिग्राहे भयार्त्ते वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥१७॥

विप्लव में, युद्ध के समय में, अकाल में, जन-संहार के समय में, बन्दी बनाए जाने के समय में अथवा आतंक-काल में सदा अपनी स्त्री की देख-भाल करे।

चाण्डालैः सह सम्पर्कं या नारी कुरुते ततः ।
विप्रान् दश वरान् गत्वा स्वकं दोषं प्रकाशयेत् ॥१८॥

जो नारी चाण्डालों के साथ सम्पर्क करती है, तो वह दस उत्तम ब्राह्मणों के पास जाकर अपने दोष का प्रकाशन करे ।

आकण्ठसम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे ।
तत्र स्थित्वा निराहारा त्वेकरात्रेण निष्क्रमेत् ।।१६।।
सशिखं वपन कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ।
त्रिरात्रमुपवासित्वं ह्येकरात्रं जलं वसेत् ।।२०।।

गले तक गहरे, गोबर जल और कीचड़ से भरे हुए गड्ढे में एक रात भर वहां ठहर कर बाहर निकले, चोटी सहित मुण्डन कराकर जौ और भात का भोजन करे, और तीन रात उपवास रखकर एक रात जल में वास करे ।

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रञ्च कुसुमं फलम् ।
सुवर्णं पञ्चगव्यञ्च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् ।।२१।।

शङ्खपुष्पी की टहनी, जड़, पत्तों, फूल, फल, सोना और पञ्चगव्य का जल में काढ़ा बनाकर पिये ।

एकभक्त चरेत् पश्चाद्यावत् पुष्पवती भवेत् ।
व्रतं चरति तद्यावत्तावत् संवसते बहिः ।।२२।।

उसके पश्चात् जब तक वह रजस्वला होवे, तब तक एक समय भात खाए और जब तक उस व्रत का पालन करे तब तक (घर से) बाहर वास करे ।

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिः पराशरोऽब्रवीत् ।।२३।।

प्रायश्चित्त पूरा कर लेने पर ब्राह्मणों को भोजन कराए । दो गउएं दान में दे । यही शुद्धि है, ऐसा पराशर ने कहा है ।

चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रचान्द्रायणं व्रतम् ।
यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ।।२४।।

चारों वर्णों की नारियों के लिये कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत का विधान किया गया है । जैसे भूमि (पवित्र) है, वैसे ही नारी भी (पवित्र) होती है, इस लिये उसे दोष न लगाए ।

बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्ध्वा बलाद्भयात् ।
कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं शुध्येत् पराशरोऽब्रवीत् ।।२५।।

बन्दी बनाकर, मार-पीट कर, बांधकर, बल-पूर्वक अथवा डराकर जिस स्त्री से सभोग किया गया हो, वह सांतपन कृच्छ्र करके शुद्ध होती है, ऐसा पराशर ने कहा है ।

सकृद् भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः ।
प्राजापत्येन शुध्येत ऋतुप्रस्रवणेन तु ।।२६।।

न चाहती हुई भी जिस नारी का पापियों के द्वारा एक बार भोग किया गया हो, वह प्राजापत्य और रज.स्राव से शुद्ध होती है ।

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्य्या सुरां पिबेत् ।
पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।।२७।।

जिस मनुष्य की पत्नी सुरा पी ले तो, उसका आधा शरीर पतित हो जाता है । पतित हुए अर्द्ध शरीर वाले उस पति के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

गायत्री जपमानस्तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।।२८।।

वह गायत्री का जप करता हुआ कृच्छ्र सान्तपन करे ।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्र्युपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ।।२९।।

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशाओं का जल और एक रात का उपवास कृच्छ्र सान्तपन माना गया है ।

जारेण जनयेद् गर्भं गते त्यक्ते मृते पतौ ।
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ।।३०।।

पति के चले जाने पर, छोड़ देने पर अथवा मर जाने पर जो स्त्री जार के द्वारा गर्भ को उत्पन्न करे, उस पतित और पापिन स्त्री को (राजा) देश-निकाला दे दे ।

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा समन्विता ।
सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्यां गमनं पुनः ।।३१।।

जब ब्राह्मणी पर-पुरुष के साथ भाग जाए, तो वह नष्टा (भागी हुई) कही जाती है । उसका पुनरागमन नहीं होता ।

कामान्मोहाद्यदा गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून् सुतान् पतिम् ।
सा तु नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषत. ॥३२॥

जो स्त्री इच्छा से या अज्ञान के कारण बन्धुओं, पुत्रों और पति को छोड़ कर चली जाए, वह परलोक में और विशेष रूप से मनुष्य-लोक में नष्टा (भागी हुई) मानी जाती है ।

मदमोहगता नारी क्रोधाद् दण्डादिताडिता ।
अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥३३॥

मद और मोह को प्राप्त हुई नारी क्रोध के कारण डंडे आदि से पीटी हुई अकेली चली जाए तो उसका पुनरागमन हो सकता है ।

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
दशाहं न त्यजेन्नारीं त्यजेन्नष्टश्रुतां तथा ॥३४॥

गई को दसवां दिन हो जाए तो प्रायश्चित्त नहीं होता (अर्थात् उसका पुनरागमन नहीं हो सकता) । इस लिये नारी दस दिन तक घर से बाहर न रहे । परन्तु अगर वह उसके पश्चात् भी नष्टा सुनी जाए तो उसे त्याग दे ।

भर्त्ता चैकं चरेत् कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बान्धवाः ।
तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुध्यति ॥३५॥

(नारी का) पति एक कृच्छ्र करे, और (पति के) बान्धव आधा कृच्छ्र करें । उन (के घर) का खा और पीकर (मनुष्य) एक दिन-रात का व्रत करके शुद्ध होता है ।

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा विवर्जिता ।
गत्वा पुंसा शतं याति त्यजेयुस्तान्तु गोत्रिणः ॥३६॥

यदि मना करने पर भी ब्राह्मणी पर-पुरुष के साथ चली जाए और जाकर अनेक पुरुषों से सम्पर्क करले तो गोत्र वाले उसका त्याग कर दें ।

पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदशुद्धं गृहं भवेत् ।
पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद् गृहम् ॥३७॥

यदि वह किसी पुरुष के घर में चली जाए, तो वह घर अशुद्ध हो जाता है । जो माता-पिता का घर है वह भी अशुद्ध हो जाता है, क्योंकि वह भी जार का ही घर है ।

उल्लिख्य तद् गृहं पश्चात् पञ्चगव्येन शुध्यति ।
त्यजेन्मृण्मयपात्राणि वस्त्रं काष्ठञ्च शोधयेत् ॥३८॥

उस घर को खुरच कर तत्पश्चात् उसमें पञ्चगव्य का छिड़काव करे, मिट्टी से बने पात्रों को त्याग दे, वस्त्रों और काष्ठ (से बनी वस्तुओं) की शुद्धि करे।

सम्भारान् शोधयेत् सर्वान् गोकेशैश्च फलोद्भवान् ।
ताम्राणि पञ्चगव्येन कांस्यानि दश भस्मभिः ॥३९॥

सब सामग्रियों की शुद्धि करे। फलों से बनी सामग्रियों की गऊ के केशों (से बनी चमरी) से शुद्धि करे। तांबे से बने पात्रों की पञ्चगव्य से और कांसी के पात्रों की उन्हें राख से दस बार मांज कर शुद्धि करे।

प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादितम् ।
गोद्वयं दक्षिणां दद्यात् प्राजापत्यं समाचरेत् ॥४०॥

ब्राह्मण ब्राह्मणों के द्वारा निर्दिष्ट प्रायश्चित्त करे। दो गउएं दक्षिणा में दे और दो प्राजापत्य करे।

इतरेषामहोरात्रं पञ्चगव्येन शोधनम् ।
सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥४१॥

अन्य (ब्राह्मणेतर) की दिन-रात के उपवास और पञ्चगव्य से शुद्धि होती है। पुत्रों और भृत्यों के साथ मिलकर ब्राह्मणों को भोजन कराए।

आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम् ।
न दुष्यन्तीह दर्भाश्च यज्ञेषु चमसास्तथा ॥४२॥

आकाश, वायु, अग्नि, भूमि पर पड़ा हुआ पवित्र जल, कुशाएं और यज्ञों में प्रयोग में आने वाले चमस इस संसार में कभी अपवित्र नहीं होते।

उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नानसन्ध्यार्चनादिभिः ।
जपैर्होमैस्तथा दानैः शुध्यन्ते ब्राह्मणाः सदा ॥४३॥

उपवासों से, व्रतों से, पुण्यकर्मों से, स्नान, सन्ध्या, अर्चना आदि से, जपों, होमों तथा दानों से ब्राह्मण सदा शुद्ध होते हैं।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।

।। अथ एकादशोऽध्यायः ।।

अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अमेध्यरेतो गोमासं चाण्डालान्नमथापि वा ।
यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणञ्चरेत् ।।१।।

अपवित्र वस्तु वीर्य आदि, गोमास अथवा चाण्डाल का अन्न यदि ब्राह्मण के द्वारा खा लिया गया है तो वह चान्द्रायण व्रत करे ।

तथैव क्षत्रियो वैश्यस्तदर्द्धन्तु समाचरेत् ।
शूद्रोऽप्येव यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ।।२।।

वैसा ही करने पर क्षत्रिय और वैश्य उससे आधा व्रत करें । इसी प्रकार जब शूद्र इस प्रकार खा लेता है, तो वह प्राजापत्य करे ।

पञ्चगव्य पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्च्चं पिबेद् द्विजः ।
एकद्वित्रिचतुर्गाश्च दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ।।३।।

शूद्र पञ्चगव्य का पान करे, द्विज ब्रह्मकूर्च का पान करे । विप्र आदि क्रमशः एक, दो, तीन और चार गाए दान करे (अर्थात् ब्राह्मण एक, क्षत्रिय दो, वैश्य तीन और शूद्र चार गाए दान करे) ।

शूद्रान्नं सूतकस्यान्नमभोज्यस्यान्नमेव च ।
शङ्कित प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ।।४।।
यदि भुक्तन्तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ।
ज्ञात्वा समाचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्च्चन्तु पावनम् ।।५।।

शूद्र का अन्न, सूतक का अन्न, और अभोज्य (जिसका भोजन निषिद्ध है) का अन्न, शङ्कायुक्त, प्रतिषिद्ध अन्न, तथा उच्छिष्ट अन्न यदि ब्राह्मण के द्वारा अनजाने में अथवा आपत्काल में खा लिया गया है, तो पता लगने पर पश्चात्ताप करे । ब्रह्मकूर्च ही इसका शोधक है ।

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ।
तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुध्यते नात्र संशयः ।।६।।

जब सर्पो, नेवलो और बिलावो के द्वारा अन्न झूठा कर दिया जाए, तो तिलमिश्रित कुशाओ के जल से प्रोक्षण करके शुद्ध हो जाता है, इस में संशय नहीं है ।

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वान्न पञ्चगव्येन शुध्यति ।
क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुध्यति ॥७॥

शूद्र भी अभोज्य अन्न को खाकर पञ्चगव्य से शुद्ध होता है। क्षत्रिय और वैश्य प्राजापत्य से शुद्ध होते हैं।

एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।
यद्येकोऽपि त्यजेत् पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥८॥

सहभोज में एक पंक्ति में बैठे हुए ब्राह्मणों में से यदि एक (ब्राह्मण) भी अपने पात्र का परित्याग करे, तो (कोई भी ब्राह्मण) शेष अन्न को न खाए।

मोहाद्वा लोभतस्तत्र पङ्क्तावुच्छिष्टभोजने ।
प्रायश्चितं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनन्तथा ॥९॥

जो ब्राह्मण अज्ञान अथवा लोभ के कारण उस पङ्क्ति में भोजन करे, तो वह प्रायश्चित्त के लिये कृच्छ्र सांतपन करे।

पीयूषश्वेतलसुनवृन्ताकफलगृञ्जनम् ।
पलाण्डुं वृक्षनिर्य्यासं देवस्वं कवकानि च ॥१०॥
उष्ट्रीक्षीरमविक्षीरमज्ञानाद् भुञ्जति द्विजः ।
त्रिरात्रमुपवासी स्यात् पञ्चगव्येन शुध्यति ॥११॥

खीस, श्वेत लहसुन, बैंगन, गांजा, प्याज, वृक्ष का गोंद, देवता का द्रव्य, कन्वली, ऊंटनी का दूध और भेड़ का दूध—इन का सेवन जो ब्राह्मण अनजाने में करता है, वह तीन रात तक उपवास करे और फिर पञ्चगव्य से शुद्ध होता है।

मण्डूकं भक्षयित्वा च मूषिकामांसमेव च ।
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुध्यति ॥१२॥

मेंढक खाकर और चूहे का मांस खाकर पता लगने पर ब्राह्मण एक दिन-रात यवाहार करके शुद्ध होता है।

क्षत्रियो वापि वैश्यो वा क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ ।
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥१३॥

चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य, यदि वे (पवित्र) क्रियाओं वाले और शुचि व्रत वाले है, तो ब्राह्मणों को नित्य ही हव्य (यज्ञों) और कव्य (श्राद्धों) में उनके घरों में भोजन करना चाहिये।

घृत तैल तथा क्षीर गुड तैलेन पाचितम् ।
गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम् ॥१४॥

घी, तेल तथा दूध, एवं तेल से पकाए हुए गुड़ के पकवान—शूद्र के ऐसे भोजन को ब्राह्मण नदी के तट पर जाकर खा सकता है।

मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्त्तकम् ।
तं शूद्रं वर्जयेद् विप्र. श्वपाकमिव दूरतः ॥१५॥

जो नित्य ही मद्य और मांस में रत है और जो नीच कर्मों को बढ़ावा देने वाला है, उस ऐसे शूद्र को ब्राह्मण श्वपच की तरह दूर से ही त्याग दे।

द्विजशुश्रूषणरतान् मद्यमांसविवर्जितान् ।
स्वकर्मनिरतान् नित्य तांश्छूद्रान् न त्यजेद् द्विजः ॥१६॥

जो द्विजों की सेवा में रत है, मद्य और मांस के सेवन से परे है, अपने कर्म मे लीन है, ऐसे उन शूद्रों का द्विज कभी परित्याग न करे।

अज्ञानाद् भुञ्जते विप्रा सूतके मृतकेऽपि वा ।
प्रायश्चित्त कथ तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥१७॥

यदि ब्राह्मण सूतक अथवा मृतक मे अनजाने में भोजन कर ले, तो प्रत्येक वर्ण में उनका प्रायश्चित्त कैसे निश्चित हो (वह मैं बताता हू)।

गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्ध. स्याच्छूद्रसूतके ।
वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥१८॥

शूद्र के सूतक में (भोजन करने वाले ब्राह्मण की) आठ हज़ार गायत्री-मन्त्र के जप से शुद्धि होती है, वैश्य के सूतक मे पांच हज़ार से और क्षत्रिय के सूतक में भोजन करने पर तीन हजार गायत्री मन्त्र के जप से शुद्धि होती है।

ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते प्राणायामेन शुध्यति ।
अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुध्यति ॥१९॥

जब ब्राह्मण के सूतक में (विप्र) भोजन करता है तो प्राणायाम (मात्र) से शुद्ध हो जाता है, अथवा एक वामदेव्य साम से शुद्ध हो जाता है।

शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम् ।
पक्वं विप्रगृहे पूतं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥२०॥

शूद्र के घर से आए हुए सूखे अन्न, दूध और घी-तेल आदि चिकने पदार्थ को यदि ब्राह्मण के घर में पकाया गया है तो वह पवित्र और भोजन के योग्य है, ऐसा मनु का कथन है ।

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥२१॥

यदि आपत्काल में विप्र के द्वारा शूद्र के घर में भोजन कर लिया जाए तो वह मन में पश्चात्ताप करने से शुद्ध हो जाता है, अथवा द्रुपदा मन्त्र का सौ बार जप करे ।

दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥२२॥

दास, नाई, गवाला, कुल-मित्र और आधे का साझी किसान—ये शूद्रों में परिगणित होते हुए भी भोजन के योग्य अन्न वाले हैं, और जो अपने आप को समर्पित कर दे (उसका अन्न भी भोजन के योग्य है) ।

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ।
संस्कृतस्तु भवेद्दासो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः ॥२३॥

शूद्र-कन्या से ब्राह्मण के द्वारा उत्पन्न किया हुआ और संस्कार किया हुआ मनुष्य—यदि उसके संस्कार किये गए हैं तो वह दास होता है, और संस्कारों के बिना वह नाई होता है ।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ।
स गोपाल इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२४॥

क्षत्रिय से शूद्रकन्या में उत्पन्न जो पुत्र होता है, वह गवाला जाना जाता है । ब्राह्मणों के द्वारा उसके घर में निःशङ्क भोजन किया जा सकता है ।

वैश्यकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ।
आर्द्धिकश्च स तु ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२५॥

ब्राह्मण के द्वारा वैश्य-कन्या से उत्पन्न किया हुआ और संस्कार किया हुआ पुत्र आर्द्धिक (अर्द्ध-सीरी) जाना जाता है, और ब्राह्मणों के द्वारा उसके घर में निश्शङ्क भोजन किया जा सकता है ।

भाण्डस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ।
अकामतस्तु यो भुङ्क्ते प्रायश्चित्तं कथ भवेत् ॥२६॥

अभोज्यों(जिनके घर में भोजन करना शास्त्र-सङ्गत नहीं है)के पात्र में पड़े हुए जल, दही, घी और दूध को जो मनुष्य विना चाहे भी खा ले तो उसका प्रायश्चित्त कैसे हो (सो बताता हूं)।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्युपसर्पति ।
ब्रह्मकूर्च्चोपवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥२७॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, इन में से जो भी ऐसा भोजन करने के लिये पहुंचता है, तो इन में से यज्ञ के अधिकारी वर्णों का ब्रह्मकूर्च और उपवास से प्रायश्चित्त हो जाता है।

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ।
ब्रह्मकूर्च्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥२८॥

शूद्रों का उपवास नही होता, शूद्र दान से शुद्ध होता है। एक दिन-रात भर सेवन किया हुआ ब्रह्मकूर्च श्वपाक को भी शुद्ध कर देता है।

गोमूत्रं गोमयं क्षीर दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम् ॥२९॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशाओं का जल, पापों का नाश करने वाला यह पवित्र पञ्चगव्य कहा गया है।

गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत् ।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥३०॥
कपिलाया घृत ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा ।

काले वर्ण वाली गाय का मूत्र श्वेत वर्ण वाली का गोबर, ताँबे के वर्ण वाली का दूध और लाल वर्ण वाली गऊ का दही ले। पीले वर्ण वाली का घी लेना चाहिये, अथवा सभी पदार्थ कपिला गऊ के ही हों।

गोमूत्रस्य पलं दद्याद्दध्नस्त्रिपलमुच्यते ॥३१॥
आज्यस्यैकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धन्तु गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम् ॥३२॥

एक पल (आठ तोला) गोमूत्र डाले, तीन पल दही बताई गई है, एक पल घी डाले और आधा अंगूठा भर गोबर (मिलाए)। सात पाल दूध डाले, और एक पल कुशोदक मिलाए।

गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥३३॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥३४॥
आपो हि ष्ठेति चालोड्य मा नस्तोकेति मन्त्रयेत्।

गायत्री मन्त्र (ऋ० ३.६२.१०) से गोमूत्र को लेकर, गन्धद्वारां (ऋ.ख. ५ ८७.९) मन्त्र से गोबर को लेकर, आ प्यायस्व समेतु ते (ऋ० १.९१.१६) मन्त्र से दूध को लेकर, दधिक्राव्णो अकारिषम् (ऋ० ४.३९.६) मन्त्र से दही को लेकर, तेजोऽसि शुक्रम् (वा० स० २२.१) मन्त्र से घृत को लेकर और देवस्य त्वा सवितुः (वा० स० १.२४) मन्त्र से कुशोदक को लेकर ऋचाओं से पवित्र पञ्चगव्य को अग्नि के निकट स्थापित करे। आपो हि ष्ठा मयोभुवः (ऋ० १०.९.१) मन्त्र से (उस पञ्चगव्य का) आलोडन करके और मा नस्तोके तनये (ऋ० १.११४.८) मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे।

सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ॥३५॥
एभिरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि।

बिना कटे अग्र भागवाली, तोते के समान (हरी) आभा वाली कम से कम जो सात कुशाएं हैं उनसे पञ्चगव्य को उठाकर यथाविधि होम करना चाहिये।

इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥३६॥
एतैरुद्धृत्य होतव्यं हुतशेषं स्वयं पिबेत्।

इरावती (ऋ० ७ ९९.३) इस मन्त्र से, इद विष्णुर्वि चक्रमे (ऋ० १.२२.१७) इस मन्त्र से, मा नस्तोके तनये (ऋ० १.११४.८), शं न इन्द्राग्नी (ऋ० ७.३५.१) आदि शंवती कहलाने वाली ऋचाओं से—इनसे उठाकर हवन करना चाहिये, और हवन करने से जो शेष बचे उसे स्वयं पिये।

आलोड्य प्रणवेनैव निर्म्मथ्य प्रणवेन तु।
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु ॥३७॥

प्रणव (ओम्) के उच्चारण द्वारा ही मिलाकर, प्रणव के द्वारा ही बिलोकर, प्रणव के द्वारा ही उठाकर, और प्रणव के उच्चारण के द्वारा ही उसे पिये।

यत्त्वगस्थिगतं पाप देहे तिष्ठति देहिनाम्।
ब्रह्मकूर्चो दहेत् सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ॥३८॥

शरीरधारियों के शरीर में जो पाप चमड़ी और हड्डियों में प्रवेश करके स्थित है, उस सारे को ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला देता है, जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जला देती है।

पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम्।
वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः।
दध्नि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥३९॥

तीनों लोकों में पवित्र करने वाले पञ्चगव्य मे देवताओं का निवास है। गो-मूत्र में वरुण निवास करता है, गोबर में अग्नि निवास करता है, दही में वायु बताया गया है, दूध मे चन्द्रमा, और घृत में सूर्य।

पिबतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम्।
अपेयं तद्विजानीयाद् भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥४०॥

पीते हुए के मुख से निकला हुआ जल यदि जलपात्र में गिर गया हो तो उस जल को पीने के अयोग्य जानना चाहिये। यदि पी ले तो चान्द्रायण व्रत करे।

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम्।
अस्थि चर्म्मादि पतितं पीत्वामेध्या अपो द्विजः ॥४१॥

कूएं में पड़े हुए कुत्ते, गीदड और बन्दर को देखकर, और हड्डी, चर्म आदि को पड़ा हुआ देखकर यदि ब्राह्मण उन अपवित्र जलों को पीले (तो अधोलिखित प्रकार से प्रायश्चित्त करे)।

नारन्तु कूपे काकञ्च विड्वराहखरोष्ट्रकम्।
गावयं सौप्रतीकञ्च मायूर खाड्गकं तथा ॥४२॥
वैयाघ्रमार्क्षं सैंह वा कुणपं यदि मज्जति।
तडागस्याथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदक यदि ॥४३॥
प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः।

यदि कुए में मनुष्य का, कौए का, घरेलू सूअर, गधे और ऊँट का, नील गाय का, हाथी का, मोर का तथा गेंडे का, बाघ, रीछ अथवा शेर का

शव डूबा हो और यदि उसका जल पी लिया जाए, अथवा यदि इसी प्रकार से अपवित्र हुए तालाब का जल पी लिया जाए तो सर्वथा इस प्रकार से मनुष्य का प्रायश्चित्त होता है।

विप्रः शुध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ।
एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुध्यति ॥४४॥

विप्र तीन रात्रियों में (व्रत करने से) शुद्ध होता है, क्षत्रिय दो दिन में, वैश्य एक दिन में और शूद्र एक रात में शुद्ध होता है।

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ।
अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४५॥

दूसरों के लिये जो भोजन नहीं पकाता, जो दूसरों के द्वारा पकाए हुए भोजन में लीन रहता है, और जो अपच है—इन (तीनों) के भोजन को खाकर द्विज चान्द्रायण व्रत करे।

अपचस्य च यद्दानं दातुश्चास्य कुतः फलम् ।
दाता प्रतिग्रहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥४६॥

अपच को जो दान दिया जाता है, उसके देने वाले को फल की प्राप्ति कहां? देने वाला और लेने वाला, वे दोनों नरकगामी होते हैं।

गृहीत्वाग्निं समारोप्य पञ्चयज्ञान्न वर्त्तयेत् ।
परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्त्तितः ॥४७॥

(व्रत) लेकर और अग्नि का आधान करके जो पांच (महा-)यज्ञों को नहीं करता, वह मुनियों के द्वारा परपाक-निवृत्त (देव-पितृ-अतिथि-भूत आदि के लिये न पकाने वाला) कहा गया है।

पञ्चयज्ञं स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति ।
सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतो हि सः ॥४८॥

जो नित्य प्रातः उठकर, स्वयं पांच (महा-)यज्ञों को करके दूसरों के द्वारा पकाए हुए अन्न से जीवित रहता है, वह परपाकरत कहलाता है।

गृहस्थधर्मं यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ।
ऋषिभिर्धर्मतत्वज्ञैरपचः परिकीर्त्तितः ॥४९॥

गृहस्थ धर्म से वर्जित जो ब्राह्मण दान देता है, धर्म के तत्त्व को जानने वाले ऋषियों ने उसे अपच कहा है।

युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ब्राह्मणाः ॥५०॥

प्रत्येक युग में जो धर्म है, और उन धर्मों में जो ब्राह्मण स्थित हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण युग के रूप वाले होते हैं।

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारञ्च गरीयसः।
स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥५१॥

ब्राह्मण को हुङ्कार कर, और अपने से बड़े को 'तू' पुकार कर, स्नान करके, शेष सारा दिन बैठकर उन्हे अभिवादन करके प्रसन्न करे।

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्यवाससा।
विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥५२॥

चाहे तिनके से पीटा हो, चाहे गले मे वस्त्र बांधकर घसीटा हो, चाहे विवाद मे जीता हो, मनुष्य को चाहिये कि ब्राह्मण के पाँव पड़कर उसे प्रसन्न करे।

अवगूर्य्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने।
अतिकृच्छ्रञ्च रुधिरे कृच्छ्रमन्तरशोणिते ॥५३॥

धमका कर एक दिन और रात और धरती पर गिरा देने पर तीन रात व्रत करे। खून निकाल देने पर अतिकृच्छ्र करे, यदि खून घाव के अन्दर ही हो तो कृच्छ्र करे।

नवाहमतिकृच्छ्र स्यात् पाणिपूरान्नभोजनम्।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्. स उच्यते ॥५४॥

नौ दिन तक यदि मुठ्ठी भर अन्न से भोजन किया जाए, तो वह अतिकृच्छ्र होता है। जो तीन रात का उपवास होता है वह कृच्छ्र कहलाता है।

सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते।
शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥५५॥

सभी पापों का सङ्कर (मिश्रण) हो जाने पर (अर्थात् एक साथ उपस्थिति होने पर) एक लाख बार जपी हुई गायत्री परम शुद्धिदायक होती है।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः।

।। अथ द्वादशोऽध्यायः ।।

तत्रादौ पुनः संस्कारादिप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वान्ते वा क्षुरकर्मणि ।
मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ।।१।।

यदि मनुष्य बुरा स्वप्न देखे, अथवा वमन होने पर, उस्तरे से दाढ़ी सिर आदि मुंडने पर, संभोग करने पर और प्रेत के धुएं का स्पर्श होने पर स्नान का ही विधान है ।

अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरां वा पिबते यदि ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ।।२।।

अनजाने में विष्ठा-मूत्र आदि का भक्षण कर लेने पर, अथवा यदि मनुष्य सुरा पी ले, तो द्विजन्मा तीनों वर्ण पुनः संस्कार के योग्य होते हैं ।

अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्य्या व्रतानि च ।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ।।३।।

पुनःसंस्कार कर्म में द्विजों के मृगछाला, मेखला, दण्ड, भैक्षचर्या और व्रत – ये कर्म निवृत्त हो जाते हैं (अर्थात् पुनः नहीं किये जाते) ।

स्त्रीशूद्रस्य तु शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं विधीयते ।
पञ्चगव्यं ततः कृत्वा स्नात्वा पीत्वा विशुध्यति ।।४।।

स्त्री और शूद्र की शुद्धि के लिये, प्राजापत्य व्रत का विधान किया गया है । तत्पश्चात् पञ्चगव्य बनाकर, स्नान करके पीकर शुद्ध होता है ।

जलाग्निपतने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ।
प्रत्यवसितमेतेषां कथं शुद्धिर्विधीयते ।।५।।

जल के द्वारा नित्य अनुष्ठेय क्रिया में बाधा आने पर, घर में आधान की हुई अग्नि के बुझ जाने पर, ग्रहण किये हुए संन्यास का विनाश हो जाने पर, और व्रत के भङ्ग होने पर इन (वर्णों) की शुद्धि कैसे होती है (सो मैं बताता हूं) ।

प्राजापत्यद्वयेनापि तीर्थाभिगमनेन च ।
वृषैकादशदानेन वर्णाः शुध्यन्ति ते त्रयः ।।६।।

दो प्राजापत्य व्रत करने से, तीर्थों पर जाने से और ग्यारह बैल दान करने से वे तीनों वर्ण शुद्ध होते है ।

ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वन गत्वा चतुष्पथम् ।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ॥७॥
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धि स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वञ्च गच्छति ॥८॥

ब्राह्मण की शुद्धि के विषय में बताता हूं—वन में जाकर, चौराहे पर शिखा सहित सिर मुंडवा कर तीन प्राजापत्य व्रत करे । दो गउएं (सम्भवतः एक गऊ और एक वृष) दान में दे । इस प्रकार वह उस पाप से मुक्त हो जाता है, और (पुन) ब्राह्मणत्व को पा लेता है । ऐसा स्वयम्भू के पुत्र मनु का वचन है ।

स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्म वायव्यं दिव्यमेव च ॥९॥

बुद्धिमानों के द्वारा पांच पवित्र स्नान बताए गए हैं—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य ।

आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ।
आपो हि ष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं रजसा स्मृतम् ॥१०॥

भस्म के द्वारा किये गए स्नान को आग्नेय; जल में उतरकर किये गए स्नान को वारुण, आपो हि ष्ठा इत्यादि वेद-मन्त्रों से किये गए स्नान को ब्राह्म और (गऊ के खुरों की) धूलि से किये गए स्नान को वायव्य कहते है ।

यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ।
तत्र स्नाने तु गङ्गायां स्नातो भवति मानवः ॥११॥

वर्षा के समय धूप भी निकली हो, उस वर्षा में जो स्नान किया जाता है वह दिव्य कहलाता है । उसमें स्नान करने पर तो मनुष्य (मानो) गङ्गा में ही स्नान कर लेता है ।

स्नानार्थं विप्रमायान्त देवाः पितृगणैः सह ।
वायुभूता हि गच्छन्ति तृषार्त्ताः सलिलार्थिनः ॥१२॥

प्यासे और जल की इच्छा वाले देवता लोग पितृ गणों के साथ, स्नान के लिये आते हुए ब्राह्मण का वायु का रूप धारण करके अनुसरण करते हैं ।

निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते ।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥१३॥

वस्त्र (धोती) निचोड़ लेने पर वे निराश होकर लौट जाते हैं। इस लिये पितरों का तर्पण किये बिना (अधः-)वस्त्र को न निचोड़े ।

विधुनोति हि यः केशान् स्नातः प्रस्रवतो द्विजः ।
आचामेद्वा जलस्थोऽपि स बाह्यः पितृदैवतैः ॥१४॥

जो द्विज स्नान करके जल टपकते हुए केशों को झड़झड़ाता है, अथवा जल में खड़ा होकर कुल्ला करता है, वह पितरों और देवताओं के द्वारा (उनके लिये की जाने वाली क्रियाओं से) बाहर कर दिया जाता है ।

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा ।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥१५॥

जो सिर अथवा गले को (वस्त्र से) ढककर, लांगड़ अथवा चोटी को खोल कर और यज्ञोपवीत धारण किये बिना आचमन करता है, वह अपवित्र होता है ।

जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्च वहिः स्थले ।
उभे स्पृष्ट्वा समाचान्त उभयत्र शुचिर्भवेत् ॥१६॥

स्थल में स्थित होकर जल में कुल्ला न करे, और जल में स्थित होकर बाहर स्थल में कुल्ला न करे। जो दोनों (जल और थल) का स्पर्श करके कुल्ला करता है (अर्थात् थल में स्थित होकर थल में और जल में स्थित होकर जल मे), वह दोनो ही स्थानों पर पवित्र होता है ।

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रथ्योपसर्पणे ।
आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥१७॥

स्नान करके, (जल आदि) पीकर, छींककर, सोकर, भोजन करके, सड़क पर घूमकर और कपड़े बदलकर आचमन किया हुआ मनुष्य फिर से आचमन करे ।

क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।
पतितानाञ्च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥१८॥

छींकने पर और थूकने पर, दाँतों से झूठ के कण निकालने पर, तथा झूठ बोलने पर और नीचों के साथ वार्तालाप करने पर अपने दाहिने कान का स्पर्श करे ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सोमः सूर्य्योऽनिलस्तथा ।
ते सर्वे ह्यपि तिष्ठन्ति कर्णे विप्रस्य दक्षिणे ॥१९॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सोम, सूर्य तथा वायु—ये सब के सब ब्राह्मण के दाहिने कान में निवास करते हैं।

दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते ।
अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥२०॥

सूर्य की किरणों से पवित्र दिन का स्नान प्रशंसनीय है। राहु के दर्शन (ग्रहण) को छोड़कर रात्रि में किया गया स्नान प्रशंसनीय नहीं है।

मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाधिदेवताः ।
सर्वे सोमे विलीयन्ते तस्मात् स्नानन्तु तद्ग्रहे ॥२१॥

(उनंचास) मरुत, (आठ) वसु, (ग्यारह) रुद्र, (बारह) आदित्य और अन्य देवता सब (ग्रहण के समय) चन्द्रमा मे विलीन हो जाते है। इस लिये उसका ग्रहण होने पर स्नान का विधान है।

खलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणेषु च ।
शर्वर्य्या दानमेतेषु नान्यत्रेति विनिश्चयः ॥२२॥

खलिहान के यज्ञ में, विवाह में, संक्रान्ति में और (सूर्य-चन्द्रमा के) ग्रहणों में—इन में रात्रि में दान का विधान है, अन्य कहीं नहीं। यह निश्चित है।

पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ॥२३॥

पुत्र के जन्म में, यज्ञ में, मृतक के कर्म में और राहु के दर्शन (अर्थात् ग्रहण) में दान रात्रि में उत्तम माना गया है, और कहीं नही।

महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थप्रहरद्वयम् ।
प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत् ॥२४॥

रात्रि के बीच के दो पहर महानिशा माने जाते हैं। (शेष) दो पहर प्रदोष और पश्चिम याम कहलाते हैं। उनमे दिन की तरह स्नान करे।

चैत्यवृक्षश्चितिस्थश्च चण्डाल सोमविक्रयी ।
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२५॥

चैत्य का वृक्ष, और जो वृक्ष चिता-स्थल पर खड़ा हो, चाण्डाल, और सोम का विक्रय करने वाला—इनका स्पर्श करके ब्राह्मण वस्त्रों सहित जल में प्रवेश (करके स्नान) करे।

अस्थिसञ्चयनात् पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत्।
अन्तर्दशाहे विप्रस्य ह्यूर्ध्वमाचमनं स्मृतम् ॥२६॥

अस्थियों के संचय (अर्थात् फूल चुगने) से पूर्व रोने के पश्चात् स्नान करे। दस दिन तक होने वाली क्रियाओं में ब्राह्मण के लिये क्रिया के पश्चात् आचमन का विधान किया गया है।

सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥२७॥

सूर्य के राहु द्वारा ग्रस लिये जाने पर, तथा चन्द्रमा के ग्रस लिये जाने पर स्नान, दान आदि की क्रियाओं में सारा (अर्थात् साधारण नदी, तालाब आदि का) जल गंगा के जल के समान माना गया है।

कुशपूतन्तु यत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद् द्विजः।
कुशेनोद्धृततोयं यत् सोमपानसमं स्मृतम् ॥२८॥

कुशाओं से पवित्र किये जल से किया हुआ स्नान पवित्र होता है, इस लिये द्विज कुशाओं से पवित्र जल से स्नान करे। कुशाओं से उठाकर जो जल पिया जाता है, वह सोमपान के समान माना गया है।

अग्निकार्य्यात् परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः।
वेदञ्चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥२९॥

जो यज्ञकर्म से परिभ्रष्ट हो गए हैं, जो सन्ध्याकालों में की जाने वाली उपासना से हीन हैं, और जो वेदों का अध्ययन नहीं करते हैं, वे सब के सब वृषल माने गए हैं।

तस्माद् वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः।
अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥३०॥

इस लिये वृषल हो जाने से डरकर द्विज को और विशेष रूप से ब्राह्मण को यदि सारा वेद पढ़ा जाना शक्य न हो, तो उसका एक अंश अवश्य पढ़ना चाहिये।

शूद्रान्नरसपुष्टस्याप्यधीयानस्य नित्यशः।
जपतो जुह्वतो वापि गतिरुक्ता न विद्यते ॥३१॥

नित्य वेद का अध्ययन करने वाले, तथा जप और होम करने वाले, किन्तु शूद्र के अन्न के रस से पुष्ट होने वाले, (द्विज) को उक्त गति प्राप्त नहीं होती।

शूद्रान्न शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२॥

शूद्र का अन्न, शूद्र का सम्पर्क, शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना और शूद्र से ज्ञान प्राप्त करना—ये सब बातें प्रतापी को भी पतित कर देती हैं।

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्य शूद्री च गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥३३॥

जो शूद्री से भोजन पकवाता है और शूद्री को जिसने पत्नी बना रखा है, पितरों और देवों से परित्यक्त वह द्विज रौरव नरक में जाता है।

मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विजः शूद्रान्नभोजने ।
अह तां न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥३४॥

मृतक और सूतक में भोजन करने से पुष्ट हुए अंगों वाले और शूद्र के अन्न का भोजन करने वाले उस द्विज को मैं नहीं जानता, कि वह किस-किस योनि में जाएगा।

गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः ।
श्वयोनौ सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥३५॥

बारह जन्मों तक गीध, दस जन्मो तक सूअर बनेगा, और सात जन्मों तक कुत्ते की योनि में जाएगा-- ऐसा मनु का कथन है।

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥३६॥

दक्षिणा के लिये जो ब्राह्मण शूद्र का होम कराएगा, तो वह ब्राह्मण शूद्र हो जाएगा और शूद्र ब्राह्मण हो जाएगा।

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद् द्विजः ।
भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्न परिवर्जयेत् ॥३७॥

मौन व्रत धारण करके बैठा हुआ द्विज न बोले, और जो भोजन करता हुआ बोलता है, वह उस अन्न को (जिसे वह खा रहा है) त्याग दे।

अर्द्धे भुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन् पात्रे जलं पिबेत् ।
हतं दैवञ्च पित्र्यञ्च आत्मानञ्चोपघातयेत् ।।३८।।

आधा भोजन कर लेने पर जो ब्राह्मण उसी पात्र में जल पी लेता है, उसका देवों और पितरों के प्रति किया हुआ कर्म नष्ट हो जाता है, और वह अपना विनाश कर लेता है ।

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुञ्चति ।
स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ।।३९।।

जो (अन्य) ब्राह्मणों के भोजन करते हुए अपने आगे पात्र को छोड़कर खड़ा हो जाता है, वह मूढ़ और महापापी है, और वह निश्चय से ब्रह्मघाती कहा जाता है ।

भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ।
न देवास्तृप्तिमायान्ति निराशाः पितरस्तथा ।।४०।।

अन्य ब्राह्मणों के भोजन-पात्रों पर स्थित होते हुए (अर्थात् भोजन करते हुए) जो ब्राह्मण पङ्क्ति से उठकर स्वस्ति करने लगते हैं, तो उनके देव तृप्त नहीं होते, तथा पितर निराश हो जाते हैं ।

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेत् ।
पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्त्ती सुबुद्धिमान् ।।४१।।

दया से युक्त, न्याय का बर्ताव करने वाला, उत्तम बुद्धि वाला गृहस्थ पोष्यवर्ग (भार्या, सन्तान, भृत्य आदि) के प्रयोजन की सिद्धि के लिये धर्म का ही नित्य चिन्तन करे ।

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ।
अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वकर्मबहिष्कृत. ।।४२।।

ईमानदारी से कमाए हुए धन से ही अपनी रक्षा करनी चाहिये । जो बेईमानी से जीवन बिताता है, वह सब (करणीय) कर्मों से बाहर हो जाता है ।

अग्निचित् कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ।
दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत्तु नित्यशः ।।४३।।

अग्निचयन (होम) करने वाला, कपिला गऊ, सत्र यज्ञ करने वाला, राजा, भिक्षु और महासागर—ये दर्शन मात्र से पवित्र करने वाले हैं, इस लिये नित्य इनके दर्शन करे ।

अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ।

तिलान् कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ।।४४।।

अरणि, काली बिल्ली, चन्दन, उत्तम मणि, घी, तिल, काले मृग की खाल और बकरी—इन सबको घर में रखे।

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् ।

तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ।।४५।।

जहाँ एक वृष सहित सौ गउएं बिना बांधे खड़ी हो जाएं, यदि उस स्थान को दस गुणा कर दिया जाए, तो वह गोचर्म कहलाता है।

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मजैः ।

एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।४६।।

मन, वचन और शरीर से उत्पन्न होने वाले ब्रह्म-हत्या आदि सब प्रकार के पापों से मनुष्य इस गो-चर्म मात्र भूमि के दान से मुक्त हो जाता है।

कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ।

यद्दानं दीयते तस्मै तदायुर्वृद्धिकारकम् ।।४७।।

कुटुम्ब वाले को, दरिद्र को और विशेष रूप से वेदपाठी ब्राह्मण को—उस ऐसे मनुष्य को जो दान दिया जाता है, वह आयु की वृद्धि करने वाला होता है।

वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेयशतैर्मखैः ।

गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति ।।४८।।

भूमि छीनने वाला मनुष्य बावली, कूएं, तालाब आदि, सौ वाजपेय यज्ञों और एक करोड़ गउओं के दान से भी शुद्ध नहीं होता।

आषोडशदिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्वला ।

अत ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत् ।।४९।।

(स्नान करने के पश्चात्) सोलह दिन से पहले पुनः रजोदर्शन होने पर रजस्वला स्नान ही करे। उसके पश्चात् (यदि रज आ जाए तो) तीन दिन की अशुद्धि होती है—यह उशना ऋषि का कथन है।

युगं युगद्वयञ्चैव त्रियुगञ्च चतुर्युगम् ।

चाण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात् ।।५०।।

चाण्डाल, सूतिका, रजस्वला और पतिता स्त्री के (स्पर्श से द्विज) क्रम से दो दिन, चार दिन, छः दिन और आठ दिन अपवित्र रहता है।

ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वावलोकयेत् सूर्य्यमज्ञानात् स्पृशते यदि ॥५१॥

उनके सांनिध्य मात्र मे रहने से वस्त्रों सहित स्नान करे। यदि अनजाने में उनको छू ले तो स्नान करके सूर्य का दर्शन करे।

वापीकूपतडागेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥५२॥

ज्ञान में दुर्बल ब्राह्मण यदि बावली, कूएं और तालाब में मुख से जल पीता है (अर्थात् जल को अञ्जलि मे लेकर नहीं पीता) वह निश्चय से कुत्ते की योनि में उत्पन्न होता है।

यस्तु क्रुद्धः पुमान् भार्य्या प्रतिज्ञायाप्यगम्यताम् ।
पुनरिच्छति ताङ्गन्तुं विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥५३॥

जो मनुष्य क्रोध में आकर अपनी पत्नी को यह कहे—'तू मेरे लिये अगम्या है', और फिर से उसके पास जाना चाहे, तो वह इस बात की ब्राह्मणों के मध्य घोषणा करे।

श्रान्तः क्रुद्धस्तमोऽन्धो वा क्षुत्पिपासाभयार्द्दितः ।
दानं पुण्यमकृत्वा च प्रायश्चित्त दिनत्रयम् ॥५४॥

थका हुआ, क्रोध मे आया हुआ, अज्ञान के कारण अन्धा बना हुआ तथा भूख, प्यास और भय से पीडित मनुष्य यदि दान और पुण्य न कर पाए तो वह तीन दिन तक (निम्नलिखित) प्रायश्चित्त करे।

उपस्पृशेत् त्रिषवणं महानद्युपसङ्गमे ।
चीर्णान्ते चैव गां दद्याद् ब्राह्मणान् भोजयेद्दश ॥५५॥

वह तीन समय (गङ्गादि) महानदियों के सङ्गम में स्नान करे। व्रत पूरा कर लेने पर गऊ दान में दे और दस ब्राह्मणों को भोजन खिलाए।

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्य्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥५६॥

दुराचारी और निषिद्ध आचरण वाले ब्राह्मण का भोजन खाकर द्विज एक दिन भोजन न करे।

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवादिन ।
भुक्त्वान्नं मुच्यते पापादहोरात्रन्तु वै नरः ।।५७।।

सदाचारी तथा वेदान्तवादी ब्राह्मण के अन्न को खाकर मनुष्य एक दिन-रात में पाप से मुक्त हो जाता है।

ऊद्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरीक्षमृतौ तथा ।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणे तथा ।।५८।।

जो ऊपर (अर्थात् मुख) से उच्छिष्ट हो, जो नीचे (अर्थात् मल-मूत्र के स्थान) से अपवित्र हो, तथा आकाश में मृत्यु होने पर (अर्थात् जिसे मरते समय भूमि पर न उतारा गया हो), और अशौच में मृत्यु होने पर—इन सबके विषय में तीन कृच्छ्र करे।

कृच्छ्रे देव्ययुतञ्चैव प्राणायामशतत्रयम् ।
पुण्यतीर्थे नार्द्रशिरः स्नान द्वादशसंख्यया ।
द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेवं प्रकल्पितम् ।।५९।।

कृच्छ्र मे दस हजार देवी (गायत्री का जप), तीन सौ प्राणायाम, बारह की संख्या में पवित्र तीर्थ मे सिर को गीला किये बिना स्नान और दो योजन की तीर्थ-यात्रा (करनी चाहिये)। इस प्रकार एक कृच्छ्र बनता है।

गृहस्थः कामतः कुर्य्याद्रेतसः सेचन भुवि ।
सहस्रन्तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ।।६०।।

यदि गृहस्थ काम के वश होकर पृथिवी पर वीर्य-पात करे, तो तीन सौ प्राणायामो के साथ (गायत्री) देवी का एक हजार जप करे।

चातुर्वेद्योपपन्नस्तु विधिवद् ब्रह्मघातके ।
समुद्रसेतुगमनप्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।।६१।।

चारों वेदों के ज्ञान से सम्पन्न ब्राह्मण ब्राह्मण की हत्या करने वाले को समुद्र पर बने सेतु (रामेश्वर) पर जाने के प्रायश्चित्त का विधिवत् निर्देश करे।

सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात् समाचरेत् ।
वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानद्विवर्जितः ।।६२।।
अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ।
गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ।।६३।।

वह सेतुबन्ध के मार्ग में छाते और जूतों को त्याग कर, प्रतिषिद्ध कर्म करने वालों के अतिरिक्त चारों वर्णों के लोगो से (इस प्रकार) भिक्षा मांगे— मैं निश्चय से पापकर्म कमाने वाला, महापातकों को करने वाला, ब्रह्मघाती भिक्षा चाहता हुआ आपके घरके द्वार पर खड़ा हूं।

गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च ।
तथा वनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥६४॥

वह गउओं के बाड़ो में, ग्रामों में, नगरो में, वनों में, तीर्थों तथा नदियों और चश्मों पर वास करे।

एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ।
दशयोजनविस्तीर्ण शतयोजनमायतम् ॥६५॥
रामचन्द्रसमादिष्टं नलसञ्चयसञ्चितम् ।
सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६६॥

इन (स्थानों) पर अपने पाप की घोषणा करते हुए वह दस योजन चौड़े और सौ योजन लम्बे पवित्र सागर पर जाकर रामचन्द्र के द्वारा बनाने की आज्ञा दिए हुए और नल के द्वारा (सामग्री के) सञ्चय से बांधे हुए समुद्र के सेतु को देखकर ब्रह्महत्या से मुक्त होता है।

सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ।
यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः ॥६७॥

सेतु को देखकर और पवित्र अन्तःकरण वाला होकर वह सागर में स्नान करे। और यदि वह सार्वभौम राजा है तो अश्वमेध यज्ञ करे।

पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थमुपसर्पति ।
सपुत्रः सह भृत्यैश्च कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥६८॥

फिर लौटकर वह घर में वास के लिये पहुंचे, और (अपने) पुत्रों सहित और भृत्यों के साथ ब्राह्मणों को भोजन खिलाए।

गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्वेद्येषु दक्षिणाम् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥६९॥

चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों को एक सौ एक गउएं दक्षिणा में दे। (इस प्रकार) ब्रह्म-घाती ब्राह्मणों की कृपा से (पाप से) मुक्त हो जाता है।

सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।
मद्यपश्च द्विजः कुर्य्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥७०॥

व्रत में स्थित स्त्री को मारकर ब्रह्महत्या का व्रत करे। मदिरा का सेवन करने वाला ब्राह्मण समुद्रगामिनी नदी पर जाकर यह व्रत करे।

चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्य्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गाञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥७१॥

उसके पश्चात् चान्द्रायण व्रत कर लेने पर ब्राह्मणों को भोजन कराए, और बैल सहित एक गऊ ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में दे।

अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ।
गच्छेन्मुसलमादाय राजाभ्याशं वधाय तु ॥७२॥

यदि कोई ब्राह्मण के सोने को चुरा ले, तो वह स्वयं अपने शारीरिक दण्ड के लिये मूसल लेकर राजा के पास जाए।

ततः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञासौ मुक्त एव च ।
कामकारकृतं यत् स्यान्नान्यथा वधमर्हति ॥७३॥

उसके पश्चात् राजा से (दण्ड पाकर और) मुक्त होकर ही वह शुद्धि को प्राप्त होता है। यदि चोरी जान-बूझ कर की गई है, तो वह अन्य प्रकार से दण्ड का भागी नहीं है।

आसनाच्छयनाद्यानात् सम्भाषात् सहभोजनात् ।
संक्रामन्ति हि पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥७४॥

एक आसन पर बैठने से, एक शय्या पर सोने से, एक यान पर सवारी करने से, आपस मे वार्त्तालाप करने से और एक साथ भोजन करने से पाप जल में तेल की बूंद की तरह, एक से दूसरे के अन्दर संक्रमण कर जाते हैं।

चान्द्रायणं यावकञ्च तुलापुरुष एव च ।
गवाञ्चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥७५॥

चान्द्रायण व्रत, जौ का आहार, पुरुष के भार के बराबर सुवर्ण आदि का दान और गउओं के पीछे-पीछे चरागाह में जाना—ये सब पापों के विनाशक हैं।

एतत् पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम् ।
द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ॥७६॥

पांच सौ बानवे श्लोकों से युक्त पराशरकृत यह शास्त्र धर्मशास्त्र का संग्रह है।

यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ।
अध्येतव्य प्रयत्नेन नियत स्वर्गकामिना ।।७७।।

जैसे वेदाध्ययन के (अन्य) कर्म करणीय हैं, उसी प्रकार स्वर्ग की कामना करने वाले मनुष्य को यह धर्मशास्त्र निश्चित्त रूप से प्रयत्न के साथ पढ़ना चाहिये।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ।।
समाप्ता चेय पराशरसहिता ।।

॥ अथ ॥

॥ व्यासस्मृतिः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ धर्माचरणादेशप्रयुक्तवर्णषोडशसंस्कारवर्णनम् ।

वाराणस्यां सुखासीनं वेदव्यास तपोनिधिम् ।
पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान् वर्णव्यवस्थितान् ॥१॥

मुनियों ने वाराणसी में सुख से बैठे हुए, तप के निधि वेदव्यास के पास जाकर वर्णों में व्यवस्थित धर्म को पूछा ।

स पृष्टः स्मृतिमान् स्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ।
उवाचाथ प्रसन्नात्मा मुनयः श्रूयतामिति ॥२॥

तब वेदों के अर्थ को अपने गर्भ में धारण करने वाली स्मृति का स्मरण करके (मुनियों के द्वारा) प्रश्न किये गए, स्मृतिमान् उस (वेदव्यास) ने प्रसन्नचित्त होकर कहा 'हे मुनियो, सुनो' ।

यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ।
चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितुमर्हति ॥३॥

जहां-जहां कृष्णसार मृग सदा स्वभाव से विचरण करता है, वहीं वेदोक्त धर्म होने के योग्य है ।

श्रुतिस्मृतिपुराणाना विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौत प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥४॥

जहां श्रुति, स्मृति और पुराणों में विरोध दिखाई पड़े, वहां श्रुति का वचन प्रमाण है । (स्मृति और पुराण) इन दोनों में मतभेद होने पर स्मृति अधिक प्रामाणिक है ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु नेतरे ॥५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण द्विजाति (दो-दो जन्मों वाले) कहे जाते है, और श्रुति, स्मृति और पुराणों में वर्णित धर्मों के योग्य है, अन्य (अर्थात् शूद्र) नहीं।

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ।
वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥६॥

चौथा वर्ण शूद्र भी वर्ण होने के कारण, वेद-मन्त्र, स्वधा, स्वाहा और वषट्कार आदि को छोड़कर (अन्य) धर्म का अधिकारी है।

विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् ।
जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥७॥

विवाहिता ब्राह्मण पत्नियों के विषय में (उनके पुत्रों के) जातकर्म आदि संस्कारों को ब्राह्मणों की तरह करे, विवाहिता क्षत्रिय पत्नियों के विषय में क्षत्रियवत् और विवाहिता शूद्र पत्नियों के विषय में शूद्रवत् करे।

वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ।
अधमादुत्तमायान्तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥८॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय से वैश्य पत्नियों में जो पुत्र उत्पन्न हो उनके सस्कार वैश्यवत् और शूद्रपत्नियों में उत्पन्न पुत्रों के सस्कार शूद्रवत् करे। नीच वर्ण के पुरुष से उत्तम वर्ण की स्त्री में उत्पन्न पुत्र नीच शूद्र माना गया है।

ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालो धर्मवर्जितः ।
कुमारीसम्भवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥९॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणी में शूद्र के द्वारा उत्पन्न किया हुआ चाण्डाल होता है और उसका धार्मिक क्रियाओं में अधिकार नहीं होता। चाण्डाल तीन प्रकार का माना गया है—एक कुमारी से उत्पन्न होने वाला, दूसरा सगोत्र से उत्पन्न होने वाला और (तीसरा) ब्राह्मणी में शूद्र के द्वारा उत्पन्न किया हुआ।

वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ॥१०॥
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ।
वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलकाः ॥११॥
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥१२॥

बढ़ई, नाई, ग्वाला, आशाप, कुम्हार, वणिक्, किरात कायस्थ, माली

और कुटुम्बी, वरट, मेद, चण्डाल, मछेरा, श्वपच और कोलक, और जो गउओं का भक्षण करने वाले है—ये सब अन्त्यज (नीच जाति) कहे गए हैं। इनके साथ वार्त्तालाप करके स्नान करे, और इनका दर्शन होने पर सूर्य का दर्शन करे।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ।
नामक्रिया निष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥१३॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥१४॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ।

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न-प्राशन, मुण्डन, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भक्रियाविधि, केशान्त, स्नान, विवाह, अग्निपरिग्रह और त्रेता (दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय) अग्नियों का ग्रहण—ये सोलह संस्कार माने गए हैं।

नव ताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥१५॥
विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश ।

कर्णवेधपर्यन्त स्त्री की ये नौ क्रियाएं बिना मन्त्र के होती हैं। उसका विवाह मन्त्रों के साथ होता है। शूद्र की ये दस क्रियाएं बिना मन्त्रों की होती हैं।

गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥१६॥
सीमन्तश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ।
एकादशेऽह्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥१७॥

सब से पहले (विवाह के पश्चात् प्रथम रजोदर्शन के बाद) गर्भाधान संस्कार होता है। तीसरे मास में पुंसवन होता है। सीमन्तोन्नयन आठवें मास में और (शिशु का) जन्म होने पर जातकर्म होता है। ग्यारहवें दिन नामकरण होता है और चौथे मास में सूर्यदर्शन (निष्क्रमण) होता है।

षष्ठे मास्यन्नमश्नीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ।
कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते ॥१८॥

छठे मास में (बालक) अन्न-प्राशन करे, और कुल-परम्परा के अनुसार उसका चूड़ाकर्म (चोटी रखना, मुण्डन) किया जाए। बालक का चूड़ाकर्म होने के पश्चात् उसका कर्णवेध किया जाए।

विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्त्रमेकादशे तथा ।
द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयनक्रिया ॥१९॥

ब्राह्मण (बालक) गर्भ की स्थिति से आरम्भ करके आठवें वर्ष में, उसी प्रकार क्षत्रिय (बालक) ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य के घर में जन्म लेने वाला बालक बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार के योग्य होता है।

तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद् द्विगुणाधिकः।
वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥२०॥

बालक के उपनयन का समय आजाने पर यदि वह समय दो गुना से अधिक हो जाए, तो वह वेदाध्ययन के व्रत से पतित होकर व्रात्य हो जाता है, और उसे व्रात्यस्तोम यज्ञ करना होता है।

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात् प्रथमं तयोः।
द्वितीयं छन्दसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद् गुरोः ॥२१॥

द्विजातियों के दो जन्म होते हैं, उन दोनों जन्मों में से प्रथम जन्म माता से होता है, दूसरा जन्म गुरु से विधिवत् वेदों की माता (गायत्री) को ग्रहण करने से होता है।

एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्यदोषतः।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥२२॥

इस प्रकार द्विजता को प्राप्त हुआ और अन्य दोषों से मुक्त हुआ (बालक) श्रुति, स्मृति और पुराणों के अध्ययन का अधिकारी हो जाता है।

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः।
बिभृयाद्दण्डकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥२३॥

उपनयन संस्कार किया हुआ बालक सावधान रहकर नित्य गुरुकुल में वास करे, और दण्ड, लंगोट यज्ञोपवीत, मृगचर्म और मेखला को धारण करे।

पुण्येऽह्नि गुर्वनुज्ञातः कृतमन्त्राहुतिक्रियः।
स्मृत्वोङ्कारञ्च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥२४॥

शुभ दिन गुरु से अनुमति लेकर, मन्त्रों के द्वारा अग्नि में आहुतियाँ डालने की क्रिया को करके ओंकार और गायत्री का स्मरण करके वेद को आदि से आरम्भ करे।

शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः।
पठेत गुरुतः सम्यक् कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥२५॥

द्विज (ब्रह्मचारी) शौच और आचार के विचार के लिये गुरु से धर्मशास्त्र को भली प्रकार पढ़े और उसके द्वारा आदिष्ट कर्मों का आचरण करे।

ततोऽभिवाद्य स्थविरान् गुरुञ्चैव समाश्रयेत् ।
स्वाध्यायार्थं तदा यत्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥२६॥
नापक्षिप्तोऽपि भाषेत नो व्रजेत्ताडितोऽपि वा ।

तत्पश्चात् वृद्धों को अभिवादन करके गुरु का ही आश्रय ग्रहण करे, स्वाध्याय के लिये यत्न करे और सदा (गुरु के) हित की चिन्ता करे। तर्जना करने पर भी (गुरु के सम्मुख) न बोले और ताड़ना करने पर वहां से चला न जाए।

विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनञ्चार्कवीक्षणम् ॥२७॥
तौर्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलङ्क्रियाम ।
अञ्जनोद्वर्त्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः ॥२८॥
वृथाटनमसन्तोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ।

ब्रह्मचारी शत्रुता, चुगलखोरी, हिंसा, (व्यर्थ) सूर्य की ओर देखना, नाचना-गाना-बजाना, झूठ बोलना, उन्माद, पर-निन्दा, अलङ्कारण, सुरमा, उबटना, दर्पण, माला, (चन्दन आदि के) लेप, स्त्रियों (के सङ्ग), व्यर्थ में घूमने और असन्तोष को त्याग दे।

ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥२९॥
अलोलुपश्चरेद्भैक्षं व्रतिषूत्तमवृत्तिषु ।
सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥३०॥

दोपहर के थोड़ा ढल जाने पर गुरु से आज्ञा पाकर, लोभ को छोड़कर उत्तम आजीविका वाले व्रतियों से स्वयं भिक्षा मांगे। भिक्षा के अन्न को तुरन्त लेकर वित्त की तरह उसका उपस्पर्श करे।

कृतमाध्याह्निकोऽश्नीयादनुज्ञातो यथाविधि ।
नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वा चाऽऽचामितामियात् ॥३१॥

मध्याह्न में किये जाने वाले धार्मिक कृत्यों को करके गुरु की आज्ञा लेकर विधिपूर्वक उस अन्न को खाए। एक ही मनुष्य के द्वारा दिये हुए (नित्य-प्रति एक ही) अन्न को न खाए, झूठा न खाए, भोजन करके आचमन करे।

नान्यद्भिक्षितमादद्यदापन्नो द्रविणादिकम् ।
अनिन्द्यामन्त्रितः श्राद्धे पैत्र्येऽद्याद् गुरुचोदितः ॥३२॥

विपत्ति में पड़ा हुआ भी अन्य के द्वारा मांगे हुए धन आदि को ग्रहण न

करे (अर्थात् अपने द्वारा मांगी हुई भिक्षा के अन्न को ही खाए)। पितृ-श्राद्ध में अनिन्द्य जन के द्वारा बुलाए जाने पर गुरु के आदेश से भोजन करे।

एकान्नमप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी।
भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा सन्धुक्षणादिकम् ॥३३॥

ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य के) व्रतों का विरोध न होने पर एक के अन्न को भी खाकर और संधुक्षण (अग्निप्रज्वालन) आदि कार्य करके गुरु की सेवा करे।

समिधोऽग्नावादधीत ततः परिचरेद् गुरुम्।
शयीत गुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्च प्रथमं गुरोः ॥३४॥

अग्नि में समिधाएं रखे। उसके पश्चात् गुरु की सेवा करे। पहले गुरु से झुककर अनुमति ले, (फिर) शयन करे।

एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतञ्चरेत्।
हितोपवादः प्रियवाक् सम्यग्गुर्वर्थसाधकः ॥३५॥

इस प्रकार प्रतिदिन (इन क्रियाओं को) दोहराता हुआ ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य के) व्रत का पालन करे। हितकर बोलने वाला, मधुरभाषी और गुरु के कार्यों को भली प्रकार से साधने वाला होवे।

नित्यमाराधयेदेनमासमाप्तेः श्रुतिग्रहात्।
अनेन विधिनाऽधीतो वेदमन्त्रो द्विजं नयेत् ॥३६॥
शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणाञ्च सलोकताम्।
पयोऽमृताभ्या मधुभिः साज्यैः प्रीणन्ति देवताः ॥३७॥

वेद-प्राप्ति की समाप्ति तक इसकी नित्य आराधना करे। इस विधि से पढ़ा हुआ वेद का मन्त्र द्विज को शाप देने और अनुग्रह करने के सामर्थ्य और ऋषियों की सलोकता को प्राप्त करा देता है। देवता लोग दूध, अमृत, मधु और घृतों से प्रसन्न होते है।

तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत्।
यदङ्गं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥३८॥

इस लिये प्रतिदिन, अनध्याय को छोडकर, वेद पढ़े। (वेद के) जो अङ्ग (शिक्षा आदि) है उन्हें अनध्याय में पढ़े। गुरु की आज्ञा का पालन करे।

व्यतिक्रमादसम्पूर्णमनहंकृतिराचरेत्।
परत्रेह च तद् ब्रह्म अनधीतमपि द्विजम ॥३९॥

यदि विघ्न के कारण वह वेद का अध्ययन पूरा न हो पाए तो भी अहंकार-रहित होकर आचरण करता रहे। न पढ़ा हुआ भी वह वेद परलोक और इहलोक में द्विज का हित करता है।

यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतमाचरेत् ।
स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥४०॥

जो (द्विज) उपनयन से लेकर मृत्युपर्यन्त इस व्रत का आचरण करता है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।

उपकुर्वाणको यस्तु द्विजः षड्विंशवार्षिकः ।
केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ॥४१॥
समाप्य वेदान् वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ।
स्नायीत गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥४२॥

छब्बीस वर्ष की अवस्था वाला, यथोक्त विधि से आचरण किये हुए व्रत वाला जो द्विज केशान्त कर्म के साथ वहां (गुरुकुल में) परिश्रम पूर्वक चार या तीन वेदों को, दो वेदों को या एक वेद को पढ़कर गुरु से आज्ञा पाकर, उसके द्वारा कही हुई दक्षिणा उसे देकर स्नान करे, वह उपकुर्वाणक कहलाता है।

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे ब्रह्मचर्याधिकारो नामप्रथमोऽध्याय

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ विवाहविधिवर्णनम् ।

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकाङ्क्षया ।
प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसम्भवाम् ॥१॥

इस प्रकार स्नातकता को प्राप्त हुआ (ब्रह्मचारी) दूसरे आश्रम (गृहस्थाश्रम) में प्रवेश करने की इच्छा से विवाह के लिये निन्दा के अयोग्य वंश में उत्पन्न हुई कन्या की प्रतीक्षा करे।

अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् ।
सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ॥२॥
अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् ।
धृताधोवसनां गौरीं विख्यातदशपूरुषाम् ॥३॥

ख्यातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ।
दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् ।।४।।

(वह ब्रह्मचारी) रोग-रहित और निर्दोष वंश में उत्पन्न हुई, शुल्क लेने के दोष से मुक्त (अर्थात् पिता जिस का मूल्य न चाहता हो), अपने वर्ण की, अपने प्रवर से भिन्न प्रवर वाली, माता और पिता के गोत्र से भिन्न गोत्र वाली, पहिले किसी अन्य के साथ न ब्याही हुई (अर्थात् कँवारी), चुस्त, शुभ लक्षणों से युक्त, अधोवस्त्र को धारण करने वाली, गौर वर्ण वाली, विख्यात दस पूर्वजों वाली, ख्यातनामा पुत्रवान् सदाचारी सज्जन विवाह में देने की इच्छा वाले (पिता) की पुत्री को प्राप्त करके धर्मानुसार उससे विवाह करे ।

ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावेऽपरो विधिः ।
दातव्यैषा सदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ।।५।।

यह कन्या ब्राह्म विवाह की विधि से, और उसके अभाव में (दैव विवाह आदि) अन्य विधि से अवस्था विद्या और कुल में समान वर को दी जानी चाहिये ।

पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु ।
पूर्वाभावे परो दद्यात् सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ।।६।।

पिता, पिता का पिता (अर्थात् पितामह), भाई, चाचा, सम्बन्धी और माता- -इन में से पूर्व व्यक्ति के अभाव में अगला व्यक्ति (कन्या-) दान करे सब के अभाव में (अर्थात् यदि उस का कोई भी न हो) स्वय (पति-गृह में) चली जाए ।

यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत् कुमारिका ।
भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रद. ।।७।।

यदि वह कुमारी कन्या-दान करने की असावधानी के कारण (कन्यादान से पहले) रजस्वला हो जाए तो (विवाह से पूर्व) जितनी बार रजस्वला होगी उतनी ही भ्रूण-हत्याएं मानी जाएँगी, और कन्या का दान न करने वाला व्यक्ति पतित हो जाएगा ।

तुभ्यं दास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीति यस्तयोः ।
कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दण्डभाक् ।।८।।

'मैं तुझे (कन्या) दूंगा', 'मै (कन्या) को ग्रहण करूंगा', इस प्रकार आपस में प्रतिज्ञा करके (दाता और ग्रहीता) दोनों में से जो उसका पालन नहीं करता, वह दण्ड का भागी होता है ।

त्यजन्नदुष्टां दण्ड्यः स्याद् दूषयश्चाप्यदूषिताम् ।
तावन्न दुष्टं दुष्टं च स्वार्थेभ्यो भेदयंश्चतत् ।।९।।

निर्दोष पत्नी को त्यागने वाला पति दण्ड का भागी होता है । और दोषहीन स्त्री पर दोषारोपण करने वाला भी दण्ड का भागी होता है ।

ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुद्वहेत् ।
तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात् प्रहीयते ।।१०।।

अपने वर्ण की स्त्री से विवाह करके अन्य वर्ण की स्त्री से भी यदि चाहे तो विवाह कर सकता है । उस पत्नी में उत्पन्न किया हुआ पुत्र अपने पिता के वर्ण से हीन नहीं होता ।

उद्वहेत् क्षत्रियां विप्रो वैश्याञ्च क्षत्रियो विशाम् ।
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ।।११।।

ब्राह्मण क्षत्रिय-कन्या से और वैश्य-कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय वैश्य-कन्या से विवाह कर सकता है, पर कोई द्विज शूद्र-कन्या से विवाह नहीं कर सकता, और न ही अधम (नीच वर्ण अर्थात् शूद्र) पूर्व वर्णों में उत्पन्न कन्या से विवाह कर सकता है ।

नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी ।
धर्म्या धर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ।।१२।।

विभिन्न वर्णों की पत्नियों में जो अपने वर्ण की है, वह पति की सहचारिणी होती है । पति की अपनी जाति की पत्नियों में जो ज्येष्ठ है और धर्म में निष्ठा रखने वाली है वह धर्मकृत्यों में उसकी धर्म-पत्नी है ।

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेव देहः स्वयम्भुवा ।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ।।१३।।

हे द्विजो ! पूर्व काल में ही यह एक शरीर ब्रह्मा के द्वारा फाड़ डाला गया आधे से पति और आधे से पत्नियों का निर्माण हुआ, ऐसी श्रुति है ।

यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान् ।
नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ।।१४।।

जब तक पुरुष पत्नी को प्राप्त नहीं करता, तब तक आधा ही रहता है । आधा उत्पन्न नहीं हो सकता (अर्थात् सन्तति को जन्म नहीं दे सकता), सारा ही उत्पन्न होता है, यह भी श्रुति है ।

गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ।
यतस्ततोऽन्वहं भूत्वा स्ववशो बिभृयाच्च ताम् ।।१५।।

वह (पत्नी) त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की महान् भूमि है। चूंकि उसे किसी अन्य के द्वारा वहन नहीं किया जा सकता, इस लिये (पति) प्रतिदिन संयम में रहता हुआ उसे धारण करे।

कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ।
स्वकृत्यं वित्तमासाद्य वैतानाग्निं न हापयेत् ॥१६॥

विवाह करके और घर बनाकर अग्नि और पत्नी के साथ घर में वास करे। अपने द्वारा कमाया हुआ धन प्राप्त करके वैतान अग्नि को न त्यागे।

स्मार्त्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ।
कर्म कुर्यात् प्रतिदिनं विधिवत् प्रीतिपूर्वतः ॥१७॥

स्मृति में कहे कर्म को वैवाहिक अग्नि में और श्रुति में कहे कर्म को वैतान अग्नियों में विधिवत् प्रतिदिन प्रीतिपूर्वक करे।

सम्यग्धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम् ।
एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥१८॥

धर्म, अर्थ और काम के विषय में पति और पत्नी को दिन-रात भली प्रकार एकचित्त होना चाहिये, और समान व्रत और वृत्ति वाला होना चाहिये।

न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ।
भावतो ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥१९॥

प्रेम अथवा अतिदेश के कारण स्त्रियों के लिये पतियों से अलग त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की विधि का साधन नहीं कहा गया है। यही शास्त्र की उत्तम विधि है।

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ।
उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ॥२०॥
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालं स्वमङ्गनम् ।
शोधयेदग्निकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥२१॥
प्रोक्षणीरिति तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ।
द्वन्द्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥२२॥

पति से पहले उठकर और शरीर की शुद्धि करके, शय्या आदि को उठाकर, घर की सफ़ाई करके, झाड़ू देने और लीपने से यज्ञशाला सहित अपने आंगन को साफ़ करके यज्ञकर्म में काम आने वाले चिकने पात्रों को प्रोक्षणीरा

सादय आदि (वा० सं० १.२८) मन्त्र से गर्म पानी से साफ करे, और उनको अपने-अपने स्थान पर रख देवे। जोड़े वाले सब पात्रों को कभी एक-दूसरे से अलग न करे।

शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत्।
महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥२३॥

(जल-)पात्रों को साफ करके और उन्हें भरकर रख देवे। रसोई घर के पात्रों को बाहर निकाल कर और उन्हें मांज-धो कर (पुनः अन्दर) रख देवे।

मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्ली तत्राग्नि विन्यसेत्ततः।
स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥२४॥
कृतपूर्वाह्णकार्या च स्वगुरूनभिवादयेत्।

मिट्टी के लेपे से चूल्हे को शुद्ध करे और उसमें अग्नि को स्थापित कर दे। (आज के दिन) काम मे आने वाले पात्रों, (दूध, घी आदि) रसों और द्रव्यो पर विचार करके, दिन के पहले आधे भाग में होने वाले कार्यो को समाप्त करके अपने से बड़ों को अभिवादन करे।

ताभ्यां भर्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबान्धवैः ॥२५॥
वस्त्रालङ्काररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत्।

अपने पति और अपने पिता के द्वारा अथवा भाई, मामा, और बन्धुजनों द्वारा दिये हुए वस्त्रों, अलङ्कारों और रत्नों को ही धारण करे।

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ॥२६॥
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु।
दासीवाऽऽदिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् ॥२७॥

पत्नी मन, वचन, और कर्म से पवित्र, पति के आदेश का पालन करने वाली, छाया की तरह पीछे चलने वाली, स्वच्छ, हित के कार्यों में मित्र के समान और पति के आदिष्ट कार्यो में सदा दासी की तरह आचरण करने वाली होनी चाहिये।

ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत्।
वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ॥२८॥

उसके पश्चात् भोजन पकाकर, उसे पति को समर्पित करके, वैश्वदेव यज्ञ करके शेष अन्नों से भोजन के योग्य (भृत्य आदि) जनों को भोजन कराए।

पतिञ्चैतदनुज्ञाता शिष्टमन्वाद्यमात्मना।
भुक्त्वा नयेदहःशेषमायव्ययविचिन्तया ॥२९॥

और पति को भोजन खिलाए। उससे अनुमति लेकर बाद मे शेष भोजन को स्वय खाए। भोजन करने के पश्चात् दिन के शेष भाग को (कुटुम्ब के) आय-व्यय का विचार करते हुए बिताए।

पुनः सायं यथाप्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च।
कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत् पतिम् ॥३०॥

फिर सायंकाल प्रातः की भांति घर की सफाई करके भोजन बनाकर सती भार्या पति को पेट भरकर भोजन कराए।

नातितृप्त्या स्वयं भुक्त्वा गृहनीति विधाय च।
आस्तीर्य साधुशयनं ततः परिचरेत् पतिम् ॥३१॥

स्वय कुछ भूख रखते हुए खाकर और(अगले दिन के लिये)घर की योजना बनाकर उत्तम शय्या को बिछाकर उसके पश्चात् पति की सेवा करे।

सुप्ते पतौ तदभ्याशे स्वपेत्तद्गतमानसा।
अनग्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेन्द्रिया ॥३२॥

पति के सो जाने पर, वस्त्रों को धारण किये हुए, सावधान, कामरहित, इन्द्रियों को जीतकर और पति मे मन लगाकर उसके पास ही सो जाए।

नोच्चैर्वदेन्न परुषं न बहून् पत्युरप्रियम्।
न केनचिद् विवदेच्च अप्रलापविलापिनी ॥३३॥

ऊँची आवाज से न बोले, न कड़वा बोले, बहुतों से न बोले, पति को अप्रिय बात न कहे। प्रलाप और विलाप आदि से दूर रहने वाली वह किसी से विवाद न करे।

न चातिव्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावञ्चनञ्चातिमानिताम् ॥३४॥
पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहङ्कारधूर्त्तताः।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदम्भान् साध्वी विवर्जयेत् ॥३५॥

न अधिक व्यय करने के स्वभाव वाली होवे और न धर्म और अर्थ का विरोध करने वाली होवे। आलस्य, पागलपन, क्रोध, ईर्ष्या, वञ्चना, अभिमान, पिशुनता, हिंसा, शत्रुता, महाहङ्कार, धूर्तता, नास्तिक-भाव, अत्याचार, चोरी और दम्भ को पतिव्रता स्त्री छोड़ देवे।

एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम्।
यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥३६॥

इस प्रकार अपने परम देव पति की सेवा करती हुई वह इस लोक में यश और शान्ति को प्राप्त करती है और परलोक में उसकी सलोकता को प्राप्त करती है।

योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते ।
रजोदर्शनतो दोषात् सर्वमेव परित्यजेत् ॥३७॥

स्त्री का नित्य कर्म कह दिया गया है। अब नैमित्तिक (किसी निमित्त से होने वाला) कर्म कहा जाएगा। रजोदर्शन होने पर दोष के कारण सब कुछ छोड़ देवे।

सर्वैरलक्षिता शीघ्र लज्जिताऽन्तर्गृहे वसेत् ।
एकाम्बरावृता दीना स्नानालङ्कारवर्जिता ॥३८॥

सब के द्वारा न देखी हुई, एक मात्र वस्त्र को धारण किये हुए, दीन बनी हुई, स्नान और अलङ्कार से रहित, लजालू बनी शीघ्र ही घर के अन्दर वास करे।

मौनिन्यधोमुखी चक्षुष्पाणिपद्भिरचञ्चला ।
अश्नीयात् केवल भक्त नक्तं मृण्मयभाजने ॥३९॥

मौन धारण किये, नीचे को मुख किये, आंख, हाथ और पांव की चञ्चलता से रहित, रात के समय, मिट्टी के पात्र में केवल भात खाए।

स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ।
स्नायीत सा त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ ।४०॥

सावधान होकर भूमि पर सोए। इस प्रकार तीन दिन बिताए। वह तीन रात के पश्चात् सूर्योदय होने पर सचैल स्नान करे।

विलोक्य भर्त्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ।
कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥४१॥

पति के मुख को देखकर वह धर्म से शुद्ध हो जाती है। शुद्ध होने पर वह फिर से पहले की तरह कार्य करे।

रजोदर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्त्तवः ।
ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥४२॥

रजोदर्शन से जो सोलह ऋतु की रात्रियां होती हैं, उनमें पुरुष का बीज बिना कठिनाई के शुद्ध क्षेत्र में उत्पन्न होता है।

चतस्रश्चाऽऽदिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ।
गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्र्यर्क्षराक्षसान् ॥४३॥

चार आदि रात्रियों को पर्व के रूप में, और रेवती, पित्रर्क्ष और राक्षस नक्षत्रों को छोड़ दे, और सम रात्रियों में पत्नी के पास जाए ।

प्रच्छादितादित्यपथे पुमान् गच्छेत् स्वयोषितः ।
क्षौमाऽलङ्कृदवाप्नोति पुत्रं पूजितलक्षणम् ॥४४॥

ऐसे स्थान पर जहा सूर्य की किरणों की पहुंच न हो, पुरुष अपनी स्त्रियों से संभोग करे । क्षौम के वस्त्रों से अलङ्कृत ऐसा मनुष्य पुण्य लक्षणों वाले पुत्र को प्राप्त करता है ।

ऋतुकालेऽभिगम्यैव ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ।
गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् ॥४५॥

ऋतुकाल में स्त्री के पास जाने वाला, इस प्रकार ब्रह्मचर्य में ही स्थित हुआ और अन्य (दोषयुक्त कार्य) न करता हुआ मनुष्य इच्छानुसार स्त्री से संभोग करता हुआ दोष को प्राप्त नहीं होता ।

भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्यापराङ्मुखः ।
सा त्ववाप्याऽन्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी ॥४६॥

जो मनुष्य ऋतुकाल में भार्या से पराङ्मुख रहता है उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है । और यदि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष से गर्भ ग्रहण करती हैं, तो वह पापिन भी त्याग के योग्य है ।

महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ।
सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ॥४७॥

पति द्वारा स्थापित किये गर्भ को नष्ट करने वाली स्त्री को महापातक का दोष लगता है, और वह पुरुष जो सदाचार का पालन करने वाली पत्नी का त्याग करता है, धर्म से पतित हो जाता है ।

महापातकदुष्टोऽपि नाप्रतीक्ष्यस्तया पतिः ।
अशुद्धे क्षयमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ॥४८॥

महापातक के दोष से युक्त भी पति उसके द्वारा प्रतीक्षा न करने के योग्य नहीं है (अर्थात् अवश्य ही प्रतीक्षा के योग्य है) । उसके अशुद्ध रहते हुए, दूर के निवास में स्थित भी पत्नी चिन्तन से उसके निकट रहे ।

व्यभिचारेण दुष्टानां पतीनां दर्शनादृते ।
धिक्कृतायामवाच्यायामन्यत्र वासयेत् पतिः ॥४९॥

व्यभिचार के कारण दोष को प्राप्त पतियों के दर्शन के अतिरिक्त, पति

ऐसी पत्नी को जिसे धिक्कारा गया है और जिसके साथ बोलना छोड़ दिया गया है, अन्य स्थान पर वास दे ।

पुनस्तामार्त्तवस्नातां पूर्ववद् व्यवहारयेत् ।
धूर्त्ताञ्च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ॥५०॥
सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ।
अधिविन्नामपि विभुः स्त्रीणान्तु समतामियात् ॥५१॥

पुनः रजस्वला होने के पश्चात् स्नान की हुई उस पत्नी के साथ पहले का सा व्यवहार करे । धूर्त, धर्म और काम का हनन करने वाली, पुत्रहीन, लम्बे रोग वाली, अत्यन्त दुष्ट, दुर्व्यसनों में आसक्त और पति का अहित चाहने वाली पत्नी की उपेक्षा करके पति अन्य स्त्री से विवाह कर ले । जिसकी उपेक्षा करके दूसरा विवाह किया गया है, उस पत्नी को भी स्वामी अन्य स्त्रियों के साथ समानता प्रदान करे ।

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ।
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥५२॥

पति के प्रवास में चले जाने पर पति-व्रता पत्नी उतरे वर्ण वाली, दैन्य से युक्त मुख वाली, शरीर के संस्कारों से हीन और निराहार रहकर सूखती रहती है ।

मृतं भर्त्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ।
जीवन्ती चेत्त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥५३॥

ब्राह्मणी मृत पति को लेकर अग्नि में प्रवेश करे । यदि जीवित रहे तो केश मुंडवा कर तपस्या से अपने शरीर को पवित्र करे ।

सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ।
तदेवानुक्रमात् कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥५४॥

सभी अवस्थाओं (शैशव, यौवन और वार्धक्य) में नारियों की रक्षा न करना उचित नहीं है । वह रक्षा पिता, पति, और पुत्र आदि के द्वारा अनुक्रम से की जानी चाहिये ।

जाताः सुरक्षितायां ये पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ।
ये यजन्ति पितॄन् यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ॥५५॥
मृतां तामग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ।
दाहयेदविलम्बेन भार्याञ्चात्र व्रजेत सा ॥५६॥

भली प्रकार रक्षा की हुई उस स्त्री के उत्पन्न जो पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र आदि है, जो पितरों के मोक्ष की प्राप्ति और महान् उन्नति कराने वाले यज्ञों से पूजा करते हैं, मरी हुई उस स्त्री का (उनके उस) अग्निहोत्र से विधिपूर्वक दाह कराए। (पति) उस पत्नी का अविलम्ब दाह कराए। इस प्रकार वह (पितरों के) इस लोक को प्राप्त हो जाती है।

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे स्त्र्यधिकारोनाम द्वितीयोऽध्यायः।

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ स्नानादिविधिपूर्वाह्णकृत्यवर्णनम्

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम्।
त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्यताम् ॥१॥

कर्म तीन प्रकार का माना गया है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। मैं गृहस्थ के उस तीन प्रकार के कर्म का वर्णन करता हूं, उसे ग्रहण कीजिये।

यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत्।
आलोक्य मङ्गलद्रव्यं कर्माऽऽवश्यकमाचरेत् ॥२॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर में निद्रा त्यागकर विष्णु को स्मरण करे। मंगल द्रव्यों का दर्शन करके (शौच आदि) आवश्यक कर्म करे।

कृतशौचो निषेव्याग्निं दन्तान् प्रक्ष्याल्य वारिणा।
स्नात्वोपास्य द्विजः सन्ध्यां देवादींश्चैव तर्पयेत् ॥३॥

द्विज शौचादि से निवृत्त होने के पश्चात्, अग्नियों का सेवन कर, दांतों को पानी से साफ कर, नहा-धो कर सन्ध्योपासना करके देवादि की पूजा करे।

वेदवेदाङ्गशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत्।
अध्यापयेच्च सच्छिष्यान् सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥४॥

ब्राह्मण वेदों, वेदाङ्गों, शास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों की आवृत्ति करे। उत्तम शिष्यों और सद्ब्राह्मणों को पढ़ाए।

अलब्धं प्रापयेल्लब्ध्वा क्षणमात्र समापयेत् ।
समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः क्वचिद्वसेत् ॥५॥

जो वस्तु प्राप्त न हो उसे प्राप्त करे और प्राप्त करके उसे तत्क्षण दूसरों में बाँट दे। समर्थ से अपरिचित समर्थ मनुष्य कहीं वास न करे।

सरित्सरसि वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ।
स्नायीत यावदुद्धृत्य पञ्च पिण्डानि वारिणा ॥६॥

नदी, तालाब और बावलियों में, कुण्डो और झरनो आदि में, पांच पिण्ड मिट्टी के निकालकर, उनके पानी से स्नान करे।

तीर्थाभावेऽप्यशक्त्यां वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः ।
गृहाङ्गणगतस्तत्र यावदम्बरपीडनम् ॥७॥

तीर्थ के अभाव में, अथवा (तीर्थ पर जाने की) शक्ति न होने पर (तीर्थों से) लाए हुए जलों से वहीं घर के आँगन में स्थित होकर वस्त्र (धोती) के निचोड़ने योग्य होने तक स्नान करे।

स्नानमब्दैवतैः कुर्यात् पावनैश्चापि मार्ज्जनम् ।
मन्त्रैः प्राणांस्त्रिरायम्य सौरैश्चार्क विलोकयेत् ॥८॥

आपो हि ष्ठा इत्यादि (ऋ० १०.९. १-३) जल-देवता के मन्त्रों से स्नान करे। पवित्र करने वाले-मन्त्रों से मार्जन करे। मन्त्रों के साथ तीन बार प्राणायाम करके, सूर्य है देवता जिन का—ऐसे मन्त्रों से सूर्य के दर्शन करे।

तिष्ठन् स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ।
ऋचाञ्च यजुषां साम्नामथर्वाङ्गिरसामपि ॥९॥
इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ।
शक्त्या सम्यक् पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥१०॥

खड़ा होकर ठहरे हुए गायत्री का जप करे। उस के पश्चात् द्विज ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण और वेदों की उपनिषदों का स्वाध्याय आरम्भ करे। समाप्ति-पर्यन्त यथाशक्ति सम्यक् रूप से पाठ-करे, चाहे वह थोड़ा ही हो।

स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात् ।
वेदेभ्योऽन्यत्र सतुष्टः स विप्रः शूद्रतामियात् ।
तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥११॥

वह यज्ञ, दान और तप के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है। वेदों को छोड़कर जो ब्राह्मण अन्य ग्रन्थों के पाठ से संतुष्ट हो जाता है, वह शूद्र हो जाता है। इस लिये मौन रहकर ब्राह्मण प्रतिदिन वेद का अध्ययन करे।

धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत्।
कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥१२॥

सब के धर्मशास्त्र और इतिहास को सामर्थ्यानुसार पढ़े। सबसे पहले स्वाध्याय करने के पश्चात् देवताओं को (इस प्रकार) तृप्त करे।

जान्वाच्य दक्षिणं दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः।
पुरः क्षिप्तैः कराग्राभ्यां निर्गतैः प्राङ्मुखो द्विजः।
एकैकाञ्जलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥१३॥

दाहिने घुटने को धरती पर टेककर यज्ञोपवीत को सामान्य स्थिति से धारण करने वाला, पूर्व की ओर मुख करके बैठा हुआ द्विज पूर्व की ओर अग्र-भाग वाली कुशाओं से और हाथो के अग्र भागो से निकले हुए और सामने की ओर डाले जाते हुए यवमिश्रित तिलों से एक-एक अञ्जलि देकर (तर्पण करे)।

समाजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः।
तिर्य्यग्दर्भैश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥१४॥
अम्भोभिरुत्तरक्षिप्तैः कनिष्ठामूलनिर्गतैः।
द्वाभ्यां द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥१५॥

उसके पश्चात् दोनों घुटनों को समान रूप से धरती पर टेककर, ब्रह्मसूत्र (उपवीत) को गले में हार की तरह धारण कर उत्तर की ओर मुख करके (बैठा हुआ द्विज) बाईं ओर अग्र भाग वाली टेढ़ी रखी कुशाओं और तिल-मिश्रित जौ से युक्त, कनिष्ठिका अंगुली के मूल से निकलने और उत्तर की ओर गिरने वाले जलों से दो-दो अंजलियों के साथ मनुष्यों का तर्पण करे।

दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः कुशैः।
तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिसृतैः ॥१६॥
दक्षिणांसोपवीतः स्यात् क्रमेणाञ्जलिभिस्त्रिभिः।
सन्तर्पयेद्दिव्यपितॄंस्ततपराश्च पितॄन् स्वकान् ॥१७॥

बाएं घुटने को धरती पर टेककर दक्षिण की ओर मुख करके (बैठा हुआ द्विज) यज्ञोपवीत को बाए कन्धे पर धारण करे, और दुगनी कुशाओं, तिलों और देशिनी अंगुली के मूल और कुशाओं से निकलते हुए जलों से क्रमशः तीन

अञ्जलियों से स्वर्ग में गए हुए पितरों का तर्पण करे और उनसे परे वाले अपने पितरों का तर्पण करे।

मातृमातामहांस्तद्वत्त्रीनेवं हि त्रिभिस्त्रिभिः।
मातामहस्य येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥१८॥
तानेकाञ्जलिदानेन तर्पयेच्च पृथक् पृथक्।

माता, नाना आदि तीन का उसी प्रकार से तीन-तीन अंजलियों से तर्पण करे। नाना के जो अन्य भी दाह-संस्कार से वर्जित गोत्र वाले है। उनको पृथक्-पृथक् एक-एक अञ्जलि देकर तृप्त करे।

असंस्कृतप्रमीना ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥१९॥
वस्त्रनिष्पीडनाम्भोभिस्तेषामाप्यायनम्भवेत्।

जो बिना संस्कार मर गए हैं और जो प्रेत-संस्कार से वर्जित हैं, उनका वस्त्र को निचोड़ने से निकले जलों से ही तर्पण हो जाता है।

अतर्पितेषु पितृषु वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥२०॥
निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति सुरमानुषैः।

पितरों को तृप्त किए बिना जो (द्विज) वस्त्र को निचोड़ देता है, उसके पितर देवताओं और मनुष्यों सहित निराश हो जाते हैं।

पयो दर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥२१॥
सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि वृथा विना।

कुशा, स्वधाकार, गोत्र, नाम और तिलों के साथ दिया हुआ जल सुदत्त (भली प्रकार दिया हुआ) हो जाता है। पर वही जल इनमें से किसी एक के विना भी व्यर्थ हो जाता है।

अन्यचित्तेन यद्दत्तं यद्दत्त विधिवर्जितम् ॥२२॥
अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते।

अन्य में लगे हुए चित्त वाला होकर जो जल दिया जाता है, विधि के विना जो जल दिया जाता है, विना आसन पर बैठे जो जल दिया जाता है, वह रुधिर हो जाता है।

एवं सन्तर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पयन्ति च ॥२३॥

इस प्रकार तृप्त किए हुए (देवता आदि) तृप्त करने वालों को उनकी कामनाओं से तृप्त करते है।

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रवरुणनामभिः।
पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलमन्त्रोक्तदेवताः ॥२४॥

जल के मन्त्रों में कहे हुए देवताओं की ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदित्य, मित्र और वरुण के नामों से लक्षित मन्त्रों के द्वारा पूजा करे।

उपस्थाय रवेः काष्ठां पूजयित्वा च देवताः।
ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीवविष्णुनामहतांहसाम् ॥२५॥
अपां यत्तेति सत्कारं नमस्कारैः स्वनामभिः।
कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥२६॥

सूर्य की दिशा की ओर मुख करके सूर्योपस्थान करके और देवताओं की पूजा करके ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, ओषधि, जीव और विष्णु के नामों से नष्ट हुए पापों वाले जलों का, यत् ते इत्यादि मन्त्र से (देवताओं के) अपने नामों के साथ नमः का प्रयोग करते हुए, सत्कार करके, मुख का स्पर्श कर इस प्रकार स्नान करे।

ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने।
पाकयज्ञांश्च चतुरो विदध्याद्विधिवद् द्विजः ॥२७॥

उसके पश्चात् घर में जाकर द्विज आवसथ्य अग्नि में विधिपूर्वक चार पाकयज्ञों को तय्यार करे।

अनाहितावसथ्याग्निरादायान्नं घृतप्लुतम्।
शाकलेन विधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥२८॥

जिस (द्विज) ने आवसथ्य अग्नि का आधान न किया हो, वह घी में भिगोए हुए अन्न को लेकर ऋग्वेद की शाकल शाखा के विधान के अनुसार लौकिक अग्नि में हवन करे।

व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम्।
षड्भिर्देवकृतस्येति मन्त्रवद्भिर्यथाक्रमम् ॥२९॥

अलग-अलग व्याहृतियों और उसके पश्चात् इकट्ठी व्याहृतियों के साथ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि (वा० स० ८.१३) आदि छः मन्त्रों वाली आहुतियों से क्रमशः होम करे।

प्राजापत्यं स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाऽऽहुतीः।
ओङ्कारपूर्वः स्वाहान्तस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥३०॥
भुवि दर्भान् समास्तीर्य्य बलिकर्म समाचरेत्।
विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥३१॥
भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित्।
दद्याद्बलित्रयञ्चाग्रे पितृभ्यश्च स्वधा नमः ॥३२॥

इसी प्रकार प्राजापत्य स्विष्टकृत को बारह आहुतियाँ डालकर, जिनमें कि स्विष्ट विधान के अनुसार पहले ओंकर और अन्त में स्वाहा कहकर आहुति डालनी होती है, शास्त्रवेत्ता धरती पर कुशाओं को बिछाकर विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नम और भूतेभ्य पतये नमः कहकर पहले तीन बलियां दे और तत्पश्चात् पितृभ्यः स्वधा नमः कहकर पितरों को स्वधा दे।

पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्या दिशि निःक्षिपेत्।
उद्धृत्य षोडशग्रासमात्रमन्नं घृतोक्षितम् ॥३३॥
इदमन्न मनुष्येभ्यो हन्तेत्युक्त्वा समुत्सृजेत्।

पात्रों को धोने वाले जल को उत्तर-पश्चिम दिशा में डाल दे। घी से सिंचे हुए सोलह ग्रास मात्र पके हुए भोजन को निकाल कर इदमन्न मनुष्येभ्यो हन्त 'यह अन्न मनुष्यों के लिये है' ऐसा कहकर उसे रख दे।

गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तितः ॥३४॥
षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात् पितृयज्ञविधानतः।
वेदादीनां पठेत् किञ्चिदल्प ब्रह्ममखाप्तये ॥३५॥

छः पितरों (तीन पितृ-पक्ष के—पिता, पितामह, और प्रपितामह, तीन मातृ-पक्ष के – मातामह, प्रमातामह और प्रप्रमातामह) के गोत्र, नाम और (अन्त में) स्वधा का उच्चारण करके उन्हें यथाशक्ति और पितृयज्ञ के विधान के अनुसार प्रतिदिन भोजन दे। ब्रह्मयज्ञ की पूर्ति के लिये वेद आदियों का कुछ थोड़ा पाठ करे।

ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद् बहिः।
काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्रक्षिपेद् ग्रासमेव च ॥३६॥

उसके पश्चात् भोजन लेकर, घर से बाहर निकलकर कौओं और चाण्डालों को डाले और (गो-)ग्रास भी दे।

उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद् यावन्मुहूर्तकम्।
अप्रभुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भाविशुद्धः प्रतीक्षकः ॥३७॥

बिना भोजन किये घर के द्वार पर बैठकर शुद्ध विचारों के साथ अतिथि की अभिलाषा से प्रतीक्षा करता हुआ एक मुहूर्त (४८ मिनट) तक ठहरे।

आगतं दूरतः शान्तं भोक्तुकाममकिञ्चनम्।
दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्च्चनैः ॥३८॥
पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्च्चितः।
त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥३९॥

दूर से आए हुए, शान्त स्वभाव वाले, भोजन करने की इच्छा वाले, निर्धन (अतिथि) को संमुख देखकर उसके पास जाकर, नम्रता और अर्चना आदि से उसका सत्कार करे। पादप्रक्षालन, सम्मान और मालिश आदि से पूजा किया हुआ (अतिथि गृहस्थ को) तुरन्त स्वर्ग की प्राप्ति करा देता है। अतिथि तो यज्ञ से भी बढ़कर है।

कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः।
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥४०॥

(भोजन के) समय पर आया हुआ अतिथि और घर में आया हुआ वेदों का पारङ्गत विद्वान्—ये दोनों पूजा किये हुए स्वर्ग में ले जाते हैं, और पूजा न किये हुए अधोगति को प्राप्त करा देते हैं।

विवाह्यस्नातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृदृत्विजः।
अर्घ्या भवन्ति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥४१॥

जामाता, स्नातक, राजा, आचार्य, हितैषी जन और ऋत्विक् ये प्रतिवर्ष घर में आए हुये धर्म से अर्घ के योग्य हैं।

गृहागताय सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि।
भक्त्योपकल्पयेदेकं महाभागं विसर्जयेत् ॥४२॥

घर में आए हुए श्रोत्रिय का यथाविधि सत्कार करके उसे भक्तिपूर्वक (भोजन का) एक महाभाग देकर विदा करे।

विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन्।
मित्रमातुलसम्बन्धिबान्धवान् समुपागतान् ॥४३॥

(भोजन से) भली प्रकार तृप्त हुए श्रोत्रिय और अतिथियों को, और आए हुए मित्र, मामा, सम्बन्धियों और बान्धवों को उनके पीछे-पीछे चलकर विदा करे।

भोजयेद् गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति।
स्वाद्वन्नमश्नन्नस्वादु ददद् गच्छत्यधोगतिम् ॥४४॥

(गृहस्थ आए हुए) गृहस्थों को भोजन कराए। (घर पर आया हुआ) भिक्षु सत्कार के साथ दी हुई भिक्षा के योग्य होता है। जो स्वयं तो स्वादु भोजन खाता है और दूसरों को अस्वादु भोजन देता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है।

गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु।
बुभुक्षितेषु भुञ्जानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥४५॥

गर्भिणी स्त्री, रोगी, भृत्य, तथा बच्चों, बूढ़ों और बीमारों के भूखे रहते हुए जो गृहस्थ स्वयं भोजन करता है, वह पाप खाता है।

नाद्याद् गृध्येन्न पाकान्नं कदाचिदनिमन्त्रितः।
निमन्त्रितोऽपि निन्द्येन प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥४६॥

निमन्त्रण न दिया हुआ ब्राह्मण कभी भी न तो पके हुए अन्न को खाए और न उसकी इच्छा करे। निन्दनीय मनुष्य के द्वारा निमन्त्रण दिया हुआ भी ब्राह्मण उसका प्रत्याख्यान करने के योग्य है।

शूद्राभिशस्तवार्धुष्यवाग्दुष्टक्रूरतस्कराः।
क्रुद्धापविद्धबद्धोग्रवधबन्धनजीविनः ॥४७॥
शैलूषशौण्डिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः।
नग्ननास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥४८॥
कदर्य्यस्त्रीजितानार्य्यपरवादकृता नराः।
अनीशा कीर्तिमन्तोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥४९॥
शयनासनसंसर्गवृत्तकर्मादिदूषिताः।
अश्रद्दधानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥५०॥
अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्स तत्समः।

शूद्र, दोषारोप से युक्त, ब्याज खाने वाले, वाणी के दोष वाले, क्रूर, चोर, क्रोधी, माता-पिता से त्यागे हुए, दासता के बन्धन में बन्धे हुए, उग्रवध और पशु-पक्षियों को जाल में फँसाकर आजीविका कमाने वाले, नट, कलाल, घमण्डी, उन्मादी, संस्कारहीन, व्रत से भ्रष्ट, नंगे, नास्तिक, निर्लज्ज, चुगलखोर, दुर्व्यसनों से युक्त, कंजूस, स्त्रियों के द्वारा जीते हुए, दुष्ट, दूसरों की निन्दा करने वाले, कीर्ति वाले होते हुए भी पराधीन, राजा और देवताओं के धन को हरने वाले, शय्या, आसन, सङ्गति, वृत्त और कर्म आदि के विषय में दोष से युक्त, श्रद्धाहीन, पतित और भ्रष्ट आचार वाले जो मनुष्य हैं उनका भोजन खाने के योग्य नहीं होता, क्योंकि जो जिसके अन्न को खाता है, वह उसी के समान हो जाता है।

नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ॥५१॥
शूद्राणामप्यमीषान्तु भुक्त्वाऽन्नं नैव दुष्यति।
धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥५२॥

नाई, कुलमित्र, कृषि मे आधे के भागीदार, दास और गवाले—ये चाहे शूद्र भी हों, तो भी इनका अन्न खाकर मनुष्य दोष को प्राप्त नहीं होता। प्रसिद्ध कुलो वाले द्विज तो आपस में धर्म से एक दूसरे के घर का भोजन खा सकते हैं।

स्ववृत्त्योपार्जितं मेध्यमकेशकृमिमक्षिकम्।
अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥५३॥

अपने परिश्रम से कमाया हुआ, पवित्र, केश, कृमि और मक्खियों से रहित, कुत्ते के द्वारा न चाटा हुआ, गाय के द्वारा न सूंघा हुआ, शूद्र और कौए आदि के द्वारा न छुआ हुआ (भोजन खाने के योग्य होता है)।

अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च।
अम्लानबाह्यमन्नाद्यमद्यान्नित्यं सुसंस्कृतम् ॥५४॥

जो झूठा न हो, जिस में किसी प्रकार का दोष (विकार) न हो और जो बासी न हो, जो बाहर से देखने में मैला न लगता हो और जो भली प्रकार पका हुआ हो—ऐसे ही भोजन को नित्य खाए।

कृसरापूपसंयावपायसं शष्कुलीति च।
नाश्नीयाद् ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथञ्चन ॥५५॥
क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन् पतति द्विजः।

कृसर (खिचड़ी), अपूप (पूआ), संयाव (घी, मीठा आदि मिलाकर जौ के आटे की बनी रोटी) पायस (खीर) और शष्कुली (पूरी) का भी भोजन करे। यज्ञ आदि में नियुक्त हुए बिना ब्राह्मण किसी भी अवस्था में मांस न खाए। यज्ञ और श्राद्ध में नियुक्त (न्योता हुआ) ब्राह्मण यदि नहीं खाता तो वह पतित हो जाता है।

मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥५६॥
क्षत्रियो द्वादशोनं तत् क्रीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः।

क्षत्रिय मृगया के द्वारा मांस प्राप्त करके उससे पितरों और देवताओं की पूजा करके (उसका भक्षण कर सकता है)। वैश्य भी बारह है कम जिसमें ऐसे उस मांस को धर्मानुसार क्रय करके (भक्षण कर सकता है)।

द्विजो जग्ध्वा वृथामांसं हत्वाऽप्यविधिना पशून् ॥५७॥
निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम्।

द्विज पशुओं को अविधिपूर्वक मारकर वृथामांस (पितरों और देवताओं

को दिये बिना खाए जाने वाले मांस) को खाकर जब तक चाँद और तारे रहेंगे तब तक नरकों में अक्षय वास को प्राप्त करता है।

सर्वान् कामान् समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥५८॥
मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः।

(वृथामांस को न खाने वाला) ब्राह्मण गृहस्थ होता हुआ भी सब कामनाओं और अश्वमेध के फल को प्राप्त करके मुनियों के समान हो जाता है।

द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिषाणि पयांसि च ॥५६॥
निर्दशासन्धिसम्बन्धिवत्सवन्ति पयांसि च।

गउओं और भैंसों के दूध द्विजों के भोजन के योग्य होते हैं, और वे दूध भी भोजन के योग्य हैं जो ब्याने से दस दिन के बाद के हों, जो गाभिन के न हों और बछड़े या बछड़ी वाली गऊ के हों।

पलाण्डुश्वेतवृन्ताकरक्तमूलकमेव च ॥६०॥
गृञ्जनारुणवृक्षासृग्जन्तुगर्भफलानि च।
अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैन्दवं चरेत् ॥६१॥

प्याज, सफेद बैंगन, लाल मूली (शलगम), लहसन, वृक्ष का लाल गोंद, गूलर के फल और ऋतु के बिना ही आने वाले पुष्प आदि—इनको खाकर द्विज चान्द्रायण व्रत करे।

वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीडितकार्य्यपि।
भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥६२॥

वाणी से दूषित, जिसके प्राप्ति-स्थान का पता न हो, जो अन्य को दुखी करके प्राप्त किया गया हो—(ऐसे अन्न को खाकर चान्द्रायण व्रत करे)। प्राणियों को दिये बिना जो अन्न खाया जाता है, वह अन्न गृहस्थों को दग्ध कर देता है।

हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात् सदा गृही।
तदभावे साधुगन्धलोध्रद्रुमलतासु च ॥६३॥

गृहस्थ सदा सोने, चांदी और कांसी के पात्रों में भोजन करे। उनके अभाव में उत्तम गन्ध वाले लोध्रवृक्ष के पत्तों पर भोजन करे।

पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति।
ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयो यद्भोक्तुमर्हति ॥६४॥

गृहस्थ ढाक और कमल के पत्तों पर भी खा सकता है। ब्रह्मचारी और

संन्यासी यदि श्रेय को भोगना चाहता है तो वह भी ढाक और कमल के पत्तों पर भोजन करे।

अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारैर्भुवि दद्याद् बलित्रयम्।
भूपतये भुव. पतये भूतानां पतये तथा ॥६५॥

नमस्कारों के साथ अन्न पर जल का छींटा देकर— ओं भूपतये नमः, ओं भुवः पतये नमः, ओं भूतानां पतये नमः, ऐसा कहकर भूमि पर (क्रमशः) तीन बलि देवे।

अपः प्राश्य ततः पश्चात् पञ्चप्राणाहुतीः क्रमात्।
स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥६६॥

तत्पश्चात् आचमन करके क्रमशः पांच प्राणाहुतियां (ओं प्राणाय स्वाहा, ओम् अपानाय स्वाहा, ओम् उदानाय स्वाहा, ओं समानाय स्वाहा, ओं व्यानाय स्वाहा) स्वाहा कह कर दे और शेष अन्न को सुखपूर्वक स्वयं खाए।

अनन्यचित्तो भुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।
आतृप्तेरन्नमश्नीयादक्षुण्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥६७॥

एकाग्रमन, चुपचाप, अन्न की निन्दा न करता हुआ भोजन करे। तृप्ति-पर्यन्त अन्न को खाए और पात्र रीता करके न छोड़े।

उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत्।
आचान्तः साधुसङ्गेन सद्विद्यापठनेन च ॥६८॥
वृत्तवृद्धकथाभिश्च शेषाहमतिवाहयेत्।

उच्छिष्ट अन्न को उठाकर उसमें से एक ग्रास भूमि पर डाल दे। आचमन करके सज्जनों के संग में उत्तम विद्याओं को पढ़ते हुए और वृद्धों की बीती हुई कथाओं के द्वारा शेष दिन को बिताए।

सायं सन्ध्यामुपासीत हुत्वाऽग्निं भृत्यसंयुतः ॥६९॥
आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहं द्विजः।

सायंकाल अपने परिवारजनों के साथ मिलकर अग्नि में हवन करके सन्ध्योपासन करे। द्विज प्रतिदिन पहले आपोऽशान क्रिया (जल से मुँह आदि धोने और आचमन करने की क्रिया) को करके, फिर भोजन करे।

सायमप्यतिथिः पूज्यो होमकालागतोऽनिशम् ॥७०॥
श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः।

सायंकाल में होम के समय भी आया हुआ अतिथि श्रद्धा और शक्ति के

साथ नित्य निरन्तर पूजा के योग्य है । पूजा न किया हुआ अतिथि (गृहस्थ के) श्रुत को नष्ट कर देता है ।

नातितृप्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥७१॥
अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे ।

भूख रखते हुए भोजन करके, हाथ-मुँह साफ करके और पांव धोकर पवित्र हुआ (गृहस्थ) सिर को पश्चिम और उत्तर दिशा में न रखते हुए शुभ शय्या पर शयन करे ।

शक्तिमानुचिते काले स्नानं सन्ध्यां न हापयेत् ॥७२॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः ।
शक्तिमान् मतिमान् नित्यं व्रत्तमेतत् समाचरेत् ॥७३॥

शक्तिमान् (=स्वस्थ) गृहस्थ उचित समय पर स्नान और सन्ध्या का परित्याग न करे , और ब्राह्म-मुहूर्त में (शय्या से) उठकर अपने हित का चिन्तन करे । शक्तिमान् और बुद्धिमान्(गृहस्थ)इस व्रत का नित्य आचरण करे ।

इति वेदव्यासीये धर्मशास्त्रे गृहस्थाह्निको नाम तृतीयोऽध्यायः ।

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ गृहस्थाश्रमप्रशंसापूर्वकतीर्थधर्मवर्णनम् ।

इति व्यासकृत शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ।
आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानि च ॥१॥

यह व्यासकृत शास्त्र धर्म के सार का संग्रह है। आश्रमों में करणीय जो-जो पुण्य कर्म है और मोक्षधर्म के आश्रित जो पुण्य कर्म हैं (वे सब इसमें कहे गए हैं) ।

गृहाश्रमात् परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थफल तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥२॥

यह बात बार-बार कही जा सकती है, कि गृहस्थ आश्रम से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। जो मनुष्य इस आश्रम का यथोक्त रूप से पालन करता है उसे सब तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है।

गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ।
नित्यजापी च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥३॥

स्वदारे यस्य सन्तोषः परदारनिवर्तनम् ।
अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥४॥

बड़ों में श्रद्धा रखने वाला, आश्रित जनों का पोषण करने वाला, दयावान्, डाह न करने वाला, नित्य (गायत्री का) जप करने वाला, होम करने वाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, जो अपनी ही पत्नी में सन्तुष्ट है और पर-स्त्री से दूर रहता है, जिसकी किसी प्रकार की बदनामी भी नहीं है, उसे घरमें ही तीर्थों का फल मिल जाता है।

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ।
सर्व्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥५॥

जो दिन-प्रति-दिन पर-स्त्री और पराए धन का हरण करता है, उसका वह पाप सब तीर्थों में स्नान करने से भी नष्ट नहीं होता ।

गृहेषु सवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ।
अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भागेन लिप्यते ॥६॥

सोम के सवन अथवा यज्ञकर्म से सम्बन्धित घरों में सब तीर्थों का फल मिल जाता है। अन्न का दान करने वाले को फल के तीन भाग मिलते है और कर्म करने वाला एक भाग से युक्त होता है।

प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानाञ्च तर्पणम् ।
न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिं भिक्षां ददाति यः ॥७॥

जो मनुष्य ब्राह्मणों को आश्रय देता है, उनका पाद-प्रक्षालन करता है और उनको भोजन आदि से तृप्त करता है, और बलि और भिक्षा देता है, उसे पाप स्पर्श नहीं करता ।

पादोदकं पादघृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ।
यो ददाति ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥८॥

जो ब्राह्मणों को पांव धोने के लिये जल, खड़ाऊँ, दीपक (नीराजना), अन्न और आश्रय देता है, यम उसके पास नहीं आता ।

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोऽमृतम् ॥९॥

जब तक पृथ्वी ब्राह्मण के पाँव के जल से गीली रहती है, तब तक (ब्राह्मण के पाद-प्रक्षालन करने वाले के) पितर कमल के पत्तो के दोनों में अमृत का पान करते हैं।

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे ।
तत्फलं ऋषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशौचने ॥१०॥

जो फल कार्तिक मास की पूर्णिमा को ज्येष्ठ पुष्कर नामक तीर्थ में कपिला गऊ के दान से मिलता है, हे श्रेष्ठ ऋषियो ! वही फल विप्रों के पाद-प्रक्षालन से मिल जाता है ।

स्वागतेनाग्नयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः ।
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥११॥

(ब्राह्मणों के) स्वागत से अग्नियां प्रसन्न होती हैं, आसन देने से इन्द्र प्रसन्न होता है, पादप्रक्षालन से पितर प्रसन्न होते हैं और भोजन देने से प्रजापति प्रसन्न होता है ।

मातापित्रोः परं तीर्थं गङ्गा गावो विशेषतः ।
ब्राह्मणात् परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥१२॥

माता-पिता से गङ्गा और विशेष रूप से गउएं बड़ा तीर्थ हैं, परन्तु ब्राह्मण से बढ़कर बड़ा तीर्थ न हुआ है और न होगा ।

इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥१३॥

इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य अपने घर में ही वास करे । वहीं उसका कुरुक्षेत्र हैं, नैमिष है और पुष्कर आदि तीर्थ हैं ।

गङ्गाद्वारञ्च केदारं सन्निहती तथैव च ।
एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१४॥

और वहीं उसका गङ्गाद्वार (=हरिद्वार), केदारनाथ और (कुरुक्षेत्र स्थित) संनिहती तीर्थ है । इन सब तीर्थों को घर में ही करके वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च चातुर्वर्ण्यस्य भो द्विजाः ।
दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥१५॥

हे द्विजो, मैं वर्णों के, आश्रमों के और चातुर्वर्ण्य के दानधर्म का उसी प्रकार से वर्णन करता हू, जिस प्रकार व्यास जी ने बताया है ।

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने ।
तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्याभिरक्षति ॥१६॥

जिस धन को मनुष्य विशिष्ट जनों को दान में देता है, और जिसका वह

प्रतिदिन स्वयं भोग करता है, मै उसे ही धन मानता हूं । शेष को वह किसके लिये रखवाली कर रहा है (यह मेरी समझ में नहीं आता) ।

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥१७॥

जिसे दान करता है और जिसे भोगता है, वही धनी का धन है । मर जाने के पश्चात् अन्य लोग ही उसकी पत्नी और धनों से क्रीडा करते हैं ।

किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः ।
यद्वर्द्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥१८॥

बीती हुई आयु वाले मनुष्य भी धन से क्या करेंगे । जिसे बढ़ाना चाहते हुए (वे धन का सञ्चय करते हैं) वह शरीर भी सदा रहने वाला नही है ।

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१९॥

शरीर सदा रहने वाले नहीं है, धन भी सदा रहने वाला नहीं है । मृत्यु हमेशा समीप में विद्यमान रहती है, इस लिये धर्म का संग्रह करना चाहिये ।

यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ।
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥२०॥

यदि धन से धर्म नही कमाया, इच्छाओं की पूर्ति नहीं की और यश की वृद्धि नहीं की, और जिसे यहीं छोड़कर चले जाना है, तो उस धन का दान क्यों नहीं किया जाता ?

जीवन्ति जीविते यस्य विप्रा मित्राणि बान्धवाः ।
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥२१॥

जिस के जीने से ब्राह्मण, मित्र और बान्धव जीवित रहते है, उसी का जीवन सफल है, अपने लिये कौन नहीं जीता ।

पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः ।
किं कायेन सुगुप्तेन बलिना चिरजीविना ॥२२॥

केवल अपनी उदरपूर्ति करने वाले पशु भी तो जीते है । इस लिये भली प्रकार रक्षा किये हुए, बलवान् और चिरकाल तक जीने वाले शरीर से क्या लाभ ?

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥२३॥

एक ग्रास में से आधा ग्रास भी आवश्यकता वाले को क्यों नहीं दिया जाता ? मन चाहा वैभव कब किसके पास हो सकेगा ?

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ।।२४।।

दान न करने वाला पुरुष त्यागी है, क्योंकि वह धन को (इस लोक में) छोड़कर चला जाता है। दान देने वाले को मैं कृपण (कंजूस) समझता हूं, क्योंकि वह मरकर भी उस धन को नहीं छोड़ता (अर्थात् वह अगले जन्म में भी उसे मिल जाता है)।

प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न सो मृतः ।
अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ।।२५।।

प्राण तो सभी को छोड़ने है, पर जो (दान आदि करके) कृतार्थ हो गया है, वह नही मरता। पर जो कृतार्थ हुए बिना ही मर जाता है, वह गधे के समान है ।

अनाहूतेषु यद्दत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ।
भविष्यति युगस्यान्तस्तस्यान्तो न भविष्यति ।।२६।।

जो दान विना बुलाए दिया जाता है, और जो बिना माँगे दिया जाता है, युग का अन्त तो हो जाएगा पर उस (दान) का अन्त नहीं होगा ।

मृतवत्सा यथा गौश्च तृष्णालोभेन दुह्यते ।
परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ।।२७।।

जिस प्रकार मरे हुए बछड़े वाली गऊ तृष्णा और लोभ के कारण दुही जाती है, (उसी प्रकार) आपस में दिये हुए दान (जो आदान की इच्छा से दिये जाते है) लोकयात्रा के लिये है, धर्म के लिये नही ।

अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते।
पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनन्तकम् ।।२८।।

अशुभ की निवृत्ति को दृष्टि में न रखकर जो दान दिया जाता है, और जिस दान के फल का भोक्ता नहीं देखा जाता (अर्थात् जो निष्काम भाव से दिया जाता है) वह दान शाश्वत होता है। ऐसे दानी का पुनरागमन नहीं होता ।

मातापितृषु यद्दद्याद् भ्रातृषु श्वशुरेषु च ।
जायापत्येषु यद्दद्यात् सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ।।२९।।

जो दान माता-पिता को दिया जाए, भाइयों और श्वसुर आदि को दिया जाए, पत्नी या सन्तानो को दिया जाए, वह स्वर्ग का अनन्त सोपान है ।

पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ।
भगिन्यां शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥३०॥

पिता को दिया हुआ दान सौ गुना फल वाला, माता को दिया हुआ हजार गुना फल वाला, बहिन को दिया हुआ एक लाख गुना फल वाला और भाई को दिया हुआ अक्षय फल वाला होता है ।

अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो मुनीश्वराः ।
आगमिष्यति यत् पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥३१॥

हे मुनीश्वरो ! ब्राह्मणों को प्रतिदिन देना चाहिये । जो (दान का) पात्र (=अधिकारी) आजाएगा, वह पात्र तार देगा ।

किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित् पात्रं तपोमयम् ।
पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥३२॥

कोई पात्र वेदमय (वेदों का ज्ञानी) होता है, कोई पात्र तपोमय (तपस्या करने वाला) होता है । पात्रों मे उत्तम पात्र वह होता है, जिसके पेट में शूद्र का अन्न नहीं जाता ।

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चाऽपि गुणान्वितः ।
गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥३३॥

जिसके घर में मूर्ख (ब्राह्मण) हो और गुणी (ब्राह्मण) घर से दूर हो, उसे गुणी को ही देना चाहिये । मूर्ख को न देने से (धर्म का) उल्लङ्घन नहीं होता ।

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥३४॥

देवों के द्रव्य के विनाश से, ब्राह्मणों के धन को छीनने से और ब्राह्मणों का तिरस्कार करने से (उत्तम) कुल भी दुष्ट कुल हो जाते हैं ।

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥३५॥

वेद से हीन ब्राह्मण का उल्लङ्घन करने से ब्राह्मण का उल्लङ्घन नहीं होता, (क्योंकि) प्रज्वलित अग्नि को छोड़कर राख में आहुतियां नहीं दी जातीं ।

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजने चैव दाने च हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ॥३६॥

भोजन और दान के विषय में जो निकटवर्ती वेदपाठी ब्राह्मण का उल्लङ्घन करता है, वह तीन पीढ़ियों तक अपने कुल का विनाश कर देता है ।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥३७॥

जिस प्रकार लकड़ी से बना हुआ हाथी होता है और जिस प्रकार चमड़े से बना हुआ मृग होता है और जो (वेद) न पढ़ने वाला ब्राह्मण होता है, वे तीनो नाममात्र के होते है (अर्थात् वास्तविक हाथी, मृग और ब्राह्मण नहीं होते)।

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥३८॥

जिस प्रकार (मनुष्यो से) सूना कोई ग्राम का स्थल होता है, जिस प्रकार कोई बिना जल का कुआँ होता है, और जो (वेद) न पढ़ने वाला ब्राह्मण होता है, वे तीनों नाममात्र के होते है।

ब्राह्मणेषु च यद्दत्त यच्च वैश्वानरे हुतम् ।
तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥३९॥

जो (धन) ब्राह्मणों को दान मे दिया जाता है और जिस (धन) से अग्नि में हवन किया जाता है, वह धन ही धन कहा गया है, शेष धन निरर्थक है।

सममब्राह्मणे दान द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्रगुणमाचार्ये ह्यनन्तं वेदपारगे ॥४०॥

अब्राह्मण को जो दान दिया जाए वह सामान्य फल वाला होता है। अपने आप को ब्राह्मण बतलाने वाले (अर्थात् जातिमात्र से) ब्राह्मण को दिया हुआ दान दुगने फल वाला होता है। आचार्य को दिया हुआ दान हजार गुना फल वाला होता है। वेदों के पारङ्गत ब्राह्मण को दिया हुआ दान अनन्त फल वाला होता है।

ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारवर्जितः ।
जातिमात्रोपजीवी च स भवेद् ब्राह्मणः समः ॥४१॥

जो ब्राह्मण के बीज से उत्पन्न हुआ हो पर मन्त्रों और संस्कारों से हीन हो, तथा जातिमात्र से ब्राह्मण होने के कारण आजीविका करता हो, वह सम ब्राह्मण होता है।

गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च ।
नाध्यापयति नाधीते स भवेद् ब्राह्मणब्रुवः ॥४२॥

मन्त्रों के द्वारा गर्भाधान आदि से और वेद पढ़ने के लिये गुरु के पास ले

जाने से जिसके संस्कार किये गए हों, पर जो न वेद को पढ़ाता है और न पढ़ता है, वह ब्राह्मणब्रुव होता है।

अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥४३॥

जो अग्निहोत्री है, तपस्वी है और जो कल्प और आरण्यक उपनिषद् आदि रहस्य सहित वेदों को पढ़ाता है, उसे आचार्य कहते हैं।

इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥४४॥

पशुबन्ध और चातुर्मास्य आदि इष्टियों से और अग्निष्टोम आदि यज्ञों से जिसने यजन किया हो वह इष्टवान् कहलाता है।

मीमांसते च यो वेदान् षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः ।
इतिहासपुराणानि स भवेद्वेदपारगः ॥४५॥

जो छः विस्तृत अङ्गों सहित वेदों की और इतिहास एवं पुराणों की मीमांसा करता है वह वेदपारग होता है।

ब्राह्मणा येन जीवन्ति नान्यो वर्णः कथञ्चन ।
ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥४६॥

ब्राह्मण जिस (उत्तम) मार्ग पर चलकर जीवन बिताते हैं, अन्य कोई भी वर्ण उस मार्ग पर चलकर किसी भी प्रकार जीवन नहीं बिता सकता। ऐसे मार्ग पर आरूढ़ होकर कौन अन्य व्यक्ति उस मार्ग को छोड़ने का उत्साह करेगा।

ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम् ।
प्रत्यक्षञ्चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥४७॥

ऐसा वह ब्राह्मण देवों का भी देव होता है, और ब्रह्म-तेज ही लोक का प्रत्यक्ष कारण है।

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निष्कर्करमकण्टकम् ।
वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥४८॥

ब्राह्मण का मुख ककरों से रहित और काँटों से रहित खेत है। मनुष्य इसी में बीजों को बोए। वही सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली खेती है।

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे दापयेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षिप्तं नैव विदुष्यति ॥४९॥

बीज उत्तम खेत में ही बोए, धन सुपात्र को ही देवे। उत्तम खेत और सुपात्र में डाला हुआ (बीज और धन) कभी निरर्थक नही होता।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गृहमागते।
क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्याम. परमां गतिम् ॥५०॥

विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण के घर मे आने पर ओषधियां (=अन्न) क्रीडा करती है, कि हम परम गति को प्राप्त होंगी।

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते।
दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥५१॥

नष्ट हुई पवित्रता वाले, भ्रष्ट हुए व्रत वाले और वेदहीन ब्राह्मण को दिया जाता हुआ अन्न भय से रोता है कि यह दुष्कर्म हो रहा है।

वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत्।
न च मूर्खं निराहार षड्रात्रमुपवासितम् ॥५२॥

वेद से पूर्ण मुख वाले सुतृप्त ब्राह्मण को भी भोजन कराए। मूर्ख ब्राह्मण को छः रातो से उपवास कर रहे निराहार को भी भोजन न कराए।

यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भो द्विजाः।
तानि तस्य प्रजोज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥५३॥

जिस मनुष्य की जो पवित्र वस्तुएं (अन्न आदि) जिस (ब्राह्मण) के उदर में टिकें (अर्थात् रुचिकर और अनुकूल हों), हे द्विजो! वही उसे दी जानी चाहियें। नहीं तो देहधारियों के शरीरों का कोई प्रयोजन नहीं है।

यस्य गेहे सदाऽश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः ॥५४॥

जिस (ब्राह्मण) के घर मे देवता सदा हव्यों को खाते हैं और पितर कव्यों को खाते हैं, उससे बढ़कर और कौन प्राणी हो सकता है।

यद्भुङ्क्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः।
दातुः फलमसङ्ख्यातं प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥५५॥

(दाता के) जिस अन्न को अपने कर्म में लीन, पवित्र, वेदवित् ब्राह्मण खाता है, (दाता के लिए) उसका फल अगण्य है और वह प्रत्येक जन्म में अक्षय रहता है।

हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छन्ति पण्डिताः।
अहं नेच्छामि मुनयः कस्यैताः सर्वसम्पदः ॥५६॥

कुछ पण्डित हाथी, घोड़े, रथ और यान आदि की कामना करते हैं। हे मुनियो! मैं इन्हें नहीं चाहता। ये सारी सम्पदाएं किस की हैं? अर्थात् किसी की नहीं।

वेदलाङ्गलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषु सत्सु च।
यत्पुरा पातितं बीजं तस्यैताः सस्यसम्पदः ॥५७॥

पूर्व काल में वेदरूपी हल से जोते हुए ब्राह्मणों और सज्जनों में जो बीज डाला गया था, ये सस्य-सम्पदाएं उसी बीज से उत्पन्न हुई हैं।

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥५८॥

सैकड़ों में कोई एक शूर उत्पन्न होता है, हजारों में कोई एक विद्वान् उत्पन्न होता है, लाखों में कोई एक वक्ता उत्पन्न होता है, दाता कोई उत्पन्न होता भी है या नहीं, इसका कोई पता नहीं। (अर्थात् दाता का जन्म दुर्लभ है)।

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥५९॥

युद्ध में विजय प्राप्त होने से कोई शूर नहीं हो जाता, (शास्त्रों को) पढ़ने से कोई विद्वान् नहीं हो जाता, वाक्पटुता से कोई वक्ता नहीं हो जाता और धन का दान करने से कोई दाता नहीं हो जाता।

इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः।
हितप्रियोक्तिभिर्वक्ता दाता सम्मानदानतः ॥६०॥

इन्द्रियों को जीतने से मनुष्य शूर होता है, जो धर्म का आचरण करता है वह विद्वान् होता है, हितकर और प्यारे वचनों से वक्ता होता है और दूसरों को सम्मान देने से दाता होता है।

यद्येकपङ्क्त्यां विषमं ददाति
स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः।
वेदेषु दृष्टं ऋषिभिश्च गीतम्
तद् ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥६१॥

यदि स्नेह के कारण, भय के कारण अथवा धन के कारण एक ही पङ्क्ति में (भोजन कर रहे ब्राह्मणों को) असमान (अन्न) देता है, तो उसे मुनि ब्रह्महत्या कहते हैं। यही बात वेदों में देखी गई है और ऋषियों के द्वारा गाई गई है।

ऊषरे वापितं वीजं भिन्नभाण्डेषु गोदुहम् ।
हुत भस्मनि हव्यञ्च मूर्खे दानमशाश्वतम् ।।६२।।

ऊषर में बोया हुआ बीज, फूटे पात्रों में दुहा हुआ गऊ का दूध, राख में डाली हुई आहुति और मूर्ख को दिया हुआ दान नाशवान् होता है ।

मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विज शूद्रान्नभोजने ।
अहमेवं न जानामि का योनि स गमिष्यति ।।६३।।

मृतक और सूतक के अन्न से पुष्ट हुए अगों वाला और शूद्र द्वारा पकाए अन्न का भोजन करने वाला ब्राह्मण मैं नहीं जानता कि वह किस योनि में जाएगा ।

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ।
स भवेच्छूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ।।६४।।

जो कोई भी मनुष्य यदि उदर में स्थित शूद्र के अन्न के साथ मर जाए, तो वह निश्चय से सूअर बनता है, अथवा उस (शूद्र) के कुल में उत्पन्न हो जाता है ।

गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्त जन्मानि शूकरः ।
श्वा चैव सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ।।६५।।

बारह जन्मों तक गीध, सात जन्मों तक सूअर और सात जन्मों तक कुत्ता बनता है, ऐसा मनु ने कहा है ।

अमृतं ब्राह्मणान्नेन दरिद्रं क्षत्रियस्य च ।
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्व शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ।।६६।।

ब्राह्मण के अन्न से अमृत (मोक्ष), क्षत्रिय के अन्न से दरिद्रता, वैश्य के अन्न से शूद्रता और शूद्र के अन्न से (मनुष्य) नरक को प्राप्त करता है ।

यश्च भुङ्क्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ।।६७।।

और जो मनुष्य एक मास तक निरन्तर शूद्र का अन्न खाए, तो इस जन्म में शूद्रता को प्राप्त करता है, और मरकर कुत्ता उत्पन्न होता है ।

यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ।।६८।।

जिसके लिये शूद्र स्त्री नित्य भोजन पकाती है, अथवा शूद्रा जिसके घर वाली है, पितरों और देवताओं से त्यागा हुआ वह द्विज रौरव नरक में जाता है ।

भाण्डसङ्करसङ्कीर्णा नानासङ्करसङ्कराः ।
योनिसङ्करसङ्कीर्णा निरयं यान्ति मानवाः ॥६९॥

पात्रों के सकर से संकोर्ण (अर्थात् जो किसी भी नीच जाति के पात्रों में भोजन कर लेते है), नाना प्रकार के संकरों के संकर वाले, योनि के संकर से संकीर्ण (अर्थात् किसी भी नीच जाति की स्त्री से संभोग करने वाले) मनुष्य नरक मे जाते हैं ।

पङ्क्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ।
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥७०॥

पंक्तिभेद करने वाला (अर्थात् कम या अधिक परोसने वाला), केवल अपने लिये भोजन पकाने वाला, नित्य ही ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, व्यर्थ में हुक्म चलाने वाला और धन लेकर वेद पढ़ाने वाला—ये पांच ब्रह्महत्यारे हैं ।

इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रयत्नतः ।
एतदुक्ताचारवत. पतनं नैव विद्यते ॥७१॥

व्यास के इस मत का नित्य ही प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करना चाहिये । इस कहे हुए आचार वाले मनुष्य का कभी पतन नहीं होता ।

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे गृहस्थाश्रमप्रशंसादिवर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

समाप्ता चेयं व्यासस्मृतिः ।

॥ अथ ॥

॥ शङ्खस्मृतिः ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ ब्राह्मणादीनां कर्मवर्णनम् ।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शङ्खः शास्त्रमथाकरोत् ॥१॥

सृष्टि और संहार करने वाले स्वयम्भू को नमस्कार करके चारों वर्णों की व्यवस्था के हित के लिये शङ्ख (ऋषि) ने (धर्म-)शास्त्र की रचना की ।

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रियाम् ।
प्रतिग्रहञ्चाध्ययनं विप्रः कर्माणि कारयेत् ॥२॥

ब्राह्मण यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद का अध्ययन करना और वेद पढ़ाना—इन कर्मों को करे ।

दानमध्ययनञ्चैव यजनञ्च यथाविधि ।
क्षत्रियस्य तु वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥३॥

दान देना, वेद पढ़ना और विधिपूर्वक यज्ञ करना—क्षत्रिय और वैश्य का यह (सामान्य) कर्म कहा गया है ।

क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्तितम् ॥४॥

क्षत्रिय का प्रजाओं का परिपालन और वैश्य का खेती, गोपालन और वाणिज्य विशेष कर्म कहा गया है ।

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि चाप्यथ ।
क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥५॥

शूद्र का कर्म द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा तथा सब प्रकार के शिल्पों को करना है । क्षमा, सत्य, दम, और (मन, वचन एवं कर्म) की पवित्रता सब का सामान्य धर्म कहा गया है ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
तेषां जन्म द्वितीयन्तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनम् ॥६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये द्विजन्मा कहे गए है। मौञ्जीबन्धन इन का दूसरा जन्म बताया गया है।

आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ।
ब्रह्मक्षत्त्रविशाञ्चैव मौञ्जिबन्धनजन्मनि ॥७॥

मौञ्जीबन्धन से होने वाले (द्वितीय) जन्म में आचार्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का पिता कहा गया है, और सावित्री (गायत्री) को माता बताया गया है ।

वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः ।
यावद्वेदेन जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥८॥

बुद्धिमानों के द्वारा वे जन्म से तो शूद्र के समान ही समझे जाने चाहिये, परन्तु उसके पश्चात् जब वेद (के अध्ययन) से उनका (दूसरा) जन्म हो जाता है तो उनको द्विज जानना चाहिये ।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ ब्राह्मणादीना संस्कारवर्णनम् ।

गर्भस्य स्फुटताज्ञाने निषेकः परिकीर्तितः ।
पुरा तु स्पन्दनात् कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥१॥

गर्भ का स्पष्ट रूप से पता चल जाने पर निषेक कर्म (गर्भाधान संस्कार) कहा गया है । गर्भ के स्पन्दित होने से पूर्व बुद्धिमानों के द्वारा पुंसवन संस्कार किया जाना चाहिये ।

षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तो जाते वै जातकर्म च ।
अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ॥२॥

छठे अथवा आठवें (मास) में सीमन्तोन्नयन सस्कार, (शिशु का) जन्म हो जाने पर जातकर्म सस्कार और (तत्पश्चात् सूतक का) अशौच बीत जाने पर नामकरण-संस्कार का विधान है ।

नामधेयञ्च कर्तव्यं वर्णानाञ्च समाक्षरम् ।
माङ्गल्यं ब्राह्मणस्योक्त क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्त शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥३॥

नाम अक्षरों की सम संख्या के साथ रखा जाना चाहिये, और वह ब्राह्मण का कल्याणसूचक, क्षत्रिय का बल से युक्त, वैश्य का धन से युक्त और शूद्र का घृणास्पद होना बताया है ।

शर्मान्त ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।
धनान्तं चैव वैश्यस्य दासान्त वान्त्यजन्मनः ॥४॥

ब्राह्मण का नाम शर्मन् अन्त वाला, क्षत्रिय का वर्मन् अन्त वाला, वैश्य का धन अन्त वाला और शूद्र का दास अन्त वाला कहा गया है ।

चतुर्थे मासि कर्तव्यमादित्यस्य प्रदर्शनम् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥५॥

चौथे मास में आदित्य-दर्शन (बहिर्निष्क्रमण अथवा देशाटन) संस्कार किया जाना चाहिये। छठे मास में अन्नप्राशन और कुल की रीति के अनुसार चूड़ाकरण किया जाना चाहिये ।

गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्य ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥६॥

गर्भ से आरम्भ करके आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार किया जाना चाहिये, गर्भ से आरम्भ करके ग्यारहवे वर्ष में क्षत्रिय का और गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य का उपनयन संस्कार किया जाना चाहिये ।

षोडशाब्दस्तु विप्रस्य द्वाविंशः क्षत्रियस्य तु ।
विंशतिः सचतुष्का च वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥७॥

ब्राह्मण (के उपनयन) की अन्तिम सीमा सोलह वर्ष, क्षत्रिय की बाईस वर्ष, और वैश्य की चौबीस वर्ष बताई गई है ।

नाभिभाषेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तयेत् ।
विज्ञातव्यास्त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृता ।
सावित्रीपतिता व्रात्याः सर्वधर्मबहिष्कृता ॥८॥

इस से आगे (गए उनको) गायत्री मन्त्र का उपदेश न करे और उन्हें वापस लौटा दे । समय के अनुसार संस्कार न किये हुए ये तीनों वर्णों के लोग सावित्री-पतित, व्रात्य और सब धर्मों से बहिष्कृत जाने जाने चाहियें ।

मौञ्जी ज्या शणतान्तवी क्रमान्मौञ्जी प्रकीर्तिता ।
मार्गवैयाघ्रवास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणाम् ॥९॥

मूंज से बनी हुई, धनुष की प्रत्यञ्चा और सन की डोरी क्रमश (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारी की) मौञ्जी (तड़ागी) बताई गई है। (तीनों वर्णों के) ब्रह्मचारियों के लिये (क्रमशः) मृग, व्याघ्र और बकरे की खालें (धारण करने के लिये) कही गई हैं।

पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ।
केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥१०॥
अवक्राः सत्वचः सर्वे नाग्निदग्धास्तथैव च ।

(ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारियों के लिये क्रमशः)ढाक, पीपल और बेल के दण्ड कहे गए है। वे क्रमशः केशों के स्थान तक, मस्तक तक और मुख तक पहुंचने वाले होने चाहियें। और वे सब के सब सीधे, त्वचा वाले और अग्नि से दग्ध न हुए होने चाहियें।

यज्ञोपवीत कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥११॥

यज्ञोपवीत क्रमशः कपास, क्षुम क्षौर ऊन के होने चाहियें।

आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ।
भैक्षस्य चरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥१२॥

तीनों वर्णों के लिये क्रमशः आदि, मध्य और अन्त में भवत् शब्द के प्रयोग से युक्त भिक्षाचरण कहा गया है। (अर्थात् भिक्षा मांगते समय ब्राह्मण कहे—भवति भिक्षां देहि, क्षत्रिय कहे—भिक्षां भवति देहि, और वैश्य कहे—भिक्षां देहि भवति।)

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ ब्रह्मचर्याद्याचारवर्णनम् ।

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥१॥

गुरु शिष्य का उपनयन-संस्कार करके उसको आरम्भ से शौच, आचार यज्ञक र्म और सन्ध्योपासना आदि की शिक्षा दे।

स गुरुर्यः क्रिया कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।
भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥२॥

वही गुरु होता है जो इन क्रियाओं को करके उसे वेद प्रदान करता है । जो शुल्क लेकर अध्यापन-कार्य करता है, वह उपाध्याय कहलाता है ।

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयाः सदा नृणाम् ।
क्रियास्तस्याऽफलाः सर्वा यस्यैतेऽनादृतास्त्रयः ॥३॥

माता, पिता और गुरु मनुष्यों के लिये सदा पूजनीय है । उसकी सभी क्रियाए निष्फल हैं, जो इन तीनो का आदर नहीं करता ।

प्रयतः कल्यमुत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ।
कुर्वीत प्रयतो भक्त्या गुरूणामभिवादनम् ॥४॥

संयमपूर्वक प्रातःकाल उठकर, स्नान करके, अग्नि में यजन करके शान्तचित्त होकर, भक्ति के साथ गुरुजनों का अभिवादन करे ।

अनुज्ञातश्च गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ।
कृत्वा ब्रह्माञ्जलिं पश्यन् गुरोर्वदनमानत. ॥५॥

उसके पश्चात् गुरु से आज्ञा लेकर, ब्रह्माञ्जलि बनाकर, नतमस्तक हो गुरु के मुख को निहारते हुए स्वाध्याय करे ।

ब्रह्मावसाने प्रारम्भे प्रणवञ्च प्रकीर्तयेत् ।
अनध्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥६॥

वेद(-पाठ) के आरम्भ और अवसान में प्रणव (ओम्) का उच्चारण करे । अनध्यायों में अध्ययन का प्रयत्नपूर्वक त्याग करे ।

चतुर्द्दशीं पञ्चदशीमष्टमीं राहुसूतकम् ।
उल्कापातं महीकम्पमशौचं ग्रामविप्लवम् ॥७॥
इन्द्रप्रयाग सुरत घनसंघातनिःस्वनम् ।
वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान् विवर्जयेत् ॥८॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी (अमावस्या और पूर्णिमा), राहुद्वारा सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण होने पर, उल्कापात, भूकम्प, (मृत्यु आदि के) अशौच में, ग्राम के अन्दर विप्लव होने पर, इन्द्र के उत्सव मे, काम की भावना जागृत होने पर, मेघों की गर्जना में, बाजों के कोलाहल में और युद्ध के समय वेदाध्ययन का परित्याग करे ।

नाधीयीताभियुक्तोऽपि प्रयत्नान्न च वेगतः ।
देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥९॥

अनुरोध किये जाने पर भी देवालय, वल्मीक, श्मशान और शव के सान्निध्य में विशेष प्रयत्न और ऊँचे स्वर के साथ वेद का अध्ययन न करे।

भैक्षचर्य्यान्तथा कुर्याद् ब्राह्मणेषु यथाविधि।

गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः प्राश्नीयात् प्राङ्मुखः शुचिः ॥१०॥

विधिपूर्वक ब्राह्मण-परिवारों से भिक्षा मांगे और गुरु से आज्ञा लेकर, पवित्र होकर, पूर्वाभिमुख हो उसको खाए।

हितं प्रियं गुरोः कुर्यादहङ्कारविवर्जितः।

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयित्वा हुताशनम् ॥११॥

पश्चिम सन्ध्या की उपासना करके और अग्नि की पूजा करके, अहङ्कार से रहित होकर गुरु के प्रिय हित को साधे।

अभिवाद्य गुरुं पश्चाद् गुरोर्वचनकृद्भवेत्।

गुरोः पूर्वं समुत्तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा ॥१२॥

उसके पश्चात् गुरु को अभिवादन करके गुरु की आज्ञा का पालन करे। (प्रातः) गुरु से पहले जागे और (रात्रि को) गुरु के पश्चात् शयन करे।

मधुमांसाञ्जनं श्राद्धं गीतं नृत्यञ्च वर्जयेत्।

हिंसापवादवादांश्च स्त्रीलीलां च विशेषतः ॥१३॥

मधु, मांस, अञ्जन, श्राद्धभोजन, गीत, नृत्य, हिंसा, निन्दा, विवाद और विशेष रूप से स्त्रियों के साथ क्रीडा का परित्याग करे।

मेखलामजिनं दण्डं धारयेच्च प्रयत्नतः।

अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥१४॥

ब्रह्मचारी मेखला, चर्म और दण्ड को प्रयत्नपूर्वक धारण करे और नित्य ही संयमपूर्वक (धरती पर) नीचे शयन करे।

एवं कृत्यन्तु कुर्वीत वेदस्वीकरणे बुधः।

गुरवे च धनं दत्त्वा स्नायाच्च तदनन्तरम् ॥१५॥

वेद की प्राप्ति में बुद्धिमान् (ब्रह्मचारी) इस प्रकार कृत्यों को करे और गुरु को (दक्षिणा के रूप में) धन देकर तत्पश्चात् स्नान करे (शिक्षा का समापन करे)।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।

।। चतुर्थोऽध्यायः ।।

अथ विवाहसंस्कारवर्णनम् ।

विन्देत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ।
मातृतः पञ्चमीञ्चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ।।१।।

(विद्या-स्नान हो जाने के पश्चात्) द्विज अपने प्रवर और गोत्र से भिन्न प्रवर और गोत्र वाली अथवा माता की पांच और पिता की सात पीढ़ियों से परे वाली भार्या को विधिपूर्वक प्राप्त करे।

ब्राह्मो दैवस्तथैवाऽऽर्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।।२।।

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच – ये आठ प्रकार के विवाह है। इनमें से आठवां अर्थात् पैशाच सबसे निकृष्ट है।

एते धर्म्यास्तु चत्वारः पूर्वे विप्रे प्रकीर्तिताः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।।३।।

इनमें से पहले चार धर्मसंगत हैं और ब्राह्मण के लिए कहे गए है। गान्धर्व और राक्षस विवाह क्षत्रिय के लिये उत्तम बताये गये हैं।

अप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ।
यज्ञेषु ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ।।४।।

जो किसी से स्वयं प्रार्थना करके (बुलाकर) कन्या को दिया जाता है, वह ब्राह्म विवाह कहलाता है। यज्ञों में (कन्या को अलकृत करके) यदि ऋत्विज को दिया जाता है, तो उसे दैव कहते है। वर से दो गउएं लेकर उसे यदि कन्या दी जाती है तो वह आर्ष कहलाता है।

प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ।
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ।।५।।

यह प्रार्थना करके कि तुम दोनो साथ-साथ धर्म का पालन करो, वर को जो कन्या दी जाती है, उसे प्राजापत्य कहते है। वर से धन लेकर उसे जो कन्या दी जाती है उस विवाह को आसुर कहते है। जब वर और कन्या आपस में (स्वेच्छा से) मिल जाते हैं, तो उसे गान्धर्व विवाह कहते है। यदि युद्ध करके कन्या का (बलात्) हरण कर लिया जाए तो उसे राक्षस विवाह कहते हैं। छलपूर्वक कन्या के हरण को पैशाच विवाह कहा जाता है।

तिस्रस्तु भार्य्या विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ।
एकैव भार्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता ।।६।।

ब्राह्मण तीन पत्नियां रख सकता है, क्षत्रिय दो पत्नियां, वैश्य और शूद्र के लिये एक-एक ही पत्नी कही गई है ।

ब्राह्मणी क्षत्त्रिया वैश्या ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिता ।
क्षत्त्रिया चैव वैश्या च क्षत्त्रियस्य विधीयते ।
वैश्यैव भार्य्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ।।७।।

ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कन्या से विवाह करने का विधान है । क्षत्रिय और वैश्य कन्या से क्षत्रिय को विवाह करने का विधान है । वैश्य की पत्नी वैश्य-कन्या ही हो सकती है, और शूद्र की पत्नी शूद्र-कन्या कही गई है ।

आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्य्या द्विजन्मना ।
तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।।८।।

आपत्काल में भी द्विज को शूद्र कन्या को पत्नी नहीं बनाना चाहिये । क्योंकि उस पत्नी से जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

तपस्वी यज्ञशीलश्च सर्वधर्मभृतां वरः ।
ध्रुवं शूद्रत्वमाप्नोति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ।।९।।

जो तपस्वी है, यज्ञशील है और धर्म का पालन करने वालों में सबसे उत्तम है, वह भी (ऐसे शूद्र-कन्या से उत्पन्न होने वाले पुत्र से) तेरह श्राद्ध प्राप्त हो जाने पर निश्चित रूप से शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है ।

नीयते तु सपिण्डत्वं येषां श्राद्धं कुलोद्गतम् ।
सर्वे शूद्रत्वमायान्ति यदि स्वर्गजितास्तु ते ।।१०।।

वे सपिण्ड जन भी, जिनका कुल-परम्परा के अनुसार ऐसे शूद्र कन्या से उत्पन्न होने वाले पुत्र के द्वारा श्राद्ध किया जाता है, चाहे उन्होंने अपने कर्मों से स्वर्ग को भी जीत लिया हो, सब के सब शूद्रत्व को प्राप्त हो जाते हैं ।

सपिण्डीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ।
श्राद्धं द्वादशकं कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ।।११।।
सपिण्डीकरणे चार्हे न च शूद्रस्तमर्हति ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्य्यां विवर्जयेत् ।।१२।।

अपने मृत सम्बन्धी के लिये कुल-परम्परा के अनुसार, बारह मासिक श्राद्ध करने के पश्चात् जब तेरहवें श्राद्ध की उपस्थिति हो जाती है और सपिण्डीकरण श्राद्ध भी करणीय होता है, शूद्र-कन्या से उत्पन्न पुत्र उस श्राद्ध को करने का अधिकारी नहीं है। इस लिये सब प्रकार के प्रयत्न द्वारा शूद्र कन्या को भार्या बनाने का परित्याग करना चाहिये।

पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात् क्षत्रिया शरम् ।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वैदले त्वग्रजन्मनः ॥१३॥

सवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) कन्याओं के विवाहों में उनका हाथ ग्रहण (पाणिग्रहण) किया जाता है। और कन्याएं क्रमशः ब्राह्मण कन्या दो भिक्षापात्र, क्षत्रिय कन्या वाण और वैश्य कन्या पशु हांकने का डंडा (प्रतोद) ग्रहण करती है।

सा भार्य्या या वहेदग्निं सा भार्य्या या पतिव्रता ।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या प्रजावती ॥१४॥

पत्नी वह है जो अपने पति के साथ यज्ञ में भागीदार हो, पत्नी वह है जो पति के व्रत वाली हो, पत्नी वह है जिसे पति प्राणों से भी प्यारा हो, पत्नी वह है जो सन्तान वाली हो।

लालनीया सदा भार्य्या ताडनीया तथैव च ।
लालिता ताडिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥१५॥

पत्नी सदा लालन तथा ताड़न के योग्य है। लालन और ताड़न से ही स्त्री लक्ष्मी बनती है, अन्यथा नहीं।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमहायज्ञाः गृहाश्रमिणां प्रशंसातिथिवर्णनञ्च ।

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च तस्य पापस्य शान्तये ॥१॥
पञ्चयज्ञविधानञ्च गृही नित्यं न हापयेत् ।
पञ्चयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥२॥

गृहस्थ के घर में पांच वध्यस्थल हैं—चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखल और जल का घड़ा। उनसे उत्पन्न होने वाले पाप से बचने के लिये गृहस्थ कभी

पञ्चमहायज्ञों के विधान का त्याग न करे। उसका वह पाप पांच यज्ञों के अनुष्ठान से नष्ट हो जाता है।

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च।
ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥३॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और नृयज्ञ—ये पांच यज्ञ कहे गए है।

होमो दैवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिण्डक्रिया स्मृतः।
स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥४॥

होम को देवयज्ञ कहते हैं, (भूतों को) बलि देने को भूतयज्ञ कहते हैं, (पितरों को) पिण्ड देने को पितृयज्ञ कहते है, अपने वेद के अध्ययन को ब्रह्मयज्ञ कहते है, और अतिथिपूजा को नृयज्ञ कहा जाता है।

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः।
गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥५॥

वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा ब्राह्मण—ये सब के सब यथाविधि गृहस्थ की कृपा से जीवित रहते है।

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।
दाता चैव गृहस्थः स्यात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥६॥

गृहस्थ ही यज्ञ करता है, गृहस्थ ही तप तपता है, गृहस्थ ही दान देता है, इस लिये गृहस्थ आश्रम में वास करने वाला उत्तम है।

यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा।
अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥७॥

जिस प्रकार पति स्त्रियों का स्वामी है और ब्राह्मण वर्णों का स्वामी है, उसी प्रकार अतिथि इस गृहस्थ का स्वामी माना गया है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥८॥

नारी न तो व्रतों से, न उपवासों से और न ही विविध प्रकार के धर्माचरण से स्वर्ग को प्राप्त करती है। वह तो पति की पूजा से ही स्वर्ग को प्राप्त करती है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः।
राजा स्वर्गमाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥९॥

राजा न तो व्रतों से, न उपवासों से और न ही विविध प्रकार के यज्ञों से

स्वर्ग को प्राप्त करता है। वह तो (प्रजाओं के) परिपालन से ही स्वर्ग को प्राप्त करता है।

न स्नानेन न होमेन नैवाग्निपरितर्पणात् ।
ब्रह्मचारी दिव याति स याति गुरुपूजनात् ।।१०।।

न स्नान से, न होम से और न ही अग्नि की पूजा करने से ब्रह्मचारी स्वर्ग में जाता है। वह तो गुरु की पूजा से स्वर्ग में जाता है।

नाग्निशुश्रूषया क्षान्त्या स्नानेन विविधेन च ।
वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ।।११।।

न अग्नि की पूजा से, न सहनशीलता से, और न ही विविध प्रकार के स्नान से वानप्रस्थ स्वर्ग में जाता है। वह तो भोजन के उल्लघन (उपवास) से स्वर्ग में जाता है।

न भैक्षैर्न च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च ।
यतिः सिद्धिमवाप्नोति योगेनाऽऽप्नोत्यनुत्तमाम् ।।१२।।

संन्यासी न तो भिक्षाचरण से, न मौन से और न ही एकान्तवास से सिद्धि को प्राप्त करता है। योग के द्वारा ही वह श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करता है।

न यज्ञैर्दक्षिणाभिश्च वह्निशुश्रूषया न च ।
गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ।।१३।।

गृहस्थ जिस प्रकार से अतिथि-पूजा के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करता है, उस प्रकार वह न तो यज्ञों से, न दक्षिणाओं से और न ही अग्नि की सेवा से स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम् ।
आहारशयनाद्येन विधिवत् परिपूजयेत् ।।१४।।

इस लिये गृहस्थ सब प्रकार के प्रयत्नों से (घर में) आए हुए अतिथि की भोजन, शयन आदि के द्वारा विधिवत् पूजा करे।

सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दर्शश्च पौर्णमासश्च जुहुयात् विधिवत् तथा ।।१५।।

साय और प्रातः विधि के अनुसार अग्निहोत्र करे। उसी प्रकार (अमावस्या को होने वाले) दर्श और (पूर्णिमा को होने वाले) पौर्णमास यज्ञ का विधि-विधान के साथ यजन करे।

यज्ञैर्वा पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ।
त्रैवार्षिकाधिकान्नेन पिबेत् सोममतन्द्रितः ॥१६॥

यदि गृहस्थ के घर में तीन वर्ष या उससे अधिक समय के लिये अन्न है, तो वह (अश्वमेध आदि) पशुबन्ध यज्ञों, चातुर्मास्य यज्ञो तथा अन्य यज्ञों के द्वारा आलस्य-रहित होकर सोम का पान करे।

इष्टिं वैश्वानरीं कुर्य्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः ।
न भिक्षेत धनं शूद्रात् सर्व्वं दद्यादभीप्सितम् ॥१७॥

थोड़े धन वाला द्विज वैश्वानरी इष्टि का अनुष्ठान करे। शूद्र से धन की याचना न करे। (इस के विपरीत) वह जो कुछ उससे चाहे, वह उसे दे दे।

वृत्तिन्तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव तु ।
कर्मणा जन्मना शुद्धं विधिना च वृणीत तम् ॥१८॥

विद्वान् आजीविका का परित्याग न करे और अपने परम्परागत ऋत्विक् का भी परित्याग न करे। कर्म एवं जन्म से शुद्ध उसका विधि के साथ वरण करे।

एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्मार्जितधनं तथा ।
याजयीत सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात् प्रतिग्रहः ॥१९॥

जो इन गुणों से युक्त हो और जिसने धर्म के द्वारा धन को कमाया हो, ब्राह्मण सदा उसी को यजन कराए और उसी से दान स्वीकार करे।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ वानप्रस्थधर्मनिरूपणं संन्यासधर्मप्रकरणञ्च ।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यं समाश्रयेत् ॥१॥

गृहस्थ जब अपने मुख को झुरियों से व्याप्त और अपने केशों को सफेद देखे और अपने पुत्र के हां जब पुत्र उत्पन्न हो जाए, तो वन का आश्रय ले (अर्थात् वानप्रस्थ बन जाए)।

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तया वाऽनुगतो वनम् ।
अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥२॥

अपनी पत्नी को पुत्रों के पास छोड़कर अथवा उसके द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ वन में चला जाए। नित्य अग्नियों की सेवा करे, और भोजन के लिये वन में उत्पन्न होने वाले आहार को ले आए।

यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत् पितृदेवताः।
तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥३॥

जो भी उसे आहार के रूप में प्राप्त हो उससे पितरों और देवताओं की पूजा करे, और उससे ही आए हुए अतिथि की नित्य पूजा करे।

ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः।
स्वाध्यायञ्च सदा कुर्य्याज्जटाश्च बिभृयात्तथा ॥४॥

ग्राम से (भिक्षा के रूप में) आठ ग्रास लाकर सयम के साथ खाए। सदा स्वाध्याय करे और (सिर पर) जटाओं को धारण करे।

तपसा शोषयेन्नित्यं स्वकञ्चैव कलेवरम्।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥५॥

नित्य ही तप के द्वारा अपने शरीर को सुखा देवे। शीतकाल में गीले वस्त्र धारण करे और ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तप करे।

प्रावृष्याकाशशायी स्यान्नक्ताशी च सदा भवेत्।
चतुर्थकालिको वा स्यात् षष्ठकालिक एव वा ॥६॥

वर्षाकाल में खुले आकाश के नीचे शयन करे। हमेशा रात्रि को भोजन करे, अथवा चौथे काल या छठे काल भोजन करने वाला होवे।

कृच्छ्रैर्वाऽपि नयेत् काल ब्रह्मचर्य्यञ्च पालयेत्।
एव नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥७॥

अथवा कष्टों को सहन करता हुआ ही अपना समय व्यतीत करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। इस प्रकार वन में समय बिताकर ब्रह्माश्रमी (संन्यासी) हो जाए।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ प्राणायामलक्षणधारणध्यानयोगनिरूपणवर्णनम्।

कृत्वेष्टिं विधिवत् पश्चात् सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥१॥

उसके पश्चात् समस्त धन की दक्षिणा वाले यज्ञ का विधिवत् यजन करके और अग्नियों को अपने अन्दर समारोपित करके (वानप्रस्थ) द्विज ब्रह्माश्रमी (सन्यासी) हो जाए।

विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने ।
अतीते पादसम्पाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥२॥

जब ग्राम के घरों से उठने वाला धूआँ छट जाए, चावल आदि निकाल लेने के पश्चात् जब मूसल और ओखल को एक ओर रख दिया जाए, जब चूल्हों में अग्नि के अङ्गारे बुझ जाएं, जब सब भोजन खाकर निवृत्त हो जाएं, जब लोगों का इधर-उधर घूमना बन्द हो जाए, तो संन्यासी नित्य भिक्षा के लिये ग्राम में जाए।

सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्य भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ।
न व्यथेत तथाऽलाभे यथालब्धेन वर्तयेत् ।
नाऽऽस्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात् कस्यचिद् गृहे ॥३॥

सात घरों से भिक्षा माँगे। जिस घर से पहले भिक्षा ली जा चुकी है, उससे भिक्षा न माँगे। न मिलने पर मन में दुखी न हो। जितना मिल जाए उसी से निर्वाह करे। अपने भोजन को अधिक स्वादु न बनाए। किसी अन्य के घर में भोजन न करे।

मृण्मयालाबुपात्राणि यतीनान्तु विनिर्दिशेत् ।
तेषां सम्मार्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैव प्रकीर्तिता ॥४॥

संन्यासियों के लिये मिट्टी से बने हुए और तूँबी के पात्रों का विधान किया गया है। उनकी (क्रमशः) मांजने और जलों से धोने से शुद्धि होती है।

कौपीनाच्छादनं वासो बिभृयादव्यथश्चरन् ।
शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्रसायगृहो मुनिः ॥५॥

बिना कष्ट अनुभव किये विचरण करता हुआ वह केवल गुप्त अंगों को ढकने के लिये वस्त्र को धारण करे। एकान्त स्थान पर निवास करे। जहां सायंकाल हो जाए, वहीं मुनि का घर हो जाता है।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥६॥

दृष्टि से पवित्र किये हुए पाँव को रखे (भली प्रकार देखकर चले)। वस्त्र से छानकर जल पिये। सत्य से पवित्र किये हुए वचन को बोले, और मन से पवित्र आचरण करे।

चन्दनैर्लिप्यतेऽङ्गं वा भस्मचूर्णैर्विगर्हितैः ।
कल्याणमप्यकल्याणं तयोरेव न संश्रयेत् ॥७॥

चाहे शरीर पर चन्दन आदि का लेप हो या निन्दनीय भस्मरेणुओं का, चाहे कल्याण हो चाहे अकल्याण, दोनों में ही आसक्ति न रखे।

सर्वभूतहितो मैत्रः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
ध्यानयोगरतो नित्यं भिक्षुर्यायात् परां गतिम् ॥८॥

सब प्राणियों का भला चाहने वाला, मित्रता के भाव वाला, मिट्टी के ढेले पत्थर और सोने में समान दृष्टि रखने वाला, नित्य ध्यानयोग में लीन भिक्षु, परम गति को प्राप्त होता है।

जन्मना यस्तु निर्विण्णो मरणेन तथैव च ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥९॥

जो जन्म और मृत्यु के कारण निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त हो गया है, और जो आधि (मानसिक रोग) और व्याधि (शारीरिक रोग) के कारण निर्वेद को प्राप्त हो गया है, विद्वान् उसे ब्राह्मण कहते हैं।

अशुचित्वं शरीरस्य प्रियस्य च विपर्ययः ।
गर्भवासे च वसतिस्तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥१०॥

शरीर की अपवित्रता, प्रसन्नता की विपरीतता अर्थात् दुःख, और गर्भ में निवास—इस दृष्टि से ही मनुष्य इस संसार से मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं।

जगदेतन्निराक्रन्दं न तु सारमनर्थकम् ।
भोक्तव्यमिति निर्विण्णो मुच्यते नात्र संशयः ॥११॥

यह संसार त्राणहीन है। इस में कोई सार नहीं। यह अनर्थक है। पर इसे भोगना ही पड़ता है। यह सोचकर जो निर्वेद को प्राप्त हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है। इसमे संशय नहीं है।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारैरसत्सङ्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥१२॥

प्राणायाम से दोषों को भस्म कर दे, मन की एकाग्रता से पाप को, इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेने से बुराइयों के लगाव को और ध्यान से अनीश्वरीय गुणों को भस्म कर दे।

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥१३॥

प्राणों को रोककर प्रणव (ओं), व्याहृति (भूर्भुवः स्व) और शिरोमन्त्र के साथ गायत्री का तीन वार पाठ करे, वह प्राणायाम कहा जाता है।

मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते।
संहारश्चेन्द्रियाणाञ्च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥१४॥

मन का संयम योग को जानने वालों के द्वारा धारणा कहा जाता है, और इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच लेने को प्रत्याहार कहा जाता है।

हृदयस्थस्य योगेन देवदेवस्य दर्शनम्।
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥१५॥

योग के द्वारा हृदय में स्थित देवों के देव (परमेश्वर) का चिन्तन ध्यान कहा गया है। इस से आगे मैं ध्यान-योग का प्रवचन करूंगा।

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
हृदि ज्योतींषि सूर्यश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१६॥

सब देवता हृदय में स्थित है, प्राण हृदय में भली प्रकार स्थित हैं। सभी ज्योतियां और सूर्य हृदय में प्रतिष्ठित है। सब कुछ हृदय में ही भली प्रकार स्थित है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यान्तु विष्णुं पश्येद् धृदिस्थितम् ॥१७॥

अपने शरीर को नीचे की अरणि बनाकर और ओंकार को ऊपर की अरणि बनाकर, ध्यान के लिये उपयुक्त इन दोनों निर्मथनो के द्वारा हृदय में स्थित सर्वव्यापक परमात्मा का चिन्तन करे।

हृद्यर्कश्चन्द्रमाः सूर्य्यः सोमो मध्ये हुताशनः।
तेजोमध्ये स्थितं तत्त्वं तत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥१८॥

हृदय में सूर्य और चन्द्रमा, सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं, और उनके मध्य में अग्नि स्थित है। अग्नि के मध्य में तत्त्व स्थित है। तत्त्व के मध्य में अनश्वर परमात्मा स्थित है।

अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्मास्य जन्तोर्न्निहितो गुहायाम्।
तेजोमयं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥१९॥

सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् इस प्राणी का आत्मा हृदयरूपी गुहा मे स्थित है। परमेश्वर की कृपा से ही शोक से रहित होकर मनुष्य आत्मा की तेजोमय महिमा को देख सकता है।

वासुदेवस्तमोऽन्धानां प्रत्यक्षो नैव जायते ।
अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विषयेप्सुभि. ।।२०।।

अज्ञान के परदे से ढकी हुई और अपने विषयों को चाहने वाली इन्द्रियों के द्वारा अज्ञान से अन्धे लोगो को वासुदेव (सबमें निवास करने वाला परमेश्वर) प्रत्यक्ष नही होता ।

एष वै पुरुषो विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।
एष धाता विधाता च पुराणो निष्कलः शिवः ।।२१।।

यह हृदय रूपी पुरी मे निवास करने वाला आत्मा ही सर्वव्यापक परमेश्वर, व्यक्त और अव्यक्त और सनातन ब्रह्म है। यही धाता और विधाता है, प्राचीनतम है, कलाओं से रहित है और कल्याणकारी है ।

वेदाहमेत पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
मन्त्रैर्विदित्वा न बिभेति मृत्यो-
र्नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ।।२२।।

मै इस महान् अमृत पुरुष को जानता हू, जो सूर्य के वर्ण वाला है, और अन्धकार से परे है। मन्त्रो के द्वारा उसे जानकर मनुष्य मृत्यु से भी भय को प्राप्त नही होता। मोक्ष के लिये इसके सिवा और कोई अन्य मार्ग नहीं है ।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चेमानि विजानीयान्महाभूतानि पण्डितः ।।२३।।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ज्ञानी पुरुष इन पांच भूतों को जाने ।

चक्षुश्श्रोत्रे स्पर्शनञ्च रसना घ्राणमेव च ।
बुद्धीन्द्रियाणि जानीयात् पञ्चेमानि शरीरके ।।२४।।

कान, आंख, त्वचा, रसना और नासिका—शरीर मे इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों को जाने ।

शब्दो रूपं तथा स्पर्शो रसो गन्धस्तथैव च ।
इन्द्रियस्थान् विजानीयात् पञ्चैव विषयान् बुधः ।।२५।।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ज्ञानी इन्द्रियों से सम्बन्धित इन पांच विषयों को जाने ।

हस्तौ पादावुपस्थञ्च जिह्वा पायुस्तथैव च ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव नित्यमस्मिन् शरीरके ॥२६॥

दो हाथ, दो पांव, जननेन्द्रिय, वाक् और मल-मूत्र के स्थान—ये नित्य ही इस शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियां हैं ।

मनो बुद्धिस्तथैवाऽऽत्मा व्यक्ताव्यक्तं तथैव च ।
इन्द्रियेभ्यः पराणीह चत्वारि प्रवराणि च ॥२७॥

मन, बुद्धि, आत्मा, तथा व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति—ये चारों इन्द्रियों से परे और श्रेष्ठ है ।

चतुर्विंशत्यथैतानि तत्त्वानि कथितानि च ।
तथाऽऽत्मान तद्व्यतीत पुरुषं पञ्चविंशकम् ।
तत्तु ज्ञात्वा विमुच्यन्ते ये जनाः साधुवृत्तयः ॥२८॥

ये चौबीस तत्त्व कहे गए है । और इनसे भी बढ़कर परमात्मा अथवा पुरुष पच्चीसवां तत्त्व है । जो श्रेष्ठ वृत्ति वाले जन हैं, वे उसे जानकर मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं ।

इदन्तु परम गुह्यमेतदक्षरमुत्तमम् ।
अशब्दरसमस्पर्शमरूपं गन्धवर्जितम् ॥२९॥

यह ब्रह्म परम गुह्य, अक्षर और उत्तम है । विना शब्द और विना रस के है, स्पर्श और रूप से हीन है और गन्ध से वर्जित है ।

निर्दुःखमसुखं शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
अजं निरञ्जनं शान्तमव्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ॥३०॥
अनादिनिधनं ब्रह्म तद्विष्णोः परमं पदम् ।
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहबन्धनः ॥३१॥
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।

जो सुख और दुःख से वर्जित है, वही विष्णु का परम पद है । वह अजन्मा, निर्लेप, शान्त, अव्यक्त, ध्रुव और अक्षर है । जो आदि और निधन से हीन ब्रह्म है, वही विष्णु का परम पद है ।जो बुद्धिरूपी सारथि वाला और मनरूपी लगाम के बन्धन वाला है वह इस जीवन-यात्रा के उस पार विष्णु के उस परम पद को प्राप्त कर लेता है ।

बालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ।
तस्यापि शतशो भागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥३२॥

बाल के अग्रभाग के सौ भाग करके फिर उनमें से प्रत्येक के हजार भाग कर लिये जाएं और फिर उनमे से प्रत्येक के सौ भाग कर लिये जाएं, जीवको उस से भी अधिक सूक्ष्म कहा गया है ।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥३३॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥३४॥

इन्द्रियों से विषय परे है, विषयों से मन परे है, मन से बुद्धि परे है और बुद्धि से महान् तत्त्व परे है, महान् तत्त्व से अव्यक्त प्रधान परे है, और अव्यक्त से पुरुष (ब्रह्म) परे है । पुरुष से परे कुछ भी नहीं है । वह चरम सीमा है, वह परम गति है ।

एषु सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यविरलः सदा ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥३५॥

वह सदा अविरल रूप से सब भूतों में विद्यमान है, और सूक्ष्मदर्शियों के द्वारा उत्तम और सूक्ष्म बुद्धि से देखा जाता है ।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ नित्यनैमित्तिकादिस्नानानां लक्षणवर्णनम् ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥१॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण और छठा क्रियास्नान—यह छः प्रकार का स्नान कहा गया है ।

अस्नातः पुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु ।
प्रातः स्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥२॥

बिना स्नान किये मनुष्य जप और अग्निहोम आदि के योग्य नहीं होता । उसके लिये प्रातः स्नान करना होता है । यह नित्य स्नान कहा जाता है ।

चण्डालशवपूयाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ।
स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥३॥

चण्डाल, शव, राध, रजस्वला आदि का स्पर्श करके स्नान के अयोग्य भी जो मनुष्य स्नान करता है, वह स्नान नैमित्तिक कहा जाता है।

पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥४॥

ज्योतिषियो के द्वारा विधिपूर्वक विधान किया हुआ पुष्य आदि नक्षत्रों में किया जाने वाला जो स्नान है वह काम्य कहा गया है। बिना कामना वाला मनुष्य उसे न करे।

जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन् देवताः पितॄन् ।
स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥५॥

पवित्र नामक मन्त्रों के जप की इच्छा वाला, और देवताओं और पितरों को अर्चना करता हुआ मनुष्य जिस स्नान को करे, वह क्रियाङ्ग स्नान कहा गया है।

मलापकर्षणार्थं तु स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥६॥

मैल को दूर करने के लिये उबटना, तेल-मालिश आदि के साथ जो स्नान किया जाता है, उसे मलापकर्षण स्नान कहते है। वह मैल को दूर करने के लिये ही किया जाता है, किसी अन्य प्रयोजन से नहीं।

सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।
क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥७॥

नदियों में, देवताओं के द्वारा खोदे हुए कुण्डों में, तीर्थों में और नदियों में जो स्नान किया जाता है, वह क्रियास्नान कहा गया है, क्योंकि उनमें स्नान करना उत्तम कर्म है।

तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ।
नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥८॥

काम्य, नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग और मलकर्षण—विधि से विधान किये हुए इन स्नानों को भी यथावत् करना चाहिये।

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ।
स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा ॥९॥

तीर्थ के अभाव में आग पर तपाए हुए गर्म जल और दूसरो के द्वारा लाए हुए परोदक जलों से स्नान करना चाहिये।

शरीरशुद्धिर्विज्ञेया न तु स्नानफल लभेत् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं लभेत् ॥१०॥

(किन्तु इन उष्णोदक और परोदक से) शरीर की शुद्धि ही जाननी चाहिये। इनसे स्नान का फल (पुण्य) प्राप्त नहीं होता। (इन) जलों से शरीर ही शुद्ध होते है, जब कि तीर्थों में स्नान करने से (पुण्यरूपी) फल की प्राप्ति होती है।

सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।
स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥११॥

देवताओं के द्वारा खोदी हुई झीलों, तीर्थों और नदियों में स्नान ही (उत्तम) कर्म है। उस स्नान से पुण्य फल की प्राप्ति मानी गई है।

तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् ।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न तु ॥१२॥

किसी मुख्य प्रयोजन के साथ गौण प्रयोजन के रूप में किसी तीर्थ पर जाकर यदि उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करे, तो उस स्नान से उत्पन्न होने वाला फल तो मिल जाता है, किन्तु तीर्थ-यात्रा का फल नहीं मिलता।

सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम् ।
परस्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥१३॥

बुद्धिमानों के द्वारा सभी तीर्थ पुण्य को देने वाले, सदा मनुष्यों के पापों का विनाश करने वाले और परस्पर अनपेक्ष कहे गए हैं।

सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ।
नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥१४॥

सभी झरने, झीलें, पर्वत और सब नदियां पवित्र है, विशेष रूप से गङ्गा।

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१५॥

जिसके दोनों पांव, दोनों हाथ और मन भली प्रकार वश में हैं, जिसके पास विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त करता है।

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥१६॥

पाप करने वाले मनुष्यो के पाप का तीर्थ मे शमन (विनाश) हो जाता है। पवित्र आत्मा वाले मनुष्यो के लिये तीर्थ मनचाहे फल को देने वाला होता है।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ।

।। नवमोऽध्यायः ।

अथ क्रियास्नानविधिवर्णनम् ।

क्रियास्नानं प्रवक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ।
मृद्भिरद्भिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ।।१।।

अब मैं विधिपूर्वक क्रिया-स्नान का यथावत् वर्णन करूंगा। सर्वप्रथम मिट्टी और जलो से विधि के अनुसार शौच करना चाहिये।

जले निमग्न उन्मज्य उपस्पृश्य यथाविधि ।
तीर्थस्यावाहन कुर्य्यात् तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।।२।।

जल में डुबकी लगाकर, बाहर निकल कर, यथाविधि आचमन करके तीर्थ का आवाहन करे, उसका मै पूर्ण रूप से वर्णन करता हूं।

प्रपद्ये वरुण देवमम्भसा पतिमूर्ज्जितम् ।
याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ।।३।।

जलों के शक्तिशाली स्वामी वरुण देव की मैं शरण मे आया हूं। सब पापों को दूर करने के लिये वह मुझे मनचाहे तीर्थ को प्रदान करे।

तीर्थमावाहयिष्यामि सर्व्वाघविनिषूदनम् ।
सान्निध्यमस्मिंस्तोये च क्रियता मदनुग्रहात् ।।४।।

मैं सब पापों का विनाश करने वाले तीर्थ का आह्वान कर रहा हू। वह मुझपर कृपा के लिये इस जल में उपस्थित होवे।

रुद्रान् प्रपद्ये वरदान् सर्व्वानप्सुषदस्तथा ।
सर्व्वानप्सुषदश्चैव प्रपद्ये प्रयतः स्थित. ।।५।।

वर प्रदान करने वाले रुद्रों तथा जल में निवास करने वाले अन्य सभी देवताओं की मै शरण में आता हूं। मैं सयतचित्त होकर जल में निवास करने वाले सभी देवताओं की शरण में स्थित हूं।

देवमप्सुषदं वह्निं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ।
आपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ।।६।।

मैं जलों में निवास करने वाले और पापों का विनाश करने वाले अग्नि देवता की शरण में आता हू। जल पुण्यवान् और पवित्र हैं। मैं उनकी शरण में आता हू।

रुद्राश्चाग्निश्च सर्पश्च वरुणस्त्वाप एव च।
शमयन्त्वाशु मे पापं माञ्च रक्षन्तु सर्वशः ॥७॥

सभी रुद्र, अग्नि, सर्प, वरुण और जल तुरन्त मेरे पाप का शमन करें, और सब प्रकार से मेरी रक्षा करें।

इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यस्ततः संमार्जनं जले।
आपो हिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ॥८॥

इस प्रकार कहने के पश्चात् जल में आपो हिष्ठा इत्यादि तीन ऋचाओं के क्रम से संमार्जन करे।

हिरण्यवर्णेति तिसृभिर्जगतीति चतसृभिः।
शं नो देवीरिति तथा शं न आपस्तथैव च।
इदमापः प्रवहते तथा मन्त्रमुदीरयेत् ॥९॥

हिरण्यवर्ण इत्यादि तीन ऋचाओं से, जगति इत्यादि चार ऋचाओं से संमार्जन करे तथा श नो देवीः, श न आपः, इदमापः प्रवहते इन मन्त्रों का उच्चारण करे।

एवं मन्त्रान्समुच्चार्य च्छन्दांसि ऋषिदेवताः।
अघमर्षणसूक्तञ्च प्रपठेत् प्रयत. सदा ॥१०॥

इस प्रकार मन्त्रों का उच्चारण करके, उनके छन्दों, ऋषियों और देवताओं का उच्चारण कर के, सदा संयतचित्त होकर अघमर्षण सूक्त का भली प्रकार पाठ करे।

छन्दोऽनुष्टुप् च तस्यैव ऋषिश्चैवाघमर्षणः।
देवता भाववृत्तश्च पापक्षये प्रकीर्तितः ॥११॥

अघमर्षण सूक्त का छन्द अनुष्टुप् है। उसका ऋषि अघमर्षण है और देवता भाववृत्त है। यह सूक्त पाप के विनाश के लिये प्रसिद्ध है।

ततोऽम्भसि निमग्नः स्यात् त्रिः पठेदघमर्षणम्।
प्रपद्यान्मूर्द्धनि तथा महाव्याहृतिभिर्जलम् ॥१२॥

उसके पश्चात् जल में डुबकी लगाए, अघमर्षण सूक्त का पाठ करे, तथा महाव्याहृतियों के द्वारा सिर पर पानी डाले।

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३॥

जिस प्रकार क्रतुओं का राजा अश्वमेध सब पापों का विनाश करने वाला है, उसी प्रकार अघमर्षण सूक्त सब पापों का विनाश करने वाला है ।

अनेन विधिना स्नात्वा स्नातवान् धौतवाससा ।
परिवर्तितवासास्तु तीर्थतीरमुपस्पृशेत् ॥१४॥

इस विधि से स्नान करके स्नान करने वाला धुले हुए साफ कपड़े से वस्त्र परिवर्तन करे और तीर्थ के तट पर बैठकर आचमन करे ।

उदकस्याप्रदानात्तु स्नानशाटी न पीडयेत् ।
अनेन विधिना स्नातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥१५॥

पितरों को जल दिये बिना जिस धोती से स्नान किया है उसे न निचोड़े । इस विधि से स्नान करने वाला तीर्थ के फल को प्राप्त करता है ।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

अथाचमनविधिवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ।
कायं कनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥१॥

इससे आगे मैं आचमन की शुभ क्रिया का वर्णन करूंगा । मनीषियों के द्वारा कनिष्ठिका अंगुली के मूल में काय तीर्थ बताया गया है ।

अङ्गुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं प्रकीर्त्तितम् ।
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं पित्र्यं तर्जनिमूलकम् ॥२॥

उसी प्रकार अंगूठे के मूल में प्राजापत्य तीर्थ, अंगुलियों के अग्र भाग में देव तीर्थ और तर्जनी (अंगूठे के पास वाली) अंगुली के मूल में पित्र्य तीर्थ बताया गया है ।

प्राजापत्येन तीर्थेन त्रिः प्राश्नीयाज्जलं द्विजः ।
द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् ॥३॥

द्विज प्राजापत्य तीर्थ से तीन बार जल का पान करे । उसके पश्चात् मुख का दो बार प्रमार्जन करके जलों से इन्द्रियों का स्पर्श करे ।

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।
तालुगाभिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥४॥

हृदय-स्थान तक गए हुए जलों से ब्राह्मण पवित्र हो जाता है, कण्ठ तक गए हुए जलों से क्षत्रिय पवित्र होता है, तालु तक गए हुए जलों से वैश्य पवित्र हो जाता है, तथा मुख के अन्दर तक गए हुए जलों से शूद्र शुद्ध हो जाता है।

अन्तर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ।
उदङ्मुखो वा प्रयतो दिशश्चानवलोकयन् ॥५॥
अद्भिः समुद्धृताभिस्तु पीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।
वह्निना चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥६॥

दोनों भुजाओं को घुटनों के अन्दर किये हुए शान्तचित्त होकर पूर्व की ओर मुख करके बैठे हुए, अथवा संयतचित्त होकर उत्तर की ओर मुख करके, दिशाओं को न देखते हुए, कूएं से निकाले हुए, झाग और बुलबुलों से हीन, अग्नि के द्वारा गर्म न किये हुए और क्षार से हीन जलों के द्वारा आचमन करे।

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ।
अङ्गुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥७॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु श्रवणौ समुपस्पृशेत् ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कन्धद्वयं ततः ॥८॥

अंगूठे और तर्जनी को मिलाकर दोनों नासापुटों को स्पर्श करे, अंगूठे और मध्यमा अंगुली को मिलाकर तत्पश्चात् दोनों आंखों को स्पर्श करे, अंगूठे और अनामिका के द्वारा दोनों कानों को स्पर्श करे, और कन्नो और अंगूठे को मिलाकर दोनो कंधों को स्पर्श करे।

सर्वासामेव योगेन नाभिं च हृदयं तथा ।
संस्पृशेच्च तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥९॥

सभी (अंगूठे और चारों अंगुलियों) के योग से नाभि, हृदय तथा सिर को स्पर्श करे। आचमन की यही विधि है।

त्रिः प्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥१०॥

जब मनुष्य तीन बार जल से आचमन करता है, तो इससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसके (तीनों) देवता प्रसन्न हो जाते है, ऐसा हम ने सुना है।

गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात् ।
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥११॥

परिमार्जन से गंगा और यमुना प्रसन्न हो जाती है, और दोनों नासापुटों के स्पर्श से नासत्य और दस्र (दोनों अश्विकुमार) प्रसन्न हो जाते है ।

स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करौ ।
कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलानलौ ॥१२॥

दोनों नेत्रों का स्पर्श करने से चन्द्र और सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं । तथा दोनों कानों का स्पर्श करने से अग्नि और वायु प्रसन्न हो जाते हैं ।

स्कन्धयोः स्पर्शनादस्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।
मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥१३॥

दोनों कन्धों का स्पर्श करने से इसके सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं, और सिर के स्पर्श से तो स्वयं परमेश्वर इसपर प्रसन्न हो जाता है ।

विना यज्ञोपवीतेन यथा मुक्तशिखो द्विजः ।
अप्रक्षालितपादस्तु आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥१४॥

यज्ञोपवीत धारण किये बिना, चोटी को बांधे बिना तथा पाँवों को धोए बिना आचमन किया हुआ मनुष्य भी अपवित्र ही होता है ।

बहिर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तार्पितैर्जलैः ।
सोपानत्कस्तथा तिष्ठन्नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१५॥

हाथों को जानुओं से बाहर निकाल कर, एक हाथ में लिये हुए जलों से, जूतों को पहने हुए और खड़े हुए आचमन करके मनुष्य शुद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता ।

आचम्य च पुराप्रोक्तं तीर्थसंमार्जनं तु यत् ।
उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मन्त्रेणानेन धर्मतः ॥१६॥

पूर्वोक्त विधि से आचमन करके और जो तीर्थसंमार्जन है उसे करके उसके पश्चात् इस मन्त्र के द्वारा धर्मपूर्वक पुनः आचमन करे ।

अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥१७॥

सब ओर मुखों वाला (वह) प्राणियों के अन्दर हृदयरूपी गुफा में विचरण

करता है। तू यज्ञ है, तू वषट्कार है, तू जल है, ज्योति है, रस है और अमृत है।

आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम्।
उदु त्यं जातवेदसमिति मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥१८॥

उसके पश्चात् पुनः आचमन करके सूर्य की ओर मुख करके उदु त्यं जातवेदसम् आदि मन्त्र के साथ जल दे।

एष एव विधिः प्रोक्तः संध्ययोश्च द्विजातिषु।
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥१९॥

द्विजन्मा वर्णों के अन्दर दोनों सन्ध्याओं में यही विधि बताई गई है। पूर्वा (प्रातःकालीन) सन्ध्या को (गायत्री का) जप करता हुआ खड़ा रहे और पश्चिमा सन्ध्या में बैठा रहे।

ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं वाऽथ शक्तितः।
ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥२०॥

उसके पश्चात् पवित्र नामक मन्त्रों का अथवा एक पवित्र का सामर्थ्य के अनुसार जप करे। ऋषियों ने दीर्घ संध्या वाले होने के कारण दीर्घ आयु को प्राप्त किया था।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः।

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

अथाघमर्षणविधिवर्णनम्।

सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम्।
येषां जपैश्च होमैश्च पूयन्ते मानवाः सदा ॥१॥

इस के आगे मैं सब वेदों के पवित्र मन्त्रों का वर्णन करूंगा, जिनके जपों से और होमों से मनुष्य सदा पवित्र होते हैं।

अघमर्षणं देवव्रतं शुद्धवत्यस्तु तत्समा।
कुष्माण्ड्यः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च ॥२।

अघमर्षण सूक्त, देवव्रत सूक्त, शुद्धवती ऋचाएं, कूष्मण्डी ऋचाएं, पावमानी ऋचाएं और सविता देवकी ऋचाएं।

अभीष्टद्रुपदा चैव स्तोमानि व्याहृतीस्तथा।
भारुण्डानि च सामानि गायत्री चोशनं तथा ॥३॥

अभीष्ट द्रुपदा, स्तोम सूक्त, सात व्याहृतियां भारुण्ड साम, गायत्री छन्द में रचे मन्त्र और उषना मन्त्र ।

पुरुषव्रतं भाष च तथा सोमव्रतानि च ।
अब्लिङ्गं बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तममृतं तथा ।।४।।

पुरुषव्रत, भाषा-सूक्त, सोमव्रत मन्त्र, जलविषयक सूक्त, बार्हस्पत्य सूक्त, वाक्-सूक्त और अमृत-सूक्त ।

शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ।
गोसूक्तमश्वसूक्तं च इन्द्रसूक्तं च सामनी ।।५।।

शतरुद्रीय, अथर्वशिर:, त्रिसुपर्ण, महाव्रत, गोसूक्त, अश्वसूक्त, इन्द्रसूक्त और दो साम ।

त्रीण्याज्यदोहानि रथन्तरं च
अग्निव्रतं वामदेवव्रत च ।
एतानि गीतानि पुनन्ति जन्तून्
जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ।।६।।

तीन आज्यदोह, रथन्तर, अग्निव्रत और वामदेवव्रत—ये सब गान किये हुए प्राणियों को पवित्र करते है । और मनुष्य यदि चाहे तो अमरता को प्राप्त कर लेता है ।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ।

।। द्वादशोऽध्यायः ।।

अथ गायत्रीजपविधिवर्णनम् ।

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि, एभ्यः सावित्री विशिष्यते ।।१।।

वेद के पवित्र मन्त्र कह दिये गए है, इन सब से सावित्री (मन्त्र) बढ़कर है ।

नास्त्यघमर्षणात्परमन्तर्जले ।।२।।

जल के अन्दर किये जाने वाले जपों में अघमर्षण से बढ़कर और कोई जप नहीं है ।

न सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ।।३।।

सावित्री के जप के समान और कोई जप नहीं है और व्याहृतियों के द्वारा किये हुए हवन के समान और कोई हवन नहीं है ।

कुशमय्यामासीनः कुशोत्तरीयवान्कुशपवित्रपाणिः प्राङ्-
मुखः सूर्याभिमुखो वाऽक्षमालामुपादाय देवताध्यायी जपं
कुर्यात् ॥४॥

कुशा से बने हुए आसन पर बैठकर, कुशा के उपवीत को उत्तरीय के रूप में धारण करके, कुशा की पवित्रियों से पवित्र हाथ वाला होकर, पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य की ओर मुख करके, अक्षों की माला को लेकर देवता का ध्यान करते हुए जप करे।

सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीवकाना-
मन्यतमेनाऽऽदाय माला कुर्यात् ॥५॥

सोने, मणि, मोती, स्फटिक, पद्माक्ष, रुद्राक्ष, पुत्रजीवक इन में से किसी एक को लेकर उससे माला बनाए।

कुशग्रन्थि कृत्वा वामहस्तोपयमैर्वा गणयेत् ॥६॥

अथवा कुशा की रस्सी मे गांठे लगाकर बाएं हाथ में लेकर उनकी गणना के साथ उसे फिराए।

आदौ देवताऋषिच्छन्दः स्मरेत् ॥७॥

आदि मे देवता, ऋषि और छन्द का स्मरण करे।

ततः सप्रणवां सव्याहृतिकामादावन्ते च
शिरसा गायत्रीमावर्तयेत् ॥८॥

उसके पश्चात् प्रणव सहित, व्याहृतियों सहित और आदि और अन्त में शिर के साथ गायत्री की आवृत्ति (जप) करे।

अथास्या. सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री छन्दः ॥९॥

इस (सावित्री) का देवता सविता है, ऋषि विश्वामित्र है और छन्द गायत्री है।

ॐकार प्रणवाख्यः ॥१०॥

ओंकार का नाम ही प्रणव है।

ॐ भू. । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः ।
ॐ सत्यमिति व्याहृतय. ॥११॥

ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तप । ॐ सत्यम् ये व्याहृतियां हैं।

ओमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति
शिरः ॥१२॥

ओम् आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्—यह शिर है।

भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥१३॥

इस विषय में ये श्लोक हैं :

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥१४॥

जो सदा व्याहृतियों सहित, प्रणव सहित और शिर के साथ गायत्री का जप करते हैं, उन्हे कहीं कोई भय नहीं होता।

शतं जप्त्वा तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी।
सहस्रं जप्त्वा तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत्।
दशसहस्रं जप्त्वा तु सर्वकल्मषनाशिनी ॥१५॥

यदि सौ बार जप किया जाए, तो यह देवी (गायत्री) दिनभर में किये हुए पापों को नष्ट कर देती है। एक हजार बार जप करने से अन्य पातकों से उद्धार कर देती है। यदि दस हजार बार जप किया जाए तो सब प्रकार के महापापों को नष्ट करने वाली हो जाती है।

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
सुरापश्च विशुध्येत लक्षजप्तान्न संशयः ॥१६॥

जो ब्राह्मण सोने की चोरी करता है, ब्राह्मण की हत्या करने वाला है, गुरु की शय्या पर शयन करता है और सुरा का पान करता है, वह इस मन्त्र का एक लाख जप करने से शुद्ध हो जाता है, इस में संशय नहीं है।

प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहित।
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥१७॥

स्नान के समय में एकाग्रचित्त होकर, तीन प्राणायाम करके दिन और रात में किये हुए पाप से तत्क्षण मुक्त हो जाता है।

सव्याहृतिका सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥१८॥

व्याहृतियों सहित, प्रणव सहित प्रतिदिन किये हुए सोलह प्राणायाम मास भर में भ्रूण-हत्यारे को भी पवित्र कर देते है।

हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी।
सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला ॥१९॥

यदि विशेष रूप से गायत्री देवी के द्वारा हवन किया जाए, तो वह सब अभीष्टो को पूरा करने वाली, सब पापो का क्षय करने वाली, वरों को देने वाली और अपने भक्त से प्यार करने वाली हो जाती है।

शान्तिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ।
हन्तुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा ।।२०।।

शान्ति चाहने वाला पवित्र होकर अक्षतों से सावित्री की आहुतियां दे, तथा मृत्यु को दूर भगाने की इच्छा वाला घी से आहुतियां दे।

श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्बिल्वैः काञ्चनकामुकः ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ।।२१।।

श्री की कामना करने वाला कमलों से, सुवर्ण चाहने वाला बिल्वों से तथा ब्रह्मतेज की इच्छा वाला दूध से (गायत्री की) आहुतियां प्रदान करे।

घृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सुसमाहितः ।
गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२२।।

एकाग्रचित्त होकर घी में भीगे हुए तिलों से अग्नि में आहुतियां दे। इस प्रकार दस हजार गायत्रियों के साथ होम करने से सब पापों से मुक्त हो जाता है।

पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ।
अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।।२३।।

पापी भी एक लाख आहुतियों के होम से सब पापों से मुक्त हो जाता है, अभीष्ट लोक को प्राप्त करता है और मन चाही इच्छाओं को पूरा कर लेता है।

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।।२४।।

गायत्री वेदों की माता है। गायत्री पापों का नाश करने वाली है। द्युलोक में और इस लोक में गायत्री से बढ़कर और कुछ भी पवित्र करने वाला नही है।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।।२५।।

नरक-सागर में पड़े हुओं के लिये देवी (गायत्री) हाथ पकड़कर रक्षा प्रदान करने वाली है। इस लिये ब्राह्मण संयमी और पवित्र होकर सदा उसका अभ्यास करे।

गायत्रीजाप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ।
तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥२६॥

गायत्री के जप में लगे हुए मनुष्य को हव्य (देवताओं के लिये बनाए हुए अन्न) और कव्य (पितरों के लिये बनाए हुए अन्न) से भोजन कराए। उसके अन्दर पाप इस प्रकार नहीं ठहर सकता, जिस प्रकार जल कमल के पत्ते पर नहीं ठहर सकता।

जपेनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥२७॥

जप के द्वारा ही ब्राह्मण सिद्धि को प्राप्त होता है, इस में संशय नहीं है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण और कुछ करे या न करे। ऐसा ब्राह्मण मैत्र (पुरुष-पूर्णता की उच्चतम स्थिति को प्राप्त ब्राह्मण) कहलाता है।

उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।
नोच्चैर्जपं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥२८॥

मुख के अन्दर धीमे स्वर से किया हुआ जप सौ गुणा फल वाला होता है। मानसिक जप हजार गुणा फल वाला होता है। ज्ञानवान् को कभी ऊँचे स्वर से जप नहीं करना चाहिये, विशेष रूप से गायत्री का।

सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ।
गायत्रीजप्यनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥२९॥

सावित्री के जप मे निरत मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है। गायत्री के जप में लगा हुआ मनुष्य मोक्ष के उपाय को पा लेता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ।
गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥३०॥

इस लिये स्नान करके, मन को संयम मे रखकर, सब प्रकार के प्रयत्न से भक्ति के साथ सब पापों का विनाश करने वाली गायत्री का जप करे।

इति शाङ्खीयं धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः।

॥ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ तर्पणविधिवर्णनम् ।

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो
दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तर्पयेत् ॥१॥

स्नान करके जप करने के पश्चात् पूर्व की ओर मुख करके देव तीर्थ से जल देकर देवों को तृप्त करे ।

अथ तर्पणविधि: ॥२॥

अब तर्पण की विधि कहते हैं ।

ॐ भगवन्तं शेषं तर्पयामि ॥३॥

ॐ भगवन्तं शेष तर्पयामि (अब मैं भगवान् शेष का तर्पण करता हूं) ।

कालाग्निरुद्रं तु ततो रुक्मभौमं तथैव च ।
श्वेतभौमं ततः प्रोक्त पातालानां च सप्तकम् ॥४॥

उसके पश्चात् काल, अग्नि और रुद्र, उसके पश्चात् रुक्मभौम, फिर श्वेत-भौम और फिर सात पाताल कहे गए है ।

जम्बुद्वीपं ततः प्रोक्तं शाकद्वीपं ततः परम् ।
गोमेदपुष्करे तद्वच्छाकाख्य च ततः परम् ॥५॥

उसके पश्चात् जम्बुद्वीप बताया गया है, उसके बाद शाकद्वीप, उसी प्रकार गोमेद और पुष्कर, और उसके पश्चात् शाक नामक द्वीप बताया गया है ।

शार्वरं तत: स्वधामानं ततो हिरण्यरोमाणं
ततः कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्पयेत् ॥६॥

उसके पश्चात् शार्वर, फिर स्वधामान फिर हिरण्यरोमा और तत्पश्चात् कल्प तक टिकने वाले लोकों को तृप्त करे ।

लवणोदक ततः क्षीरोद ततो घृतोदं तत इक्षूदं ततः
स्वादूदं तत इति सप्तसमुद्रकं प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदका-
ञ्जलीन्दद्यात्, पुष्पाणि च तथा भक्त्या ॥७॥

उसके पश्चात् लवण-सागर, उसके पश्चात् क्षीर-सागर, तत्पश्चात् घृत-सागर, तत्पश्चात् इक्षु-सागर, तत्पश्चात् स्वादु-सागर आदि क्रम से सात समुद्रों को पुरुषसूक्त के द्वारा प्रत्येक ऋचा के साथ जलाञ्जलि दे, और भक्ति के साथ पुष्प अर्पित करे ।

अथ कृतापसव्यो दक्षिणामुखोऽन्तर्जानु: पित्र्येण
पितृणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं दद्यात् ॥८॥

उसके पश्चात् अपसव्य होकर, दक्षिण की ओर मुंह करके, हाथों को घुटनों के अन्दर करके, पित्र्य-तीर्थ से पितरों को श्राद्ध के अनुसार पर्याप्त जल प्रदान करे ।

सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौदुम्बरेण खड्गपात्रेणान्य-
पात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ॥९॥

सोने के पात्र से, चाँदी के पात्र से, गूलर की लकड़ी से बने पात्र से, गैंडे की खाल से बने पात्र से अथवा अन्य पात्र से पितृतीर्थ को स्पर्श करते हुए जल को (नीचे कहे गए पितरों को) दे।

पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय मात्रे पितामह्यै
प्रपितामह्यै मातामहाय प्रमातामहाय मातामह्यै
प्रमातामह्यै सप्तमात्पुरुषात्पितृपक्षे यावतां नाम
जानीयात्पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरूणां
मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥१०॥

पिता को, पितामह को, प्रपितामह को, माता को, दादी को, परदादी को, (मामा को), नाना को, नानी को और परनानी को—पितृपक्ष में सात पीढ़ियों तक जितनों के नामों को जाने (उन्हें जल दे)। पितृपक्ष वालों का तर्पण करके गुरुजनों का और मातृपक्ष वालों का भी तर्पण करे।

मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबन्धिबान्धवानां कुर्यात्,
तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥११॥

मातृपक्ष वालों का तर्पण करके सम्बन्धियों और बान्धव जनों का तर्पण करे। उनका तर्पण करने के पश्चात् मित्र जनों का तर्पण करे।

भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥१२॥

इस विषय में ये कुछ श्लोक हैं :

विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च।
विना दर्भैश्च मन्त्रैश्च पितृणां नोपतिष्ठते ॥१३॥

बिना चाँदी, सोने और तांबे के पात्रों के, बिना तिलों के, बिना कुशाओं के और बिना मन्त्रों के जल पितरों को प्राप्त नहीं होता।

सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण च।
दत्तमक्षय्यतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥१४॥

सोने और चांदी के पात्रों से, गैंडे और गूलर के पात्रों से पितरों को दिया हुआ तिलोदक अक्षय हो जाता है।

हेम्ना तु सह यद्दत्त क्षीरेण मधुना सह ।
तदप्यक्षय्यतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥१५॥

सोने के साथ, और दूध और मधु के साथ पितरों को दिया हुआ जो तिलोदक है, वह भी अक्षय हो जाता है।

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृणा प्रीतिमावहन् ॥१६॥

अन्न से अथवा जल से, अथवा दूध, मूल और फलों से पितरों को प्रसन्न करता हुआ प्रतिदिन श्राद्ध करे।

स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितृणां तु तिलाम्भसा ।
पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणाति च पितृंस्तथा ॥१७॥

स्नान करके तिलों और जल से पितरों का तर्पण करके पितृयज्ञ को प्राप्त करता है, तथा पितरों को प्रसन्न करता है।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ।

॥ चतुर्दशोऽध्याय ॥

अथ श्राद्धे ब्राह्मणपरीक्षावर्णनम् ।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥१॥

धर्म को जानने वाला द्विज देवकर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे। पितृ-कर्म के उपस्थित हो जाने पर परीक्षा को उचित बताया गया है।

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा ।
ऊनाङ्गा अतिरिक्ताङ्गा ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूपकाः ॥२॥

जो ब्राह्मण निषिद्ध कर्मों को करने वाले है, तथा बिलाव जैसे व्रत वाले हैं, कम अङ्गों वाले या अधिक अङ्गो वाले हैं, वे ब्राह्मण पङ्क्ति (जिसमें ब्राह्मण बैठकर भोजन करते हैं) को दूषित करने वाले है।

गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ।
गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः ॥३॥

जो गुरुजनों के प्रतिकूल हैं, जो वेद और अग्नि (यज्ञकर्म) का विनाश करने वाले है, जो गुरुजनों का त्याग करने वाले है, वे ब्राह्मण पंक्ति को दूषित करने वाले हैं।

अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः ।

शूद्रान्नरससपुष्टा ब्राह्मणा पङ्क्तिदूषकाः ॥४॥

जो अनध्याय काल में अध्ययन करने वाले हैं, पवित्रता और आचार से हीन हैं, शूद्रों के अन्न के रस से पुष्ट होने वाले है, वे ब्राह्मण पंक्ति को दूषित करने वाले हैं।

षडङ्गवित्त्रिसुपर्णो बह्वृचो ज्येष्ठसामगः ।

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निर्ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥५॥

जो ब्राह्मण वेद के छः अङ्गों को जानने वाला है, ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सौ चोदहवें सूक्त के मन्त्र ३-५ के उच्चारण को जानने वाला है, बहुत ऋचाओं को जानने वाला, ज्येष्ठ साम (ताण्ड्य ब्रा० २१.२.३) मन्त्रों का गान करने वाला, नाचिकेत अग्नि में तीन बार यजन करने वाला और पांच पवित्र अग्नियों[1] में यजन करने वाला है, वह पङ्क्ति-पावन है।

ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ।

ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥६॥

जो ब्राह्म-विवाह के अनुसार ब्याही हुई स्त्री की सन्तान है, जो अपनी पुत्री का विवाह ब्राह्म-विवाह की विधि से करने वाला है, और जो ब्राह्म-विवाह की रीति से विवाहित स्त्री का पति है, वह ब्राह्मण पङ्क्ति पावन है।

ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ।

अथर्वाङ्गिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥७॥

जो ऋग्वेद और यजुर्वेद में पारङ्गत है, जो साम मन्त्रों में पारङ्गत है और जो अथर्वाङ्गिरस वेद (=अथर्ववेद) का अध्ययन करने वाला है, वह ब्राह्मण पङ्क्तिपावन है।

नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।

ध्यानशीलो यतिर्विद्वान्ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥८॥

जो नित्य ही योग में रत, विद्वान्, मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को समान दृष्टि से देखने वाला, ध्यानशील, संयमी और ज्ञानी है वह ब्राह्मण पंक्तिपावन है।

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ त्रीन्वा पित्र्ये चोदङ्मुखांस्तथा ।

भोजयेद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥९॥

देवकर्म में पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मणों को, पितृश्राद्ध में उत्तराभिमुख तीन

---

१. अन्वाहार्यपचन अथवा दक्षिण, गार्हपत्य, आवहनीय, सभ्य और आवसथ्य ये पांच पवित्र अग्नियां हैं।

ब्राह्मणों को, अथवा दोनों ही अवसरों पर (इच्छानुसार) अनेक ब्राह्मणों को या एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराए।

भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पङ्‌क्तिपावनम्।
दैवे कृत्वा तु नैवेद्य पश्चाद्वह्नौ तु तत्क्षिपेत् ॥१०॥

अथवा एक ही पंक्तिपावन ब्राह्मण को भोजन खिलाए। दैवकर्म में नैवेद्य तय्यार करने के पश्चात् उसे अग्नि मे डाल दे।

उच्छिष्टसंनिधौ कार्यं पिण्डनिर्वपण बुधैः।
अभावे च तथा कार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥११॥

बुद्धिमानो को पिण्ड देने का कार्य शेष बचे भोजन के निकट करना चाहिये। (पिण्ड-दान के) अभाव में विधि के अनुसार अग्निकार्य करना चाहिये (अर्थात् उस भोजन से अग्नि मे आहुतियां डालनी चाहिये)।

श्राद्ध कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जित.।
उष्णमन्न द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥१२॥

उतावलापन और क्रोध त्यागकर प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करके ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक गर्म भोजन दे।

अन्यत्र पुष्पमूलेभ्य· पीठकेभ्यश्च पण्डितः।
भोजयेद्विविधान्विप्रान् गन्धमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥१३॥

पुष्प, मूल और चौकी आदि को छोड़कर अर्थात् इन से भिन्न स्थानों या आसनों पर बिठाकर विद्वान् द्विज गन्धों और मालाओ से शोभायमान अनेक प्रकार के ब्राह्मणो को भोजन कराए।

यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा।
अनिवेद्य न भोक्तव्य पिण्डमूले कदाचन ॥१४॥

घर मे जो भी भक्ष्य या भोज्य पकाया जाए, उसे पिण्डस्थान पर समर्पित किये बिना न खाए।

उग्रगन्धान्यगन्धानि चैत्यवृक्षभवानि च।
पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥१५॥

तीखी गन्ध वाले, बिना गन्ध वाले, मढी-मसान के वृक्षों पर लगने वाले और जो लाल रग के पुष्प है, वे सब इस कार्य में वर्जित है।

तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः।
ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥१६॥

जल में उत्पन्न होने वाले लाल रंग के पुष्प भी विशेष रूप से देने के योग्य हैं। ऊन से बना सूत्र अथवा कपास से बना नया सूत्र भी देने के योग्य होता है।

दशां विवर्जयेत्प्राज्ञो यद्यप्यहतवस्त्रजाम्।
घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥१७॥

बुने हुए वस्त्र के अग्र भाग को, चाहे वह बिना धुले कपड़े का ही क्यों न हो, बुद्धिमान् छोड़ दे (अर्थात् उससे बत्ती न बनाए)। घृत के साथ अथवा तिल के तेल के साथ दीप देना चाहिये।

धूपार्थं गुग्गुलुं दद्याद् घृतयुक्तं मधूत्कटम्।
चन्दनं च तथा दद्यात्पिष्टं च कुङ्कुमं शुभम् ॥१८॥

धूप के लिये घी से युक्त और मधु से मिश्रित गूगल दे, और चन्दन तथा पिसे हुए पवित्र कुङ्कुम को दे।

भूतृण सुरसं शिग्रु पालकं सिन्धुकं तथा।
कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदाराश्च वर्जयेत् ॥१९॥

भूतृण (एक प्रकार की सुगन्धित घास), सुरस, सूँजना, पालक, सिंधुवार, सीताफल, घिय्या, बैंगन और कचनार का (पितृयज्ञ में) परित्याग करे।

पिप्पली मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम्।
कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥२०॥

पीपल, मिर्च, शलगम, सब प्रकार के बने हुए नमक और बांस के अग्र भाग का परित्याग करे।

राजमाषान्मसूरांश्च कोद्रवान्कोरदूषकान्।
लोहितान्वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत ॥२१॥

राजमाष, मसूर, कोद्रव और कोरदूष नामक अन्नों को, और वृक्षों के लाल गोंदों को श्राद्धकर्म में त्याग दे।

आम्रमामलकीमिक्षुं मृद्वीकादधिदाडिमान्।
विदार्यश्चैव रम्भाद्या दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ॥२२॥

आम, आंवला, गन्ना, अंगूर, दही, अनार, बिदारी कन्द और केला आदि को श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक दे।

धानालाजे मधुयुते सक्तूञ्शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटकबिसेतकान् ॥२३॥

मधु से मिश्रित धान और खीलो को, शक्कर से युक्त सत्तुओ को और सिंघाड़ों एवं भीसो को श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक दे।

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान्।
अभिवाद्य पुनर्विप्राननुव्रज्य विसर्जयेत् ॥२४॥

ब्राह्मणो को श्रद्धापूर्वक भोजन खिलाकर, उन्हें आचमन आदि कराकर, दक्षिणाएं देकर, अभिवादन करके और फिर पीछे-पीछे जाकर विदा करे।

निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः।
श्राद्ध दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥२५॥

श्राद्ध में निमन्त्रित किया हुआ जो ब्राह्मण स्त्री से सभोग करता है, तो श्राद्ध में भोजन करान वाला ओर करने वाला वे दोनों ही बड़े भारी पाप से युक्त हो जाते है।

कालशाकं सशल्कांश्च मांसं वाध्रीणसस्य च।
खड्गमांसं तथाऽनन्तं यम. प्रोवाच धर्मवित् ॥२६॥

ऋतु के अनुसार शाक को, मछली के शल्को को, गेंडे के मांस को और भैसे के मांस को (श्राद्ध में देकर) अनन्त पुण्य का प्राप्त करता है, यह धर्म को जानने वाले यम ने कहा है।

यद्ददाति गयाक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा।
प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥२७॥

जो गया-क्षेत्र में, प्रभास में, पुष्कर मे, प्रयाग में और नैमिषारण्य में श्राद्ध देता है वह सम्पूर्ण अनन्तता को प्राप्त करता है।

गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्याममरकण्टके।
नर्मदाया गयातीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥२८॥

गगा और यमुना के तट पर, विन्ध्य की पयोष्णी (पूर्णा) नामक नदी पर; अमरकण्टक में, नर्मदा पर और गया नदो के तीर पर श्राद्ध देने वाले के लिये सम्पूर्ण अनन्तता बताई गई है।

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुङ्गे महालये।
सप्तवेण्यृषिकूपे च तदप्यक्षय्यमुच्यते ॥२९॥

वाराणसी में, कुरुक्षेत्र में, भृगुतुङ्ग में, महालय काल में, सप्तवेणी और ऋषिकूप में दिया हुआ श्राद्ध भी अक्षय्य कहा गया है।

म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ।
न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥३०॥

म्लेच्छों के देश में, रात्रि में और विशेष रूप से सन्ध्याकाल में बुद्धिमान् श्राद्ध न करे और म्लेच्छों के देश में न जाए।

हस्तिच्छायासु यद्दत्तं यद्दत्तं राहुदर्शने ।
विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥३१॥

जो श्राद्ध गजच्छाया योग में दिया जाता है, जो राहुदर्शन (ग्रहण) में दिया जाता है, जो वैशाख अथवा श्रावण मास के अन्तिम दिन और जो मकर अथवा कर्कट सक्रान्ति में दिया जाता है, वह अनन्तता के लिये कहा गया है।

प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ।
प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥३२॥

प्रोष्ठपदी (भाद्रपद की पूर्णिमा) के बीत जाने पर मघा नक्षत्र से युक्त त्रयोदशी को मधु अथवा खीर से श्राद्ध करे।

प्रजा पुष्टि यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ।
नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥३३॥

पितर गण मनुष्यों के द्वारा दिये हुए श्राद्धों से प्रसन्न होकर सदा सन्तान, पौष्टिकता, कीर्ति, स्वर्ग, नीरोगता और धन प्रदान करते हैं।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ।

॥ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ जननमरणाशौचवर्णनम् ।

जनने मरणे चैव सपिण्डानां द्विजोत्तमः ।
त्र्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥१॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और वेदपाठी है, वह सपिण्डों के जन्म और मरण (सूतक और पातक) मे तीन दिन में शुद्धि को प्राप्त हो जाता है।

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुध्यति ॥२॥

सपिण्डता सातवीं पीढ़ी पर जाकर समाप्त हो जाती है। जो नाममात्र

का ब्राह्मण है (अर्थात् अग्निहोत्री और वेदपाठी नहीं है) वह दस दिन में शुद्ध होता है।

क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुध्यति ।
मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नान्तरा ।।३।।

क्षत्रिय बारह दिन में और वैश्य एक पक्ष (पन्द्रह दिन) में शुद्ध होता है। तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है, इससे पूर्व नहीं।

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति ।
अजातदन्तबाले तु सद्यः शौचं विधीयते ।।४।।

गर्भस्राव होने पर (पिता का सपिण्ड) जितने मास का गर्भ था उतनी ही रात्रियों में शुद्धि को प्राप्त होता है। जिसके दांत नहीं उगे ऐसे बालक की मृत्यु होने पर तत्काल शौच हो जाता है।

अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूडके ।
तथैवानुपनीते तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ।।५।।

जिसका चूड़ाकर्म न हुआ हो, ऐसे बालक की मृत्यु होने पर बान्धव एक दिन-रात में शुद्ध हो जाते हैं। तथा जिस बालक का उपनयन संस्कार न हुआ हो, उसकी मृत्यु होने पर तीन दिन में शुद्ध होते है।

अनूढानां तु कन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ।
अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ।।६।।
मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ।
शुद्धिं समभिगच्छेयुर्नात्र कार्या विचारणा ।।७।।

अविवाहित कन्या और अविवाहित शूद्रों की मृत्यु के विषय में भी तीन दिन मे शुद्धि हो जाती है। किन्तु जिस शूद्र ने अभी विवाह नही किया है और सोलह वर्ष की अवस्था से अधिक का है, यदि उसकी मृत्यु हो जाए तो उसके बान्धव भी एक मास में शुद्धि को प्राप्त होते हैं। इसमें विचार करने की आवश्यकता नही है।

पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ।।८।।

अविवाहिता जो कन्या पिता के घर में रजस्वला हो जाए, उसके मर जाने पर अशौच कभी समाप्त नहीं होता।

हीनवर्णात्तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ।
प्रसवे मरणे तज्जमशौच नोपशाम्यति ॥९॥

जो नारी प्रमादवश हीन वर्ण के पुरुष से (विवाह से पूर्व) बच्चे को जन्म देती है, तो ऐसे बच्चे के जन्म और मरण से उत्पन्न होने वाला अशौच (उस नारी के लिये) कभी समाप्त नहीं होता।

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ।
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥१०॥

दूसरा समान अशौच निश्चय से प्रथम अशौच के साथ समाप्त हो जाता है (अर्थात् दूसरे सूतक का अशौच प्रथम सूतक के साथ और दूसरी मृत्यु का अशौच प्रथम मृत्यु के अशौच के साथ समाप्त हो जाता है)। प्रथम असमान शौच दूसरे असमान शौच के साथ समाप्त होता है (अर्थात् यदि जन्म का अशौच चल रहा हो और इसी बीच मे मरण का अशौच प्रारम्भ हो जाए तो जन्म का अशौच मृत्यु के अशौच के साथ ही समाप्त होगा। इसी प्रकार यदि मृत्यु का अशौच चल रहा हो और जन्म का अशौच प्रारम्भ हो जाए, तो मृत्यु का अशौच जन्म के अशौच के साथ समाप्त होगा), जैसा कि धर्मराज (यम) का कथन है।

देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥११॥

प्रवास में गया हुआ मनुष्य यदि अपने कुल वालों के मरण या जन्म के विषय में सुने, तो सुनने के समय दस दिनों में से जितने दिन शेष रह गए हों उसके लिये उतने दिन का ही अशौच होता है।

अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
तथा संवत्सरेऽतीते स्नान एव विशुध्यति ॥१२॥

यदि सुनने के समय दस दिन का अशौच समाप्त हो गया हो तो उसके लिये तीन दिन का अशौच होता है। यदि जन्म अथवा मरण को एक वर्ष बीत गया हो तो स्नान करने मात्र से ही शुद्ध हो जाता है।

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।
परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ॥१३॥

अनौरस (दत्तक आदि) पुत्रों के विषय में, अपने पति को छोड़कर दूसरे के घर में गई हुई पत्नी के विषय में, और उस पत्नी के विषय में जो पहले किसी अन्य की पत्नी रह चुकी हो, तीन दिनों में शुद्धि होती है।

मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ।
गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु च त्र्यहस्तथा ॥१४॥

नाना के गुजर जाने पर, तथा आचार्य के मर जाने पर, और उन कन्याओं के मर जाने पर जिनका विवाह तो हो चुका था, पर अपने पिता के घर में रह रही थीं, उसी प्रकार से तीन दिन में शुद्धि होती है।

निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ।
आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥१५॥

देश के राजा के मर जाने पर, अपने घर मे दौहित्र के जन्म लेने पर, आचार्य की पत्नी और पुत्रों के मर जाने पर एक दिन में शुद्धि होती है।

मातुले पक्षिणी रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ।
सब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥१६॥

मामा, शिष्य, ऋत्विक्, और उनके बान्धव के मर जाने पर अगले-पिछले दो दिनो सहित एक रात्रि तक अशौच रहता है। ब्रह्मचारी और साङ्गोपाङ्ग वेदो के ज्ञाता के मर जाने पर एक दिन तक अशौच रहता है।

एकरात्रं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च ।
शूद्रे सपिण्डे वर्णानामशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥१७॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों का उनके शूद्र सपिण्ड की मृत्यु हो जाने पर क्रमशः एक दिन, तीन दिन, छः दिन और एक मास तक अशौच माना गया है।

त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ।
वैश्ये सपिण्डे वर्णानामशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥१८॥

इन्हीं वर्णो के वैश्य सपिण्ड की मृत्यु हो जाने पर इन का क्रमशः तीन रात, छः रात, एक पक्ष और एक मास तक अशौच माना गया है।

सपिण्डे क्षत्त्रिये शुद्धिः षड्रात्र ब्राह्मणस्य तु ।
वर्णाना परिशिष्टाना द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥१९॥

सपिण्ड क्षत्रिय के विषय मे ब्राह्मण की छः दिन में शुद्धि होती है, और शेष वर्णो की बारह दिन मे शुद्धि बताई गई है।

सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्वे एवाविशेषतः ।
दशरात्रेण शुध्येयुरित्याह भगवान्यमः ॥२०॥

सपिण्ड ब्राह्मण की मृत्यु होने पर सभी वर्ण अविशेष रूप से दस दिन में शुद्ध होते हैं, ऐसा भगवान् यम ने कहा है।

भृग्वग्न्यनशनाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ।
पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये ॥२१॥

भृगुओं की अग्नि, अनशन और जलो से मरने वालों, आत्महत्या करने वालों, पतितों और जो लोग शस्त्र या विद्युत् से मारे गए हैं, उनका अशौच नहीं होता।

यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ।
नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥२२॥

संन्यासी, व्रत धारण करने वाले, ब्रह्मचारी, राजा, शिल्पी, दीक्षा ग्रहण करने वाले और जो राजा की आज्ञा मे रहने वाले है, इनको अशौच के भागी नहीं कहा गया है।

यस्तु भुङ्क्ते पराशौचे वर्णी सोऽप्यशुचिर्भवेत् ।
अशौचशुद्धौ शुद्धिश्च तस्याप्युक्ता मनीषिभिः ॥२३॥

जो संन्यासी पराए अशौच में भोजन करता है वह भी अशुचि हो जाता है। विद्वानों के द्वारा अशौच की शुद्धि होने पर उसकी शुद्धि कही गई है।

पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते ।
भुक्त्वाऽन्नं म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥२४॥

मनुष्य पराए अशौच में भोजन खाकर कीड़ों की योनि मे उत्पन्न होता है। जिसका अन्न खाकर वह मरता है, वह उसी की योनि में उत्पन्न हो जाता है।

दान प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ।
प्रेतपिण्डक्रियावर्जमशौचे विनिवर्तते ॥२५॥

अशौच में प्रेत को पिण्ड देने की क्रिया को छोड़कर दान देना, दान लेना, हवन, स्वाध्याय और पितृकर्म यह सब निवृत्त हो जाता है।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः ।

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

अथ द्रव्यशुद्धि मृण्मयादिपात्रशुद्धिवर्णनम् ।

मृण्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुध्यति ।
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैश्च ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ॥१॥
संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् ।

मिट्टी से बना प्रत्येक पात्र दोबारा अग्नि मे पकाने से शुद्ध हो जाता है। शराब, मूत्र, विष्ठा, थूक, राध और शोणित से स्पर्श को प्राप्त मिट्टी का बर्तन दोबारा अग्नि मे पकाने से भी शुद्ध नहीं होता।

एतैरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥२॥
शुध्यत्यावर्तितं पश्चादन्यथा केवलाम्भसा ।

इन्हीं वस्तुओं से स्पर्श को प्राप्त तांबे, सोने अथवा चांदी का बर्तन दोबारा पिघला कर बनाने से शुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से अपवित्र होने पर केवल जल से शुद्ध हो जाता है।

आम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा ।
क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य लोहस्य च विनिर्दिशेत् ॥३॥

तांबे, सीसे और जस्ते के पात्रों की शुद्धि तेजाब के पानी से और कांसे और लोहे के पात्रों की शुद्धि क्षार (अल्कली) से बताई गई है।

मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ।
अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ।
शाकमूलफलानां च विदलानां तथैव च ॥४॥

जल मे उत्पन्न होने वाले मोती, मणि और मूंगे से बने, एवं सब प्रकार के पत्थर से बने पात्रों की शुद्धि धोडालने से हो जाती है। साग मूल, फल और दालों की शुद्धि भी इसी प्रकार से हो जाती है।

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
उष्णाम्भसा तथा शुद्धि सस्नेहानां विनिर्दिशेत् ॥५॥

यज्ञकर्म मे यज्ञपात्रों की शुद्धि हाथ से मांजने से और चिकनाई से युक्त पात्रों की शुद्धि गर्म जल से बताई गई है।

शयनासनयानानां स्फ्यशूर्पशकटस्य च ।
शुद्धिः सम्प्रोक्षणाद्यज्ञे कटकेन्धनयोस्तथा ॥६॥

शय्या, आसन, सवारी, स्पय, सूप, और शकट (गाड़ी), एवं चटाई और ईंधन की शुद्धि जल छिड़कने से हो जाती है।

मार्जनाद्वेश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तत्क्षणात्।
संमार्जितेन तोयेन वाससां शुद्धिरिष्यते ॥७॥

घरों की शुद्धि और भूमि की सफाई झाड़ू के द्वारा तुरन्त हो जाती है। जलों के द्वारा धोने से वस्त्रों की शुद्धि मानी गई है।

बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत्।
प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणां च तत्क्षणात् ॥८॥

अधिक मात्रा में अनाजों आदि की शुद्धि जल छिड़कने से बताई गई है। लकड़ी के टुकड़ों को जोड़कर बनाई हुई एवं लकड़ी से बनी हुई अन्य वस्तुओं की शुद्धि भी जल छिड़कने से तत्काल हो जाती है।

सिद्धार्थकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च।
गोवालैः फलपात्राणामस्थ्नां शृङ्गवतां तथा ॥९॥

पशुओं के सींगों और हाथी के दाँतों से बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि सरसों की खल से होती है। तुम्बी आदि फलों, हड्डियों और सींगों से बने पात्रों की शुद्धि गाय के बालों (की कूची) से होती है।

निर्यासानां गुडानां च लवणानां तथैव च।
कुसुम्भकुङ्कुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ॥१०॥
प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः।

गोंदों, गुड़ों तथा लवणों की, कुसुम्भ और कुङ्कुमों की तथा ऊन और कपास की शुद्धि जल के छींटे से कही गई है। ऐसा भगवान् यम का कथन है।

भूमिष्ठमुदकं शुद्धं शुचि तोयं शिलागतम् ॥११॥
वर्णगन्धरसैर्दुष्टैर्वर्जितं यदि तद्भवेत्।
शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव तथाऽऽकरम् ॥१२॥

भूमि में स्थित जल और शिला पर स्थित जल पवित्र माना गया है, यदि वह वर्ण, गन्ध और दुष्ट रसों से रहित है। इस प्रकार नदी में बहता हुआ जल और खान का जल हमेशा ही शुद्ध होता है।

शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे त्वाजाश्वयोर्मुखे।
मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जारश्चाऽऽश्रमे शुचिः ॥१३॥

बाजार मे फैला हुआ विकाऊ सामान शुद्ध होता है। बकरी और घोड़ा मुख में शुद्ध होते है। गऊ मुख को छोड़कर (अन्य अंगों में) शुद्ध होती है। और घरेलू बिल्ली शुद्ध होती है।

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीत कमण्डलु. ।
आत्मन: कथितं शुद्ध न शुद्धं हि परस्य च ॥१४॥

शय्या, भार्या, बच्चा, वस्त्र, यज्ञोपवीत और कमण्डलु अपने ही शुद्ध बताए गए है, पराए शुद्ध नहीं हैं।

नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनां मुखम् ।
रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचि ॥१५॥

नारियो का मुख रात्रि में (सभोग के समय चुम्बन के लिये) पवित्र होता है। बछड़ों का मुख अपनी माताओ के थनों को चूसते समय पवित्र होता है (अर्थात् उनके चूसने से थन झूठे नही होते)। पक्षियो का मुख वृक्ष पर शुद्ध होता है (अर्थात् वृक्ष पर लगे फल पक्षियो के मुख से काटे जाने पर झूठे नहीं होते)। और कुत्तों का मुख शिकार के विषय में सदा पवित्र होता है। (अर्थात् उनके मुँह से काटा हुआ शिकार झूठा नहीं होता)।

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुध्यति ॥१६॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने के पश्चात् पति के लिये शुद्ध हो जाती है। यज्ञकर्म और पितृकर्म के लिये वह पांचवे दिन शुद्ध होती है।

रथ्याकर्दमतोयेन ष्ठीवनाद्येन वाऽप्यथ ।
नाभेरूर्ध्व नर: स्पृष्ट: सद्य: स्नानेन शुध्यति ॥१७॥

गली के कीचड़ और पानी से और थूक आदि से नाभि से ऊपर स्पर्श किया हुआ मनुष्य स्नान के द्वारा तुरन्त शुद्ध हो जाता है।

कृत्वा मूत्र पुरीष वा स्नात्वा भोक्तुमनास्तथा ।
भुक्त्वा क्षुत्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भोऽवगाह्य च॥१८॥
रथ्या वाऽऽक्रम्य वाऽऽचामेद्वासो विपरिधाय च ।

लघुशङ्का और मल-त्याग से निवृत्त होकर, स्नान करके तथा भोजन की इच्छा होने पर, खाकर, थूककर, सोकर, पीकर और जलो का अवगाहन करके, गली मे चलकर और वस्त्रो को धारण करके आचमन करे।

कृत्वा मूत्रपुरीषं च लेपगन्धापहं द्विज: ॥१९॥
उद्धृतेनाम्भसा शौच मृदा चैव समाचरेत् ।

मूत्र और मल का त्याग करने के पश्चात् द्विज मिट्टी के लेप से दुर्गन्ध को दूर करने वाले शौच को स्वयं निकाले हुए जल और मिट्टी के द्वारा करे ।

मेहने मृत्तिकाः सप्त लिङ्गे द्वे परिकीर्तिते ॥२०॥
एकस्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
तिस्रस्तु मृत्तिका देया कृत्वा नखविशोधनम् ॥२१॥
तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्य सर्वदा ।

मल-त्याग करने पर गुदा में सात बार और मूत्र-त्याग के पश्चात् लिंग में दो बार मिट्टी लगाकर शुद्धि करनी चाहिये । (बाएँ) एक हाथ में बीस बार और दोनों हाथों में चौदह बार, और नाखुनों की सफाई करके मिट्टी से तीन बार शुद्धि करनी चाहिये । शुद्धि की कामना वाले पुरुष को पांवों की तीन बार मिट्टी लगाकर शुद्धि करनी चाहिये ।

शौचमेतद् गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥२२॥
त्रिगुणं च वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ।
मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्वाऽऽपूर्यते यया ॥२३॥

यह शौच गृहस्थों के लिये कहा गया है । ब्रह्मचारियों के लिये इससे दो गुणा, वानप्रस्थियों के लिये तीन गुणा और संन्यासियों के लिये चार गुणा शौच का विधान है । और एक बार में इतनी मिट्टी लेनी चाहिये, जिससे अंगुलियों के तीन पोर भर जाएं ।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ।

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथ क्षत्रियादिवधे गवाद्यपहारे व्रतवर्णनम् ।
नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने ।
अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥१॥
ग्रामं विशेच्च भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् ।
एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥२॥
हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
व्रतेनैतेन शुध्यन्ते महापातकिनस्त्विमे ॥३॥

(सुवर्ण आदि की चोरी करने वाला मनुष्य) नित्य ही प्रातः, मध्याह्न और साय तीन काल स्नान करता हुआ वन मे पत्तो की कुटी बनाकर, धरती पर सोने वाला, जटाओं को धारण करने वाला, पत्तो, मूलो और फलो का भोजन करने वाला होकर अपने (पाप)कर्म की घोषणा करता हुआ भिक्षा के लिये ग्राम मे प्रवेश करे। एक काल भोजन करे। इस प्रकार बारह वर्ष बीत जाने पर सुवर्ण की चोरी करने वाला, सुरापान करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला और गुरु की शय्या पर शयन करने वाला—ये सब महा-पातकी इस व्रत से शुद्ध हो जाते है।

यागस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ।
एतदेव व्रत कुर्यादात्रेयीविनिपूदक ॥४॥

याग मे स्थित क्षत्रिय को मारकर, यज्ञ करने वाले वैश्य को मारकर और रजस्वला से बलात्कार करने वाला मनुष्य (प्रायश्चित्त के लिये) इस व्रत को करे।

कूटसाक्ष्यं तथैवोक्त्वा निक्षेपमपह्नुत्य च ।
एतदेव व्रत कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥५॥

झूठी गवाही देकर, धरोहर को हड़प कर और शरणागत का परित्याग करके इसी व्रत को करे।

आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ।
हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥६॥

अग्नि का आधान किये हुए द्विज की पत्नी की हत्या करके, तथा मित्र की हत्या करके और अनजाने में भ्रूणहत्या करके इसी व्रत को करे।

वनस्थं च द्विज हत्वा पार्थिव च कृतागसम् ।
एतदेव व्रतं कुर्याद् द्विगुणं च विशुद्धये ॥७॥

वनवासी ब्राह्मण को मारकर और पापी राजा को मारकर शुद्धि के लिये इसी दुगने व्रत को करे।

क्षत्रियस्य च पादोनं वधेऽर्ध वैश्यघातने ।
अर्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥८॥

क्षत्रिय का वध करने पर पौना, वैश्य का वध करने पर आधा, और इसी प्रकार स्त्री का वध करने पर पुरुष आधा व्रत करे।

पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ।
गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥९॥

शूद्र की हत्या करने पर, रजस्वला से संभोग करने पर, गोवध कर देने पर तथा परस्त्रीगमन करने पर एक चौथाई व्रत करे ।

पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मासं कृत्वा विचक्षणः ।
आरण्यानां वधे तद्वत्तदर्धं तु विधीयते ॥१०॥

ग्राम्य पशुओं को मारकर बुद्धिमान् मनुष्य इस व्रत को एक मास तक करके (शुद्ध होता है), और वन्य पशुओं का वध करने पर इससे आधे (आधेमास के) व्रत का विधान किया गया है।

हत्वा द्विजं तथा सर्पं जलेशयविलेशयान् ।
सप्तरात्रं तथा कुर्याद् व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥११॥

पक्षी और साप को मारकर तथा जल और बिल मे रहने वाले जीवों को मारकर सात दिन तक इस व्रत को इसी प्रकार करे, और ब्रह्महत्या के व्रत को भी इसी प्रकार करे ।

अनस्थ्ना शकटं हत्वा सास्थ्नां दशशतं तथा ।
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥१२॥

छकड़ा भर बिना हड्डी वाले जीवो को मारकर और एक हजार हड्डी वाले जीवों को मारकर मनुष्य पूरे वर्ष तक ब्रह्महत्या के व्रत को करे ।

यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ।
तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१३॥

जिस-जिस वर्ण (के मनुष्य) की आजीविका का विनाश करे, उसी-उसी वर्ण के (मनुष्य के) वध के लिये कहे गए प्रायश्चित्त को करे ।

अपहृत्य तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः ।
प्रायश्चित्तं वधे प्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं चरेत् ॥१४॥

अनजाने में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की भूमि को अपहरण के द्वारा प्राप्त करके ब्राह्मण की अनुमति से उसी प्रायश्चित्त को करे, जो उन के वध के लिये बताया गया है ।

गोऽजाश्वस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च ।
जलापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरव्रतम् ॥१५॥

गऊ, बकरी, घोड़ा, मणि और चाँदी का अपहरण करने पर, एवं जल का अपहरण करने पर एक वर्षभर का व्रत करे ।

तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च ।
संवत्सरार्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥१६॥

तिलों, अनाजों, वस्त्रों, मदिराओं और मांस की चोरी करके सावधान होकर इस व्रत को आधे वर्ष तक करे।

तृणेक्षुकाष्ठतक्राणां रसानामपहारकः।
मासमेक व्रत कुर्याद् गन्धाना सर्पिषा तथा ॥१७॥

घास, ईख, काठ, छाछ और रसों की चोरी करने वाला, तथा गन्धों (मसालों) और घृतों की चोरी करने वाला एक मास तक व्रत करे।

लवणानां गुडाना च मूलानां कुसुमस्य च।
मासार्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥१८॥

लवण, गुड़, मूल और फूलों की चोरी करने वाला सावधान होकर इसी व्रत को आधे मास तक करे।

लौहाना वैदलाना च सूत्राणां चर्मणा तथा।
एकरात्रव्रत कुर्यादेतदेव समाहित. ॥१९॥

लोहे, बांस के टोकरों, सूत और चमड़े की चोरी करके सावधान हो इसी व्रत को एक रातभर करे।

भुक्त्वा पलाण्डुं लशुनं मद्यं च कवकानि च।
नारं मल तथा मांसं विड्वराह खर तथा ॥२०॥
गौधेरकुञ्जरोष्ट्रं च सर्वपञ्चनख तथा।
क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सर व्रतम् ॥२१॥

प्याज, लहसुन, मदिरा, खुम्भ, मनुष्य के मल, तथा घरेलू सूअर और गधे का मांस, गोधा, हाथी, ऊँट, सब प्रकार के पञ्चनखों, मांसाहारी जीव और ग्राम्य कुक्कुट को खाकर वर्ष भरतक इस व्रत को करे।

भक्ष्याः पञ्चनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकाः।
खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद् व्रतम् ॥२२॥

गोधा, कछुआ, सेह, गेंडा और ससा (खरगोश) ये पञ्चनख पशु खाने योग्य हैं। इनको मारकर व्रत करे।

हंसं मद्गुं बकं काकं काकोलं खञ्जरीटकम्।
मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं शुकसारिके ॥२३॥
चक्रवाकं प्लवं कोकं मण्डूकं भुजगं तथा।
मासमेकं व्रतं कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥२४॥

हंस, मद्गु, बगुला, कौआ, काकोल, खञ्जरीटक, मछलीखोर, मछली, बलाका, तोता, मैना, चकवा, प्लव (जल का पक्षी), कोक, मेंढक, और सर्प को खाकर एक मास तक व्रत करे और इनको न खाए।

राजीवान्सिंहतुण्डांश्च शकुलांश्च तथैव च।
पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परिकीर्तितौ ॥२५॥

राजीव, सिंहतुण्ड और शकुल खाप की मछलियों को खाकर भी उपर्युक्त प्रायश्चित्त करे। मछलियों मे पाठीन और रोहित नामक मछलियां खाने के योग्य बताई गई है।

जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखविष्किरान्।
रक्तपादाञ्जालपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥२६॥

जल मे उत्पन्न होने वाले और जल मे विचरने वाले, मुख के अग्रभाग में बने नख वाले पक्षियों को, लाल पांव वाले पक्षियों को, और जाल जैसे पांव वाले पक्षियों को खाकर एक सप्ताह तक व्रत करे।

तित्तिरं च मयूरं च लावकं च कपिञ्जलम्।
वार्ध्रीणसं वर्तकं च भक्ष्यानाह यमस्तथा ॥२७॥

तीतर, मोर, लावा, कपिञ्जल, गैंडे और बत्तख को यम ने खाने के योग्य बताया है।

भुक्त्वा चोभयतोदन्तं तथैकशफदंष्ट्रिणः।
तथा भुक्त्वा तु मांसं वै मासार्ध व्रतमाचरेत् ॥२८॥

दोनों जबड़ों में दांतों वाले, एक खुर वाले, दांतों वाले पशुओं को मारकर तथा उनका मांस खाकर आधेमास तक व्रत करे।

स्वयं मृतं वृथामांसं माहिषं त्वाजमेव च।
गोश्च क्षीरं विवत्सायाः संधिन्याश्च तथा पयः ॥२९॥
संधिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत्।

स्वयं मरे हुए भैंसे और बकरी के बेकार मांस को खाकर, बिना बछड़े वाली गऊ का तथा गाभिन गऊ का दूध पीकर तथा गाभिन गऊ के अमेध्य को खाकर एक पक्ष तक व्रत करे।

क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥३०॥
सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम्।

जो अभक्ष्य दूध है उनसे बने पदार्थों को खाकर बुद्धिमान् सात दिन तक व्रत करे, ऐसा कहा गया है।

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्व्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥३१॥
केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत्।
गुडशुक्त तथा भुक्त्वा त्रिरात्र च व्रती भवेत् ॥३२॥

वृक्षो के लाल गोंदो को तथा काटने से उत्पन्न होने वाले गोंदों को, शुक्त मात्र को, और जो बासी है, और गुड के शुक्त को खाकर तीन दिन तक व्रत करे।

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु यच्चान्यद्दधिसंभवम्।
गुडशुक्तं तु भक्ष्यं स्यात्ससर्पिष्कमिति स्थिति ॥३३॥

शुक्तो मे दही और वे अन्य पदार्थ जो दही से बने है भक्ष्य है। गुड़ से बना वह शुक्त भक्ष्य है, जिसमें घी मिला है। ऐसी स्थिति है।

यवगोधूमजाः सर्वे विकारा. पयसश्च ये।
राजवाडवकुल्य च भक्ष्यं पर्युषितं भवेत् ॥३४॥

जौ और गेहू से बने सब पदार्थ और जो दूध से बने पदार्थ हैं, तथा राजवाडव नामक मृग का मास चाहे बासी भी हो ये सब खाने के योग्य होते है।

राजीवपक्वमासं च सर्वयत्नेन वर्जयेत्।
संवत्सरं व्रतं कुर्यात्प्राश्यैताञ्ज्ञानतस्तु तान् ॥३५॥

राजीव मृग को भूनकर जो कबाब बनाया जाता है, उसे प्रयत्नपूर्वक त्याग दे। जान-बूझ कर ऐसे मांसों को खाकर एक वर्षभर तक व्रत करे।

शूद्रान्न ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रङ्गावतारिणः।
चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्रीमृगजीविनः ॥३६॥

ब्राह्मण शूद्र के अन्न को खाकर, तथा नट, चिकित्सक, नीच मनुष्य और स्त्री एव मृगो से आजीविका कमाने वाले के अन्न को खाकर (एक मास तक व्रत करे)।

षण्डस्य कुलटायाश्च तथा बन्धनचारिणः।
बद्धस्य चैव चोरस्य अवीरायाः स्त्रियस्तथा ॥३७॥

नपुंसक, व्यभिचारिणी स्त्री, बन्धन में बांधने वाले, कैदी, चोर तथा पुत्रहीन स्त्री के अन्न को खाकर (एक मास तक व्रत करे)।

चर्मकारस्य वेणस्य क्लीबस्य पतितस्य च ।
रुक्मकारस्य धूर्तस्य तथा वार्धुषिकस्य च ॥३८॥

चमार, रागी, नामर्द, पतित, सुनार, धूर्त तथा ब्याज से आजीविका करने वाले के (अन्न को खाकर एक मास तक व्रत करे)।

कदर्यस्य नृशंसस्य वेश्याया कितवस्य च ।
गणान्नं भूमिपालान्नमन्नं चैव श्वजीविनाम् ॥३९॥

नीच, निर्दय, वेश्या और जुआरी के अन्न को, गणों के अन्न को, राजा के अन्न को और कुत्तों से आजीविका करने वालों के अन्न को (खाकर एक मास तक व्रत करे)।

मौञ्जिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रतं चरेत् ।
शूद्रस्य सततं भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥४०॥

मूंज से आजीविका करने वाले के अन्न को और सूतिका के अन्न को खाकर एक मास तक व्रत करे। शूद्र के अन्न को लगातार खाकर छः मास तक व्रत करे।

वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत् ।
क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् ॥४१॥

वैश्य के अन्न को इसी प्रकार खाकर तीन मास तक व्रत करे। और क्षत्रिय के अन्न को इसी प्रकार खाकर दो मास तक व्रत करे।

ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत् ।
अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥४२॥

ब्राह्मण के अन्न को खाकर (ब्राह्मण) एक मास तक व्रत करे। सुरा के पात्र में रखे जल को पीकर एक पक्ष तक व्रत करे।

मद्यभाण्डगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ।
शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥४३॥
क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ।
अथ श्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥४४॥

मादक द्रव्यों के पात्रों में रखे हुए जलों को पीकर सात दिन तक व्रत करे। शूद्र का झूठा खाने पर एक मास तक, वैश्य का झूठा खाने पर एक पक्ष तक,

क्षत्रिय का झूठा खाने पर एक सप्ताह तक और ब्राह्मण का झूठा खाने पर एक दिन तक व्रत करे। श्राद्ध मे भोजन करके विद्वान् एक मास तक व्रत करे।

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविन्दति।
व्रत सवत्सर कुर्युर्दातृयाजकपञ्चमा. ॥४५॥

यह बड़ा भाई जिससे पहले छोटा भाई विवाह करता है, वह छोटा भाई जो अपने बड़े भाई से पहले विवाह करता है, वह कन्या जिसके साथ विवाह किया गया है, कन्या का दान करने वाला (पिता) और विवाह संस्कार कराने वाला याजक ये पांचो एक वर्ष तक व्रत का पालन करे।

काकोच्छिष्टं गवाऽऽघ्रात भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत्।
दूषित केशकीटैश्च मूषिकालाङ्गूलेन च ॥४६॥
मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्र तु व्रती भवेत्।

कौए के झूठे, गऊ के द्वारा सूंघे हुए भोजन को खाकर एक पक्ष तक व्रत करे। केशों और कीड़ों से दूषित, चूहों और बन्दरों से दूषित तथा मक्खियों और मच्छरों से दूषित भोजन को खाकर तीन रात तक व्रती बना रहे।

वृथा कृसरसंयावपायसापूपशष्कुली ॥४७॥
भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः।

केवल अपने लिये पकाए हुए कृसर (तिल और चावल मिलाकर बनाई हुई खिचड़ी), संयाव (जौ से बने मीठे भोजन), खीर, पूआ और शश्कुली को खाकर सयतचित्त होकर तीन दिन तक इस व्रत को करे।

नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ॥४८॥
त्रिरात्रं तु व्रत कुर्यात्पुंश्चलीदशनक्षतः।

यदि ब्राह्मण को नीली की लकडी से घाव हो जाए, यदि उसे कुत्ता काट खाए, और यदि उसे वेश्या के दांत से घाव हो जाए तो वह तीन दिन तक व्रत करे।

पादप्रतापनं कृत्वा वह्नि कृत्वा तथाऽप्यध ॥४९॥
कुशैः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत्।

अपने पांवों को अग्नि पर तपाकर, तथा अग्नि को पांवों के नीचे डालकर और कुशाओ से अपने पांवों को मांज कर एक दिन तक व्रती रहे।

नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥५०॥
त्रिरात्रं च व्रतं कुर्य्याच्छित्त्वा गुल्मलतास्तथा।

नीली से रगे हुए वस्त्र को पहनकर, जिसको छूने से स्नान करना योग्य हो उसका अन्न खाकर, झाड़ियों और बेलो को काट कर वह तीन दिन तक व्रत करे ।

अध्यास्य शयनं यानमासन पादुके तथा ।।५१।।
पलाशस्य द्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्र तु व्रती भवेत् ।

ढाक से बनी शय्या पर बैठकर, तथा यान, आसन और खडाऊँ पर आरूढ़ होकर ब्राह्मण तीन दिन तक व्रत करे ।

वाग्दुष्टं भावदुष्ट च भाजने भावदूषिते ।
भुक्त्वाऽन्न ब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्र तु व्रती भवेत् ।।५२।।

विचारों से दूषित पात्र मे वाणी से दूषित और विचारो से दूषित अन्न को खाकर ब्राह्मण तत्पश्चात् तीन दिन तक व्रती बना रहे ।

क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठ प्राणपरायणः ।
सवत्सरव्रत कुर्य्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रदम् ।।५३।।

प्राण बचाने की इच्छा वाला क्षत्रिय युद्ध में पीठ दिखाकर और फल देने वाले वृक्ष को काटकर एक वर्षभर व्रत करे ।

दिवा च मैथुनं गत्वा स्नात्वा नग्नस्तथाऽम्भसि ।
नग्नां परस्त्रिय दृष्ट्वा दिनमेक व्रती भवेत् ।।५४।।

दिन मे स्त्री से सभोग करके और नंगा होकर जल मे स्नान करके, तथा पराई नगी स्त्री को देखकर एक दिन तक व्रत करे ।

क्षिप्त्वाऽग्नावशुचि द्रव्य तदेवाम्भसि मानव. ।
मासमेक व्रत कुर्यादुपक्रुध्य तथा गुरुम् ।।५५।।

अग्नि में अपवित्र द्रव्य को डालकर, तथा उसी द्रव्य को जल मे डालकर और अपने से बड़े पर क्रोध करके मनुष्य एक मास तक व्रत करे ।

पीतावशेषं पानीय पीत्वा च ब्राह्मण क्वचित् ।
त्रिरात्र तु व्रत कुर्याद्वामहस्तेन वा पुन. ।।५६।।

कहीं पीने से शेष बचे पानी को पीकर, अथवा बाएं हाथ से पानी को पीकर ब्राह्मण तीन रात व्रत करे ।

एकपङ्क्त्युपविष्टेषु विषमं यः प्रयच्छति ।
स च तावदसौ पक्ष कुर्यात्तु ब्राह्मणो व्रतम् ।।५७।।

जो एक ही पंक्ति में (भोजन के लिये) बैठे हुए जनों को विषम (न्यूनाधिक) देता है, तो वह ब्राह्मण एक पक्ष तक व्रत करे ।

धारयित्वा तुलाञ्चैव विषम कारयेद्वणिक् ।
सुरालवणमद्यानां दिनमेक वृती भवेत् ।।५८।।

यदि बनिया हाथ में तराजू लेकर कम तोले और सुरा लवण और मद्य का विक्रय करे तो एक दिन का व्रत करे ।

मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महावृतम् ।
विक्रीय पाणिना सद्यस्तिलानि च तथाऽऽचरेत् ।।५६।।

मांस बेचकर वणिक् महाव्रत करे और अपने हाथ से तिलों को बेचकर तुरन्त इसी व्रत को करे ।

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वकार च गरीयसः ।
दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयत. सुसमाहितः ।।६०।।

ब्राह्मण को डांट-डपट कर, अपने से बड़े को तू पुकार कर सयत और शान्तचित्त होकर एक दिन का व्रत करे ।

प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः ।
वर्णानां यद् व्रतं प्रोक्तं तद् व्रतं प्रयतश्चरेत् ।।६१।।

प्रेत के धन को (उत्तराधिकारी के रूप में) लेकर उस के लिये प्रेत-कर्मों को न करके, वर्णों में से प्रत्येक के लिये जो व्रत कहा गया है, उसी व्रत को संयत होकर करे ।

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्धते ।
कृत्वा पापं बुधः कुर्यात्पर्षदोऽनुमतं व्रतम् ।।६२।।

पापकर्म को करके उसे छिपाए नहीं । छिपाया जाता हुआ पाप बढ़ जाता है । पाप को करके बुद्धिमान् परिषद के अनुमत व्रत को करे ।

तस्करश्वापदाकीर्णे बहुव्याधमृगे वने ।
न व्रत ब्राह्मण. कुर्यात्प्राणबाधाभयात्सदा ।।६३।।

चोरों, हिंसक पशुओं, अनेक व्याधों और पशुओं से भरे हुए वन में ब्राह्मण सदा ही प्राणों की बाधा के भय से व्रत न करे ।

सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ।
व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च इत्याह भगवान्यमः ।।६४।।

सर्वत्र अपने जीवन की रक्षा करे, क्योंकि जीवित मनुष्य व्रतों, कृच्छ्रों और दानों से पाप को परे कर देता है। ऐसा भगवान् यम ने कहा है।

शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ।
शरीरात्स्रवते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा ।।६५।।

शरीर धर्म का सर्वस्व है, इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। धर्म शरीर से इस प्रकार स्रवित होता है, जिस प्रकार जल पर्वत से स्रवित होता है।

आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य ब्राह्मणैः सह ।
प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कथंचन ।।६६।।

धर्मशास्त्रों की समीक्षा करके और विद्वानों के साथ विचार-विमर्श करके ही ब्राह्मण प्रायश्चित्त का विधान करे। अपनी इच्छा से कभी न करे।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ।

।। अथाष्टादशोऽध्यायः ।।

अथाघमर्षण-पराक-कृच्छ्रातिकृच्छ्र-सान्तपनादिव्रतम् ।

त्र्यहं त्रिषवणस्नायी स्नाने स्नानेऽघमर्षणम् ।
निमग्नस्त्रिः पठेदप्सु न भुञ्जीत दिनत्रयम् ।।१।।

तीन दिन तक त्रिषवण स्नान करे। प्रत्येक स्नान में जलों में डुबकी लगाकर अघमर्षण का पाठ करे, तीन दिन तक भोजन न करे।

वीरासनं च तिष्ठेत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ।
अघमर्षणमित्येतद् व्रतं सर्वाघनाशनम् ।।२।।

वीरासन में स्थित रहे, दूध देने वाली गऊ को दान में दे। सब पापों का नाश करने वाला यह अघमर्षण व्रत कहा गया है।

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्व्रतम् ।।३।।

प्राजापत्य व्रत को करता हुआ तीन दिन तक सायं-काल में भोजन करे, तीन दिन तक प्रातः-काल में भोजन करे, तीन दिन तक बिना मांगे जो मिले उसे ही खाए और तीन अगले दिनों में कुछ न खाए।

त्र्यहमुष्णं पिबेत्तोयं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षस्त्र्यहं भवेत् ।।४।।

तीन दिन तक गर्म जल पिये, तीन दिन तक गर्म घी पिये और फिर तीन दिन तक गर्म दूध पीकर अगले तीन दिन वायु-भक्षण करता हुआ (अर्थात् बिना कुछ खाए-पिये) रहे।

तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम् ।
द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ।।५।।

यह तप्तकृच्छ्र व्रत जानना चाहिये। इसे ही यदि ठंडे जल, घी आदि के द्वारा करे तो यह शीतकृच्छ्र कहलाता है। बारह दिन के उपवास के साथ किया हुआ व्रत पराक कहलाता है।

विधिनोदकसिद्धानि मासमश्नीत यत्नतः ।
सक्तून् वा सोदकान्मास कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ।।६।।

जल से विधिपूर्वक पकाए हुए अन्नो को यत्नपूर्वक एक मास तक खाए। अथवा जलों के साथ सत्तुओं को एक मास तक खाए। यह वारुण-कृच्छ्र कहलाता है।

बिल्वैरामलकैर्वाऽपि पद्माक्षैरथवा शुभैः ।
मासेन लोकेऽतिकृच्छ्रः कथ्यते बुद्धिसत्तमै. ।।७।।

बेल, आंवला, और पवित्र कमल के बीजों से महीने भर तक जो व्रत किया जाता है, वह लोक में विद्वानों के द्वारा अतिकृच्छ्र कहलाता है।

गोमूत्र गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सातपनं स्मृतम् ।
व्रतैस्तु त्र्यहमभ्यस्तं महासांतपन स्मृतम् ।।८।।

गो-मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशाओ का जल, और एक रात का उपवास, यह कृच्छ्र सांतपन माना जाता है। यदि इनको तीन दिन तक आवृत्ति की जाए तो उसे महासांतपन माना जाता है।

पिण्याकवामतक्राम्बुसक्तूना प्रतिवासरम् ।
उपवासान्तराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ।।९।।

यदि प्रतिदिन उपवास के पश्चात् पिण्याक वाम छाछ और जलों वाले सत्तुओ को खाने का अभ्यास किया जाए, तो वह व्रत तुलापुरुष कहा जाता है।

गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः ।
व्रतं तु यावकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ।।१०।।

सब पापों के विनाश के लिये नित्य शान्तचित्त होकर एक मास तक गोबर को खाते हुए यावक नामक व्रत को करे।

ग्रासं चन्द्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्वर्धयन्सदा।
ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रत चान्द्रायणं चरेत् ॥११॥

चन्द्रमा की कला की वृद्धि के साथ सदा एक-एक ग्रास को बाढ़ाता हुआ भोजन करे, और फिर कला के ह्रास के साथ एक-एक ग्रास को घटाते हुए, इस प्रकार चान्द्रायण व्रत करे।

मुण्डस्त्रिषवणस्नायी अधःशायी जितेन्द्रियः।
स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम् ॥१२॥

सिर मुंडवा कर त्रिषवण स्नान करे, जितेन्द्रिय होकर धरती पर शयन करे और स्त्रियों, शूद्रों और पतितों के साथ वार्तालाप का परित्याग करे।

पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः।
अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥१३॥

शक्ति के अनुसार पवित्रो का जप करे और सामर्थ्य के अनुसार अग्नि में होम करे। व्रत करने वाले को सदा यह विधि सभी कृच्छ्रो में जाननी चाहिये।

पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः सतारिता नराः।
गतपापादिकं यान्ति नात्र कार्या विचारणा ॥१४॥

पापी लोग इन कृच्छ्रों के द्वारा पापों से पार किए हुए, पाप आदि से रहित स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। इसमे विचार करने की कोई बात नहीं है।

शङ्खप्रोक्तमिद शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्त. स्वर्गलोके महीयते ॥१५॥

शङ्ख द्वारा प्रवचन किए हुए इस शास्त्र का जो बुद्धिमान् पुरुष अध्ययन करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में महानता को प्राप्त हो जाता है।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः।
समप्ता चेयं शङ्खस्मृतिः ॥

॥ अथ ॥

॥ लिखितस्मृतिः ।

अथेष्टापूर्तकर्म-वृषोत्सर्गफल-गयापिण्डदान-षोडशश्राद्धादिवर्णनम् ।

इष्टापूर्ते तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ।
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥१॥

ब्राह्मण को प्रयत्नपूर्वक इष्ट और पूर्त्त करने चाहिये । इष्ट से वह स्वर्ग को प्राप्त करता है और पूर्त्त के द्वारा मोक्ष को पाता है ।

एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ।
कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषा भवेत् ॥२॥

यदि एक दिन के लिये भी शुभ जल को (गउओं के पीने के लिये) धरती पर स्थित कर दिया जाए, और ऐसे जिस जल में गऊ अपनी प्यास को बुझा लेती है, तो वह सात पीढ़ियों को तार देता है ।

भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिता· ।
ताँल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपाना प्ररोपणे ॥३॥

भूमि के दान से और गउओं के दान से जिन लोकों की प्राप्ति बताई गई है, मनुष्य पेड़ों को लगाकर उन्ही लोकों को प्राप्त कर लेता है ।

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद् यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥४॥

जीर्ण बावली, कूएँ, तालाब और देवालयों का जो उद्धार कराता है, वह मनुष्य पूर्त के फल को प्राप्त करता है ।

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥५॥

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों की रक्षा, अतिथि-यज्ञ और वैश्वदेव-यज्ञ—ये सब इष्ट कहलाते हैं ।

इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥६॥

इष्ट और पूर्त्त द्विजों का सामान्य धर्म कहा गया है, शूद्र पूर्त धर्म का तो अधिकारी है, वैदिक का नहीं।

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥७॥

मनुष्य की अस्थि जब तक गङ्गा के जलों में स्थित रहती है, उतने ही हजार वर्षों तक वह मनुष्य स्वर्गलोक में महानता को प्राप्त होता है।

देवतानां पितृणा च जले दद्याज्जलाञ्लीन् ।
असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥८॥

देवताओं और पितरों को जल में जलाञ्जलियां देवे। जो बिना संस्कार किये मर जाएं, उनको थल में जलाञ्जलि देवे।

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ।
मुच्यते प्रेतलोकात्तु पितृलोकं स गच्छति ॥९॥

जिसके मरने पर ग्यारहवें दिन में वृष का उत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोक से छूट जाता है और पितृलोक में चला जाता है।

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥१०॥

बहुत से पुत्रों की कामना करनी चाहिये। हो सकता है उनमें से कोई एक गया चला जाए, कोई एक अश्वमेधयज्ञ से यजन करे, और कोई एक नील-वृष का उत्सर्ग करे।

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद् यदि ।
हसन्ति तस्य भूतानि अन्योऽन्य करताडनैः ॥११॥

वाराणसी में (प्राण-त्याग के लिये) प्रविष्ट मनुष्य यदि किसी कारण से निकल आए, तो सभी भूत उस पर आपस में ताली बजाकर हसते है।

गयाशिरे तु यत्किंचिन्नाम्ना पिण्डं तु निर्वपेत् ।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥१२॥

गया के अन्दर जिन-किन्हीं के नाम से पिण्ड देवे, यदि वे नरक में स्थित हैं तो स्वर्ग में चले जाते है, यदि स्वर्ग में स्थित हैं तो मोक्ष को पा जाते हैं।

आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३॥

अपने अथवा पराये किसीके भी सम्बन्धी के लिये जिस नाम से गया-क्षेत्र में जहां-तहां जो पिण्ड दे दिया जाता है, वह उसे शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ।

लोहितो यस्तु वर्णेन शङ्खवर्णखुरः स्मृतः ।
लाङ्गूलशिरसोश्चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥१४॥

जो रंग में लाल होता है और जिस के खुर शङ्ख के वर्ण के अर्थात् श्वेत होते है, और इसी प्रकार पूंछ और शिर भी सफेद होते है, वह नीलवृष कहा जाता है ।

नवश्राद्धं त्रिपक्षं च द्वादशैव तु मासिकम् ।
षाण्मासे चाऽऽब्दिकं चैव श्राद्धान्येतानि षोडश ॥१५॥

नव श्राद्ध, त्रिपक्ष श्राद्ध (तीन पक्षो अर्थात् डेढ़ मास के पश्चात् होने वाला श्राद्ध) एक-एक मास के पश्चात् होने वाले बारह श्राद्ध, छ मास के पश्चात् होने वाला श्राद्ध और वर्ष के पश्चात् होने वाला श्राद्ध—ये सोलह श्राद्ध हैं ।

यस्यैतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ।
पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥१६॥

जिसके ये सोलह श्राद्ध एकोद्दिष्ट (=केवल एक के उद्देश्य से) नहीं किये जाते, सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी उसका प्रेतत्व स्थिर बना रहता है ।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ।
मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥१७॥

सपिण्डीकरण के पश्चात् द्विज प्रतिवर्ष माता और पिता की मृत्यु के दिन पृथक्-पृथक् एकोद्दिष्ट करे ।

वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मात्रापित्रोस्तु संततम् ।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥१८॥

माता-पिता का श्राद्ध प्रतिवर्ष निरन्तर करे, देवों के बिना श्राद्ध में भोजन कराए और एक पिण्ड दे ।

संक्रान्तावुपरागे च पर्वण्यपि महालये ।
निर्वाप्यास्तु त्रयः पिण्डा एकतस्तु क्षयेऽहनि ॥१९॥

संक्रान्ति के दिन, ग्रहण के दिन, अमावस्या आदि पर्व के दिन और महालय (कनागत) में तीन पिण्ड देने होते हैं। मृत्यु के दिन एक पिण्ड दिया जाता है।

एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते द्विजः।
अकृतं तद्विजानीयात्स मातृपितृघातकः ॥२०॥

जो द्विज एकोद्दिष्ट को छोड़कर पार्वण श्राद्ध को करता है, वह उसका न किया हुआ ही जानना चाहिये, और वह माता और पिता का घातक ही होता है।

अमावस्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथ वा यदि।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥२१॥

जिस की मृत्यु अमावस्या को हो, अथवा यदि प्रेतपक्ष (कनागतों) में हो, तो सपिण्डीकरण के पश्चात् उसके लिये पार्वण विधि कही गई है।

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते।
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥२२॥

त्रिदण्ड (संन्यास) के ग्रहण करने से प्रेतत्व की प्राप्ति नहीं होती। उसके लिये भी ग्यारहवां दिन आने पर पार्वण तो किया ही जाता है।

यस्य सवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरण स्मृतम्।
प्रत्यहं तस्योदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥२३॥

जिसके लिये एक वर्ष से पूर्व ही सपिण्डीकरण कहा गया है, उसके निमित्त प्रतिदिन वर्षभर तक जल से भरा घड़ा दान करे।

पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरण स्त्रियाः।
पितामह्याऽपि तत्तस्मिन्सत्येवं तु क्षयेऽहनि।
तस्यां सत्या प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्रवेति निश्चितम् ॥२४॥

स्त्री का सपिण्डीकरण एक मात्र पति के साथ करे। उस (पति) के जीवित रहते हुए दादी के साथ भी इसी प्रकार मृत्यु वाले दिन किया जा सकता है। दादी के जीवित रहते हुए उसका सपिण्डीकरण सास के साथ निश्चित रूप से कर देना चाहिये।

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु।
एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥२५॥

विवाह निवृत्त हो जाने पर चौथे दिन रात्रि के समय स्त्री पति के साथ पिण्ड, गोत्र और सूतक में एकता को प्राप्त कर लेती है।

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे ।
भर्तृगोत्रेण कर्तव्यं दान पिण्डोदकक्रिया. ।।२६।।

विवाह में सप्तपदी के पश्चात् नारी अपने गोत्र से अलग हो जाती है। उसके लिये दान और पिण्डोदक आदि क्रियाए पति के गोत्र से की जानी चाहियें।

द्विर्मातुः पिण्डदानं तु पिण्डे पिण्डे द्विर्नामतः ।
षण्णां देयास्त्रयः पिण्डा एव दाता न मुह्यति ।।२७।।

माता को दो बार पिण्ड देना चाहिये, प्रत्येक पिण्ड में दोनों बार नाम का उच्चारण करे। (पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही और प्रपितामही), इन छः को तीन पिण्ड देने चाहियें। इस प्रकार पिण्ड देने वाला मनुष्य मोह को प्राप्त नहीं होता ।

अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः ।
अदोषं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ।।२८।।

और यदि मन्त्रों को जानने वाला पंक्ति के शारीरिक दोषों से युक्त हो, तो उसे यम ने दोषरहित ही कहा है। वह तो पंक्ति को पवित्र करने वाला ही है।

अग्नौकरणशेषं तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ।
प्रतिपाद्य पितृणां च न दद्याद् वैश्वदेविके ।।२९।।

अग्नौकरण के शेष अन्न को पिता के पात्र में डाल दे। पितरों को जो देना हो उसे विश्वदेवों को न दे।

अनग्निको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ।
तत्र मातामहानाञ्च कर्तव्यमभयं सदा ।।३०।।

अग्निहोत्र न करने वाला ब्राह्मण जब पार्वण श्राद्ध को करे तो सदा मातामहों को भी अभय प्रदान करे, अर्थात् उन्हें भी पिण्ड प्रदान करे।

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ।
एभ्य एव प्रदातव्यमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।।३१।।

जो कुछ पुरुष अथवा स्त्रियाँ पुत्रहीन मर जाएं, तो उन्हें एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही देना चाहिये, पार्वण नहीं।

यस्मिन्राशिगते सूर्ये विपत्तिः स्याद् द्विजन्मनः ।
तस्मिन्नहनि कर्तव्यं दानं पिण्डोदकक्रिया ।।३२।।

सूर्य के जिस राशि में चले जाने पर द्विज मृत्यु को प्राप्त हो, उसी राशि के उसी दिन में दान, पिण्ड और उदकक्रिया करनी चाहिये।

वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु।
अधिमासे तु पूर्व स्याच्छ्राद्धं सवत्सरादपि ॥३३॥

अधिक समय बीत जाने पर वर्षवृद्धि (= जन्मदिन), अभिषेक आदि न करे। अधिमास होने पर श्राद्ध वर्ष से भी पहले हो जाता है।

स एव ह्येयोद्दिष्टस्य येन केन तु कर्मणा।
अभिघातान्तरं कार्य तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥३४॥

ह्येयोद्दिष्ट के विषय में भी यही नियम है। जिस किसी कर्म के द्वारा मृत्यु के पश्चात् जो कुछ करना होता है, वह उसी दिन में किया जाना चाहिये।

शालाग्नौ पच्यते ह्यन्न लौकिके वापि नित्यश.।
यस्मिन्नेव पचेदन्न तस्मिन्होमो विधीयते ॥३५॥

अन्न हमेशा यज्ञशाला की अग्नि में अथवा लौकिक अग्नि में ही पकाया जाता है। जिस अग्नि में अन्न पकाए, उसी अग्नि में होम किया जाता है।

वैदिके लौकिके वाऽपि नित्य हुत्वा ह्यतन्द्रित.।
वैदिके स्वर्गमाप्नोति लौकिके हन्ति किल्बिषम् ॥३६॥

वैदिक अथवा लौकिक अग्नि में ही नित्य आलस्यरहित होकर हवन करे। वैदिक अग्नि में यजन करने से वह स्वर्ग को प्राप्त करता है, और लौकिक अग्नि में हवन करने से वह अपने पापो को धो डालता है।

अग्नौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा मन्त्रैस्तु शाकलै।
संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्नीयादनग्निमान् ॥३७॥

अग्नि में सर्वप्रथम व्याहृतियों के द्वारा और तत्पश्चात् शाकल शाखा के मन्त्रों के द्वारा हवन करके उसके पश्चात् भूतों के लिये भाग निकाले। अग्नि में यजन न करने वाला उसके पश्चात् ही भोजन खाए।

उच्छेपणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम्।
ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥३८॥

जब तक झूठन न उठा ली जाए और जब तक ब्राह्मणों को विदा नहीं करे

दिया जाता, उसके पश्चात् ही गृहबलि (भूतो के लिये बलि) दी जानी चाहिये, ऐसी ही धर्म की व्यवस्था है।

दर्भाः कृष्णाजिन मन्त्रा ब्राह्मणाश्च विशेषत ।
नैते निर्मालियता यान्ति नियोक्तव्या. पुनः पुनः ॥३९॥

कुशाएं, काले मृग की खाल, मन्त्र और विशेष रूप से ब्राह्मण ये कभी अशुद्धि को प्राप्त नहीं होते, इन्हें बार-बार काम मे लाया जाना चाहिये।

पानमाचमन कुर्यात्कुशपाणिः सदा द्विज. ।
भुक्त्वा नोच्छिष्टता याति एप एव विधिः स्मृतः ॥४०॥

द्विज हमेशा कुशाओं को हाथ मे लेकर जलपान और आचमन करे। ऐसा करने से वह भोजन के पश्चात् भी उच्छिष्टता को प्राप्त नही होता। यही विधि मानी गई है।

पान आचमने चैव तर्पणे दैविके सदा ।
कुशहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुशः ॥४१॥

जलपान, आचमन, पितृतर्पण और देव-पूजा मे हमेशा कुशाओं को हाथ में रखने वाला दोष को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि जैसा हाथ पवित्र होता है, वैसी ही कुशा होती है।

वामपाणौ कुश कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ।
विनाचमन्ति ये मूढा रुधिरेणाऽऽचमन्ति ते ॥४२॥

बाएं हाथ मे कुशा लेकर दाहिने हाथ से आचमन करे। जो मूढ लोग बिना कुशा के आचमन करते हैं, वे तो मानो रुधिर से ही आचमन करते हैं।

नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृताः ।
पवित्रास्तान्विजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः ॥४३॥

नीवी के अन्दर और जनेऊ के अन्दर जो कुशाएं रखी गई है उन्हें पवित्र जाने। जैसा शरीर पवित्र होता है, वैसी ही कुशाएं होती हैं।

पिण्डे कृतास्तु ये दर्भा यै कृत पितृतर्पणम् ।
मूत्रोच्छिष्टपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ॥४४॥

जो कुशाएँ पिण्ड में रखी गई हैं, जिन कुशाओं से पितृतर्पण किया गया है और जिन्हें लेकर मूत्र, उच्छिष्ट कर्म और मल-त्याग किया गया है, उनके त्याग का विधान है।

दैवपूर्व तु यच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्भवेत् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पैतृकम् ॥४५॥

जो श्राद्ध देवकर्म से पूर्व किया जाता है, और जो बिना देवकर्म के किया जाता है, उसमें कर्त्ता को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। वह इसी प्रकार पितृश्राद्ध करे।

मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम्।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रय स्मृतम् ॥४६॥

सब से पहले माता का श्राद्ध करे, उसके पश्चात् पितरों का और तत्पश्चात् नाना आदि का श्राद्ध करे। वृद्धिश्राद्ध (नान्दीमुख) में ये तीन ही श्राद्ध माने गए हैं।

क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धृतिलोचनौ।
पुरूरवार्द्रवश्चैव विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥४७॥

क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, लोचन, पुरुरवा और आर्द्रव ये विश्वदेव माने गए हैं।

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः।
ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥४८॥

महाभाग, महाबली विश्वदेव आ जाएं। श्राद्ध में जिन के लिये जो स्थान निश्चित किया गया है, वे उसपर सावधान रहें।

इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च वैदिके।
कालः कामोऽग्निकार्येषु काम्येषु धृतिलोचनौ।
पुरूरवार्द्रवश्चैव पार्वणेषु नियोजयेत् ॥४९॥

इष्टि श्राद्ध में क्रतु और दक्ष, वैदिक में वसु और सत्य, अग्निकार्यों में काल और काम, एवं काम्य कर्मों में धृति और लोचन, और पार्वणों में पुरुरवा और आर्द्रव को नियुक्त करे।

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥५०॥

जिस कन्या का भाई न हो, अथवा जिसके पिता का पता न हो, बुद्धिमान् पुत्रिका-धर्म की शंका से उसके साथ विवाह न करे।

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥५१॥

इस कन्या का भाई नहीं है, ऐसी इस अलकृत कन्या को मैं तुझे इस लिये दे रहा हूं कि इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह मेरा पुत्र होगा। (ऐसी उस कन्या को पुत्रिका कहा जाता है।)

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीय तु पितुस्तस्यास्तृतीय तु पितुः पितुः ॥५२॥

पुत्रिका का पुत्र सबसे पहले माता को पिण्ड देवे। उसके पश्चात् दूसरा पिण्ड उसके पिता को, और तीसरा पिण्ड पिता के पिता (अर्थात् अपने नाना के पिता) को देवे।

मृण्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितृन् ।
अन्नदाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥५३॥

जो मनुष्य श्राद्ध में पितरों को मिट्टी से बने पात्रों में भोजन कराता है, अन्न देने वाला, पुरोहित और भोक्ता—ये तीनों नरक में जाते है।

अलाभे मृण्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ।
घृतेन प्रोक्षणं कुर्यान्मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥५४॥

यदि अन्य पात्र न मिले तो उन ब्राह्मणों की अनुमति से उन्हें मिट्टी के पात्र में भी भोजन दे देवे। घी से उस पात्र मे छिड़काव कर दे। इस प्रकार मिट्टी का पात्र भी पवित्र हो जाता है।

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुञ्जीत विह्वलः ।
पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रिया. ॥५५॥

(अपने घर में) श्राद्ध करके जो (ब्राह्मण) पराए श्राद्ध मे बेसबरेपन के साथ भोजन करता है, उसके पितर लुप्त हुए पिण्ड और जल की क्रिया वाले होकर पतित हो जाते है।

श्राद्ध दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वान योऽधिगच्छति ।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मास पांसुभोजनाः ॥५६॥

श्राद्ध देकर अथवा उसमें भोजन करके जो मनुष्य बाट चलता है, उसके पितर एक मास तक (उसकी यात्रा मे उठने वाली) धूली के भोजन वाले हो जाते हैं।

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ।
दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्ध भुक्त्वाष्ट वर्जयेत् ॥५७॥

फिर से भोजन करना, बाट चलना, भार उठाना, अध्ययन, संभोग, दान, आदान, और होम—श्राद्ध मे भोजन करके इन आठ बातों का परित्याग करे।

अध्वगामी भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः ।
कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीसङ्गेन च सूकरः ॥५८॥

बाट चलने वाला घोड़ा, फिर से भोजन करने वाला कौआ, (भारवहन आदि) कार्य को करने वाला दास और स्त्री के सग (संभोग) से वह सूअर हो जाता है ।

दशकृत्वः पिबेदपः सावित्र्या चाभिमन्त्रिताः ।
ततः संध्यामुपासीत शुध्येत तदनन्तरम् ॥५९॥

वह गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल को दस बार पिये। तत्पश्चात् सन्ध्योपासन करे । उसके बाद ही वह शुद्ध होता है ।

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ।
तत्सर्वं निष्फलं कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहम् ॥६०॥

जो मनुष्य जप, होम और प्रतिग्रह (दान स्वीकार करना) को गीले कपड़े पहने हुए करता है, और जो कार्य जानुओं से बाहर हाथों को रखकर किया जाता है, वह ऐसा करना उस सब को निष्फल कर देता है ।

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ।
पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥६१॥

नव श्राद्ध में भोजन करके चान्द्रायण, मासिक श्राद्ध में भोजन करके पराक, तीन पक्षों (डेढ महीने) वाले श्राद्ध में भोजन करके कृच्छ्र, और षाण्मासिक श्राद्ध में भी भोजन करके कृच्छ्र व्रत को ही करे ।

ऊनाब्दिके त्रिरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ।
शावे मासं तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रो विधीयते ॥६२॥

ऊनाब्दिक (ग्यारह मास के) श्राद्ध में तीन दिन का व्रत, एक वर्ष के श्राद्ध में एक दिन का व्रत, शव से उत्पन्न होने वाले अशौच में भोजन करके एक मास का व्रत अथवा पाद कृच्छ्र का विधान किया गया है ।

सर्पविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः ।
आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥६३॥

सर्प और ब्राह्मण के द्वारा मारे हुए, सींगों वाले, दाढ़ों वाले और धरती पर रेंगकर चलने वाले जीवों के द्वारा मारे हुए, और आत्महत्या करने वाले— इन सब का श्राद्ध न करे ।

गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ।
तं स्पर्शयन्ति ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवन्ति ते ॥६४॥

गउओं के द्वारा मारे हुए, फांसी लगाकर मरे हुए, ब्राह्मण के द्वारा मारे हुए—ऐसे उस मनुष्य का जो ब्राह्मण स्पर्श करते है, वे गाय, बकरी और घोड़े बनते है ।

अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ।
तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति मनुराह प्रजापतिः ॥६५॥

(चिता में) अग्नि देने वाला और जो अन्य (अर्थी के) पाशों का छेदन करने वाले है, वे तप्त-कृच्छ्र से शुद्ध होते हे, ऐसा प्रजापति मनु का वचन है ।

त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥६६॥

तीन दिन तक गर्म जल पिये, तीन दिन तक गर्म दूध पिये । फिर तीन दिन तक गर्म घी पीकर तीन दिन तक वायु-भक्षण करके रहे (अर्थात् कुछ न खाए-पिये) ।

गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणास्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६७॥

गऊ, भूमि, सोना, स्त्रियां, खेत और घर—इनके हरण में जिस किसी के उद्देश्य से जो किसी को प्राणों से वियुक्त कर दे उसे ब्रह्मघातक कहते हैं ।

उद्यता सह धावन्ते सर्वे ये शस्त्रपाणयः ।
यद्येकोऽपि हनेत्तत्र सर्वे ते ब्रह्मघातकाः ॥६८॥

जो उद्यत हुए, सब के सब, हथियारों को हाथ मे लेकर साथ दौड़ते हैं, यदि उनमे से एक हत्या करे तो भी सब के सब ब्रह्मघातक होते हैं ।

बहूना शस्त्रघातानां यद्येको धर्मघातकः ।
सर्वे ते शुद्धिमृच्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥६९॥

शस्त्र के द्वारा हत्या करने वालों अनेकों में से यदि एक ही मनुष्य धर्म-घातक है, तो शेष सब तो शुद्धि को प्राप्त हो जाते है, केवल वह अकेला ब्रह्म-घातक होता है ।

पतितान्नं यदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चाण्डालवेश्मनि ।
स मासार्द्ध चरेद्वारि मासं कामकृतेन तु ॥७०॥

जब मनुष्य पतित का अन्न खा लेता है, अथवा चाण्डाल के घर में भोजन खा लेता है, वह आधे मास तक जल पर निर्वाह करे। यदि जानबूझ कर ऐसा किया गया है, तो एक मास तक ऐसा करे।

यो येन पतितेनैव ससर्गं याति मानव.।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥७१॥

जो मनुष्य जिस पतित के साथ संसर्ग को प्राप्त हो जाता है, वह उसके ससर्ग की शुद्धि के लिये उसी के व्रत का आचारण करे।

ब्रह्महपातकिस्पर्शे स्नान येन विधीयते।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥७२॥

जिस ब्रह्मघाती और पातकी के द्वारा स्पर्श किये जाने पर स्नान का विधान किया है, उसी उच्छिष्ट ब्रह्मघाती और पातकी के द्वारा स्पर्श होने पर प्राजापत्य व्रत करे।

ब्रह्महा च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः।
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥७३॥

ब्रह्मघाती, सुरापान करने वाला, चोर, गुरु की पत्नी से सभोग करने वाला और पांचवा वह जो इनसे ससर्ग करता है—इन्हे महान् पातकी कहा गया है।

स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा।
कुर्वन्त्यनुग्रह ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥७४॥

चाहे स्नेह के कारण, चाहे लोभ के कारण, अथवा अनजाते में, जो लोग (पाप करने वालो पर) अनुग्रह करते है, वह पाप उन्हीं को प्राप्त हो जाता है।

उच्छिष्टोच्छिष्टसस्पृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन।
तत्क्षणात्कुरुते स्नानमाचमेन शुचिर्भवेत् ॥७५॥

किसी समय उच्छिष्ट के द्वारा स्पर्श किया हुआ उच्छिष्ट ब्राह्मण उसी समय स्नान करता है; और आचमन के द्वारा शुद्ध होता है।

कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥७६॥

(ज्येष्ठ भ्राता के) कुबड़े, बावने, नपुंसक, हकले, मूर्ख, जन्म से अन्धे, बहरे और गूंगे होने पर छोटे भाई के द्वारा बड़े भाई से पहिले विवाह करने में दोष नहीं है।

क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ।
योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥७७॥

नपुंसक, देशान्तर में स्थित, पतित, संन्यासी अथवा योग और शास्त्र में रत बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए छोटे भाई के द्वारा विवाह करने में कोई दोष नहीं है ।

पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ।
विक्रीणीते गजं चाश्व गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥७८॥

यदि कोई मनुष्य कूओं और बावलियों को अटवाता है, वृक्षों को कटवाता और गिरवाता है, अथवा हाथियों और घोड़ों का विक्रय करता है, उसके लिये गोहत्या के प्रायश्चित का आदेश करे ।

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रु केवलम् ।
तृतीये तु शिखावर्जं शिखाछेदश्चतुर्थके ॥७९॥

एक चौथाई कृच्छ्र में शरीर के रोमो का मुण्डन, दो चौथाई में केवल दाढ़ी और मूछ का मुण्डन, तीन चौथाई में शिखा को छोड़कर शेष समस्त मुण्डन और कृच्छ्र में शिखासहित सम्पूर्ण मुण्डन का विधान है ।

चण्डालोदकसंस्पर्शे स्नान येन विधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्य समाचरेत् ॥८०॥

चाण्डाल के जिस जल का स्पर्श करने पर स्नान का विधान किया गया है, उसी झूठे जल से स्पृष्ट ब्राह्मण प्राजापत्य व्रत करे ।

चण्डालघटभाण्डस्थं यत्तोयं पिबते द्विजः ।
तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥८१॥

द्विज चाण्डाल के घड़े या पात्र मे रखे जिस जल को पी लेता है, और यदि वह उसी समय वमन कर दे तो प्राजापत्य व्रत करे ।

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे तस्य जीर्यति ।
प्राजापत्य न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥८२॥

यदि वह वमन नहीं करता और जल शरीर में पच जाता है, तो उसके लिये प्राजापत्य का निर्देश न करे । वह तो कृच्छ्र सांतपन करे ।

चरेत्सांतपन विप्रः प्राजापत्य तु क्षत्त्रियः ।
तदर्ध तु चरेद्वैश्य. पादं शूद्रे तु दापयेत् ॥८३॥

ब्राह्मण सांतपन व्रत करे। क्षत्रिय प्राजापत्य करे। वैश्य उससे आधा प्राजापत्य करे। शूद्र से एक चौथाई प्राजापत्य कराए।

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानसूकरवायसैः ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥८४॥

रजस्वला जब कुत्ते, सूअर और कौए के द्वारा छू ली जाती है, तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होती है।

अज्ञानतः स्नानमात्रमानाभेस्तु विशेषतः ।
अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यात् तदीयस्पर्शने मतम् ॥८५॥

अनजाने में स्पर्श होने पर और विशेष रूप से नाभि तक स्पर्श होने पर स्नान पर्याप्त है। इससे ऊपर उसके शरीर का स्पर्श होने पर तीन रात का उपवास होता है।

बालश्चैव दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
सद्य एव विशुध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥८६॥

यदि बालक दस दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो तुरन्त शुद्धि हो जाती है, न अशौच (पातक) होता है और न जल देने की क्रिया।

शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ।
शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥८७॥

मृत्यु का सूतक (अशौच) उत्पन्न हो जाने पर यदि जन्म का सूतक भी हो जाए, तो जन्म का सूतक मृत्यु के सूतक के साथ शुद्ध हो जाता है। पर जन्म के सूतक के साथ मृत्यु के सूतक की शुद्धि नहीं होती।

षष्ठेन शुध्येतैकाहं पञ्चमे त्र्यहमेव तु ।
चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषे दशमेऽहनि ॥८८॥

छठी पीढ़ी में सूतक एक दिन में शुद्ध हो जाता है, पांचवीं पीढ़ी में तीन दिन में, चौथी पीढ़ी में सात दिन में और तीसरी पीढ़ी में दसवें दिन में शुद्धि हो जाती है।

मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ।
आदाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥८९॥

जिसका अग्नियों से संयोग नहीं है (अर्थात् जो अग्निहोत्र नहीं करता) उसका अशौच मृत्यु के दिन से आरम्भ होता है। जो वैतानिक विधि को करने वाला है, उसका अशौच दाहसंस्कार से जानना चाहिये।

आममांस घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ।

अन्त्यभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥९०॥

कच्चा मांस, घी, शहद और फलो से उत्पन्न होने वाले तेल—ये सब के सब नीचों के बर्तनों में रखे हुए भी निकाले जाने पर शुद्ध माने जाते हैं।

मार्जनीरजसासक्ते स्नानवस्त्रघटोदके ।

नवाम्भसि तथा चैव हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥९१॥

स्नान के वस्त्र, घड़े के जल तथा ताजे जल को यदि बुहारी की धूल लग जाए, तो वह दिन मे अर्जित किये पुण्य को नष्ट कर देती है।

दिवा कपित्थच्छायाया रात्रौ दधिसक्तुषु च ।

धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥९२॥

दिन के समय कपित्थ की छाया में, रात्रि के समय दही और सत्तुओं में और धात्री के फलो के अन्दर सभी समयों मे अलक्ष्मी सदा निवास करती है।

यत्र यत्र च सकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।

तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥९३॥

द्विज जहां-जहां स्वयं को अपवित्र जाने, वहा-वहां तिलो के द्वारा होम करे और एक सौ आठ गायत्री मन्त्रो का जप करे।

इति लिखितर्षिप्रोक्त धर्मशास्त्रं समाप्तम् ।

समाप्तेयं लिखितस्मृतिः ॥

॥ अथ ॥

॥ दक्षस्मृतिः ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदा वर. ।
पारगः सर्व्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापति. ॥१॥

धर्म और अर्थ के सब तत्त्वों को जानने वाला, सब वेदों को जानने वालों में श्रेष्ठ, सब विद्याओं मे पारगत दक्ष नाम के प्रजापति हुए ।

उत्पत्तिः प्रलयश्चैव स्थिति सहार एव च ।
आत्मा चात्मनि तिष्ठेत आत्मा ब्रह्मण्यवस्थितः ॥२॥

उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति, सहार और (सब प्राणियों का) आत्मा उसके आत्मा में स्थित था और उसका अपना आत्मा स्वय ब्रह्म मे स्थित था ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एतेषान्तु हितार्थाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥३॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी—इन सब के हित के लिये दक्ष ने (इस) शास्त्र की रचना की ।

जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः ।
स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥४॥

जब तक शिशु आठ वर्ष की अवस्था का हो तब तक उसे उत्पन्न हुआ मात्र और गर्भ के समान समझा जाना चाहिये । अभी तो उसने अपना प्रादुर्भाव मात्र दर्शाया है ।

भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथानृते ।
तस्मिन् काले न दोषोऽस्ति स यावन्नोपनीयते ॥५॥

जब तक उसका उपनयन-सस्कार नहीं हो जाता उस समय तक भक्ष्य, अभक्ष्य तथा पेय के विषय में और वाच्य, अवाच्य और असत्य आदि के विषय में उसे कोई दोष नहीं लगता ।

उपनीतस्य दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः ।
अप्राप्तव्यवहारोऽसौ यावत् षोडशवार्षिकः ॥६॥

उपनयन-संस्कार हो जाने के पश्चात् निन्दनीय कर्मों को करने से उसे दोष की प्राप्ति होती है, भले ही सोलह वर्ष की अवस्था तक वह व्यवहार-कुशल नही हो पाता।

स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च।
ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो भवेद् गृही ॥७॥

जब वेद को अपनाता है और वेद के व्रतों का आचरण करता है तब वह ब्रह्मचारी कहलाता है। उसके पश्चात् विद्यास्नात (=स्नातक) होकर गृहस्थ हो जाता है।

द्विविधो ब्रह्मचारी तु स्मृतः शास्त्रे मनीषिभिः।
उपकुर्वाणकस्त्वाद्यो द्वितीयो नैष्ठिकः स्मृतः ॥८॥

(धर्म-)शास्त्र मे मनीषियों के द्वारा दो प्रकार का ब्रह्मचारी माना गया है—पहला उपकुर्वाणक (अर्थात् वेदविद्याप्राप्ति तक ब्रह्मचारी), और दूसरा नैष्ठिक (अर्थात् आजीवन ब्रह्मचारी)।

यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत् पुनः।
न यतिर्न वनस्थश्च सर्व्वाश्रमविवर्ज्जितः ॥९॥

जो द्विज गृहस्थ होकर पुनः ब्रह्मचारी हो जाता है, वानप्रस्थ और संन्यासी नही बनता, उसे सब आश्रमो से हीन माना जाता है।

अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु दिनमेकमपि द्विजः।
आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥१०॥

द्विज को एक दिन भी आश्रम से हीन नहीं रहना चाहिये। जो आश्रम के बिना रहता है, वह प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है।

जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतस्तु यः।
नासौ तत्फलमाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमाच्च्युत. ॥११॥

जो जप, होम, दान और स्वाध्याय मे लीन है, पर आश्रम से हीन है, वह इन सब कर्मो को करता हुआ भी इनके फल को प्राप्त नहीं करता।

त्रयाणामानुलोम्य हि प्रातिलोम्यं न विद्यते।
प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात् पापकृत्तमः ॥१२॥

(ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ) इन तीनों आश्रमो का आनुलोम्य है। इनका प्रातिलोम्य उचित नहीं है। जो प्रातिलोम्य क्रम से इनका आचरण करता है, उससे बढ़कर और कोई पापी नहीं है।

मेखलाजिनदण्डेन ब्रह्मचारी तु लक्ष्यते ।
गृहस्थो देवयज्ञाद्यैर्नखलोम्ना वनाश्रितः ॥१३॥

ब्रह्मचारी अपनी मेखला, मृगछाला और दण्ड से पहचाना जाता है, गृहस्थ देवयज्ञ आदि से और वानप्रस्थ अपने नख, लोम आदि से पहचाना जाता है।

त्रिदण्डेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक् पृथक् ।
यस्यैतल्लक्षण नास्ति प्रायश्चित्ती न चाश्रमी ॥१४॥

संन्यासी अपने त्रिदण्ड से पहचाना जाता है। इन सब के लक्षण अलग-अलग है। जिसके पास इनमें से एक भी लक्षण नहीं है, वह आश्रमी नहीं है, वह तो प्रायश्चित्त के योग्य है।

उक्त कर्म क्रमो नोक्तो न कालो मुनिभिः स्मृतः ।
द्विजानान्तु हितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥१५॥

कर्म का कथन कर दिया गया है, क्रम का कथन नहीं किया गया है। मुनियों के द्वारा काल को भी नही कहा गया है। द्विजों के हित के लिये स्वयं दक्ष ने यह कहा है।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं यद् द्विजेन दिने दिने ।
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥१॥

प्रतिदिन प्रातः उठकर द्विज को जो कुछ करना चाहिये, द्विजों के उपकारक उस समस्त कृत्य का मै वर्णन करता हूं।

उदयास्तमयं यावन्न विप्रः क्षणिको भवेत् ।
नित्यनैमित्तिकैर्मुक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥२॥

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक ब्राह्मण को क्षण भर के लिये भी नित्य नैमित्तिक तथा अन्य अनिन्दित कर्मो से मुक्त नही होना चाहिये।

यः स्वकर्म परित्यज्य यदन्यत् कुरुते द्विजः ।
अज्ञानाद्यदि वा मोहात् स तेन पतितो भवेत् ॥३॥

जो द्विज अपने कर्म को छोड़कर अज्ञान अथवा मोह के कारण किसी अन्य कर्म को करता है, वह उस कर्म के द्वारा पतित हो जाता है।

दिवसस्याद्यभागे तु कृत्यं तस्योपदिश्यते ।
द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा ॥४॥
षष्ठे च सप्तमे चैव अष्टमे च पृथक् पृथक् ।
विभागेष्वेषु यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥५॥

दिन के प्रथम भाग में उसका जो कर्तव्य है, उसका उसे उपदेश दिया जा रहा है। दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे, छठे, सातवें तथा आठवें भागों में पृथक्-पृथक् जो कर्म करणीय है, उसका भी मैं निश्शेष रूप से प्रवचन करूंगा।

उषःकाले तु सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥६॥

उषाकाल हो जाने पर, ठीक ढंग से शौच करके दन्त धावन आदि के पश्चात् स्नान करे।

अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥७॥

यह शरीर नौ छिद्रों से युक्त है, इस लिये अत्यन्त मलिन है। यह दिन-रात रिसता रहता है। प्रातः का स्नान इसकी शुद्धि है।

क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च ।
अङ्गानि समता यान्ति उत्तमान्यधमैः सह ॥८॥

सोए हुए मनुष्य की इन्द्रियां गीली हो जाती हैं और मलिनता का स्राव करती रहती हैं। उत्तम अङ्ग भी अधम अंगों के समान (मलिन) हो जाते हैं।

नानास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ।
अस्नात्वा नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥९॥

(इस लिये) शय्या से उठकर नाना प्रकार के पसीने आदि से भरा हुआ मनुष्य बिना स्नान किये जप, होम आदि किसी भी कर्म को न करे।

प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत् सदा ।
समस्तजन्मजं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥१०॥

जो ब्राह्मण प्रातः उठकर सदा प्रातः का स्नान करता है, वह समस्त जन्म के पाप को तीन वर्षों में ही दूर कर देता है।

उषस्युषसि यत् स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥११॥

प्रतिदिन उषाकाल में उठकर रात और दिन के सन्धिकाल में, सूर्योदय के समय जो स्नान किया जाता है, वह प्राजापत्य व्रत के समान होता है और महापातक का भी विनाशक होता है।

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्।
सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥१२॥

दृष्ट और अदृष्ट सब प्रकार के प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले प्रातः-स्नान की सभी मुनिजन प्रशंसा करते है। प्रातःस्नान करने वाला पवित्रात्मा मनुष्य जप आदि सब कर्मों के योग्य होता है।

स्नानादनन्तरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते।
अनेन तु विधानेन आचान्तः शुचितामियात् ॥१३॥

स्नान के पश्चात् उपस्पर्शन (आचमन) कहा गया है। इस विधि से आचमन करने वाला मनुष्य पवित्र हो जाता है।

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम्।
संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥१४॥

दोनों पाँवों और हाथों को धोकर अगूठे के मूल भाग को कुछ सिकोड़ कर भली प्रकार देखे हुए जल को तीन बार पिये और उसके पश्चात् दो बार मुख को पोंछे।

संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत्।
ततः पादौ समभ्युक्ष्य अङ्गानि समुपस्पृशेत् ॥१५॥

तीन अंगुलियों को मिलाकर उनसे सर्वप्रथम मुख का ही उपस्पर्श करे। उसके पश्चात् दोनों पाँवों को भिगोकर अंगों को स्पर्श करे।

अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ॥१६॥

उसके तुरन्त पश्चात् अंगूठे और प्रदेशिनी (कन्नो) के द्वारा नासिका का स्पर्श करे। उसके पश्चात् अगूठे और अनामिका से बारी-बारी आँखों और कानों को स्पर्श करे।

कनिष्ठाङ्गुष्ठया नाभिं हृदयञ्च तलेन वै।
सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥१७॥

नाभि को कन्नो और अंगूठे से स्पर्श करे, हृदय को हथेली से स्पर्श करे, उसके पश्चात् सिर को सब अंगुलियों से स्पर्श करे और दोनों भुजाओं को हाथ के अग्र भाग से स्पर्श करे।

सन्ध्यायाञ्च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ।
सन्ध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥१८॥
स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ।
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलमश्नुते ॥१९॥

सायंकाल, प्रातःकाल और फिर मध्याह्न मे जो मनुष्य और विशेष रूप से ब्राह्मण सन्ध्योपासन नहीं करता वह जीते हुए ही शूद्र हो जाता है और मरकर कुत्ता उत्पन्न होता है। सन्ध्या से हीन मनुष्य नित्य अपवित्र होता है, और सब शुभ कर्मों के अयोग्य होता है।

सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ।
स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥२०॥

सन्ध्याकर्म की समाप्ति पर स्वय होम किया जाता है। अपने द्वारा किये हुए होम से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति किसी अन्य के द्वारा कराए गए होम से नहीं हो सकती।

ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः ।
एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि ॥२१॥

ऋत्विज, पुत्र, गुरु, भाई, भानजा और जामाता, इनके द्वारा किया हुआ होम अपने द्वारा किया हुआ होम ही होता है।

देवकार्यस्य सर्वस्य पूर्वाह्नस्तु विधीयते ।
देवकार्य्यं ततः कृत्वा गुरुमङ्गलवीक्षणम् ॥२२॥

सभी देवकर्मों को करने के लिये पूर्वाह्न का समय विधान किया गया है। देवपूजा आदि कृत्य करके गुरु एवं (गऊ आदि) मंगलकारी वस्तुओं का दर्शन करे।

देवकार्य्याणि पूर्व्वाह्णे मनुष्याणाञ्च मध्यमे ।
पितृणामपराह्णे च कार्य्याण्येतानि यत्नतः ॥२३॥

देवों के प्रति कर्म दिन के पूर्वभाग में, मनुष्यों के प्रति मध्याह्न में और पितरों के प्रति अपराह्न में—ये सब के सब यत्नपूर्वक किये जाने चाहियें।

पौर्व्वाह्णिकन्तु यत् कर्म यदि तत् सायमाचरेत् ।
न तस्य फलमाप्नोति वन्ध्यस्त्री मैथुनं यथा ॥२४॥

दिन के पूर्व भाग में करणीय जो कर्म है, यदि उसे सायंकाल करे तो उसका फल प्राप्त नही होता, जिस प्रकार वन्ध्या स्त्री संभोग से (पुत्ररूपी) फल को प्राप्त नहीं कर सकती।

दिवसस्याद्यभागे तु सर्वमेतद्विधीयते ।
द्वितीये च तथा भागे वेदाभ्यासो विधीयते ॥२५॥

यह सब कर्म दिन के प्रथम भाग में किया जाता है। दूसरे भाग में वेदाभ्यास किया जाता है।

वेदाभ्यासो हि विप्राणा परमं तप उच्यते ।
ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तु सः ॥२६॥

वेदाभ्यास ही ब्राह्मणों के लिये परम तप कहा गया है। इसे ब्रह्मयज्ञ कहते है। इसे छहो अंगों सहित किया जाना चाहिये।

वेदस्वीकरण पूर्व विचारोऽभ्यसनं जपः ।
ततो दानञ्च शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥२७॥

वेदाभ्यास पांच प्रकार का है—सब से पहले वेद का ज्ञान प्राप्त करना, तत्पश्चात् उसपर मनन करना, उसकी आवृत्ति करना, उसे जपना और अन्त में उसे शिष्यों को देना।

समित्पुष्पकुशादीना स कालः समुदाहृतः ।
तृतीये चैव भागे तु पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥२८॥

समिधाओं, पुष्पों, कुशाओ आदि के लिये भी यही काल (दिनका दूसरा भाग) बताया गया है। दिनके तीसरे भाग में पोष्य वर्ग के कार्यो को साधना होता है।

पिता माता गुरुर्भार्य्या प्रजा दीनाः समाश्रिताः ।
अभ्यागतोऽतिथिश्चान्यः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥२९॥

पिता, माता, गुरुजन, पत्नी, सन्तान, दीन, शरण में आए हुए, अभ्यागत और अतिथि—यह पोष्यवर्ग बताया गया है।

ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथानाथः समाश्रित. ।
अन्येऽप्यधनयुक्ताश्च पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥३०॥

रिश्तेदार, बन्धुजन, कमजोर, अनाथ, आश्रय मे आए हुए और अन्य धन-हीन लोगों को भी पोष्यवर्ग कहा गया है।

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्त स्वर्गसाधनम् ।
नरकं पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत् ॥३१॥

पोष्यवर्ग का भरण-पोषण स्वर्ग-प्राप्ति का उत्तम साधन बताया गया है। इसको पीडित करने से नरक की प्राप्ति होती है। इस लिये इसका यत्न से भरण-पोषण करे।

सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्त्तव्यन्तु विशेषतः।
ज्ञानविद्भ्यः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३२॥

सब प्राणियों के लिये अन्न आदि का विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाना चाहिये और ज्ञानियों को भी भोजन दिया जाना चाहिये, अन्यथा करने से मनुष्य नरक को प्राप्त होता है।

स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते।
जीवन्तो मृतकाश्चान्ये य आत्मम्भरयो नराः ॥३३॥

(सचमुच) वही जीता है, जिस अकेले के जीने से बहुतों के द्वारा जिया जाता है। दूसरे तो जीते हुए भी मरे हुए हैं, जो केवल अपना पेट भरने के लिये जी रहे है।

बह्वर्थे जीव्यते कैश्चित् कुटुम्बार्थे तथा परैः।
आत्मार्थेऽन्यो न शक्नोति स्वोदरेणापि दुःखितः ॥३४॥

कुछ लोगों के द्वारा बहुतों के लिये जिया जाता है, तथा दूसरों के द्वारा अपने परिवार के लिये जिया जाता है। और कोई-कोई ऐसा दुःखी भी है, जो अपना पेट भी नहीं भर सकता।

दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता।
अदत्तदाना जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥३५॥

कल्याण चाहने वाले मनुष्य को दीनों, अनाथों और (ब्राह्मण आदि) विशिष्ट लोगों को (भोजन) देना चाहिये। जो दूसरो को भोजन नहीं देते, वे दूसरों के भाग्य के सहारे जीवन बिताने वाले होकर उत्पन्न होते है।

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यज्जुहोति दिने दिने।
तत्तु वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥३६॥

जिसे मनुष्य विशिष्टों को दान में देता है, जिसे प्रतिदिन आहुति के रूप में डालता है, मैं उसे ही धन मानता हू। शेष की किसी अन्य के लिये रखवाली कर रहा है।

चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत्।
तिलपुष्पकुशादीनि स्नानञ्चाकृत्रिमे जले ॥३७॥

दिन के चौथे भाग में स्नान के लिये मिट्टी, तिल, पुष्प, कुशा आदि को लाए और अकृत्रिम (नदी, तालाब आदि के) जल में स्नान करे।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते।
तेषा मध्ये तु यन्नित्यं तत्पुनर्भिद्यते त्रिधा ॥३८॥

नित्य, नैमित्तिक और काम्य—यह तीन प्रकार का स्नान कहा गया है। उनमें से भी जो नित्य है, वह पुनः तीन प्रकार का हो जाता है।

मलापहरणं पश्चान्मन्त्रवत्तु जले स्मृतम्।
सन्ध्यास्नानमुभाभ्याञ्च स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥३९॥

मलापहरण (मैल आदि से शरीर की शुद्धि कराने वाला) स्नान, उसके पश्चात् जल के अन्दर मन्त्रों के साथ स्नान, और दोनों सन्ध्याओं में सन्ध्या-स्नान—ये नित्यस्नान के तीन भेद कहे गए है।

मार्जनं जलमध्ये तु प्रणायामो यतस्ततः।
उपस्थानं ततः पश्चात् सावित्र्या जप उच्यते ॥४०॥

जल के मध्य में मार्जन, जहां-तहां (जल या थल में) प्राणायाम, तत्पश्चात् (सूर्य की) स्तुति और तदनन्तर गायत्री का जप कहा गया है।

सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिधा स्थितः।
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ॥४१॥

सविता जिसका देवता है, तीन भागों में विभक्त अग्नि जिसका मुख है, विश्वामित्र जिसका ऋषि है, गायत्री जिसका छन्द है, वह (सावित्री) ऋचा सर्वोत्तम है।

पञ्चमे च तथा भागे सम्विभागो यथार्हतः।
पितृदेवमनुष्याणां कोटानाञ्चोपदिश्यते ॥४२॥

दिन के पांचवें भाग में यथायोग्य रूप से पितरो, देवो, मनुष्यों और कीटादिकों के लिये भोजन के विभाग का आदेश है।

देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्य्यग्भिश्चोपजीव्यते।
गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥४३॥

चूंकि देवों, मनुष्यों और पशु-पक्षी आदि तिर्यग् योनियो के द्वारा गृहस्थ के अन्न का भोग किया जाता है, इस लिये गृहस्थ ज्येष्ठाश्रमी (उत्तम आश्रम वाला) कहलाता है।

त्रयाणामाश्रमाणान्तु गृहस्थो योनिरुच्यते ।
तेनैव सीदमानेन सीदन्तीहेतरे त्रयः ॥४४॥

गृहस्थ (शेष) तीनों आश्रमों की योनि कहा गया है। उस के नष्ट हो जाने से शेष तीन आश्रम भी नष्ट हो जाएंगे ।

मूलप्राणो भवेत् स्कन्धः स्कन्धाच्छाखाः सपल्लवाः ।
मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥४५॥

तने के प्राण (वृक्ष के) मूल में होते है, तने से पल्लवों सहित शाखाएं प्राणों वाली होती हैं, यदि मूल ही नष्ट हो जाए, तो यह सारे का सारा (वृक्ष) नष्ट हो जाता है ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षितव्यो गृहाश्रमी ।
राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च सर्वदा ॥४६॥

इस लिये सब प्रकार के प्रयत्नों से गृहस्थ की रक्षा होनी चाहिये । वह राजा और अन्य तीनो आश्रमो के द्वारा सदा ही पूजा और मान के योग्य है ।

गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो न गृहेण गृहाश्रमी ।
न चैव पुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्ज्जितः ॥४७॥

अपनी करणीय क्रियाओं से युक्त गृहस्थ ही गृहाश्रमी होता है। अपने कर्मों से हीन गृहस्थ घर में निवास करने एव पुत्रों और पत्नी से युक्त होने से गृहाश्रमी नहीं हो जाता ।

अस्नात्वा चाप्यहुत्वा चाजप्त्वाऽदत्त्वा च मानवः ।
देवादीनामृणो भूत्वा नरकं प्रतिपद्यते ॥४८॥

स्नान, हवन, जप और दान से रहित मनुष्य देवों का ऋणी होकर नरक को प्राप्त हो जाता है ।

एक एव हि भुङ्क्तेऽन्नमपरोऽन्नेन भुज्यते ।
न भुज्यते स एवैको यो भुङ्क्तेऽन्नं ससाक्षिणा ॥४९॥

कोई-कोई तो अन्न को खाता है, और कोई-कोई अन्न के द्वारा खाया जाता है । वह अकेला अन्न के द्वारा नहीं खाया जाता, जो साक्षी के साथ (अर्थात् दूसरे को देकर) अन्न को खाता है ।

विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयापरः ।
देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः ॥५०॥

जो नित्य ही बांट कर भोजन खाता है, क्षमा से युक्त है और दयाशील है, एवं देवताओं और अतिथियों का भक्त है, वही गृहस्थ धार्मिक है।

दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा योग. कृतज्ञता।
एते यस्य गुणाः सन्ति स गृही मुख्य उच्यते ॥५१॥

दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धि, योग, कृतज्ञता—ये गुण जिसके पास हैं, वही उत्तम गृही कहा जाता है।

सविभागं ततः कृत्वा गृहस्थः शेषभुग्भवेत्।
भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ॥५२॥

इस लिये गृहस्थ भोजन का विभाग करके स्वयं शेष बचे भोजन को खाए। खाकर और आराम से बैठकर उस भोजन को पचाए।

इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठञ्च सप्तमं नयेत्।
अष्टमे लोकयात्रा तु बहि. सन्ध्या ततः पुनः ॥५३॥

द्विज छठा और सातवां भाग इतिहास और पुराण आदि के अध्ययन में बिताए। आठवें भाग में लोक-यात्रा (आजीविका का धन्धा) करे और फिर बाहर जाकर सायकालीन सध्योपासना करे।

होमो भोजनकञ्चैव यच्चान्यद् गृहकृत्यकम्।
कृत्वा चैव ततः पश्चात् स्वाध्यायं किञ्चिदाहरेत् ॥५४॥

होम और भोजन तथा घरके जो अन्य कार्यकलाप है, उनको इस प्रकार करके तत्पश्चात् कुछ स्वाध्याय करे।

प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत्।
यामद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५५॥

रात्रि आने पर अगले दो पहरो को वेदाभ्यास में बिताए, और उसके पश्चात् दो पहर तक सोकर बिताने वाला वह मनुष्य ब्रह्म की प्राप्ति में समर्थ हो जाता है।

नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा यथा।
तथा तथैव कार्य्याणि न कालस्तु विधीयते ॥५६॥

नैमित्तिक और काम्य कर्म जैसे-जैसे उपस्थित हों, वैसे-वैसे ही किये जाने चाहियें। उनके लिये निश्चित समय का विधान नही है।

अस्मिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेव तु लीयते।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुखमिच्छता ॥५७॥

इस संसार में सब प्रकार के कर्मों को करता हुआ मनुष्य अन्त में इसी में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस लिये सुख चाहने वाले को सब प्रकार के प्रयत्न से अपने कर्म को करना चाहिये।

सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ।
भुञ्जानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदति ।।५८।।

सभी कर्मो के लिये मध्यम प्रहर उत्तम है। हवि प्रदान करने के पश्चात् जो शेष बचा है उसे खाता हुआ और उचित समय पर शयन करने वाला ब्राह्मण विनाश को प्राप्त नहीं होता ।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

सुधा नव गृहस्थस्य ईषद्दानानि वै नव ।
तथैव नव कर्माणि विकर्माणि तथा नव ।।१।।

गृहस्थ की नौ सुधाएं है, नौ ही ईषद्दान हैं, उसी प्रकार से नौ उत्तम कर्म हैं और नौ ही निकृष्ट कर्म है।

प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि तथा नव ।
सफलानि नवान्यानि निष्फलानि नवैव तु ।।२।।

अन्य नौ कर्म गोपन के योग्य, नौ प्रकाशन के योग्य, नौ कर्म सफल और नौ ही असफल कहे गए हैं ।

अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा ।
नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ।।३।।

नौ अन्य वस्तुए कभी भी देने के योग्य नही हैं, ये नौ नवक (नौ के समूह) गृहस्थ की उन्नति करने वाले बताए गए है ।

सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ।
मनश्चक्षुर्मुख वाच सौम्य दद्याच्चतुष्टयम् ।।४।।
अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापप्रियान्वितः ।
उपासनमनुव्रज्या कार्याण्येतानि यत्नतः ।।५।।

(नौ) सुधा वस्तुओं का वर्णन करता हू—विशिष्ट जनके घर में आने पर (एक) मन, (दूसरी) आंखे, (तीसरे) मुख और चौथी सौम्य वाणी को उसकी

ओर लगाए। (पांचवें) खड़ा हो जाए, (छठे उसे कहे) 'इधर आ जाईये, (सातवें) इसके पास बैठ जाए, (आठवें) आने का कारण पूछकर उसके साथ मीठे शब्दो से वार्तालाप करे, और (नौवे) जब वह उठकर जाए तो कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे जाए। ये नौ कर्म यत्नपूर्वक करने चाहियें।

ईषद्दानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च।
पादशौचं तथाभ्यङ्गमाश्रयः शयनन्तथा ॥६॥
किञ्चिच्चान्नं यथाशक्ति नास्यानश्नन् गृहे वसेत्।
मृज्जलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥७॥

घर में आए विशिष्ट जन को देने के लिये नौ छोटी वस्तुए कही गई है—(१) भूमि (बैठने का स्थान), (२) जल, (३) आसन, (४) पांव धोने के लिये जल, (५) मालिश का सामान, (६) ठहरने का स्थान, (७) सामर्थ्य के अनुसार कुछ भोजन, क्योकि वह भूखा रहकर उसके घर में नहीं ठहर सकता, और (९) मांगने पर शौच आदि के लिये मिट्टी और जल। ये सब चीजे घर से ही मिल जाती हैं।

सन्ध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्च्चनम्।
वैश्वदेवं तथातिथ्यमुद्धृतञ्चापि शक्तितः ॥८॥
पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम्।
मातापितृगुरूणाञ्च संविभागो यथार्हतः ॥९॥
एतानि नव कर्माणि

(१) सन्ध्या (२) स्नान, (३) जप, (४) होम, (५) स्वाध्याय, (६) देवपूजा, (७) वैश्वदेव यज्ञ, (८) अतिथिपूजा और (९) शक्ति के अनुसार पितरो, देवों, मनुष्यों दीनो, अनाथो तपस्वियो, माता, पिता और गुरुजनो को स्थाली से निकले हुए भोजन का यथायोग्य विभाग करना ये नौ उत्तम कर्म हैं।

विकर्माणि तथा पुनः।
अनृतं पारदार्य्यञ्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥१०॥
अगम्यागमनापेयपानं स्तेयञ्च हिंसनम्।
अश्रौतकर्माचरणं मित्रधर्मबहिष्कृतम् ॥११॥
नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत्।

और उसी प्रकार से ये नौ निकृष्ट कर्म हैं—(१) झूठ बोलना, (२) पराई स्त्री से सम्बन्ध रखना, (३) अभक्ष्य का भक्षण, (४) अगम्या स्त्री से संभोग,

(५) न पीने योग्य पेय को पीना, (६) चोरी करना, (७) हिंसा करना, (८) वेद-विरुद्ध कर्मों का आचरण करना, और (९)मित्र-धर्म का बहिष्कार करना—ये नौ निन्दनीय कर्म है, इन सब को छोड़ देवे।

आयुर्वित्त गृहच्छिद्र मन्त्रमैथुनभैषजम् ॥१२॥
तपो दानावमानौ च नव गोप्यानि यत्नतः ।

(१) आयु, (२) धन, (३) अपने घर के दोष, (४) मन्त्र, (५) मैथुन (६) भैषज, (७) तप, (८) दान और (९) अपमान—ये यत्नपूर्वक गोपन के योग्य हैं।

आरोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ॥१३॥
कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम् ।
प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा ॥१४॥

गृहस्थाश्रमी को (१) आरोग्य की प्राप्ति, (२) ऋण की अदायगी, (३) दान, (४) अध्ययन, (५) विक्रय, (६) कन्यादान, (७) वृष का उत्सर्ग, (८) एकान्त में किये हुए पाप और (९) अनिन्दित कर्म का प्रकाशन, सबके सामने करना चाहिये।

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तन्तु सफलं भवेत् ॥१५॥

माता, पिता, गुरु, मित्र, विनीत, उपकारी, दीन, अनाथ और विशिष्ट जन—इन नौ को दिया हुआ दान सफल होता है।

धूर्त्ते वन्दिनि मन्दे च कुवैद्ये कितवे शठे ।
चाटुचारणचौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥१६॥

धूर्त, वन्दी, मन्दबुद्धि, कुवैद्य, जुआरी, शठ, चापलूस, चारण और चोर—इन नौ को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है।

सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम् ।
क्रमायातञ्च निक्षेपः सर्वस्वञ्चान्वये सति ॥१७॥
आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ।
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः ॥१८॥

(१) सामान्य धन, (२) माँगा हुआ धन, (३) धरोहर, (४) कोश, (५) पत्नी, (६) पत्नी का धन (स्त्री-धन), (७) वंशपरम्परा से प्राप्त धन, (८) निक्षेप (जमा-पूँजी) और (९) वंश के होते हुए भी सर्वस्व—ये नौ वस्तुएं

विपत्ति आने पर भी कभी नहीं देनी चाहिये। जो दे देता है वह मूर्ख मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है।

नवनवकवेत्तारमनुष्ठानपर नरम्।
इह लोके परे च श्रीः स्वर्गस्थञ्च न मुञ्चति ॥१९॥

इन नौ नवको (९ × ९ = ८१ बातों) को जानने वाले और इनसे सम्बन्धित अनुष्ठानों को करने वाले मनुष्य को श्री इस लोक मे और परलोक मे स्वर्गस्थ को भी नहीं छोड़ती।

यथैवात्मा परस्तद्वद् द्रष्टव्यः सुखमिच्छता।
सुखदु.खानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे ॥२०॥

सुख चाहने वाले मनुष्य को दूसरा मनुष्य वैसे ही देखना चाहिये, जैसे वह अपने आप को देखता है। सुख और दुःख तो सब के लिये समान है। जैसे उनका स्वयं को अनुभव होता है, वैसे ही दूसरों को भी अनुभव होता है।

सुख वा यदि वा दु.खं यत्किञ्चित् क्रियते परे।
ततस्तत्तु पुनः पश्चात् सर्वमात्मनि जायते ॥२१॥

सुख हो चाहे दुःख, जो कुछ दूसरे के लिये किया जाता है, वह सारे का सारा कुछ समय के पश्चात् करने वाले के अन्दर ही उत्पन्न हो जाता है।

न क्लेशेन विना द्रव्य द्रव्यहीने कुतः क्रिया।
क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ॥२२॥

कष्ट सहन किये बिना धन की प्राप्ति नही होती। जिसके पास धन नही वह काम भला कैसे कर सकता है ? जो कर्म से हीन है, वह धर्म अर्जित नहीं कर सकता, और धर्म से हीन मनुष्य को सुख कहां ?

सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम्।
तस्माद्धर्मः सदा कार्य्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥२३॥

सभी सुख चाहते है, और वह धर्म से उत्पन्न होता है। इसलिये सभी वर्णों को सदा प्रयत्नपूर्वक धर्म करना चाहिये।

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्य पारलौकिकम्।
दानञ्च विधिना देय काले पात्रे गुणान्विते ॥२४॥

ईमानदारी से कमाए हुए धन के द्वारा श्राद्ध आदि पारलौकिक कर्म करना चाहिये, दान उचित समय पर गुणों से युक्त पात्र को विधिपूर्वक देना चाहिये।

समद्विगुणसाहस्रमानन्त्यञ्च यथाक्रमम् ।
दाने फलविशेषः स्याद्धिसायां तावदेव तु ॥२५॥

दान देने से (पात्र के कारण से) क्रमशः बराबर, दुगने, हजारगुने और अनन्त फल-विशेष की प्राप्ति होती है। हिंसा करने में भी (इसी प्रकार से) उतने-उतने फल की प्राप्ति होती है।

सममब्राह्मणे दान द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्रगुणमाचार्य्ये त्वनन्त वेदपारगे ॥२६॥

अब्राह्मण को दान देने से बराबर फल की प्राप्ति होती है, नाम मात्र के ब्राह्मण को देने से दुगने फल की प्राप्ति होती है, आचार्य को देने से हजार गुना फल की प्राप्ति होती है, और वेदों में पारगत ब्राह्मण को दान देने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

विधिहीने तथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवलं तद्विनश्येच्छेपमप्यस्य नश्यति ॥२७॥

विधि से हीन पात्र को जो मनुष्य अपने धन को दान में देता है, केवल वही धन नष्ट नही होता, अपितु उसका शेष धन भी नष्ट हो जाता है।

व्यसनप्रतिकाराय कुटुम्बार्थञ्च याचते ।
एवमन्विष्य दातव्यमन्यथा न फल भवेत् ॥२८॥

सकट-विमोचन के लिये और परिवार के भरण-पोषण के लिये जो मनुष्य माँगता है, ऐसे मनुष्य को ढूंढकर दान देना चाहिये, अन्यथा दान का फल नहीं मिलता।

मातापितृविहीनन्तु संस्कारोद्वहनादिभिः ।
यः स्थापयति तस्येह पुण्यसख्या न विद्यते ॥२९॥

माता-पिता से विहीन बालक को जो मनुष्य उपनयन, विवाह आदि संस्कार कराकर जीवन में स्थापित करता है, इस लोक में उसके पुण्यों को गिना नहीं जा सकता।

न तच्छ्रेयोऽग्निहोत्रेण नाग्निष्टोमेन लभ्यते ।
यच्छ्रेयः प्राप्यते पुंसा विप्रेण स्थापितेन तु ॥३०॥

मनुष्य को जो कल्याण ब्राह्मण को जीवन में स्थापित करने से प्राप्त होता है, वह कल्याण न तो अग्निहोत्र से प्राप्त होता है, और न ही अग्निष्टोम से प्राप्त होता है।

यद्यदिष्टतम लोके यच्चापि दयित गृहे ।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥३१॥

लोक में जो-जो इष्टतम वस्तु है, और घर मे जो-जो प्यारी वस्तु है, उसे अक्षय चाहने वाले मनुष्य को वह-वह वस्तु ही गुणवान् को दान मे दे देनी चाहिये ।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छन्दोऽनुवर्तिनी ।
गृहाश्रमसम नास्ति यदि भार्य्या वशानुगा ॥१॥
तया धर्मार्थकामाना त्रिवर्गफलमश्नुते ।

मनुष्यों के घर का आधार पत्नी है, यदि वह पति की इच्छानुसार आचारण वाली है । यदि पत्नी पति की वशवर्तिनी है तो गृहाश्रम के समान और कोई आश्रम नहीं है । उस (पत्नी) के द्वारा वह धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग के फल को प्राप्त कर लेता है ।

प्राकाम्ये वर्त्तमाना तु स्नेहान्न तु निवारिता ॥२॥
अवश्या सा भवेत् पश्चाद् यथा व्याधिरुपेक्षितः ।

यदि पत्नी स्वेच्छाचारिणी है, और पति स्नेह के कारण उसे नहीं रोकता, तो वह कालान्तर में उपेक्षा किये हुए रोग की तरह पति के वश से बाहर हो जाती है ।

अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियवदा ॥३॥
आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥४॥

पति के अनुकूल आचरण करने वाली, वाणी से बुरे शब्द न बोलने वाली, घर के काम-काज मे चतुर, पवित्र आचारण वाली, मीठा बोलने वाली, अपनी रक्षा करने वाली और पति में श्रद्धा रखने वाली वह देवता ही है, मानुषी नहीं ।

अनुकूलकलत्रो यस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ।
प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥५॥

पत्नी जिसके अनुकूल है, उसके लिये इस लोक में ही स्वर्ग है। पत्नी जिसके प्रतिकूल है उसके लिये यह लोक नरक है, इस में कोई संशय रहीं है।

स्वर्गेऽपि दुर्लभो ह्येतदनुरागः परस्परम् ।
रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तस्मात् कष्टतरं नु किम् ॥६॥

यह पारस्परिक अनुराग स्वर्ग में भी दुर्लभ है। (पति और पत्नी में से) एक तो अनुराग वाला हो, और दूसरा अनुराग से हीन हो, इससे बढ़कर और कौन सी दुःख की बात हो सकती है।

गृहवासः सुखार्थाय पत्नीमूलं गृहे सुखम् ।
सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्त्तिनी ॥७॥

गृहवास सुख के लिये होता है, और घर मे सुख का आधार पत्नी है। पत्नी वही है, जो विनीत हो, पति के चित्त को जानने वाली हो और उसके वश में रहने वाली हो।

दुःखा ह्यन्या सदा खिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ।
प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥८॥

इसके विपरीत जो पत्नी है, वह सदा दुखी और चिन्तित रहती है। जिसकी पत्नी उसके प्रतिकूल है, और विशेष रूप से जिसकी दो पत्नियां है, उनके चित्त कभी आपस में नहीं मिलते।

योषित्सर्वा जलौकेव भूषणाच्छादनाशनैः ।
सुभृत्यापि कृता नित्य पुरुषं ह्यपकर्षति ॥९॥

प्रत्येक स्त्री जोंक के समान है। नित्य भूषण, वस्त्र, भोजन और उत्तम ऐश्वर्य से युक्त की हुई भी वह (पति को) चूसती रहती है।

जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ।
इतरा तु धनं वित्तं मांसं वीर्यं बल सुखम् ॥१०॥

वह बेचारी जोंक तो केवल खून ही चूसती है, पर दूसरी (अर्थात् पत्नी) तो धन, संपत्ति, मांस, वीर्य, बल और सुख सब को ही चूस लेती है।

सशङ्का बालभावे तु यौवने विमुखी भवेत् ।
तृणवन्मन्यते पश्चाद् वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥११॥

बाल्यावस्था में वह पति के प्रति शङ्काल् बनी रहती है। यौवन में वह (स्वयं) उससे विमुख हो जाती है। और तत्पश्चात् बुढ़ापे में वह अपने पति को तिनके के समान मानने लगती है।

अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥१२॥

जो पत्नी पति के अनुकूल है, वाणी से बुरे वचन नहीं बोलती, घरके काम-काज में प्रवीण है, पवित्र आचारण वाली है—इन गुणों से युक्त वह स्त्री लक्ष्मी ही है, इसमें सन्देह नहीं है।

या हृष्टा मनसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा।
भर्त्तुः प्रीतिकरी नित्य सा भार्य्या हीतरा जरा ॥१३॥

जो नित्य प्रसन्नचित्त रहती है, स्थान और मान आदि के विषय में चतुर है, नित्य पति की प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाली है, वही भार्या है, इससे अन्य तो जरा (बुढापा) है।

शिष्यो भार्य्या शिशुर्भ्राता पुत्रो दासः समाश्रितः।
यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥१४॥

जिस मनुष्य का शिष्य, पत्नी, छोटा बच्चा, भाई, पुत्र, दास और आश्रित जन—ये सब के सब विनीत हैं, उसका ही लोक में गौरव है।

प्रथमा धर्मपत्नी च द्वितीया रतिवर्द्धिनी।
दृष्टमेव फल तत्र नादृष्टमुपजायते ॥१५॥

एक तो धर्म-पत्नी (धर्म का पालन कराने वाली) होती है, दूसरी काम-वासना को बढ़ाने वाली होती है। उस दूसरे प्रकार की स्त्री में दृष्ट फल (पुत्र आदि लौकिक फल) तो उत्पन्न होता है, पर अदृष्ट फल (स्वर्ग आदि अलौकिक फल) की उत्पत्ति नहीं होती।

धर्मपत्नी समाख्याता निर्द्दोषा यदि सा भवेत्।
दोषे सति न दोषः स्यादन्या भार्य्या गुणान्विता ॥१६॥

यदि पत्नी दोषों से रहित है तो वह धर्मपत्नी कही जाती है। इसमें दोष उत्पन्न हो जाने पर अन्य गुणों से युक्त पत्नी को ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है।

अदुष्टापतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत्।
स जीवनान्ते स्त्रीत्वञ्च वन्ध्यत्वञ्च समाप्नुयात् ॥१७॥

जो मनुष्य दोषों से रहित और पवित्र आचरण वाली पत्नी को यौवन में छोड़ देता है, वह मरकर बांझ (स्त्री) बनता है।

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्त्तारं याऽवमन्यते।
शुनी गृध्री च मकरो जायते सा पुनः पुनः ॥१८॥

जो स्त्री अपने दरिद्र और रोगी पति का अपमान करती है, वह बार-बार कुतिया, गीध और मगरमच्छ स्त्री के रूप में उत्पन्न होती है।

मृते भर्तरि या नारी समारोहेद् धुताशनम्।
सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥१९॥

पति के मर जाने पर जो नारी (उसकी चिता की) अग्नि में प्रवेश कर जाती है, वह पवित्र आचार वाली होती है, और स्वर्ग लोक में महानता को प्राप्त होती है।

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात्।
तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥२०॥

सपेरा जिस प्रकार सांप को बिल से बलपूर्वक निकाल लेता है, उसी प्रकार वह स्त्री (अगले जन्म में) अपने पति को प्राप्त करके उसके साथ आनन्द में रहती है।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

उक्तं शौचमशौचञ्च कार्य्यं त्याज्यं मनीषिभिः।
विशेषार्थं तयो किञ्चिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

शौच और अशौच को कह दिया गया है। मनीषियो के द्वारा शौच करणीय है, और अशौच त्याज्य है। मैं जनहित की कामना से इन दोनों के विषय में कुछ विशेष बाते कहूंगा।

शौचे यत्नः सदा कार्य्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥२॥

शौच के लिये सदा ही यत्न किया जाना चाहिये, क्योंकि शौच को द्विज का आधार माना गया है। जो शौच और आचार से हीन है, उसके समस्त कार्यकलाप निष्फल है।

शौचञ्च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरन्तथा ।
मृज्जलाभ्या स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥३॥

शौच दो प्रकार का बताया गया है—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य मिट्टी और जलों के द्वारा कहा गया है, और विचारों की शुद्धि को आभ्यन्तर शौच कहा गया है।

अशौचाद्धि वर बाह्यं तस्मादाभ्यन्तरं वरम् ।
उभाभ्याञ्च शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥४॥

अशौच से बाह्य शौच अधिक अच्छा है, और उस (बाह्य शौच) से आभ्यन्तर शौच अधिक अच्छा है । जो दोनों प्रकार के शौचों से पवित्र है, वही पवित्र है, अन्य नहीं ।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा ।
उभयो. सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः ॥५॥

जननेन्द्रिय में एक बार, गुदा में तीन बार, बाएँ हाथ में दस बार, दोनों हाथों में सात बार और पांवों मे तीन बार मिट्टी लगाकार उन्हें साफ करना चाहिये ।

गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येपु यथाक्रमम् ।
द्विगुण त्रिगुणञ्चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥६॥

गृहस्थ के लिये एक गुना शौच कहा गया है । और तीन अन्य के लिये (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी क लिये) क्रमश दुगुना, तिगुना और चौथे (संन्यासी) के लिये चार गुना शौच कहा गया है ।

अर्द्धप्रसृतिमात्रन्तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।
द्वितीया च तृतीया च तदर्द्ध परिकीर्तिता ॥७॥

पहली मिट्टी आधी प्रसृति (अंगुलियों के साथ अगूठा मिलाकर खुला हाथ) मात्र मानी गई है । दूसरी और तीसरी मिट्टी उससे आधी कही गई है ।

लिङ्गेऽप्यत्र समाख्याता त्रिपर्वी पूर्य्यते यया ।
एतच्छौचं गृहस्थाना द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥८॥

लिङ्ग की शुद्धि के लिये भी उतनी मिट्टी कही गई है, जिससे अंगुलियों के तीन पोर तक हाथ भर जाए । यह गृहस्थों का शौच है । ब्रह्मचारियों के लिये इससे दुगुना होता है ।

त्रिगुणन्तु वनस्थानां यतीनाञ्च चतुर्गुणम् ।
दातव्यमुदकन्तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥९॥

वानप्रस्थों का तीन गुणा होता है, और सन्यासियों का चार गुणा। यदि मिट्टी का अभाव हो तो जल से सफाई करनी चाहिये।

मृदा जलेन शुद्धि स्यान्न क्लेशो न धनव्ययः।
यस्य शौचेऽपि शैथिल्य चित्त तस्य परीक्षितम् ॥१०॥

मिट्टी और जल से सफाई करनी चाहिये, क्योंकि न तो इसमें किसी प्रकार का कष्ट होता है, और न ही धन का व्यय होता है। इसपर भी जो आदमी शौच के विषय में शिथिलता दिखाता है, उसके चित्त की परीक्षा हो चुकी (अर्थात् वह परले दर्जे का आलसी है)।

अन्यदेव दिवा शौच रात्रावन्यद्विधीयते।
अन्यदापत्सु विप्राणामन्यदेव ह्यनापदि ॥११॥

ब्राह्मणों का दिन के समय अन्य प्रकार का शौच होता है और रात्रि के समय अन्य प्रकार का, विपत्तियों में अन्य प्रकार का शौच होता है और सुख-समृद्धि के समय अन्य प्रकार का।

दिवोदितस्य शौचस्य रात्रावर्द्ध विधीयते।
तदर्द्धमातुरस्याहुस्त्वरायामर्द्धमध्वनि ॥१२॥

दिन में सूर्य निकलने पर जितना शौच किया जाता है रात्रि में उससे आधा किया जाता है। रोगी के लिये उससे भी आधा बताते है, और यात्रा में त्वरा के कारण इससे भी आधा शौच होता है।

न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सिता।
प्रायश्चित्तेन युज्येत विहितातिक्रमे कृते ॥१३॥

शुद्धि चाहने वाले के द्वारा शौच के विषय में कम-ज्यादा नहीं करना चाहिये। विधान किये हुए शौच का अतिक्रमण करने पर मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

सूतकं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युसमुद्भवम्।
यावज्जीवं तृतीयन्तु यथावदनुपूर्वशः ॥१॥

अब मैं जन्म और मृत्यु से उत्पन्न होने वाले सूतकों को और तीसरे जीवन भर चलने वाले सूतक को क्रमशः यथोचित रूप से कहता हूं।

सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ।
दशाहो द्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥२॥
मरणान्त तथा चान्यद्दशपक्षन्तु सूतके ।
उपन्यस्तक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥३॥

तुरन्त शौच, एक दिन का शौच, दो दिन का शौच, तीन दिन का शौच, चार दिन का शौच, दस दिन का शौच, बारह दिन का शौच, एक पक्ष का शौच, एक महीने का शौच, और अन्य मृत्यु पर्यन्त चलने वाला शौच—सूतक के ये दस पक्ष हैं। मैं बताए हुए क्रम से ही इनका सम्पूर्ण रूप से वर्णन करूंगा।

ग्रन्थार्थतः विजानाति वेदमङ्गैः समन्वितम् ।
सकल्प सरहस्यञ्च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥४॥

कोई मनुष्य यदि अङ्गों, कल्प और रहस्य सहित वेद को उसके पाठ और अर्थ के साथ जानता है, और उसमें कहे कर्मों को करता है, तो वह सूतकी नहीं होता।

राजर्त्विग्दीक्षितानाञ्च बाले देशान्तरे तथा ।
व्रतिनां सत्रिणाञ्चैव सद्यःशौच विधीयते ॥५॥

राजा, ऋत्विक्, दीक्षा को ग्रहण किये हुए, बालक, विदेश मे गए हुए, व्रत को धारण करने वाले और सत्र (बड़े यज्ञ) मे बैठे हुए मनुष्य के लिये सद्यःशौच का विधान है (अर्थात् इनकी सूतक में तुरन्त शुद्धि हो जाती है)।

एकाहस्तु समाख्यातो योऽग्निवेदसमन्वितः ।
हीने हीनतरे चैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥६॥

जो मनुष्य यज्ञाग्नि और वेद से समन्वित है, उसके लिये एक दिन का शौच कहा गया है। जो उससे हीन या हीनतर है, उसके लिये दो, तीन या चार दिन का शौच बतलाया गया है।

जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥७॥

जन्म मात्र से ब्राह्मण दस दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है।

अस्नात्वा चाप्यहुत्वा च भुङ्क्तेऽदत्त्वा च यः पुनः ।
एवंविधस्य सर्वस्य सूतकं समुदाहृतम् ॥८॥

जो मनुष्य बिना स्नान किये, बिना हवन किये और फिर बिना दान किये

भोजन करता है, इस प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति के लिये सूतक कहा गया है।

व्याधितस्य कदर्य्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥९॥

रोगी, कंजूस, ऋण से ग्रस्त, क्रियाओं से हीन, अनपढ़, और विशेष रुप से स्त्री के वश में रहने वाला हमेशा सूतक में रहता है।

व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः।
श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ॥१०॥

व्यसनों में आसक्त चित्त वाले, नित्य ही पराधीन रहने वाले, श्रद्धा और त्याग से हीन मनुष्य के लिये भस्मान्त (मृत्यु-पर्यन्त) सूतक होता है।

न सूतक कदाचित् स्याद् यावज्जीवन्तु सूतकम्।
एवं गुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥११॥

किसी के लिये तो कभी भी सूतक नहीं होता, और किसी के लिये जीवन पर्यन्त सूतक होता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के गुणविशेष के अनुसार सूतक कहा गया है।

सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके।
एतत्संहृतशौचाना मृतशौचेन शुध्यति ॥१२॥

सूतक के शौच में यदि मृतक का शौच भी हो जाए, अथवा मृतक के शौच में सूतक का शौच हो जाए, तो इन मिले हुए शौचों में मृतक के शौच की समाप्ति के साथ शुद्धि होती है।

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।
दशाहात्तु पर शौचं विप्रोऽर्हति च धर्मवित् ॥१३॥

(अशौच में) दान देना, दान लेना, होम करना और स्वाध्याय बन्द हो जाता है। धर्म को जानने वाला ब्राह्मण दस दिन के पश्चात् शुद्धि के योग्य हो जाता है।

दानञ्च विधिना देयं अशुभात्तारकं हि तत्।
मृतकान्ते मृतो यस्तु सूतकान्ते च सूतकम् ॥१४॥
एतत्सहतशौचाना पूर्वाशौचेन शुध्यति।
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥१५॥

अशौच में दान विधिपूर्वक देना चाहिये, क्योंकि वह अशुभ से तारने वाला होता है। जो कोई मृतक में मर जाए या सूतक मे किसी का जन्म हो जाए,

इन मिले हुए शौचो की पूर्व अशौचो की शुद्धि के साथ शुद्धि होती है। दोनों ही स्थितियो में दस दिन तक उस कुल का अन्न नहीं खाया जाता।

चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः।

ततः सञ्चयनादूर्द्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥१६॥

चौथे दिन ब्राह्मणों के द्वारा अस्थि सञ्चयन (फूल चुनना) किया जाता है। और अस्थि-सञ्चयन के पश्चात् अङ्गस्पर्श किया जाता है।

वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः।

दशषट्त्र्यहमेकाहः प्रसवे सूतकं भवेत् ॥१७॥

वर्णो के अनुलोम-क्रम से यदि स्त्रियों का एक ही पति हो अर्थात् यदि एक ही पति की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पत्नियां हों तो उनके प्रसव में क्रमशः दस, छः, तीन और एक दिन का सूतक होता है।

यज्ञकाले विवाहे च देशभङ्गे तथैव च।

हूयमाने तथाग्नौ च नाशौचं मृतसूतके ॥१८॥

यदि यज्ञ चल रहा हो, विवाह हो रहा हो, देश में विप्लव हो गया हो, और अग्नि मे हवन किया जा रहा हो, तो मृत्यु और जन्म का अशौच नहीं होता।

स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम्।

आपद्गतस्य सर्वस्य सूतके न तु सूतकम् ॥१९॥

यह सारा अशौच स्वस्थ काल (सामान्य काल) के लिये कहा गया है। आपत्काल में तो सभी को सूतक में भी सूतक नहीं होता।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

लोको वशीकृतो येन येन चात्मा वशीकृतः।

इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥१॥

जिसके द्वारा लोक को वश में कर लिया जाता है, जिसके द्वारा आत्मा को वश में कर लिया जाता है, जिसके द्वारा इन्द्रियों के विषयों को जीत लिया जाता है, मैं उस योग का प्रवचन करता हूं।

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारस्तु धारणा।

तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥२॥

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क और समाधि—यह छः अङ्गों वाला योग कहा गया है।

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रन्थचिन्तनात् ।
व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिश्च न योगः कस्यचिद्भवेत् ।।३।।

अरण्य के सेवन (वास) से योग नहीं हो जाता, न ही अनेक ग्रन्थों के चिन्तन से योग होता है, और न ही व्रतों यज्ञों और तपों से किसी को योग होता है।

न च पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ।
न च शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन स भवेत् क्वचित् ।।४।।

न तो (केवल) पथ्य भोजन के खाने से, न नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि टिकाने से, और न ही शास्त्र में कहे हुए शौच से अधिक शौच करने से कभी योग हो सकता है।

न मौनमन्त्रकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ।
लोकयात्रावियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ।।५।।

न मौन से, न मन्त्रादि के उच्चारण से, न ही भली प्रकार किये हुए अनेक जादू-टोनों से योग होता है। न ही लोकयात्रा परित्याग कर देने वाले किसी मनुष्य को योग हो सकता है।

अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात् ।
पुनः पुनश्च निर्वेदाद्योगः सिध्यति नान्यथा ।।६।।

योग तो उसमें भली प्रकार जुट जाने से, अभ्यास से, उसमें ही दृढ़ निश्चय से और बार-बार निर्वेद से सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

आत्मचिन्ताविनोदेन शौचक्रीडनकेन च ।
सर्व्वभूतसमत्वेन योगः सिध्यति नान्यथा ।।७।।

अपनी मानसिक चिन्ताओं को दूर कर देने से, पवित्रता में क्रीडा करने से और सब प्राणियों में समत्वबुद्धि रखने से योग सिद्ध होता है, किसी अन्य उपाय से नहीं।

यश्चात्मनि रतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च ।
आत्मनिष्ठश्च सततमात्मन्येव स्वभावतः ।।८।।
रतश्चैव स्वयं तुष्टः सन्तुष्टो नान्यमानसः ।
आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिध्यति ।।९।।

जो नित्य अपने अन्दर ही रमण करता है, तथा अपने अन्दर ही क्रीडा करता है, निरन्तर अपने अन्दर ही स्थिति बनाए हुए है, स्वभाव से अपने अन्दर ही लीन है, स्वयं प्रसन्नचित्त है, सन्तुष्ट है, जिसका मन किसी अन्य वस्तु की ओर नहीं जाता, और वह जो अपने अन्दर ही भली प्रकार तृप्त है, उसको ही योग सिद्ध होता है।

सुप्तोऽपि योगयुक्तः स्याज्जाग्रच्चापि विशेषतः ।
ईदृक्चेष्ट स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥१०॥

जो सोते हुए भी और विशेष रूप से जागते हुए भी योग में जुटा हुआ है, इस प्रकार की चेष्टाओं वाला वह मनुष्य ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ और गरिष्ठ माना गया है।

य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ।
ब्रह्मीभूय स एवं हि दक्षपक्ष उदाहृतः ॥११॥

जो मनुष्य इस संसार मे आत्मा से भिन्न और अन्य कुछ नहीं देखता, इस प्रकार देखने वाला वह दक्ष के मत में ब्रह्मभूत कहा गया है।

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विन्दति ।
यत्नेन विषयासक्ति तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥१२॥

विषयों में आसक्त चित्त वाला सन्यासी चूंकि मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता, इस लिये योगी यत्नपूर्वक विषयों में आसक्ति को छोड़ देवे।

विषयेन्द्रियसंयोगं केचिद्योग वदन्ति हि ।
अधर्मो धर्मरूपेण गृहीतस्तैरपण्डितैः ॥१३॥

कुछ लोग विषयों के साथ इन्द्रियों के संयोग को ही योग कहते है। उन मूर्खों के द्वारा तो अधर्म को ही धर्म के रूप मे ग्रहण कर लिया गया है।

मनसश्चात्मनश्चैव संयोगञ्च तथापरे ।
उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवञ्चिताः ॥१४॥

इसी प्रकार कुछ अन्य लोग मन के और आत्मा के संयोग को योग कहते हैं। वे तो पूर्वोक्त मूर्खों से भी अधिक अज्ञानी है और केवल योग से वञ्चित हैं।

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥१५॥

मन को वृत्तियों से हटाकर जीव को परमात्मा में एकीभाव को प्राप्त

कराकर मनुष्य जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाए, यही मुख्य योग कहा गया है।

कषायमोहविक्षेपलज्जाशङ्कादिचेतस. ।
व्यापारास्तु समाख्यातास्तान् जित्वा वशमानयेत् ॥१६॥

राग, मोह, चित्त की चञ्चलता, लज्जा, शङ्का आदि चित्त के व्यापार कहलाते हैं। मनुष्य उनको जीतकर वश में करे।

कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्राम्यैः षष्ठस्तत्र महत्तरः ।
देवासुरमनुष्यैस्तु स जेतुं नैव शक्यते ॥१७॥

पांच साधारण इन्द्रियों के साथ जो छठा अति महान् मन है, वह देवों, असुरों और मनुष्यो के द्वारा भी जीता नही जा सकता।

बलेन परराष्ट्राणि गृह्णन् शूरस्तु नोच्यते ।
जितो येनेन्द्रियग्राम. स शूरः कथ्यते बुधैः ॥१८॥

बल से दूसरे राष्ट्रों को जीतने वाला मनुष्य शूर नहीं कहलाता। जिसने इन्द्रियों के समूह को जीत लिया है, ज्ञानियों के द्वारा वही शूर कहलाता है।

बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ।
सर्वञ्चैवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्मनि योजयेत् ॥१९॥

बहिर्मुखी इन सब इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके इस इन्द्रियसमूह को मन में स्थापित करे, और मन को आत्मा से स्थापित करे।

सर्वभावविनिर्मुक्तः क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
एतद्ध्यानञ्च योगश्च शेषा स्युर्ग्रन्थविस्तराः ॥२०॥

सब भावों से भली प्रकार मुक्त होकर मनुष्य आत्मा को ब्रह्म में स्थापित करे। यही ध्यान है और यही योग है। शेष तो ग्रन्थों के विस्तार हैं।

त्यक्त्वा विषयभोगांश्च मनो निश्चलतां गतम् ।
आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधि. परिकीर्त्तितः ॥२१॥

विषयों के भोगों को छोड़कर निश्चलता को प्राप्त हुआ, और आत्मा की शक्ति के रूप में स्थित मन समाधि कहलाता है।

चतुर्णां सन्निकर्षेण पद यत्तदशाश्वतम् ।
द्वयोस्तु संनिकर्षेण शाश्वत ध्रुवमक्षयम् ॥२२॥

योग के (केवल) चार अङ्गों (तर्क, प्रणायाम, प्रत्याहार और धारणा) के अत्यन्त सयोग से जिस पद की प्राप्ति होती है, वह शाश्वत नहीं है, किन्तु (ध्यान और समाधि) दो पदों के सयोग से प्राप्त होने वाला पद शाश्वत, ध्रुव और अक्षय है।

यन्नास्ति सर्व्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते ।
कथ्यमान तथान्यस्य हृदये नावतिष्ठते ।।२३।।

यह एक विरोधाभास है कि सब लोगों के लिये जिसका अस्तित्व नहीं है, (योगी के लिये) उसका अस्तित्व है। इसी प्रकार, उपदेश किया जाता हुआ भी यह तत्त्व किसी अन्य (अज्ञानी) क हृदय में नहीं टिक सकता।

स्वसंवेद्य हि तद् ब्रह्म कुमारीमैथुनं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जातान्धो हि यथा घटम् ।।२४।।

कुमारी के मैथुन की तरह वह ब्रह्म अपने द्वारा ही जानने के योग्य है। जो योगी नहीं है, वह उसे नहीं जान सकता, जिस प्रकार जन्म से अन्धा मनुष्य घड़े को नहीं देख सकता।

नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंवेद्यं हि तद्भवेत् ।
तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्य पर ब्रह्म सनातनम् ।।२५।।

वह ब्रह्म नित्य अभ्यास के स्वभाव वाले मनुष्य के द्वारा ही भली प्रकार जानने के योग्य है। वह सनातन परम ब्रह्म अपनी सूक्ष्मता के कारण दिखाए जाने के योग्य नहीं है।

बुधस्त्वाभरणं भाव मनसालोचनं यथा ।
मन्यते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहु मन्यते ।।२६।।

मानसिक चिन्तन की तरह ज्ञानी तो उस ब्रह्म के अस्तित्व को ही आभरण (परिपूर्णता) मानता है। लेकिन स्त्री और मूर्ख तो साधारण आभरण (गहने) को ही बहुत मानते है।

सत्त्वोत्कटा सुराश्चापि विषयेण वशीकृताः ।
प्रमादिभि. क्षुद्रसत्त्वैर्मानुषैरत्र का कथा ।।२७।।

सत्त्व में बहुत बढ़े हुए देवगण भी जब विषय के द्वारा वश मे कर लिये गए, तो प्रमादी और क्षुद्र बल वाले मनुष्यो का तो कहना ही क्या है।

तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्त्तव्यं दण्डधारणम् ।
इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ।।२८।।

इस लिये राग का परित्याग करके दण्ड धारण करना चाहिये। जो राग को नहीं छोड़ता वह इस योग को नहो कर सकता। वह तो विषयों के वश में हो जाता है।

न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ।
वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ।।२९।।

जैसे वायु से प्रताडित जल लहरों के कारण एक क्षण भर भी स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार (राग से आक्रान्त) चित्त भी स्थिर नही रह सकता। उसका विश्वास न करे।

त्रिदण्डव्यपदेशेन जीवन्ति बह्वो नरा. ।
यो हि ब्रह्म न जानाति न त्रिदण्डार्हं एव सः ॥३०॥

त्रिदण्ड के बहाने से (संन्यासी के वेश मे) बहुत से लोग अपनी आजीविका कर रहे हैं। जो ब्रह्म को नहीं जानता वह तो त्रिदण्ड के योग्य ही नहीं है।

ब्रह्मचर्य्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक् ।
स्मरणं कीर्त्तनं केलि· प्रेक्षण गुह्यभाषणम् ॥३१॥
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३२॥

ब्रह्मचर्य की सदा रक्षा करे। मैथुन अपने आप में आठ प्रकार का है। स्त्री का स्मरण करना, उसकी चर्चा करना, उसके साथ क्रीडा करना, उसे देखते रहना, उसके साथ छुप कर बाते करना, उसके साथ सभोग का विचार करना, उसके साथ संभोग के लिये प्रयास करना, और सभोग के कार्य को निष्पन्न करना - विचारक लोग यह आठ प्रकार का मैथुन बताते हैं।

न ध्यातव्य न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं कदाचन ।
एतैः सर्वैः सुसम्पन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥३३॥

न स्त्री का ध्यान करना चाहिते, न उससे वार्तालाप करना चाहिये और न कभी सभोग करना चाहिये। इन बातो से भली प्रकार सम्पन्न मनुष्य ही संन्यासी होता है, अन्य नहीं।

पारिव्रज्य गृहीत्वा च यो धर्मे नावतिष्ठते ।
श्वपदेनाङ्कयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥३४॥

सन्यास ग्रहण करके भी जो मनुष्य अपने धर्म मे स्थित नहीं होता, राजा उसके मस्तक पर कुत्ते के पंजे का चिह्न बनवाकर उसे शीघ्र देश-निकाला दे दे।

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुन स्मृतम् ।
त्रयो ग्रामस्तथा ख्यात ऊर्द्ध्वन्तु नगरायते ॥३५॥

भिक्षु यदि अकेला रहे तो वह यथोक्त रूप से भिक्षु है। यदि दो भिक्षु मिल कर रहें तो उन्हें मिथुन कहा गया है। उसी प्रकार से तीन भिक्षु

ग्राम कहलाते है। इससे अधिक भिक्षु यदि इकट्ठे रहें, तो वह नगर हो जाता है।

नगर हि न कर्त्तव्य ग्रामो वा मिथुनं तथा।
एतत्त्रय प्रकुर्व्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ॥३६॥

संन्यासियो को नगर, ग्राम अथवा मिथुन नही बनना चाहिये। इन तीनों को बनाता हुआ संन्यासी अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

राजवार्त्तादि तेषान्तु भिक्षावार्त्ता परस्परम्।
स्नेहपैशून्यमात्सर्य्यं सन्निकर्षादसंशयम् ॥३७॥

उनके आपस में एक-दूसरे के निकट रहने से निस्सन्देह राजा के विषय में चर्चा, भिक्षा के बारे में बातचीत, राग, चुगलखोरी और मत्सरता उत्पन्न हो जाती हैं।

लाभपूजानिमित्त हि व्याख्यान शिष्यसंग्रहः।
एते चान्ये च बहवः प्रपञ्चाः कुतपस्विनाम् ॥३८॥

उनके द्वारा शास्त्रों की व्याख्या अपने नाम और पूजा के निमित्त ही होती है। वे इसी लिए चेलों का संग्रह करते है। कुतपस्वियो के ये और इसी प्रकार के और बहुत से प्रपञ्च होते है।

ध्यान शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमो नोपपद्यते ॥३९॥

ध्यान, शौच, भिक्षा और नित्य एकान्तशीलता— संन्यासी के ये चार ही कर्म हैं, पांचवा कोई नहीं।

तपोजपैः कृषीभूतो व्याधितो वसथावह.।
वृद्धो ग्रहगृहीतश्च यश्चान्यो विकलेन्द्रिय' ॥४०॥
नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथावहः।
स दूषयति तत्स्थानं बुधान् पीडयतीति च ॥४१॥

जो जप-तप आदि से दुबला हो गया है, जो रोग से पीड़ित है, जो बूढ़ा है, और जो ग्रह से अभिभूत है, वह सन्यासी घर में निवास कर सकता है। जिस सन्यासी की इन्द्रियों में किसी प्रकार की कमी नहीं है, जो नीरोग है और युवा है, वह भिक्षु घर में वास नही कर सकता। घर में वास करने से वह उस स्थान को दूषित करता है और विद्वानों को पीडित करता है।

नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्य्याद्विनश्यति।
ब्रह्मचर्य्याद्विनष्टस्तु कुलञ्चैव तु नाशयेत् ॥४२॥

नीरोग और युवा भिक्षु यदि घर में वास करे तो वह ब्रह्मचर्य से पतित हो जाता है। ब्रह्मचर्य से पतित हुआ वह अपने कुल को भी नष्ट कर देता है।

वसन्नावसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ।
तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृन्तति ।।४३।।

घर मे वास करता हुआ भिक्षु यदि मैथुन का सेवन करता है, तो उस घर के स्वामी की जड़ों को भी काट डालता है।

आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ।
किन्तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्योऽभिजायते ।।४४।।

जिसके घर में संन्यासी मुहूर्त भर के लिये भी विश्राम कर लेवे, उसे किसी अन्य धर्म के पालन से क्या प्रयोजन। वह तो इसी से कृत-कृत्य हो जाता है।

समितं यद् गृहस्थेन पापमामरणान्तिकम् ।
स निर्दहति तत् सर्व्वमेकरात्रोषितो यतिः ।।४५।।

मृत्युपर्यन्त गृहस्थ के द्वारा जो पाप इकट्ठा किया गया है, एक रातभर निवास करने वाला वह संन्यासी उस सारे के सारे को जलाकर भस्म कर देता है।

ध्यानयोगपरिश्रान्तं यस्तु भोजयते यतिम् ।
निखिल भोजित तेन त्रैलोक्य सचराचरम् ।।४६।।

ध्यान और योग के कारण थके हुए सन्यासी को जो गृहस्थ भोजन कराता है, उसके द्वारा तो नाना चर और अचर से युक्त समस्त त्रिलोकी को ही भोजन करा दिया गया है।

यस्मिन् देशे वसेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ।
सोऽपि देशो भवेत् पूतः किं पुनस्तस्य बान्धवाः ।।४७।।

ध्यान और योग में निपुण योगी जिस स्थान पर निवास करता है, वह भी पवित्र हो जाता है। उसके बान्धवों का तो कहना ही क्या ?

द्वैतञ्चैव तथाद्वैत द्वैताद्वैत तथैव च ।
न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत् पारमार्थिकम् ।।४८।।

द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत—ये तीन विचारधाराएं हैं। न द्वैत है और न ही अद्वैत है—यही पारमार्थिक है। अर्थात् द्वैताद्वैत ही सत्य है।

नाहं नैवान्यसम्बन्धो ब्रह्मभावेन भावितः ।
ईदृशायामवस्थायामवाप्य परमं पदम् ।।४९।।

एक ब्रह्म के विचार से युक्त मनुष्य यही सोचता है—न मै हूं, और न ही मेरा किसी के साथ सम्बन्ध है। इस प्रकार की अवस्था में परम पद प्राप्ति के योग्य होता है।

द्वैतपक्षः समाख्यातो येऽद्वैते तु व्यवस्थिताः ।
अद्वैतिनां प्रवक्ष्यामि यथा धर्मः सुनिश्चितः ॥५०॥

द्वैतपक्ष का वर्णन हो चुका[1]। जो अद्वैत में व्यवस्थित है, उन अद्वैतों का, और जिस प्रकार से उनका धर्म सुनिश्चित है, उसका वर्णन करूंगा।

तत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यदि पश्यति ।
ततः शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्ते ग्रन्थसञ्चयाः ॥५१॥

यदि कोई मनुष्य इस लोक में आत्मा(ब्रह्म) के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु को देखे, तो उसे शास्त्र पढ़ने चाहियें और अनेक ग्रन्थों का श्रवण करना चाहिये।

दक्षशास्त्रं यथा प्रोक्तमशेषाश्रममुत्तमम् ।
अधीयते तु ये विप्रास्ते यान्त्यमरलोकताम् ॥५२॥

जो ब्राह्मण ऊपर कहे के अनुसार सभी आश्रमों के लिये उत्तम दक्षप्रोक्त इस धर्मशास्त्र का अध्ययन करते हैं, वे देवों के लोक को प्राप्त होते हैं।

इदन्तु यः पठेद्भक्त्या शृणुयादधमोऽपि वा ।
स पुत्रपौत्रपशुमान् कीर्त्तिञ्च समवाप्नुयात् ॥५३॥

इस(धर्मशास्त्र)को यदि कोई भक्ति के साथ पढ़े, अथवा कोई अधम मनुष्य भी इसका श्रवण करे, तो वह पुत्रों, पौत्रों और पशुओं वाला हो जाता है।

श्रावयित्वा त्विदं शास्त्रंश्राद्धकालेऽपि वै द्विजाः ।
अक्षयं भवति श्राद्धं पितृभ्यश्चोपजायते ॥५४॥

और हे ब्राह्मणो, श्राद्ध-काल में जो इस शास्त्र को सुनवाता है, तो उसका श्राद्ध अक्षय हो जाता है और वह श्राद्ध पितरों को प्राप्त हो जाता है।

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।
समाप्ता चेयं दक्षस्मृतिः ।

---

1. इस कथन से पता चला है कि इससे पूर्व अद्वैतपक्ष का वर्णन हुआ है। किन्तु वे श्लोक अब उपलब्ध नहीं है।

॥ अथ ॥

॥ गौतमस्मृतिः ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाचारवर्णनम् ।

वेदो धर्ममूलं तद्विदाञ्च स्मृतिशीले, दृष्टो धर्मव्यतिक्रम. साहसञ्च महतां, न तु दृष्टोऽर्थो वरदौर्बल्यात्, तुल्यबलविरोधे विकल्पः ॥१॥

वेद तथा उसको जानने वालों का स्मृत्यनुकूल आचरण एव शील धर्म का मूल है। महान् लोगों में भी (कभी-कभी) धर्म का अतिक्रमण और अत्याचार देखा गया है। उत्तम लोगों की दुर्बलता के कारण ये लोग जीवन के लक्ष्य को आँखों से ओझल कर देते हैं। दो समान बल वाले विचारों का परस्पर विरोध होने पर उनमें से एक को अपनाना होता है।

उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पञ्चमे वा काम्यं, गर्भादिः सङ्ख्या वर्षाणां, तद् द्वितीयं जन्म। तद्यस्मात् स आचार्यो वेदानुवचनाच्च। एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः। आ षोडशाद् ब्राह्मणस्यापतिता सावित्री द्वाविंशते राजन्यस्य द्व्यधिकाया वैश्यस्य ॥२॥

ब्राह्मण का उपनयन संस्कार आठवें, नौवें अथवा पांचवें वर्ष में अभीष्ट है। वर्षों की गणना गर्भ से आरंभ करके करनी चाहिये। यह संस्कार दूसरा जन्म है। इसलिये वह जो शिष्य के रूप में ग्रहण करता है, और वेद का उपदेष्टा होने के कारण आचार्य कहा जाता है। क्षत्रिय और वैश्य का उपनयन क्रमशः ग्यारहवे और बारहवे वर्ष में होता है। सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्राह्मण की सावित्री (गायत्री) पतित नहीं होती, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय की और उससे भी दो अधिक अर्थात् चौबीस वर्ष तक वैश्य की।

मौञ्जीज्यामौर्वीसौत्र्यो मेखलाः क्रमेण, कृष्णरुरुवस्ताजिनानि, वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः, सर्वेषां कार्पासं वा विकृतम्। काषायमप्येके।वार्क्षं ब्राह्मणस्य माञ्जिष्ठहारिद्रे इतरयोः, बैल्वपालाशौ ब्राह्मणस्य दण्डावश्वत्थपैलवौ शेषे, यज्ञिया वा

सर्वेषामपीरिता यूपचक्राः सवल्कला मूर्द्धललाटनासाग्र-
प्रमाणाः। मुण्डजटिलशिखाजटाश्च ॥३॥

मेखलाएं क्रमशः मूंज, मूर्वा और सूत की डोरी की होती हैं। कृष्णमृग, रुरुमृग और बकरे की खालें अजिन होती हैं। शण, अतसी कुशा और के वस्त्र होते हैं। अथवा सब वर्णों के लिये कपास के बिना रंगे वस्त्र हो सकते है। कुछ का मत है कि वे काषाय होने चाहियें। ब्राह्मण का वस्त्र वृक्ष की छाल से रँगा हुआ हो, और अन्य दो अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य के वस्त्र क्रमशः मञ्जिष्ठा और हल्दी से रंगे हुए हों। ब्राह्मण का दण्ड बेल या ढाक का हो सकता है, शेष दो अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य के दण्ड क्रमशः पीपल और पीलु के हो सकते हैं। अथवा सबके लिये, अर्थात् तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों के लिये यज्ञ में यूपों के योग्य वृक्षों के कहे गए है। वे छालयुक्त होने चाहियें, और प्रमाण में क्रमशः सिर, मस्तक और नासिका के अग्रभाग तक पहुंचने वाले होने चाहियें। ब्राह्मण सिर मुंडवाए, क्षत्रिय जटाएं धारण करे और वैश्य सिर पर चोटी रखे।

द्रव्यहस्त उच्छिष्टोऽनिधायाचामेद् द्रव्यशुद्धि, परिमार्जन-
प्रदाहतक्षणनिर्णजनानि तैजसमार्त्तिकदारवतान्तवानां,
तैजसवदुपलमणिशङ्खशुक्तीनां, दारुवदस्थिभूम्योरावपनञ्च
भूमेश्चैलवद्रज्जुविदलचर्मणामुत्सर्गो वात्यन्तोपहतानाम् ॥४॥

यदि मनुष्य किसी द्रव्य को हाथ में लिये हुए हो और वह उच्छिष्ट हो जाए तो उसे धरती पर रखे विना आचमन करे, इसी से द्रव्य की शुद्धि हो जाती है। धातु, मिट्टी, लकड़ी और तन्तुओं से बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि क्रमशः माँजने, जलाने, ताछने और धोने से होती है। पत्थर, मणि, शङ्ख और सीपी से बनी वस्तुओं की शुद्धि धातु से बने पदार्थों की तरह होती है। हड्डी से बनी वस्तु और भूमि की शुद्धि लकड़ी की तरह होती है और भूमि को भरने से भी होती है। रस्सी, बांस और चमड़े से बने सामान की शुद्धि वस्त्र की तरह होती है। अथवा जो वस्तुए अत्यन्त मलिन हो गई हों उनका उत्सर्ग कर देना चाहिये।

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत। शुचौ देश आसीनो
दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा यज्ञोपवीत्या मणिबन्धनात् पाणी
प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयं स्पृशंस्त्रिश्चतुर्वापि आचामेद् द्विः
प्रमृज्यात् पादौ चाभ्युक्षेत्, खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्याणि,
मूर्द्धनि च दद्यात् ॥५॥

पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख करके शौच आरम्भ करे। पवित्र स्थान पर बैठकर दाहिनी भुजा को घुटनो के अन्दर करके, यज्ञोपवीत धारण किये हुए पहुंचो तक दोनो हाथों को धोकर, मौन धारण किये हुए, हृदय को स्पर्श करते हुए तीन या चार बार जलों का आचमन करे, दो बार पांवों को जल डाल कर धोए, सिर पर स्थित (सातों) इन्द्रियों को जल से स्पर्श करे और सिर पर भी जल डाले।

सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा च पुनः। दन्तश्लिष्टेषु दन्तवदन्यत्र जिह्वाभिमर्षणात्। प्राक्च्युतेरित्येके। च्युतेष्वास्रावविद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः। न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति न चेदङ्गे निपतन्ति। लेपगन्धापकर्षणे शौचममेध्यस्य। तदद्भिः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतोविस्रंसनाभ्यवहारसंयोगेषु च, यत्र चाम्नायो विदध्यात् ॥६॥

सोकर, भोजन करके और छींक कर पुन: आचमन करे। दाँतों के बीच में अटके हुए कण, टुकड़े आदि यदि वे जिह्वा के द्वारा छुए न जा रहे हो, दांतों के समान ही जानने चाहिये। कुछ स्मृतिकारों का मत है कि वे दांतो से अलग होने से पूर्व तक ही ऐसे समझे जाने चाहियें। दांतों से छूट जाने पर उन्हें आस्राव (थूक, लाल) के समान ही जाने। निगल लेने पर ही मुख की शुद्धि होती है। मुख से गिरने वाली थूक की बूंदे यदि शरीर पर न गिरें तो वे उसे उच्छिष्ट नहीं करतीं। अमेध्य वस्तु के लेप और उसकी दुर्गन्ध को दूर कर देने से शुद्धि हो जाती है। इसलिये मल-मूत्र के त्याग, वीर्य के स्खलन और भोजन आदि के संयोगों मे सबसे पहले जलों और मिट्टी से शुद्धि करे, और जहां-कहीं भी शास्त्र इसका विधान करे।

पाणिना सव्यमुपसंगृह्याङ्गुष्ठमधीहि भो इत्यामन्त्रयेत गुरुः। तत्र चक्षुर्मनः प्राणोपस्पर्शनं दर्भैः प्राणायामास्त्रयः पञ्चदशमात्राः प्राक्कूलेष्वासनञ्च ॐपूर्वा व्याहृतयः पञ्चसप्तान्ताः। गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातर्ब्रह्मानुवचने चाद्यन्तयोरनुज्ञात उपविशेत् प्राङ्मुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्रीञ्चानुवचनमादितो ब्रह्मण आदाने ॐकारस्याऽन्यत्रापि अन्तरागमने पुनरुपसदनं श्वनकुलसर्पमण्डूकमार्जाराणां त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च प्राणायामा घृतप्राशनञ्चेतरेषाम्। श्मशानाध्ययने चैवं चैवम् ॥७॥

गुरु शिष्य के बाएं हाथ के अंगूठे को अपने हाथ से पकड़कर कहे—'अरे पढ़'। शिष्य पढ़ते समय गुरु में आंखों और मन को लगाए। कुशाओं से प्राणों के स्थान का स्पर्श करे। तीन प्राणायाम करे। प्राणायाम पन्द्रह मात्रा समय तक का होता है। पूर्व की ओर सिर करके बिछाई हुई कुशाएं आसन होता है। ओंकार के उच्चारणपूर्वक पांच या सात व्याहृतियां होती है। प्रातः काल में और वेदाध्ययन के आदि और अन्त में गुरु के चरणों का स्पर्श होता है। शिष्य गुरु की आज्ञा लेकर ही वेदाध्ययन के लिये गुरु की दाहिनी ओर पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुंह करके बैठे। सावित्री, उपदेश, वेदाध्ययन एवं अन्यत्र भी आदि में प्रणव का उच्चारण करे। वेदाध्ययन के लिये बैठे होने पर कुत्ते, नेवले, सांप, मेंडक और बिल्ली के बीच में से गुजर जाने पर तीन दिन का उपवास करे और गुरु से दूर रहे। अन्य पशुओं के ऐसा करने पर प्राणायाम करे और घी खाए। श्मशान में वेदाध्ययन करने पर भी ऐसा ही करे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

अथ ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम्।

प्रागुपनयनात् कामचारवादभक्षोऽहुतोऽब्रह्मचारी यथोपपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यतेऽन्यत्रापमार्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचं नत्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुञ्ज्यान्न ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ॥१॥

उपनयन से पूर्व बालक इच्छानुसार कार्य भाषण और भक्षण करने वाला होता है। न उसे हवन करना होता है, न उसे ब्रह्मचारी के नियमों का पालन करना होता है। वह सुविधा के अनुसार मल-मूत्र का त्याग करने वाला होता है। शरीर को मांजने धोने और नहाने के सिवाय आचमन का कोई नियम नहीं होता। उसके उपस्पर्श से अशौच भी नहीं होता। उसको अग्निहोम और बलिहरण में नियुक्त न करे। पितरों को पिण्डदान के अवसर को छोड़कर उससे वेद के मंत्रों का उच्चारण न कराए।

उपनयनादिनियमः। उक्तं ब्रह्मचर्यमग्नीन्धनभैक्षचरणे सत्यवचनमपामुपस्पर्शनम्। एके गोदानादि ॥२॥

उपनयन का यह नियम है कि गुरु के द्वारा ब्रह्मचर्य का जो उपदेश दिया गया है उसका पालन करे, यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित करे, भिक्षा माँग कर लाए, सच बोले और जलों का उपस्पर्श (आचमन) करे। कुछ स्मृतिकार गोदान (मुण्डन) से प्रारम्भ करके ही इन नियमों के पालन का विधान करते है।

बहिः सन्ध्यार्थञ्चातिष्ठेत् पूर्वामासीतोत्तरा सज्योतिष्या ज्योतिषो दर्शनाद्वाग्यतो नादित्यमीक्षेत ॥३॥

सन्ध्या के लिये ग्राम से बाहर जाए। पूर्वा सन्ध्या को खडा होकर करे। सायकालीन सध्या को सायकालीन प्रकाश मे तारों का दर्शन होने तक वाणी को संयम मे रखते हुए बैठ कर करे। सूर्य को न देखे।

वर्जयेन्मधुमांसगन्धमाल्यदिवास्वप्नाञ्जनाभ्यञ्जनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवादनस्नानदन्तधावनहर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि, गुरुदर्शने कर्णप्रावृतावसक्थिकायाश्रयणपादप्रसारणानि, निष्ठीवितहसितविजृम्भितास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणालम्भने मैथुनशङ्कायां द्यूतं हीनवर्णसेवामदत्तादानं हिंसामाचार्यतत्पुत्रस्त्रीदीक्षितनामानि, शुष्कां वाचं मद्यं ॥४॥

वह (ब्रह्मचारी) मधु, मांस, गन्ध, माला, दिन में सोना, सुरमा, मालिश, वाहन, जूते, छाते, काम, क्रोध, लोभ मोह, बाजा बजाने, (शृङ्गार आदि के लिये) स्नान, दन्तधावन, उत्सव, नृत्य, गीत, निन्दा और भय को छोड़ दे। गुरुजी के सामने कानों की असावधानी, गोड़ो को ओंधा करके और ऐसे ही शरीर के अन्य अंगो का सहारा लेकर और पांव को पसार कर बैठने को छोड़ दे। थूकना, हँसना, जँभाई लेना, शरीर के अंगों पर चोट करके उन्हें बजाना, मैथुन की आशका के कारण स्त्रियों को देखना और उनका स्पर्श करना, जूआ खेलना, हीन वर्ण के लोगों की सेवा, बिना दिये किसी वस्तु को लेना, हिंसा, आचार्य, उसके पुत्र, पत्नी और दीक्षा ग्रहण करने वालों को नाम लेकर पुकारना, रूखी वाणी और सुरा को भी छोड़ दे।

नित्यं ब्राह्मणः अधःशय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी वाग्बाहूदरसंयतः। नामगोत्रे गुरोः संमानतो निर्दिशेत्। अर्च्चिते श्रेयसि चैवम् ॥५॥

ब्रह्मचारी नित्य ही धरती पर नीचे बनी शय्या पर शयन करने वाला, गुरु जी से पूर्व उठने वाला, गुरुजी के पश्चात् सोने वाला, तथा वाणी, भुजाओं और उदर पर संयम रखने वाला होवे। गुरु के नाम और गोत्र का सम्मान के

साथ निर्देश करे। पूज्य और अपने से बड़े के विषय में भी इसी प्रकार जाने।

शय्यासनस्थानानि विहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमणं वचनाद् दृष्टेनाध स्थानासनस्तिर्य्यग्वा तत्सेवायाम् ॥६॥

आवाज देने पर शय्या, आसन अथवा अपने स्थान को छोड़कर गुरु जी की बात को सुने और उसके पास जाए तथा उस के द्वारा देखा जाता हुआ नीचे स्थान या आसन पर बैठकर अथवा खड़े होकर उसकी सेवा में लग जाए।

गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत् गच्छन्तमनुव्रजेत् कर्म विज्ञाप्याख्याया-हूताध्यायी युक्तः प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम् ॥७॥

गुरु जी के दिखाई देने पर खड़ा हो जाए, उसके चलते हुए के पीछे-पीछे चले। उसे अपने कार्य के विषय में सूचना देकर, उससे आज्ञा लेकर उसके द्वारा बुलाए जाने पर अध्ययन करे। उसकी खुशी और हित में जुटा रहे। उसकी पत्नी और पुत्रों के विषय में भी इसी प्रकार करे।

नोच्छिष्टाशनस्नापनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि। विप्रोष्योपसग्रहणं गुरुभार्याणा तत्पुत्रस्य च। नैके युवतीना ॥८॥

परन्तु उनका झूठा खाने, उन्हें स्नान कराने, उनका शृङ्गार कराने, उनके पाँव धोने, दबाने और स्पर्श करने का विधान नहीं है। प्रवास से लौटकर गुरु की पत्नी और पुत्रों के पाव-स्पर्श का विधान है। कुछ का विचार है कि युवतियों के पांवों का स्पर्श कभी न करे।

व्यवहारप्राप्तेन सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तपतितवर्जम्। आदिमध्यान्तेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपूर्वेण। आचार्यज्ञातिगुरुस्वेष्वलाभेऽन्यत्र। तेषां पूर्वं पूर्वं परिहरन्निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो भुञ्जीत। असन्निधौ तद्भार्यापुत्रसब्रह्मचारि-सद्भ्यः। वाग्यतस्तृप्यन्नलोलुप्यमानः सन्निधायोदकं स्पृशेत् ॥९॥

व्यवहार की शिक्षा प्राप्त ब्रह्मचारी को दुष्ट और पतित को छोड़कर सब वर्णों से भिक्षा मांगनी चाहिये। भिक्षा मांगते समय वर्णक्रमानुसार (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारी को) आदि, मध्य और अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिये (अर्थात् वे क्रमशः बोलें—भवति भिक्षां देहि; भिक्षा भवति देहि; भिक्षां देहि भवति !)। यदि अन्य कहीं से भिक्षा न मिले

तो आचार्य, अपने सगे-सम्बन्धियों एव गुरु तथा उसके स्वजनो से भी भिक्षा ग्रहण की जा सकती है। किन्तु ऐसा करते समय वह पूर्व-पूर्व का परिहारकरे। जो कुछ मिले उसे गुरु जी को समर्पित करके उसकी आज्ञा से भोजन करे। यदि गुरु जी उपस्थित न हों तो उसकी पत्नी पुत्र अथवा वरिष्ठ ब्रह्मचारी को समर्पित करे। चुपचाप तृप्ति-पर्यन्त विना लोभ करते हुए भोजन करके आचमन करे।

शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तोरज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येन घ्नन् राज्ञा शास्य. ॥१०॥

शिष्य की शिक्षा विना दण्ड के होनी चाहिये। यदि गुरु ऐसा करने में अशक्त हो तो वह पतली रस्सी या बाँस की पतली शाखा से शिष्य को दण्डित करे। यदि गुरु किसी अन्य वस्तु से शिष्य को पीटे तो वह राजा के द्वारा दण्ड के योग्य है।

द्वादशवर्षाण्येकैकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् प्रतिद्वादशवर्षेषु ग्रहणान्तं वा। विद्यान्ते गुरुरर्थेन निमन्त्र्यः। ततः कृतानुज्ञानस्य स्नानम्। आचार्य. श्रेष्ठो गुरूणां मातेत्येके मातेत्येके ॥११॥

एक-एक वेद के अध्ययन में बारह-बारह वर्ष लगाए। और इन सभी बारह वर्षों में ब्रह्मचर्य का पालन करे। अथवा जब तक सब वेदों का ग्रहण न हो जाए तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उनको पढ़ता रहे। विद्या की समाप्ति पर गुरु को धन देकर सम्मानित करे। उसके पश्चात् गुरु की आज्ञा से वह स्नान करके स्नात (स्नातक) हो जाता है। आचार्य गुरुजनों में श्रेष्ठ होता है। कुछ का मत है कि माता गुरुजनों में श्रेष्ठ होती है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्याय.।

अथ ब्रह्मचारिप्रकरणवर्णनम्।

तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते ब्रह्मचारी गृहस्थोभिक्षुर्वैखानस इति तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् ॥१॥

कुछ स्मृतिकार उस (स्नातक ब्रह्मचारी) के आश्रमों का विकल्प इस प्रकार बताते हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी और वानप्रस्थ। अन्य आश्रमों में प्रजनत्व के अभाव के कारण गृहस्थ ही उनका उद्गम-स्थान है।

तत्रोक्तं ब्रह्मचारिण आचार्य्याधीनत्वमात्रं गुरोः कर्मशेषेण

जपेत् गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सब्रह्मचारिण्यग्नौ वा । एवं वृत्तो ब्रह्मलोकमवाप्नोति जितेन्द्रियः ॥२॥

इन आश्रमों में से ब्रह्मचारी के लिये आचार्य के अधीन रहना मात्र कहा गया है । गुरु के कार्यों से बचे शेष समय में मन्त्रों आदि का जप करे । गुरु के अभाव में उसके पुत्र की सेवा में रत रहे । उसके अभाव में गुरु के किसी वरिष्ठ शिष्य की सेवा करे । अथवा वेदाध्ययन-काल में जिस अग्नि की सेवा करता था, उसी की सेवा में रत रहे । इस प्रकार के व्यवहार वाला, संयत इन्द्रियों वाला वह ब्रह्मचारी (मरकर) ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है ।

उत्तरेषाञ्चैतदविरोधी अनिचयो भिक्षुरूर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु भिक्षार्थी ग्राममियात् । जघन्यमनिवृत्तञ्चरेत् । निवृत्ताशीर्वाक्चक्षुः कर्मसंयतः । कौपीनाच्छादनार्थं वासो बिभृयात् । प्रहीणमेकेऽनिर्णेजनाविप्रयुक्तम् । औषधिवनस्पतीनामङ्गमुपाददीत । न द्वितीयामुपहर्त्तु रात्रिं ग्रामे वसेत् । मुण्डः शिखी वा वर्जयेज्जीववधम् । समो भूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारतः ॥३॥

अगले (तीन आश्रमों) में से भिक्षु इन (आश्रमों)में से किसी का भी विरोध न करने वाला, धन आदि का संचय न करने वाला, अपनी शक्ति को उत्तम कार्यों के लिये लगाने वाला, और वर्षाकाल (चातुर्मास्य) में ध्रुवशील (एक स्थान पर अचल रहने वाला) होता है । वह भिक्षा के लिये ग्राम में जाए । बिना किसी रोक-टोक के अन्तिम वर्ण (शूद्र) से भी भिक्षा ग्रहण करे । इच्छाओं एवं अधिक बोलने और चक्षु आदि के विषयों से परे रहे । कर्मों में सयम वाला होवे । अपने गुह्य स्थानों को ढकने के लिये वस्त्र धारण करे । कुछ का मत है कि फटने तक न इसको धोया जाए और न इसका परित्याग किया जाए । (भोजन के लिये) फसलों और वृक्षों के अंगों (अन्न, फल, मूल आदि) को ग्रहण करे । दूसरी भिक्षा लेने के लिये रात्रि को ग्राम में निवास न करे । सिर को पूरा मुँडवा ले या चोटी धारण करे । प्राणियों की हिंसा को छोड़ दे । प्राणियों पर समभाव वाला होवे । किसी के प्रति हिंसा अथवा अनुग्रह में आसक्ति वाला न होवे ।

वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधाया-ग्राम्यभोजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्व्वातिथिः प्रतिषिद्ध-

वर्ज भैक्षमप्युपयुञ्जीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ग्रामञ्च न प्रविशेज्जटिलश्चीराजिनवासा नातिशय भुञ्जीत ॥४॥

वैखानस वन में मूल, फल आदि का भोजन करने वाला और तप के स्वभाव वाला हो। श्रावण मास मे अग्नि का आधान करे। ग्राम में बने भोजन को न खाए। देवों, पितरों, मनुष्यों, प्राणियों और ऋषियों की पूजा करने वाला हो। प्रतिषिद्धो को छोड़कर सब उसके अतिथि बन सकते हैं। (आपत्काल में) भिक्षा भी मांग सकता है। हलो से जोते हुए स्थान पर न ठहरे। ग्राम में प्रवेश न करे। जटाओं को धारण करे। चीर अथवा पशुओं की खाल को वस्त्र के रूप में धारण करे। अधिक भोजन न करे।

एकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद् गार्हस्थस्य गर्हस्थस्य ॥५॥

आचार्य लोग गृहस्थाश्रम की उपयोगिता के प्रत्यक्ष होने के आधार पर इसे मुख्य आश्रम मानते है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः।

अथ विवाहप्रकरणवर्णनम्।

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीम्। असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातुर्बन्धुभ्यः पञ्चमात् ॥१॥

गृहस्थ अपने सदृश ऐसी भार्या को प्राप्त करे, जिसका पहले किसी अन्य पुरुष से विवाह न हुआ हो और जो पूरी युवावस्था में हो। विवाह असमान प्रवर वालों के साथ ही हो सकता है, और कन्या को जन्म देने वाले(बीजी)पिता और उसके बन्धुओ की सात पीढ़ियो से परे की और माता के बन्धुजनों की पांच पीढ़ियों से परे की होनी चाहिये।

ब्राह्मो विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय दद्यादाच्छाद्यालङ्कृतां संयोगमन्त्रः प्राजापत्ये सह धर्मञ्चरतामिति आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यादन्तर्वेद्यृत्विजे दान दैवोऽलङ्कृत्येच्छन्त्या स्वयं संयोगो गान्धर्वो वित्तेनानतिस्त्रीमतामासुरः प्रसह्यादानाद् राक्षसोऽसंविज्ञातोपसङ्गमात् पैशाचः। चत्वारो धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके ॥२॥

यदि पिता वस्त्रों से आच्छादित और भूषणो से अलंकृत कन्या को विद्या, आचार, चरित्र, बन्धुजन और शील से सम्पन्न वर को प्रदान करे तो वह ब्राह्म विवाह कहलाता है। प्राजापत्य विवाह मे वर और कन्या को पति और पत्नी के रूप मे मिलाने के पीछे यह विचार होता है कि 'तुम दोनों मिलकर धर्म का आचारण करो'। आर्ष विवाह मे वर कन्या के पिता को एक गो-मिथुन (एक गऊ और एक वृष) दे। वेदि पर विराजमान ऋत्विज को जब कन्या को अलङ्कृत करके दिया जाता है तो वह दैव विवाह कहलाता है। वर को चाहती हुई कन्या से जब वर का स्वयं संयोग हो जाता है, तो वह गान्धर्व विवाह कहलाता है। स्त्रियो से हीन पुरुषों का धन देकर जो विवाह होता है, वह आसुर विवाह कहलाता है। यदि बलात् कन्या का अपहरण कर लिया जाए तो वह राक्षस विवाह कहलाता है। यदि पुरुष संज्ञाहीन कन्या से गमन करके उससे विवाह करले तो वह पैशाच विवाह कहलाता है। इन में से प्रथम चार धर्म से युक्त है। किन्हीं का मत है कि प्रथम छ धर्म से युक्त है।

अनुलोमानन्तरैकान्तरद्व्यन्तरासु जाता सवर्णाम्बष्ठोग्र-निषाददौष्मन्तपारशवाः ॥३॥

अनुलोम क्रम से अनन्तर वर्ण की, एक वर्ण के अन्तर से दूसरे वर्ण की और दो वर्णो के अन्तर से तीसरे वर्ण की स्त्री में उत्पन्न पुत्र सवर्ण, अम्बष्ठ, उग्र, निषाद, दौष्मन्त और पारशव कहलाते है। अर्थात् ब्राह्मण से क्षत्रिया में उत्पन्न सवर्ण, क्षत्रिय से वैश्या मे उत्पन्न अम्बष्ठ, वैश्य से शूद्रा मे उत्पन्न उग्र; ब्राह्मण से वैश्या में उत्पन्न निषाद, क्षत्रिय से शूद्रा मे उत्पन्न दौष्मन्त; और ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न पारशव कहलाता है।

प्रतिलोमास्तु सूतमागधायोगवक्षत्तृवैदेहकचाण्डालाः ॥४॥

प्रतिलोम क्रम से अनन्तर वर्ण की, एक वर्ण के अन्तर से दूसरे वर्ण की और दो वर्णों के अन्तर से तीसरे वर्ण की स्त्री में उत्पन्न पुत्र सूत, मागध, आयोगव, क्षत्ता, वैदेहक और चाण्डाल कहलाते है। अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत, वैश्य से क्षत्रिया में उत्पन्न मागध, शूद्र से वैश्या में उत्पन्न आयोगव, वैश्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न वैदेहक, शूद्र से क्षत्रिया में उत्पन्न क्षत्ता; और शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र चाण्डाल कहलाता है।

ब्राह्मण्यजीजनत् पुत्रान् वर्णेभ्य आनुपूर्व्याद् ब्राह्मणसूतमागध-चाण्डालान् तेभ्य एव क्षत्रिया मूर्धावसिक्तक्षत्रियधीवर-पुक्कसान् तेभ्य एव वैश्या भृज्जकण्ठकमाहिष्यवैश्यवैदेहान् तेभ्य एव पारशवयवनकरणशूद्रान् शूद्रेत्येके ॥५॥

कुछ का मत है कि ब्राह्मणी आनुपूर्व्य क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के पतियों से क्रमश: ब्राह्मण, सूत, मागध और चाण्डाल पुत्रों को जन्म देती है ; क्षत्रिया उन्हीं से मूर्धावसिक्त, क्षत्रिय, धीवर और पुक्कस को जन्म देती है ; वैश्या उन्हीं से भृज्जकण्ठक, माहिष्य, वैश्य और वैदेह पुत्रों को जन्म देती है ; और शूद्रा उन्ही से पारशव, यवन, करण और शूद्र पुत्रों को जन्म देती है ।

वर्णान्तरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन पञ्चमेन चाचार्याः । सृष्ट्यन्तरजातानाञ्च प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायाञ्च असमानायाञ्च शूद्रात् पतितवृत्तिरन्त्यः पापिष्ठः । पुनन्ति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानार्षाद् दश दैवाद् दशैव प्राजापत्याद्दश-पूर्वान् दशावरानात्मानञ्च ब्राह्मीपुत्राः ब्राह्मीपुत्राः ॥६॥

आचार्यों का यह मत है कि ऊँचे वर्ण अथवा नीचे वर्ण में विवाह करने से सातवीं अथवा पांचवीं पीढ़ी तक दूसरे वर्ण में गमन हो जाता है । दूसरे वर्ण की स्त्री (सृष्टि) में उत्पन्न हुओं में से जो प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न होते हैं वे धर्म से हीन हो जाते हैं । इसी प्रकार जो शूद्र स्त्री में उत्पन्न होता है अथवा शूद्र से असमान वर्ण की स्त्री में उत्पन्न किया जाता है वह पतितवृत्ति, अन्त्य और पापिष्ठ होता है । आर्ष विवाह से उत्पन्न उत्तम पुत्र तीन पीढ़ियों को पवित्र कर देते हैं, दैव विवाह से उत्पन्न दस पीढ़ियों को, प्राजापत्य से उत्पन्न होने वाले भी दस पीढ़ियों को और ब्राह्म विवाह से उत्पन्न होने वाले उत्तम पुत्र दस पिछली और दस अगली पीढ़ियों को तथा अपने आप को पवित्र कर देते है ।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ गृहस्थाश्रमवर्णनम् ।

ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥१॥

ऋतुकाल में पत्नी का सग करे, अथवा निषिद्ध तिथियों को छोड़कर सदा ही पत्नी का सग करे ।

देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजको नित्यस्वाध्यायः ॥२॥

देवों, पितरों, मनुष्यों, भूतों और ऋषियों की पूजा करने वाला और नित्य स्वाध्याय करने वाला होवे ।

पितृभ्यश्चोदकदानं यथोत्साहमन्यद्भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा । तस्मिन् गृह्याणि देवपितृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च । बलिकर्माग्नावग्निर्धन्वन्तरिर्विश्वे देवाः प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमः ॥३॥

पितरों को जल दे और उत्साह के अनुसार अन्य पत्नी आदि, अग्नि आदि, दाय आदि विषयक कार्य करे। इनमें गृह्य कर्म हैं देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और स्वाध्याय। बलिकर्म भी गृह्यकर्म है (इसमें) अग्नि में अग्नि, धन्वन्तरि, विश्वे देवाः, प्रजापति और स्विष्टकृत् को आहुतियां दी जाती है। यह (इस बलिकर्म का) होम है।

दिग्देवताभ्यश्च यथा स्वद्वारेषु मरुद्भ्यो गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्ये अद्भ्य उदकुम्भे आकाशायेत्यन्तरीक्षे नक्तञ्चरेभ्यश्च सायम् ॥४॥

दिशाओं के देवताओं को (यज्ञशाला के) उन-उन दिशाओं में खुलने वाले अपने द्वारों पर, मरुतों और गृहदेवताओं को घर में प्रवेश करके, ब्रह्म को घर के मध्य में, जलों को जल-कलश पर, आकाश को अन्तरिक्ष में और रात्रि में विचरण करने वाले जीवों को सायंकाल में बलि प्रदान करे।

स्वस्तिवाच्यभिक्षादानं प्रश्नपूर्वन्तु ददातिषु चैवं धर्म्येषु । समद्विगुणसाहस्रानन्त्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रिय-वेदपारगेभ्यः ॥५॥

स्वस्तिवाचन और भिक्षादान मांगने पर ही करना चाहिये। धर्मयुक्त दानों में भी इसी प्रकार का विधान है। अब्राह्मण, ब्राह्मण, श्रोत्रिय और वेदपारग को देने से (क्रमशः) सामान्य, दुगुना, हजारगुना और अनन्त फल होता है।

गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्व-जितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्वेदि भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु । प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥६॥

गुरु के लिये, विवाह और औषध आदि के लिये, वृत्ति से हीन मनुष्य, यज्ञ करना चाहने वाले, अध्येता, यात्रा के संयोग वाले और विश्वजित् यज्ञ करने वालों को धन बाँटना चाहिये। अन्य मागने वालों को वेदि से बाहर पका हुआ अन्न देना चाहिये। प्रतिज्ञा करके भी अधर्म से संयुक्त मनुष्य को नहीं देना चाहिये।

क्रुद्धहृष्टभीतार्त्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्य-
नृतान्यपातकानि ॥७॥

क्रोध में आए हुए, हर्ष को प्राप्त, डरे हुए, पीडित, लोभी, वाल, वृद्ध, मूढ और उन्मत्त मनुष्यों के झूठे वाक्य पातक की कोटि में नहीं आते।

भोजयेत् पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणीसुवासिनीस्थविरा-
ञ्जघन्यांश्च ॥८॥

(गृहस्थ स्वयं भोजन करने से) पहले अतिथियो, कुमारों, रोगियों, गर्भवती स्त्रियों, नवोढा स्त्रियों, बूढ़ों और छोटो को भोजन कराए।

आचार्यपितृसखीनान्तु निवेद्य वचनक्रिया ऋत्विगाचार्य-
श्वशुरपितृव्यमातुलानामुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे पुनः
पूजिता यज्ञविवाहयोरर्वाक् राज्ञश्च श्रोत्रियस्य ॥ ९ ॥

करणीय कर्म को आचार्य, पिता और मित्रों को बताकर उनके परामर्श के अनुसार उस कर्म को करे। ऋत्विज, आचार्य, श्वशुर, चाचा और मामा के घर में आजाने पर उन्हें एक वर्ष में एक बार मधुपर्क दे। यज्ञ और विवाह के अवसर पर वे पुनः (मधुपर्क से) पूजा के योग्य है। राजा से पूर्व श्रोत्रिय की पूजा होनी चाहिये।

अश्रोत्रियस्यासनोदके श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नविशेषांश्च प्रकारयेन्नित्यं वा संस्कारविशिष्टं मध्यतोऽन्नदानमवैद्ये साधुवृत्ते विपरीते तु तृणोदकभूमिः स्वागतमन्ततः पूज्यान-त्याशश्च शय्यासनावसथानुव्रज्योपासनानि सदृक्श्रेयसोः समानान्यल्पशोऽपि हीने असमानग्रामोऽतिथिरैकरात्रिको ऽधिवृक्षसूर्योपस्थायी कुशलानामयारोग्याणामनुप्रश्नोऽन्त्यं शूद्रस्य। ब्राह्मणस्यानतिथिरब्राह्मणो यज्ञे संवृतश्चेत् भोजनन्तु क्षत्रियस्योद्र्ध्वं ब्राह्मणेभ्योऽन्यान् भृत्यैः सहानृशंसार्थ-मानृशंसार्थम् ॥ १० ॥

अश्रोत्रिय ब्राह्मण को आसन और (पांव धोने के लिये) जल देना चाहिये। श्रोत्रिय ब्राह्मण को पाँव धोने के लिये जल, अर्घ्य और अन्नविशेष प्रदान करे। अथवा नित्य ही भली प्रकार बने हुए अन्न में से वैद्य के सिवा अच्छे आचरण वाले मनुष्य को भोजन दे। विपरीत आचरण वाले को आसन जल

और स्थान प्रदान करे। कम से कम स्वागत तो करे ही। पूज्यों से पहले न खाए। शय्या, आसन और स्थान देकर और विदा करते समय उनके पीछे-पीछे जाकर उनकी सेवा करे। समान और श्रेष्ठों की समान रूप से सेवा करे। हीन की कुछ थोड़ी करे। अन्य ग्राम का मनुष्य एक रात का अतिथि हो सकता है। सूर्य का उपासक वृक्ष के नीचे ही रात बिताए। अतिथियों को कुशल, अनामय और आरोग्य पूछे। शूद्र को भी आरोग्य पूछे। ब्राह्मण का अब्राह्मण अतिथि नहीं होता। यदि नीच ब्राह्मण यज्ञ में वरण किया गया हो तो वह क्षत्रिय के पश्चात् भोजन करे। ब्राह्मणों से भिन्न जनों को आनृशंस के लिये अपने भृत्यों के साथ भोजन कराए।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः।

अथ गृहस्थाश्रमकर्तव्यवर्णनम्।

'पादोपसंग्रहणं गुरुसमवायेऽन्वहम् ॥ १ ॥

गुरुजनों से भेंट होने पर प्रतिदिन उनका चरणस्पर्श करे।

अभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृतद्बन्धूनां पूर्वजानां विद्यागुरूणां तत्तद्गुरूणाञ्च सन्निपाते परस्य ॥ २ ॥

प्रवास से वापस आने पर पास जाकर माता, पिता, अपने बन्धुओं, बड़े भाइयों, विद्या-गुरुओं और उनके गुरुओं का भी चरण-स्पर्श करे। उनसे युगपत् भेंट होने पर सर्वप्रथम बड़े का चरण-स्पर्श करे।

नाम प्रोच्यायमहमित्यभिवादोऽज्ञसमवाये स्त्रीपुंयोगेऽभिवादतोऽनियममेके नाविप्रोष्य स्त्रीणाममातृपितृव्यभार्याभगिनीनां नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां श्वश्र्वाश्च ॥ ३ ॥

अपने नाम का उच्चारण करके "मैं अमुक हूं" अभिवादन करे। मूर्खों के इकट्ठ में ऐसा न करे। कुछ स्मृतिकारों का मत है कि पत्नी और पति का परस्पर-अभिवादन का नियम नहीं है। प्रवास से लौटने के अतिरिक्त माता, चाची और बड़ी बहन को छोड़कर अन्य सम्बन्धी स्त्रियों एवं भाभियों और सास का चरण-स्पर्श न करे।

ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानान्तु यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्यास्तथान्यः पूर्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोऽप्यपत्यसमे-

नावरोऽप्यार्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्जयेद्राज्ञश्चाजपः प्रेष्यो भो भवन्निति वयस्य. समानेऽहनि जातो दशवर्षवृद्धः पौरः पञ्चभिः कलाभर. श्रोत्रियश्चारणस्त्रिभिः राजन्यो वैश्यकर्म-विद्याहीनो दीक्षितश्च प्राक्क्रयात् । ॥४॥

ऋत्विक्, ससुर, चाचा और मामा, यदि वे अवस्था में छोटे है, तो उनके आगमन पर उठना चाहिये। वे अभिवादन के योग्य नहीं है। उसी प्रकार अपने नगर में वास करने वाला अवस्था में अपने से बड़ा मनुष्य भी प्रत्युत्थान के योग्य है, अभिवादन के योग्य नहीं। अस्सी वर्ष से अधिक अवस्था वाला भी शूद्र द्विज के लिये पुत्र के समान है और आर्य अवस्था में छोटा होता हुआ भी शूद्र के लिये पूज्य है। वह उसे नाम से न पुकारें। सेवक को राजा के भी नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिये। एक ही दिन उत्पन्न होने वाला वयस्य, दश वर्ष बड़ा अपने नगर का वासी, पाँच वर्ष बड़ा कलाकार श्रोत्रिय और चारण और तीन वर्ष बड़ा वैश्यकर्म करने वाला विद्याहीन क्षत्रिय दास के रूप में, क्रय से पूर्व, दीक्षित के लिये भी, भवान् इस प्रकार पुकारे जाने के योग्य हैं।

वित्तबन्धुकर्मजातिविद्यावयांसि मान्यानि परबलीयांसि श्रुतन्तु सर्वेभ्योगरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥ ५ ॥

वित्त, बन्धु, कर्म, जाति, विद्या और वयः—ये सब मान के योग्य हैं और पूर्व-पूर्व के प्रति पर-पर अधिक महत्वपूर्ण है। श्रुत धर्म और श्रुतिका मूल होने क कारण सब से अधिक महान् है।

चक्रिदशमीस्थानुग्राह्यवधूस्नातकराजभ्यः पथो दानं राज्ञा तु श्रोत्रियाय श्रोत्रियाय ॥ ६ ॥

रथवान्, दशवे दशक में चल रही अवस्था वाले मनुष्य, दया के पात्र, वधू, स्नातक और राजा को मार्ग देना चाहिये। राजा श्रोत्रिय के लिये मार्ग छोड़ दे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः ।

अथापद्धर्मवर्णनम् ।

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषा समाप्तेर्ब्राह्मणोगुरुर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः सर्वेषां पूर्वः पूर्वो गुरुस्तदलाभे क्षत्रवृत्तिस्तदलाभे वैश्यवृत्तिः ॥१॥

आपद्ग्रस्त ब्राह्मण अब्राह्मण से विद्योपार्जन कर सकता है। वह उसका अनुगमन करे और उसकी सेवा करे। विद्या की समाप्ति पर ब्राह्मण ही गुरु होता है। यज्ञ कराना, अध्यापन और दान स्वीकार करना ये ब्राह्मण के मुख्य कर्त्तव्य हैं। सबमें पर-पर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व महान् है। यदि ब्राह्मण को ब्राह्मण की वृत्ति प्राप्त न हो सके तो क्षत्रिय की आजीविका स्वीकार करे। उसकी भी प्राप्ति न होने पर वह वैश्य की वृत्ति स्वीकार करे।

तस्यापण्यं गन्धरसकृतान्नतिलशाणक्षौमाजिनानि रक्तनिर्णिक्ते वाससी क्षीरञ्च सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणोदकापथ्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशाकुमारीवेहतश्च नित्य भूमिव्रीहियवाजाव्यश्च ऋषभधेन्वनडुहश्चैके ॥२॥

(वैश्यवृत्ति होते हुए भी ब्राह्मण के लिये) गन्ध, रस, पके हुए भोजन, तिल, सन और क्षुमा से बने पदार्थों, खालों, रंगे हुए और धुले हुए वस्त्र, सब प्रकार के विकारों सहित दूध, मूल, फल, पुष्प, औषध, मधु, मांस, घास, जल, अपथ्य पदार्थों को, हिंसा के योग से (अर्थात् वध के लिये) पशुओं को, पुरुष (दास), वन्ध्या स्त्री, कंवारी लड़की और गर्भ गिर जाने वाली गऊ को, भूमि, चावल, जौ, बकरियों और भेड़ों को कभी न बेचे। कुछ के अनुसार साँड, गऊओं और बैलों को भी न बेचे।

विनिमयस्तु रसानां रसैः पशूनाञ्च न लवणकृतान्नयोस्तिलानाञ्च समेनामेन तु पक्वस्य संप्रत्यर्थे सर्वथा वृत्तिरशक्तावशौद्रेण तदप्येके प्राणसंशये तद्वर्णसङ्करोऽभक्ष्यनियमस्तु प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म वैश्यकर्म ॥३॥

रसों का विनिमय रसों के साथ और पशुओं का पशुओं के साथ हो सकता है। लवण, पके भोजन और तिलों का अन्न वस्तु के साथ विनिमय नहीं हो सकता। तात्कालिक प्रयोजन के लिये पक्के का कच्चे के साथ विनिमय हो सकता है। सामर्थ्य के अभाव में सभी वर्ण सभी वृत्तियों से आजीविका अर्जित कर सकते हैं, शूद्र की वृत्ति को छोड़कर। कुछका मत है कि प्राणों का संशय उत्पन्न हो जाने पर उसकी वृत्ति से भी वह सम्भव है। यह वर्णसंकर है, किन्तु इसमें भी अभक्ष्य के नियम का पालन किया जाए। प्राणो का संशय उत्पन्न हो जाने पर ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण कर सकता है और क्षत्रिय वैश्य-कर्म कर सकता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः ।

अथ संस्कारवर्णनम ।

द्वौ लोके धृतव्रतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतस्तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यान्तःसंज्ञानाञ्चलनपतनसर्पणानामायत्तं जीवनं प्रसूतिरक्षणमसङ्करोधर्मः ॥१॥

लोक में दो ही धारण किये हुए व्रत वाले हैं, राजा और बहुतश्रुत ब्राह्मण। चार प्रकार के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जनों) आन्तरिक चेतना वाले, चलने, उड़ने और आगे सरकने वालों का जीवन इन दोनों के अधीन हैं। प्रसूति की रक्षा (रक्त की पवित्रता की रक्षा) ही सङ्करहीन धर्म है।

स एव बहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदाङ्गविद्वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृत्तिश्चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वासामयाचारिकेष्वभिविनीतः षड्भिः परिहार्यो राज्ञावध्यश्चाबन्ध्यश्चादण्डयश्चाबहिष्कार्यश्चापरिवाद्यश्चापरिहार्यश्चेति ॥२॥

वही बहुश्रुत है जो लोकाचार, वेद और वेदाङ्ग को जानता है ; वाकोवाक्य (वेद के एक अंश), इतिहास और पुराण में कुशल है ; उनकी अपेक्षा करने वाला है , उनके अनुसार आचरण करने वाला है ; चालीस संस्कारों से संस्कृत है, तीन कर्मो (अध्ययन, यजन और दान) मे अभिरत है; अथवा छः कर्मो (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और आदान) में अभिरत है ; स्मार्त कर्मो मे सुशिक्षित है, और छः (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और मात्सर्य) से रहित है। (यदि वह ऐसा ही है तो) वह राजा के द्वारा न वध के योग्य है, न बन्धन के योग्य है, न दण्ड के योग्य है, न बहिष्कार के योग्य है, न निन्दा के योग्य है और न ही परिहार के योग्य है।

गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौडोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषाञ्चाष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्राश्वयुजीति

सप्त पाकयज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्य निरूढपशुबन्ध. सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्था अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः पोडशी वाजपेयोऽति रात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्-संस्काराः ॥३॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, वेदों के चार व्रत, विद्या-स्नान, पत्नी-प्राप्ति (विवाह); देव, पितृ, मनुष्य, भूत और ब्रह्म—इन पांच यज्ञों का अनुष्ठान, अष्टका, अमावस्या और पूर्णिमा को किये जाने वाले पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्रा और आश्वयुजी—ये सब मिलकर सात प्रकार के पाकयज्ञ, आग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध और सौत्रामणी—ये सात प्रकार के हविर्यज्ञ, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम ये सात प्रकार के सोमयज्ञ—ये सब मिलाकर चालीस संस्कार हैं।

अथाष्टावात्मगुणा दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति यस्यैते न चत्वारिंशत् संस्कारा नचाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छति। यस्य तु खलु संस्काराणामेकदेशोऽप्यष्टावात्मगुणा अथ स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यञ्च गच्छति गच्छति ॥४॥

अब आठ आत्मगुणों का कथन करते हैं—सब प्राणियों पर दया, क्षमा, अनसूया, शौच, शारीरिक और मानसिक श्रान्ति की हानि, सर्वहित, कृपणता का अभाव और तृष्णा का ह्रास। जिसके न तो ये चालीस संस्कार हैं और जिसने न ही इन आठ गुणों को प्राप्त किया है वह ब्रह्म के सायुज्य और सालोक्य को प्राप्त नहीं हो सकता। और जिसके इन चालीस संस्कारों में से कुछ संस्कार हों और ये आठों आत्मगुण हों तो वह अवश्य ही ब्रह्म के सायुज्य और सालोक्य को प्राप्त हो जाता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः।

अथ कर्तव्याकर्तव्यवर्णनम्।

स विधिपूर्वं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थ-धर्मान् प्रयुञ्जान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् स्नातको नित्यं शुचिः

सुगन्धिः स्नानशीलः सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यान्न रक्तमुल्बणमन्यधृतं वा वासो बिभृयान्न स्रगुपानहौ निर्णिक्तमशक्तौ न रूढश्मश्रुरकस्मान्नाग्निमपश्च युगपद्धारयेन्नाञ्जलिना पिबेन्न तिष्ठन्नुद्धृतोदकेनाचामेन्न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न वाय्वग्निविप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन् वा मूत्रपुरीषामेध्यान्व्युदस्येन्नैव देवताः प्रति पादौ प्रसारयेन्न पर्णलोष्टाश्मभिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यान्न भस्मकेशतुषकपालान्यधितिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह सम्भाषेत सम्भाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेद् ब्राह्मणेन वा सह सम्भाषेत ॥१॥

वह विधिपूर्वक स्नातक होकर, विवाह करके कहे अनुसार गृहस्थ के धर्मों को करता हुआ इन व्रतों का पालन करे—वह स्नातक (गृहस्थ) नित्य ही पवित्रता वाला, उत्तम गन्ध वाला और स्नान के स्वभाव वाला होवे। धन पास होते हुए फटे-पुराने और मैले वस्त्रों वाला न होवे। वह रंगे हुए, बहुमूल्य और अन्य के द्वारा धारण किये हुए वस्त्र को धारण न करे, न ही माला और जूतों को धारण करे। सामर्थ्य न होने पर इनमें से किसी भी वस्तु को धोकर धारण करे। बिना किसी कारण के दाढ़ी-मूँछ न बढ़ाए। अग्नि को और जल को एक साथ धारण न करे। अञ्जलि से जल न पिये। निकाले हुए जल से खड़े-खड़े आचमन न करे। शूद्र, अपवित्र व्यक्ति और एक हाथ से ओजे हुए जल से भी आचमन न करे। वायु, अग्नि, विप्र, आदित्य, जल, देवता और गउओं की ओर देखते हुए मूत्र, मल और अपवित्र वस्तुओं का विसर्जन न करे। देवताओं की ओर पांव न पसारे। पत्ते, ढेले और पत्थर से मूत्र और मल को परे न करे। राख, केशों, तुषों और कपालों पर खड़ा न होवे। म्लेच्छ, अपवित्र और अधार्मिक जनों के साथ सभाषण न करे, यदि करना ही पड़े तो करके पुण्यवान् जनों का मन में ध्यान करे, अथवा ब्राह्मण के साथ वार्त्तालाप करे।

अधेनुं धेनुभव्येति ब्रूयादभद्रं भद्रमिति कपालं भगालमिति मणिधनुरितीन्द्रधनुः ॥२॥

अधेनु (गउओं से हीन) जन को धेनुभव्य (गो-समृद्ध) कहे, अभद्र को भद्र पुकारे, कपाल को भगाल कहे और इन्द्रधनु को मणिधनु बोले।

गां धयन्तीं परस्मै नाचक्षीत न चैनां वारयेन्न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलम्बेत न च तस्मिन् शयने स्वाध्यायमधीयीत न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेन्नाकल्यां नारीमभिरमयेन्न रजस्वलां न चैनां श्लिष्येन्न कन्यामग्निमुखोपधमनविगृह्यवादबहिर्गन्धमाल्यधारणपापीयसावलेखनभार्यर्यासहभोजनाञ्जन्त्यवेक्षणकुद्वारप्रवेशनपादधावनासन्दस्थभोजननदीबाहुतरणवृक्षविषमारोहणावरोहणप्राणव्यवस्थानानि च वर्जयेत् ॥३॥

चूँघाती हुई गऊ को दूसरे (अर्थात् उस के स्वामी) को न बताए। उसे हटाए भी नहीं। मैथुनक्रिया के पश्चात् शौच के विषय मे विलम्ब न करे, और उसी शय्या पर स्वाध्याय (वेद का अध्ययन) न करे। रात्रि के अन्तिम पहर मे वेद पढकर फिर से बिस्तरे में लेट न जाए। रोगी स्त्री से संभोग न करे और न ही रजस्वला के साथ। न ही इसका आलिङ्गन करे और न ही कन्या का। अग्नि को मुँह से फूंकना, झगड़ा उत्पन्न करके गाली-गलौज बकना, गन्ध और माला को धारण करके बाहर घूमना, बहुत पापी पर दृष्टिपात करना, पत्नी के साथ भोजन, शृंगार करती हुई स्त्री को देखना, कुत्सित द्वार से प्रवेश, दूसरे से पावों को धुलवाना, आसन पर रखे भोजन को खाना, भुजाओं से तैर कर नदी को पार करना, वृक्ष और ऊँची-नीची जगह पर चढ़ना और उतरना, प्राणों को संशय में डालना—इन सब बातों को छोड़ दे।

न सन्दिग्धां नावमधिरोहेत् सर्वत एवात्मानं गोपायेन्न प्रावृत्य शिरोऽहनि पर्यटेत् प्रावृत्य तु रात्रौ मूत्रोच्चारे च न भूमावनन्तर्धाय नाराच्चावसथान्न भस्मकरीषकृष्टच्छायापथिकाम्येषु उभे मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यादुदङ्मुखः सन्ध्ययोश्च रात्रौ तु दक्षिणामुखः पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत्। सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान् वर्जयेत् ॥४॥

जिसके डूबने का सन्देह हो ऐसी नाव पर न चढ़े। सब ओर से अपनी रक्षा करे। दिन में सिर को ढक कर न घूमे, रात को तो ढककर ही घूमे। मूत्र और मल का त्याग करके भूमि के बिना ढके न छोड़े। यह कार्य आवास

के निकट न करे और न ही भस्म, सूखी गोबर, जुते खेत, छाया, मार्ग और कमनीय वस्तुओ पर करे। मूत्र और मल, दोनों का त्याग, दिन में और दोनों सन्ध्याओं में उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके करे। ढाक से बने आसन, खड़ाऊँ और दातुन का परित्याग करे। जूते पहन कर भोजन, आसन, शयन, अभिवादन और नमस्कारो को छोड़ देवे।

न पूर्वाह्णमध्यन्दिनापराह्णानफलान् कुर्याद्यथाशक्ति धर्मार्थ-कामेभ्यस्तेषु च धर्मोत्तरः स्यान्न नग्नां परयोषितमीक्षेत न पदासनमाकर्षेन्न शिश्नोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि कुर्याच्छेदनभेदनविलेखनविमर्दनावस्फोटनानि नाकस्मात् कुर्यान्नोपरिवत्सतन्ती गच्छेन्न जलक्रीडः स्यान्न यज्ञमवृतो-गच्छेद्दर्शनाय तु कामं ॥५॥

पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण काल को बेकार नष्ट न करे। धर्म, अर्थ और काम के लिये उनका यथाशक्ति उपयोग करे। इन सब में धर्म को उत्तम माने। पराई नंगी स्त्री को न देखे। पांव से आसन को न खींचे। शिश्न, उदर, हाथ, पांव, आँख और वाणी की चञ्चलताओ को न करे। बिना कारण के छेदन, भेदन, कुरेदना, मसलना और अंगो का आस्फोटन आदि न करे। बछड़ा आदि जिससे बँधा हो ऐसी रस्सी के ऊपर से कूद कर न जाए। जल में क्रीडा न करे। यज्ञ में बिना वरण किया हुआ न जाए, देखने के लिये भले ही चला जाए।

न भक्ष्यानुत्सङ्गे भक्षयेन्न रात्रौ प्रेष्याहृतमुद्धृतस्नेहविलप-नपिण्याकमथितप्रभृतीनि चात्तवीर्याणि नाश्नीयात् सायं प्रातस्त्वन्नमभिपूजितमनिन्दन् भुञ्जीत न कदाचिद्रात्रौ नग्नः स्वपेत् स्नायाद्वा यच्चात्मवन्तो वृद्धाः सम्यग्विनीता दम्भलोभमोहवियुक्ता वेदविद आचक्षते तत्समाचरेत् ॥६॥

खाने योग्य वस्तुओं को गोद में रखकर न खाए, और रात्रि में दास के द्वारा लाए हुए भोजन को भी न खाए। निकली हुई चिकनाई वाली गाद, खली, मठे आदि निकले हुए सारवाने पदार्थों को न खाए। सायं और प्रातः सत्कृत अन्न को उसकी निन्दा न करते हुए खाए। रात्रि में कभी न नगा सोए और न ही स्नान करे। आत्मवान्, सुशिक्षित, दम्भ लोभ और मोह से रहित, वेदविद्, बड़े लोग जो कहें उसी का आचरण करे।

योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेन्नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्मिकेभ्यः प्रभूतैधोदकयवसकुशमाल्योपनिष्क्रमणमार्य्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्मिकाधिष्ठितं निकेतनमावसितुं यतेत प्रशस्तमङ्गल्यदेवतायतनचतुष्पथादीन् प्रदक्षिणमावर्तेत। मनसा वा तत्समग्रमाचारमनुपालयेदापत्कल्पः ॥७॥

योग-क्षेम के लिये ऐश्वर्यवान् की शरण में जाए, पर देवता, गुरु और धार्मिकजन को छोड़कर किसी अन्य की नहीं। प्रभूत मात्रा में ईंधन, जल, भूसा, कुशा, पुष्प, अन्दर जाने और बाहर निकलने के द्वारों वाले, श्रेष्ठजनों के आधिक्य वाले, अग्निकर्म (यज्ञ) में समृद्ध, धार्मिकजनों से अधिष्ठित मकान में आवास के लिये प्रयास करें। चलते समय प्रशस्त और माङ्गल्य स्थानों देवालयों और चौराहों आदि को अपनी दाहिनी ओर रखते हुए चले। विपत्ति में पड़ा हुआ भी इस समस्त आचार का मन से पालन करे।

सत्यधर्मा आर्यवृत्तः शिष्टाध्यापकशौचशिष्टः श्रुतिनिरतः स्यान्नित्यमहिंस्रो मृदु दृंढकारी दमदानशील एवमाचारो मातापितरौ पूर्वापरान् सम्बन्धान् दुरितेभ्यो मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्ब्रह्मलोकान्न च्यवते न च्यवते ॥८॥

सत्य धर्म वाला, श्रेष्ठ आचार वाला वह शिष्ट अध्यापकों के द्वारा शौच की शिक्षा दिया हुआ वेद में निरत रहे। नित्य ही हिंसा न करने वाला, कोमल स्वभाववाला पर दृढ़तापूर्वक कार्य करने वाला, दम और दान के शील वाला होकर इस प्रकार के आचार वाला वह स्नातक अपने माता और पिता तथा अपनी पिछली और अगली पीढ़ियों को दुरितों से मुक्त करना चाहता शाश्वत ब्रह्म से च्युत नहीं होता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः।

दशमोऽध्यायः।

अथ वर्णानां वृत्तिवर्णनम्।

द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमस्त्वाचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्याविनिमयेषु ब्रह्मणः सम्प्रदानमन्यत्र यथोक्तात् कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदञ्च ॥१॥

वेदों का अध्ययन, यजन और दान, ये द्विजों के धर्म हैं। अध्यापन याजन और आदान—ये ब्राह्मण के अधिक धर्म हैं। पूर्व धर्मों के होते हुए ये वृत्ति के लिये हैं। कि आचार्य, सम्बन्धी, प्रियजन, गुरुजन आदि के द्वारा धन और विद्या के

विनिमय से वेद प्रदान किया जाता है। ऊपर कहे गए के अतिरिक्त ब्राह्मण खेती और व्यापार भी कर सकता है। यदि वह खेती और व्यापार स्वयं न करता हो (अन्य से कराता हो) तो व्याज लेने का काम भी कर सकता है।

राज्ञोऽधिक रक्षणं सर्वभूतानां न्याय्यदण्डत्वं बिभृयाद् ब्राह्मणान श्रोत्रियान् निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजयेऽभये विशेषेण चर्या च रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च न दोषो हिंसायामाहवेऽन्यत्र व्यश्वसारथ्यायुधकृताञ्जलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षाधिरूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्य ॥२॥

सब प्राणियों की रक्षा और न्यायपूर्वक दण्ड राजा का अधिक धर्म है। वह ब्राह्मणो, श्रोत्रियों, उत्साह-हीन, अब्राह्मणों, कर न देने वालों और उपकुर्वाण-को (ब्रह्मचर्य की समाप्ति पर गृहस्थ में प्रवेश करने वालो) का भरण-पोषण करे। वह शत्रुओ को जीतने में जुटा रहे और विशेषतया भय के समय उसकी चर्या यह है कि रथ पर चढ़ कर और धनुष हाथ में लेकर युद्ध में स्थिर रहे, पीछे न मुड़े। घोड़े सारथि और शस्त्र से हीन, हाथ जोड़े हुए, बिखरे केशों वाले, मुख फेरे हुए, धरती पर बैठे, ऊँचे स्थान और वृक्ष पर चढ़े, अपने आप को दूत गऊ और ब्राह्मण बताने वाले मनुष्यो को छोड़कर युद्ध के अन्दर हिंसा में दोष नहीं है।

क्षत्रियश्चेदन्यस्तमुपजीवेत्तद्वृत्तिः स्यात् जेता लभेत सांग्रामिकं वित्त वाहनन्तु राज्ञ उद्धारश्चापृथग्जयेऽन्यत्तु यथार्ह भाजयेद्राजा ॥३॥

यदि कोई अन्य अधिक बलशाली क्षत्रिय उसकी सेवा में है, तो उसी से अपनी आजीविका प्राप्त करे। यदि वह युद्ध में विजय प्राप्त करता है तो वह उससे मिलने वाले धन का अधिकारी है। वाहन राजा के है। यदि विजय मिलकर प्राप्त की गई हो तो उद्धार (लूट के धन का छठा भाग) राजा को जाता है और शेष को राजा यथायोग्य बांट दे ।

राज्ञे बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा पशुहिरण्ययोरप्येके पञ्चाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः पण्ये मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणेन्धनानां षष्ठं तद्रक्षणधर्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यादधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासि मास्येकैकं कर्म कुर्युरेते-

नात्मोपजीविनो व्याख्याता नौचक्रीवन्तश्च भक्तं तेभ्यो दद्यात् पण्य वणिग्भिरर्थापचयेन देय ॥४॥

किसान राजा को अपनी उपज का दसवां आठवां अथवा छठा भाग बलि (मालगुजारी) के रूप में दें। कुछ स्मृतिकारो के अनुसार पशुओं और सोने का भी पचासवां भाग बलि रूप में दिया जाना चाहिये। पण्य (बाजार में बिकने वाले माल) पर शुल्क उसका बीसवां भाग है। मूल, फल, पुष्प, औषध, मधु, मांस, घास और ईंधन का छटा भाग शुल्क के रूप के दिया जाना चाहिये, क्योकि उनकी रक्षा राजा का कर्तव्य है। वह अपने उन कर्तव्यों के पालन मे निश्चय ही जुटा रहे, राजा अधिक प्राप्त से अपनी आजीविका कर। शिल्पी जन हर महीने एक-एक दिन राजा के लिये कर्म करे। इसी से श्रमिको नाविकों और रथवानों की भी व्याख्या हो गई (अर्थात् उनके लिये भी यही करणीय है)। राजा इन लोगो को, जब वे उसके काम पर आएं, भोजन प्रदान करे। व्यापारी लोग राजा को कम कीमत पर माल दें।

प्रनष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्याप्य संवत्सरं राज्ञा रक्ष्यमूर्ध्वमधिगन्तुश्चतुर्थं राज्ञः शेषः स्वामी रिक्थक्रय-संविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्ट वैश्यशूद्रयोर्निध्यधिगमो राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्याब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके चौरहृत-मपजित्य यथास्थानं गमयेत् कोशाद्वा दद्याद्रक्ष्यं बालधन-माव्यवहारप्रापणात् समावृत्तेर्वा ॥५॥

लोगों का कर्तव्य है, कि यदि कोई गुमी हुई, लावारिस वस्तु मिले तो उसे राजा को बतावें। राजा उसकी घोषणा कराकर एक वर्ष तक उसे अपने पास रखे। यदि फिर भी स्वामी न मिले तो उसका चौथा भाग पाने वाले को मिले शेष भाग राजा का है। पैतृकसम्पत्ति, में मिली क्रय से प्राप्त वस्तुओं, बटवारे और पाई दान से प्राप्त का हर व्यक्ति स्वयं स्वामी होता है। ब्राह्मण का अधिक धन, विजित किया हुआ धन क्षत्रिय का अधिक धन है। परिश्रम से मिलने वाला धन वैश्य और शूद्र का अधिक धन है। यदि खजाने की प्राप्ति हो तो वह राजा का धन है। यदि वह विद्वान् ब्राह्मण को मिले तो राजा उसे न ले। इसी से अब्राह्मण की व्याख्या हो गई (अर्थात् उससे ले ले)। किन्हीं का मत है कि ऐसे अब्राह्मण को उस निधि का छठा भाग मिले। चोरी गए धन को राजा चोरों से छीनकर यथास्थान (वास्तविक स्वामी के

पास) पहुंचा देवे। यदि धन न मिले तो खजाने से दे दे। राजा बालक के धन को तब तक रक्षा करे, जब तक कि वह व्यवहार का ज्ञाता न हो जाए, अथवा जब तक उसका समावर्तन संस्कार न हो जाए।

वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यकुसीदम् ।।६।।

कृषि, व्यापार, पशुपालन और व्याज लेना वैश्य का यह अन्य जातियों से अधिक धन होता है।

शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैके श्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्या चोत्तरेषां तेभ्यो वृत्ति लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासःकूर्चान्युच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च यञ्चायमाश्रितो भर्त्तव्यस्तेन क्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्र. पाकयज्ञै. स्वयं यजेतेत्येके ।।७।।

शूद्र चौथा वर्ण है। उसका एक ही जन्म होता है। सच बोलना, क्रोध न करना और पवित्रता उसका भी धर्म है। वह आचमन के स्थान पर हाथ-पांव धो सकता है। कुछ का मत है कि वह श्राद्धकर्म भी कर सकता है। वह आश्रित जनों का भरण-पोषण करे और अपनी पत्नी से सम्बन्ध रखे। ऊँचे वर्ण वालों की सेवा करे और उनसे आजीविका प्राप्त करे। उनके पुराने जूतों, छाता, वस्त्र, कूर्च और उच्छिष्ट भोजन का सेवन करे। वह शिल्पवृत्ति भी कर सकता है। वह जिसके आश्रय में रहे, वही उसका भरण-पोषण करे। जब वह क्षीण हो जाए तब भी वह उसका पालन करे। और उसके द्वारा भी स्वामी के लिये ऐसा ही किया जाए। उसका धन इसी की सम्पत्ति है। नमस्कार ही उसका मन्त्र माना गया है। कुछका मत है कि वह पाक-यज्ञों से स्वय यजन कर सकता है।

सर्वे चोत्तरोत्तर परिचरेयुरार्यानार्ययोर्व्यतिक्षेपे कर्मणः साम्यम् साम्यम् ।।८।।

सभी वर्ण क्रमशः अपने से ऊँचे वर्ण की सेवा करे। आर्यों और अनार्यों का सम्मिश्रण हो जाने पर सब सभी कर्मों को समान रूप से करे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्याय ।

अथ राजधर्मवर्णनम् ।

राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जं साधुकारी स्यात् साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिक्याञ्चाभिविनीतः शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसम्पन्नः समः प्रजासु स्याद्धितञ्चासां कुर्वीत तमुपर्यासोनमधस्था उपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेऽप्येनं मन्येरन् ॥१॥

राजा सबपर शासन करता है, ब्राह्मण को छोड़कर। वह शुभ कर्म करने वाला, सच बोलने वाला, वेद (त्रयी) और तर्क (आन्वीक्षिकी) में सुशिक्षित, ईमानदार, जितेन्द्रिय, गुणवान् साथियों वाला, उपायों से सम्पन्न और सब प्रजाओं के साथ समानता का व्यवहार करने वाला होवे, और उनका हित करे। ऊपर (ऊँचे आसन पर) बैठे हुए की उसकी सब नीचे बैठकर सेवा करें, ब्राह्मणों को छोड़कर, पर वे भी इसका मान करें।

वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेच्चलतश्चैनान् स्वधर्मे स्थापयेद्धर्मस्थो ह्यंशभाग्भवतीति विज्ञायते ॥२॥

वह वर्णों और आश्रमों की न्याय के साथ रक्षा करे, और अपने धर्म से डिगे हुओं को इनको इनके धर्म में स्थापित करे। धर्म में स्थित हुआ ही वह अंश (कर) का अधिकारी होता है, ऐसा माना जाता है।

ब्राह्मणञ्च पुरोदधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसम्पन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनं तत्प्रसूतः कर्माणि कुर्वीत ब्रह्मप्रसूत हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ॥३॥

विद्या, उच्चकुल, वाणी, रूप, यौवन और शील से सम्पन्न, न्यायशील और तपस्वी ब्राह्मण को पुरोहित नियुक्त करे और उससे मार्गदर्शन पाकर कर्मों को करे। ब्राह्मण के द्वारा मार्ग पर डाला हुआ क्षत्रिय समृद्धि को प्राप्त होता है, व्यथा को प्राप्त नहीं होता, ऐसा माना जाता है।

यानि च दैवोत्पातचिन्तकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके योगक्षेम प्रतिजानते शान्तिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमङ्गलसंयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषणसवननाभिचारद्विषद्व्यृद्धिसंयुक्तानि च शालाग्नौ कुर्याद्यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि ॥४॥

जिन बातों को ज्योतिषी कहें, राजा उनका आदर करे। कुछ का विश्वास है कि योग और क्षेम उन के अधीन भी होता है। ग्रहशान्ति पुण्याह कर्म, स्वस्त्ययन, आयुर्वर्धन और मंगल-विषयक अभ्युदय कर्मों को, तथा शत्रुओं के विद्वेषण और वशीकरण के अभिचार, और शत्रु की समृद्धि के विनाश से सम्बन्धित कर्मों को यज्ञशाला की अग्नि में करे। और ऋत्विज लोग अन्य कर्मों को भी विधिपूर्वक करे।

तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदिकारवः स्वे स्वे वर्गे तेभ्यो यथाधिकारमर्थान् प्रत्यवहृत्य धर्मव्यवस्था न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायस्तेनाभ्यूह्य यथास्थानं गमयेद्विप्रतिपत्तौ त्रयीविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठा गमयेत्तथा ह्यस्य निःश्रेयसं भवति ब्रह्म क्षत्रेण सम्प्रवृत्तं देवपितृमनुष्यान् धारयतीति विज्ञायते ॥५॥

अब उसके न्याय के विषय में—वेद, धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग, उपवेद, पुराण तथा देश, जाति और कुल के धर्म जो शास्त्रों के विरुद्ध न हो प्रमाण हैं। किसान, व्यापारी, पशुपालक, सूदखोर और शिल्पी अपने-अपने वर्ग में प्रचलित धर्मों के अनुसार न्याय प्राप्त करें। उनसे अधिकार के अनुकूल नियम जानकर (राजा) धर्म की व्यवस्था करे। न्याय को ढूंढने में तर्क अच्छा उपाय है। उसके द्वारा ऊहापोह करके न्याय को उचित स्थिति मे पहुचा देवे। शंका होने पर वेदविद्या में बढ़े हुओं से विचार-विमर्श करके न्याय को निश्चित करे। इसी प्रकार से इसका कल्याण होता है। ब्रह्म (ज्ञान) क्षत्र (बल) के साथ प्रवृत्त होकर ही देवों, पितरों और मनुष्यों को धारण करता है ऐसा माना जाता है।

दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेद्वर्णाश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवृत्तवित्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्ते विष्वञ्चो विपरीता नश्यन्ति तानाचार्योपदेशो दण्डश्च पालयते तस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यावनिन्द्यौ ॥६॥

दमन करने से दण्ड कहलाता है, ऐसा कहते है। इस लिये राजा उच्छृङ्खल जनों का दमन करे। वर्ण और आश्रम धर्म का पालन करने वाले, अपने कर्म में स्थित जन मरकर और अपने कर्मों का फल भोगकर, तत्पश्चात् शेष कर्म से विशिष्ट देश जाति, कुल, रूप, आयु, ज्ञान, शील, वित्त, सुख और बुद्धि के

युक्त होकर पुनः जन्म और विद्या को प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाले लोग नष्ट हो जाते हैं। आचार्य का उपदेश और राजा का दण्ड ही उनका पालन करता है। इस लिये राजा और आचार्य निन्दा के योग्य नहीं हैं।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

अथ विविधपापकरणे दण्डविधानवर्णनम् ।

शूद्रो द्विजातीनभिसन्धायाभिहत्य च वाग्दण्डपारुष्याभ्यामङ्ग-
मोच्यो येनोपहन्यादार्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः स्वहरणञ्च
गोप्ता चेद्वधोऽधिकोऽथ हास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां
श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद
आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दण्डयः शतम् ॥१॥

शूद्र यदि द्विजो पर वाणी और दण्ड की कठोरता से बलपूर्वक चोट करे तो राजा को चाहिये कि वह उसे उसी अंग से हीन कर दे जिससे उसने चोट की है। आर्य स्त्री से संभोग करने पर उसका लिङ्ग काट डाला जाए और उसका धन छीन लिया जाए। यदि वह उसका रक्षक भी है तो उसके लिये उससे बड़े दण्ड का विधान है। वेद को सुनने वाले (शूद्र) के लिये उसके कानों को रांग और लाख से भरना, उच्चारण करने पर जिह्वा छेदन और धारण करने पर शरीरभेदन दण्ड है। आसन, शयन, वाणी और मार्ग में समानता चाहने वाला शूद्र सौ मुद्राओं के दण्ड का भागी है।

क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दण्डापारुष्ये द्विगुणमध्यर्धं वैश्योब्राह्मणस्तु
क्षत्रिये पञ्चाशत्तदर्द्धं वैश्ये न शूद्रे किञ्चित् ब्राह्मणराजन्य-
वत् क्षत्रियवैश्यावष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्त-
राणीतरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वम् ॥२॥

यदि क्षत्रिय ब्राह्मण के साथ चिल्ला कर बोले या डंडे से कठोरता दिखाए तो उसे दुगना अर्थात् दो सौ मुद्राएं दण्ड दे। वैश्य यदि ऐसा करे तो उसे डेढ गुना अर्थात् डेढसौ मुद्राए दण्ड दे। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय के साथ ऐसा व्यवहार करे तो उसे पचास मुद्राएं, वैश्य के साथ ऐसा करने पर उससे आधी अर्थात् पच्चीस मुद्राएं दण्ड दे। शूद्र के साथ ऐसा व्यवहार करने पर ब्राह्मण को कुछ भी दण्ड न दे। ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर दुर्व्यवहार करके जितने दण्ड के भागी होते है, वैश्य और क्षत्रिय भी परस्पर दुर्व्यवहार करके उतने ही दण्ड के

भागी होते है। चोरी करने पर शूद्र से धन का आठ गुना दण्ड ले अन्य वर्ण वालों से उत्तरोत्तर दुगुना (अर्थात् वैश्य से शूद्र से दुगना, क्षत्रिय से वैश्य से दुगना और ब्राह्मण से क्षत्रिय से दुगना)। इसी प्रकार विद्वान् का अनादर करने पर प्रत्येक वर्ण का मनुष्य अपने छोटे वर्ण के मनुष्य से अधिक दण्ड का भागी है।

फलहरितधान्यशाकादाने पञ्चकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पञ्च माषा गवि षडुष्ट्रे खरेऽश्वमहिष्योर्दशाजाविषु द्वौ द्वौ सर्वविनाशे शतं शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायाञ्च नित्यं चैलपिण्डादूर्ध्वं स्वहरणञ्च गोऽग्न्यर्थे तृणमेधान् वीरुध वनस्पतीनाञ्च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् ॥३॥

फल, हरी खेती और सब्जी को (स्वामी को पूछे बिना) लेने पर पांच कृष्णल (रत्ती) दण्ड है। यदि (सूने) पशु के द्वारा खेत में थोड़ा नुकसान हो तो वह स्वामी का अपना दोष है। यदि पशु के साथ पशुपाल हो और वह सड़क पर चलते बिना बाड़ के खेत में नुकसान करे तो पशुपाल और खेत के स्वामी दोनों का दोष है। गाय बैल के द्वारा नुकसान करने पर पांच माशे, ऊँट और गधे द्वारा करने पर छः माशे, घोड़े और भैंस के द्वारा करने पर दस माशे, बकरियों और भेड़ों के द्वारा करने पर दो-दो माशे, सारा खेत उजाड़ देने पर सौ माशे दण्ड देय है। शिष्ट-सम्मत कर्म के न करने पर और निषिद्ध कर्म का सेवन करने पर नित्य ही वस्त्र और भोजन के अतिरिक्त जो हो, वह सारा धन ले लिया जाए। गउओं और अग्नि के लिये घास और ईंधन तथा बेलों और बड़े वृक्षों के फूलों को और बिना बाड़ के वृक्षों के फलों को अपना समझ कर ले लेवे।

कुसीदवृद्धिर्धर्म्या विंशतिः पञ्चमाषकी मासं नातिसांवत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य भुक्ताधिर्न वर्द्धते दित्सतोऽवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिताकायिकाशिखाधिभोगाश्च कुसीदं पशूपजलोमक्षेत्रशतवाह्येषु नातिपञ्चगुणमजडापोगण्डधनं दशवर्षभुक्तं परैः सन्निधौ

भोक्तुरश्रोत्रियप्रव्रजितराजन्यधर्मपुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगः ॥४॥

व्याज की धर्मसंगत वृद्धि बीस कार्षापण पर पाँच माशे प्रतिमास कुछ का मत है कि एक वर्ष से अधिक होने पर व्याज नहीं लेना चाहिये। बन्धक रखी वस्तु का ऋणदाता भोग करे तो ऋण पर व्याज नहीं लगता। ऋण लौटा देने पर ऋणदाता के द्वारा रोक दिये जाने वाले देने की इच्छा वाले बढ़ता नहीं। वृद्धि दो प्रकार की होती है। चक्रवृद्धि और काल वृद्धि। व्याज(वृद्धि) चार प्रकार की होती है—कारिता (निश्चित की हुई, नकद), कायिका (शारीरिक परिश्रम के द्वारा दी जाने वाली), शिखा (प्रतिदिन बढ़ने वाली) और अधिभोगा (किसी वस्तु के प्रयोग से दी जाने वाली)। पशु, उपज, ऊन और सैकड़ों बार जोते हुए खेतों पर व्याज पांच गुणा से अधिक नहीं होना चाहिये। जड व्यक्ति और बालक को छोड़ कर यदि किसी मनुष्य का धन निरन्तर दश वर्ष तक उसके सामने अन्य जनों के द्वारा भोगा जाए, तो वह भोक्ता का ही हो जाता है, पर श्रोत्रिय ब्राह्मण, संन्यासी, राजा और धार्मिक पुरुषों के द्वारा भोगा हुआ धन उनका नहीं हो जाता। पशुओं, भूमि और स्त्री का अति-भोग वर्जित है।

ऋक्थभाज ऋणं प्रतिकुर्युः प्रातिभाव्यवणिक्शुल्कमद्यद्यूतदण्डान् पुत्रा नह्याभवेयुर्निध्यन्नादियाचितावक्रीताधेया नष्टाः सर्वे न निन्दिता न पुरुषापराधेन ॥५॥

पैतृक-सम्पत्ति का भाग ग्रहण करने वाले पिता का ऋण चुकाएं। पर पिता द्वारा की गई जमानत के धन, व्यापार-कर, मद्यपान के ऋण, जूए के ऋण और दण्ड आदि धनराशि का पुत्र भुगतान न करें। कोष, अन्न आदि तथा मांगकर और खरीदकर धरोहर रूप में रखे हुए पदार्थ यदि नष्ट हो जाए तो वे सब नर जिनके पास धरोहर रखी गई है, निन्दा के योग्य नही हैं, अगर उनके विनाश में पुरुष-विशेष का अपराध नहीं है।

स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात् कर्माचक्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामघ्नन्नेनस्वी राजा ॥६॥

चोरी करने वाला अपने केश खोलकर और मूसल हाथ में लेकर अपने दुष्कर्म की घोषणा करता हुआ राजा का पास जाए। यदि वह राजा द्वारा मूसल के प्रहार से मर जाए या बच जाए तो वह पवित्र हो जाता है। यदि राजा उस पर मूसल का प्रहार न करे तो वह स्वयं चोरी के पाप का भागी होता है।

न शारीरो ब्राह्मणदण्डः कर्मवियोगविख्यापनविवासनाङ्क-
करणान्यप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती स चौरसमः सचिवो मतिपूर्वे
प्रतिग्रहीताप्यधर्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपराधानुबन्धविज्ञाना-
द्दण्डनियोगोऽनुज्ञानं वा वेदवित् समवायवचनाद् वेदवित्सम-
वायवचनात् ॥७॥

ब्राह्मण के लिये शारीरिक दण्ड का विधान नहीं है। राजा उसे दुष्कर्म से हटाए, उसके अपराध की उद्घोषणा करे, उसे देश निकाला दे दे, और उसके शरीर पर अपराधी के चिह्न बनवा दे। यदि राजा ऐसा करने में प्रवृत्त नहीं होता तो वह प्रायश्चित्त का भागी है। चोरी के माल को लेने वाला मनुष्य भी जानबूझकर अधर्म के कार्य से जुड़ा होने के कारण उस कार्य में सहायक और चोर के समान है। अपराधी पुरुष की शक्ति, अपराध और अनुबन्ध को जानकर, अथवा वेद-शास्त्र आदि को जानने वालो के कथन से जानकारी प्राप्त करके राजा उसके लिये दण्ड का विधान करे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः।

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथ साक्षीणां विधावर्णनम्।

विप्रतिपत्तौ साक्षिणी मिथ्यासत्यव्यवस्था बहवः स्युरनि-
न्दिताः स्वकर्मसु प्रात्ययिका राज्ञाञ्च निष्प्रीत्यनभिता-
पाश्चान्यतरस्मिन्नपि शूद्रा ब्राह्मणस्त्वब्राह्मणवचनादनव-
रोध्योऽनिबद्धश्चेन्नासमवेता पृष्टाः प्रब्रूयुरवचने च दोषिणः
स्युः स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः। अनिबद्धैरपि वक्तव्यं
पीडाकृते निबद्धे प्रमत्तोक्ते च साक्षिसभ्य राजकर्तृषु दोषो
धर्मतन्त्रपीडायां शपथेनैके सत्यकर्मणा तद्देवराजब्राह्मणसंसदि
स्यादब्राह्मणानाम् ॥१॥

विवाद में झूठ और सत्य का निर्णय साक्षी के अधीन है। साक्षी कई होने चाहियें। वे निन्दा से रहित, अपने कर्मों में रत, विश्वास के पात्र, राजा की प्रीति और कोप से हीन हों। वे वैकल्पिक रूप से शूद्र भी हो सकते हैं। ब्राह्मण यदि बिना समन के नहीं आया है, तो उसे अब्राह्मण के कहने से अपनी बात करने से नहीं रोकना चाहिये। अलग-अलग बुलाए हुए राजा के द्वारा प्रश्न

करने पर उत्तर दें। अगर वे उत्तर नहीं देते तो दोषी है। सच बोलने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है. इसके विपरीत (अर्थात् झूठ बोलने पर) नरक मिलता है। समन भेजकर बुलाए हुए साक्षी के रोगपीडित हो जाने हर अथवा प्रमादी की सी बातें करने पर बिना समन भेजे आए साक्षियों को अपने साक्ष्य का कथन करना चाहिये। धर्मतन्त्र की हानि होने पर (अर्थात् न्याय ठीक ढग से न होने पर) दोष साक्षियो, सभासदों और राजकर्मचारियों पर आता है। कुछ का मत है कि साक्ष्य का कथन सत्यकर्म की शपथ के साथ होना चाहिये। अब्राह्मणों का वह शपथ-ग्रहण किसी देवता के सम्मुख, अथवा राजा या ब्राह्मणों की सभा में होवे।

क्षुद्रपश्वनृते साक्षी दश हन्ति गोऽश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरान् सर्वं वा भूमौ हरणे नरको भूमिवदप्सु मैथुनसंयोगे च पशुवन्मधुसर्पिषोर्गोवद्वस्त्रहिरण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववन्मिथ्यावचने याप्यो दण्ड्यश्च साक्षी नानृतव च ने दोपो जीवनञ्चेत्तदधीनं न तु पापीयसो जीवनं राजा प्राडिवाको ब्राह्मणो वा शास्त्रवित् प्राड्विवाको मध्यो भवेत् संवत्सर प्रतीक्षेत प्रतिभाया धेन्वनडुत्स्त्रीप्रजनसंयुक्तेषु शीघ्रमात्ययिके च सर्वधर्मेभ्यो गरीयः प्राड्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥२॥

क्षुद्र पशु के विवाद में झूठ बोलने पर साक्षी दस का हनन करता है। गऊ, घोड़े, पुरुष और भूमि के विवादों मे झूठ बोलने पर वह क्रमशः दस-दस गुना का हनन करता है अथवा अपना सर्वनाश कर लेता है। भूमि के स्वामित्व के लिये झूठ बोलने पर नरक की प्राप्ति होती है। जलों के विषय में भूमि के समान ही पाप लगता है। मैथुन के विषय में पशु के समान, मधु और घी के विषय में गऊ के समान, वस्त्र, सुवर्ण, अनाज और वेद के विषय मे और यानों के विषय में घोड़े के विषय में झूठ बोलने के समान पाप लगता है। झूठ बोलने पर साक्षी को मुअत्तल किया जा सकता है और वह दण्ड का भागी होता है। झूठ बोलने में भी दोष नहीं है, यदि किसी निर्दोष मनुष्य का जीवन उससे बच सकता है। परन्तु किसी पापी जन के जीवन को बचाने का राजा, जांचकर्ता (न्यायाधीश) या शास्त्रवित् ब्राह्मण प्रयास न करे। न्यायाधीश दोनों पक्षों के बीच में निष्पक्ष रूप से स्थित होता है। सच्चाई को प्रकाश में लाने के लिये वह एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे। गाय, बैल और स्त्रियों के प्रजनन सम्बन्धी विवादों में और अत्यावश्यक विवाद के विषय में निर्णय

शीघ्र किया जाना चाहिये । न्यायाधीश के सामने सच बोलना सब कर्तव्यों से अधिक महान् है ।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ अशौचवर्णनम् ।

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डाना-मेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकं मासं शूद्रस्य तच्चेदन्तः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्ध्येरन् रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिर्गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्च युद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निर्विषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छतां पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पञ्चमे वा ॥१॥

ऋत्विज, दीक्षित और ब्रह्मचारी को छोड़कर मृत्यु से उत्पन्न होने वाला शौच दस दिन-रात का होता है । सपिण्डों के लिये ग्यारह दिन तक, क्षत्रिय के लिये बारह दिन तक, वैश्य के लिये आधे मास तक और शूद्र के लिये एक मास तक होता है । उसी बीच में यदि पुनः मृत्यु का अशौच आ पड़े तो पूर्व अशौच के शेष बचे दिनों के साथ शुद्धि को प्राप्त हो जाते हैं । यदि पूर्व शौच का समय पूरा होने में केवल एक रात शेष बची हो तो अगले दो दिन में शुद्धि होती है । यदि पूर्व अशौच की समाप्ति के दिन प्रातः काल दूसरा मृत्यु-अशौच आ पड़े तो अगले तीन दिनों में शुद्धि होती है । गउओं और ब्राह्मणों के द्वारा मारे गए मनुष्यों के अशौच की मृत्यु के तुरन्त बाद शुद्धि हो जाती है । और राजा के क्रोध से मरने वालों, युद्ध में मरने वालों, धरने पर बैठकर अनशन के द्वारा व्रत करने से, शस्त्र, अग्नि, विष, जल, फाँसी और ऊपर से कूदकर मृत्यु चाहने वालों के शौच की भी मृत्यु के तुरन्त बाद शुद्धि हो जाती है । सातवीं अथवा पांचवीं पीढ़ी में पिण्ड की निवृत्ति हो जाती है ।

जननेऽप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः स्रंसने गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिण्यसपिण्डयो-निसम्बन्धे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसम्पन्ने ॥२॥

जिस प्रकार मृत्यु के अशौच के बारे में है, उसी प्रकार सूतक के अशौच के विषय में भी जानना चाहिये । गर्भपात होने पर जितने मास का गर्भ हो उतने

ही दिनों का माता और पिता के लिये अथवा केवल माता के लिये अशौच होता है। अथवा गर्भस्राव होने पर तीन दिन का अशौच होता है। यदि मृत्यु या जन्म का पता दसवीं रात्रि बीत जाने के पश्चात् लगे तो एक पक्षिणी रात्रि (दो दिन और उनके बीच की रात) तक अशौच रहता है। वह असपिण्ड जिसके साथ खून का रिश्ता है, जो सहपाठी है, उसके मरने पर भी जिसके साथ रहकर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया है और जो वेदपाठी ब्राह्मण है—ऐसे जन के मर जाने पर एक दिन का अशौच होता है।

प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमाशौचमभिसन्धाय चेदुक्तं वैश्यशूद्रयोरार्त्तवीर्व्वापूर्वयोश्च त्र्यह वाचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवमवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् पूर्वो वावरं तत्र शावोक्तमाशौचम् ॥३॥

मुर्दे का स्पर्श करने पर दस दिन का अशौच होता है, अगर वह जानबूझकर किया गया है। वैश्य और शूद्र के अशौच के बारे में पीछे कह दिया गया है। पूर्व दो वर्णों (अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय) की स्त्री का स्पर्श करके तीन दिन का अशौच होता है। आचार्य, उसके पुत्र, पत्नी, याजक और शिष्य की मृत्यु हो जाने पर इसी प्रकार अशौच होता है। यदि नीचे वर्ण का व्यक्ति ऊँचे वर्ण के व्यक्ति को छू दे अथवा उच्च वर्ण का व्यक्ति नीच वर्ण के व्यक्ति को छू दे तो उस में वही अशौच होता है जो मृत्यु में बताया गया है।

पतितचण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने सचेलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येच्छवानुगमने च शुनश्च यदुपहन्यादित्येके उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणाञ्चानतिभोग एकेऽप्रदत्तानामधः शय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्वे न मार्जयेरन्न मांसं भक्षयेयुराप्रदानात् प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमनवमेषूदकक्रिया वाससाञ्च त्यागः अन्त्ये त्वन्त्यानाम् ॥४॥

पतित, चाण्डाल, सूतिका, रजस्वला, शव का स्पर्श करने वाले, और शव का स्पर्श करने वाले का स्पर्श करने वाले का स्पर्श करके वस्त्रों सहित जल में स्नान करने से शुद्धि होती है, और शव के पीछे चलने पर भी इसी प्रकार से शुद्धि होती है। कुछ का मत है कि कुत्ते को मारकर भी इसी प्रकार शौच होता है। यदि चूड़ाकर्म के पश्चात् बालक मर जाए तो सपिण्डों के द्वारा उसके लिये जलदान किया जाता है। इस काल में स्त्रियों का अतिभोग वर्जित है। कुछ का मत है कि जिन कन्याओं का अभी विवाह नहीं हुआ है, उनके मर

जाने पर भी उनके लिये जलदान का विधान है। उनके जल देने वाले वे सब जल देने तक धरती पर सोएं और बैठे, ब्रह्मचर्य का पालन करें, सफाई न करें और न मांस खाएं। जलदान की क्रिया पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें अथवा नौवें दिन होती है, और वस्त्रों का त्याग होता है। शूद्रों का यह कर्म अन्तिम दिन होता है।

दन्तजन्मादि मातापितृभ्यां तूष्णीं माता बालदेशान्तरित-प्रव्रजितासपिण्डाना सद्य. शौच राज्ञाञ्च कार्यविरोधाद् ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थ स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥५॥

दांत उगने आदि के पश्चात् यदि बालक की मृत्यु हो जाए तो माता और पिता के द्वारा जलदान किया जाता है। माता बिना मन्त्रोच्चारण के चुपचाप जल दे। बच्चे, विदेश में गए हुए, सन्यासी और असपिण्डों की मृत्यु होने पर तुरन्त शुद्धि हो जाती है। राजाओं के कार्य में अवरोध उत्पन्न न हो इस लिये और ब्राह्मण के स्वाध्याय में रुकावट न आए इसलिये तुरन्त शौच हो जाता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः।

पञ्चदशोऽध्यायः।

अथ श्राद्धविवेकवर्णनम्।

अथ श्राद्धममावस्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृतिषु वापरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्वस्मिन् वा द्रव्यदेशब्राह्मण-सन्निधाने वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षेद् गुणसंस्कार-विधिमन्नस्य नवावरान् भोजयेदयुजो यथोत्साह वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् वाग्रूपवयःशीलसम्पन्नान् युवभ्यो-दानं प्रथममेके पितृवन्नच तेन मित्रकर्म कुर्य्यात् ॥१॥

अब श्राद्ध का वर्णन करते हैं। अमावस्या को पितरों को श्राद्ध दे। अथवा मास के दूसरे पक्ष में पञ्चमी आदि तिथियों में श्राद्ध करे। अथवा श्रद्धा के अनुसार सब दिनों में श्राद्ध हो सकता है। अथवा द्रव्य, उचित स्थान और ब्राह्मण जब उपलब्ध हों तभी श्राद्ध का समय निश्चित करे। सामर्थ्य के अनुसार भोजन के गुण और उसे पकाने की विधि को उत्तम बनाए। कम से कम, नौ, अथवा अपने उत्साह के अनुसार विषम संख्या वाले, वाणी, रूप, वय और शील से सम्पन्न वेदपाठी ब्राह्मणों को भोजन कराए। कुछ का मत है

कि पहले युवा ब्राह्मणों को दान दे। उनमें से प्रत्येक को पिता के अनुरूप दान दे और मित्र बनाने की दृष्टि से ऐसा न करे।1

पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ तिलमाषव्रीहियवोदकदानैर्मासं पितरः प्रीणन्ति मत्स्यहरिणरुरुशशकूर्मवराहमेषमांसैः संवत्सराणि गव्यपयःपायसैर्द्वादश वर्षाणि वार्ध्रीणसेन मांसेन कालशाकच्छागलोहखड्गमांसैर्मधुमिश्रैश्चानन्त्यम् ॥२॥

पुत्र के अभाव में सपिण्ड, माता के पक्ष के सपिण्ड और शिष्य श्राद्ध दें। उनके अभाव में ऋत्विज और आचार्य श्राद्ध दें। तिल, उड़द, चावल, जौ और जलों के दान से पितर एक मास तक तृप्त रहते है। मछली, हिरन, रुरु, खरगोश, कछए, सूअर और मेंढे के मांसों से पितर वर्षों तक तृप्त रहते हैं। गऊ के दूध और खीर से पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं। गेंडे के मास से और मधु से मिश्रित कालशाक, बकरे तथा लाल गेंडे के मांसों से पितर अनन्त काल तक के लिये तृप्त हो जाते हैं।

न भोजयेत् स्तेनक्लीबपतितनास्तिकतद्वृत्तिवीरहाग्रे दिधिषुदिधिषुपतिस्त्रीग्रामयाजकाजपालोत्सृष्टाग्निमद्यपकुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपतिर्यस्य च स कुण्डाशी सोमविक्रय्यगारदाही गरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागामिहिंस्रपरिवित्तपरिवेत्तृपर्य्याहितपर्य्याधातृत्यक्तात्मदुर्बलाः कुनखिश्यावदन्तश्वित्रिपौनर्भवकितवाजप्रेष्यप्रातिरूपकशूद्रापतिनिराकृतिकिलासी कुसीदी वणिक्शिल्पोपजीविज्यावादित्रतालनृत्यगीतशीलान् पित्रा चाकामेन विभक्तान् शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च। भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवन्तम्।३।

चोर, नपुंसक, पतित, नास्तिक, नास्तिक से आजीविका प्राप्त करने वाला, अग्न्याधान करके उसे छोड़ देने वाला, वह कँवारा पुरुष जो पहले व्याही हुई स्त्री से विवाह करता है, उस बड़ी कन्या का पति जिस की छोटी बहन का विवाह उस से पहले हो गया है, स्त्रियों को यज्ञ कराने वाला, ग्राम-याजक, भेड़-बकरियां पालने वाला, शराबी, आवारागर्दी करने वाला, झूठी गवाही देने वाला, द्वारपाल, जार, जार रखने वाला, पति के जीवित रहते हुए जो अन्य पुरुष से उत्पन्न हो उसके अन्न को खाने वाला, सोम का विक्रय करने वाला, घर जलाने वाला, विष देने वाला, ब्रह्मचर्य के व्रत को भङ्ग करने वाला, अनेकों का दूत,

अगम्या स्त्री से सभोग करने वाला, हिंसा करने वाला, जिसके छोटे भाई ने उससे पहले विवाह कर लिया हो, बड़े भाई से पहले विवाह करने वाला, वह बडा भाई जिस से पहले छोटे भाई ने अग्न्याधान कर लिया है, वह छोटा भाई जिसने बड़े भाई से पहले अग्न्याधान कर लिया है, माता-पिता और गुरु के द्वारा बिना कारण के छोड़ा हुआ, दुर्बल आत्मा वाला, भद्दे नाखुनों वाला, काले दांतों वाला, श्वेत कुष्ठ वाला, पुनर्भू (वह अक्षत-योनि स्त्री जो पहला पति मर जाने पर दूसरा विवाह करे) का पुत्र, जुआरी, बकरियां चराने वाला, कम तोलने वाला, शूद्रा का पति, पांच महायज्ञों का निराकरण करने वाला, कुष्ठी, ब्याज लेने वाला, व्यापारी, शिल्प से आजिविका कमाने वाला, धनुष की डोरी, बाजे ताल नृत्य और गीत में रुचि रखने वाला, न चाहते हुए पिता के द्वारा जिन को सपत्ति का बटवारा किया गया हो—इन मनुष्यों को श्राद्ध में भोजन न खिलाए। कुछ का मत है कि शिष्यो और सगोत्रों को भी श्राद्ध में भोजन न खिलाए। तीन से अधिक ब्राह्मणों को भोजन खिलाए। अथवा एक गुणवान् ब्राह्मण को।

सद्यःश्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुरीषे मासं नयति पितॄंस्तस्मात्तदहर्ब्रह्मचारी स्यात् श्वचण्डालपतितावेक्षणे दुष्ट तस्मात्परिश्रिते दद्यात्तिलैर्वा किरेत् पङ्क्तिपावनो वा शमयेत् पङ्क्तिपावनाः षडङ्गविज्ज्येष्ठसामिकस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निः स्नातको मन्त्रब्राह्मणविद्धर्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसंतान इति हविःषु चैव दुर्बलादीन् श्राद्ध एवैके श्राद्ध एवैके ॥४॥

जिस ने अभी-अभी श्राद्ध किया है और शूद्रा की शय्या पर उससे संभोग करे, तो वह मास भर के लिये अपने पितरों को उसके मल में डाल देता है। इस लिये उस (श्राद्ध वाले) दिन ब्रह्मचारी रहे। कुत्ते, चाण्डाल और पतित के द्वारा देख लिये जाने पर भोजन दोषयुक्त हो जाता है। इसलिये श्राद्ध सब ओर से घिरेहुए (एकान्त) स्थान में दे, अथवा उसपर तिल बिखेर दे, अथवा पङ्क्तिपावन उसकी शान्ति कराए। ये लोग पङ्क्तिपावन होते हैं—वेदों को छहों अंगों सहित जानने वाला, ज्येष्ठ साम का गान करने वाला, त्रिणाचिकेत (नाचिकेत अग्नि में तीन बार यजन करने वाला), त्रिमधु (मधु वाता इत्यादि ऋग्वेद १.९०.६-८ मन्त्रों को जानने या उनका पाठ करने वाला), त्रिसुपर्ण (ऋग्वेद १०.११४.३-५ मन्त्रों को जानने वाला या उनका पाठ करने वाला), पञ्चाग्नि (अन्वाहार्यपचन अथवा दक्षिण, गार्हपत्य,

आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य नामक पांच अग्नियों को रखने वाला), विद्यास्नान के पश्चात् गृहस्थ बनने वाला, मन्त्र और ब्राह्मण को जानने वाला, धर्म को जानने वाला और वह जिस कुल में वेदाध्यापन की परम्परा है। हविर्यज्ञो में भी पवित्तपावन की इसी प्रकार परीक्षा करनी चाहिये। कुछ का मत है कि दुर्बल आदियों को केवल श्राद्ध में ही भोजन दे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः।

षोडशोऽध्यायः।

अथ अनध्यायवर्णनम्।

श्रवणादिवार्षिकी प्रोष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीत च्छन्दांस्यर्द्ध पञ्चममासान् पञ्च दक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्य्युत्सृष्टलोमा न मांसं भुञ्जीत द्वैमास्यो वा नियमो नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदङ्गगर्ज्जर्त्तिशब्देषु च श्वशृगालगर्दभसंह्लादे लोहितेन्द्रधनुर्नीहारेष्वभ्रदर्शने चानृतौ मूत्रित उच्चारिते निशासन्ध्योदकेषु वर्षति चैके वलीकसन्तान आचार्य्यपरिवेषणे ज्योतिषोश्च ॥२॥

ब्रह्मचारी लोगों को मुण्डवा कर वर्षाकाल में आने वाली श्रावण मास की पूर्णिमा आदि किसी तिथि को अथवा भाद्रपद की पूर्णिमा को उपाकर्म करके साढ़े चार मास तक पांच मास तक अथवा दक्षिणायन में वेदों का अध्ययन करे। मांस न खाए। अथवा यह नियम केवल दो मास के लिये है। दिन में धूलियों को उड़ाने वाली वायु के चलने पर, रात्रि को कानों में शोर सुनाई देने वाली वायु के चलने पर वेदों का अध्ययन न करे। बांसुरी, ढोल, तबले, बादल की गर्जना, और पीडित व्यक्ति की आवाज आने पर, कुत्ते गीदड़ और गधे के द्वारा आवाज करने पर, लोहित इन्द्रधनुष (एक प्रकार के अधूरी आकृति वाले इन्द्रधनुष) और धुन्ध पड़ने पर और ऋतु के बिना मेघ दिखाई देने पर मूत्र और मल का त्याग करके, रात्रि और संध्याओं में जलों के गिरते हुए, कुछ के अनुसार छाए हुए छप्पर के चूते हुए, आचार्य को भोजन परोसे जाने पर और सूर्य और चन्द्र नामक ज्योतियों के प्रकाशकुण्डल से घिरे होने पर वेदों का अध्ययन न करे।

भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामान्तमहापथा-

शौचेषु पूतिगन्धान्तःशवदिवाकीर्त्तिशूद्रसन्निधाने शुक्तके चोद्गारे ऋग्यजुषञ्च सामशब्दे यावदाकालिका निर्घात-भूमिकम्पराहुदर्शनोल्कास्तनयित्नुवर्षविद्युतः प्रादुष्कृता-ग्निष्वनृतौ विद्युति नक्तञ्चापररात्रात्त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमुल्का विद्युत्समेत्येकेषां । स्तनयित्नुरपराह्लेऽपि प्रदोषे सर्व नक्तमर्द्धरात्रादहश्चेत् सज्योतिर्विषयस्थे च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह ॥२॥

डरा हुआ, यान पर बैठा हुआ, शय्यान पर लेटा हुआ, आसन पर आरुढ पांवों वाला वेदों का अध्ययन न करे । श्मशान और ग्राम के निकट, राजमार्ग के पास अशौचों में, दुर्गन्ध से युक्त स्थान पर, ग्राम के अन्दर शव के होने पर, चाण्डाल और शूद्र के सांनिध्य में, और खट्टी डकार आने पर वेदों का अध्ययन न करे । साम गान की आवाज जब तक कानो में पड़े तब तक ऋग्वेद और यजुर्वेद को न पढ़े । अन्तरिक्ष में उत्पातों से उत्पन्न ध्वनि होने पर, भूकम्प आने पर, राहुदर्शन (सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण) होने पर, उल्कापात होने पर, बादल की गड़गड़ाहट में, वर्षा में और बिजली के चमकने पर निमित्त काल से आरम्भ करके अगले दिन उसी समय तक वेदों का अध्ययन न करे । यज्ञों में अग्नि प्रज्वलित होने समय बिना ऋतु के बिजली के चमकने पर वेदों का अध्ययन वर्जित है । रात्रि के समय पिछले भाग में तीसरे पहर से लेकर बिजली मेघ-गर्जन आदि के प्रारम्भ हो जाने पर सारा दिन अनध्याय रहता है । कुछ स्मृतिकारों के मत में उल्का (अनध्याय में) विद्युत् के समान है । यदि मेघों की गड़गड़ाहट अपराह्न में अथवा प्रदोष काल में हो तो सारी रात से अनध्याय रहता है, यदि बादलों की गड़गड़ाहट आधी रात से आरम्भ तो दिन की ज्योति सूर्य के प्रकाश की समाप्ति (साय)तक अनध्याय रहता है । देश के राजा के मर जाने पर और प्रवास से लौटकर जब मित्र आपस में मिलते है तो अनध्याय होता है ।

सङ्कुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहो-रात्रममावास्यायाञ्च द्व्यहं वा कार्त्तिकी फाल्गुन्याषाढी पौर्णमासी तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके अभितो वार्षिकं सर्वे वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसन्निपाते प्रस्यन्दिन्यूर्द्ध्वं भोजना-दुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृतान्नश्राद्धिकसंयोगे

च प्रतिविद्यञ्च यावत् स्मरन्ति प्रतिविद्यञ्च यावत् स्मरन्ति ॥३॥

जनसमर्द में, प्रारम्भ किये हुए वेद की समाप्ति पर, वमन आने पर, श्राद्ध में, अतिथियज्ञ मे और विशेष भोजनों के अवसर पर एक दिन-रात का अनध्याय होता है और अमावस्या पर भी, अथवा दो दिन का। कार्त्तिक, फाल्गुन और अषाढ़ की पौर्णमासी को दो दिन-रात का। तीनों अष्टकाओं पर तीन रातों का। कुछ का मत है कि अन्तिम अष्टमी पर का अनध्याय होता है। सबके अनुसार वर्षाकाल के आदि और अन्त में अनध्याय रहे। वर्षा, बिजली, मेघ-गर्जना होने और बूंदे पड़ने पर सर्वसम्मत अनध्याय होता है। भोजन के पश्चात् उत्सव में अनध्याय होता है। कुछ का मत है कि वेदाध्ययन आरंभ करने वाले का रात्रि में नित्य चार मुहूर्त का अनध्याय है। नगर में और मन के अपवित्र होने पर वेद को न पढ़े। श्राद्ध करने वालो का और कच्चे अन्न से दिये जाने वाले श्राद्ध के योग मे आकालिक (निमित्त काल मे आरम्भ करके अगले दिन उसी समय तक) अनध्याय होता है। और जब तक पढ़े हुए को स्मरण करते है तब तक अनध्याय रहता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः।

अथ भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम्।

प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत प्रतिगृह्णीयाच्चैधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनयानपयोदधिधानाशफरीप्रियङ्गुस्रङ्मार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषा पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यवृत्तिश्चेन्नान्तरेण शूद्रात् पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसङ्गतकारपितृपरिचारका भोज्यान्ना वणिक् चाशिल्पी नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नंम् ॥१॥

ब्राह्मण अपने कर्मों में प्रशस्त सभी द्विजों के हाथ का खाए और सबके ईंधन, जल, भूसा, मूल, फल, मधु, बिना भय के दी हुई शय्या, आसन, यान, दूध, दही, अन्न, मछली, कांगुनी, माला, जंगली पशुओं से मिलने वाली वस्तुओं और शाकों को बिना मना किये स्वीकार करे। यदि उसने ब्राह्मण की वृत्ति से इतर वृत्ति अपना ली है तो भी पितरों, देवताओं, बड़ों और आश्रितों के भरण-पोषण के लिये शूद्र को भी न छोड़कर सब का दिया हुआ स्वीकार करे। पशु चाहने वाले, खेतों को जोतने वाले परिवार से संगति रखने वाले

और पिता के सेवक—ये सब भोजन के योग्य अन्न वाले होते है। व्यापारी भी, शिल्पी को छोड़कर, भोजन के योग्य अन्न वाला होता है। केशों और कीड़ों स युक्त अन्न नित्य ही भोजन के अयोग्य होता है।

रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतं भ्रूणघ्नप्रेक्षितं गवोपघ्रातं भावदुष्टं शुक्त केवलमदधि पुनः सिद्धं पर्युषितमशाकभक्ष्यस्नेहमांसमधून्युत्सृष्टपुंश्चल्यभिशस्तानपदेश्यदण्डिकतक्षकदर्यबन्धनिकचिकित्सकमृगयुकारूच्छिष्टभोजिगणविद्विषाणामपाङ्क्त्यानां प्राग्दुर्बलाद् वृथान्नाचमनोत्थानव्यपेतानि समासमाभ्यां विषमसमं पूजान्तरानर्चितञ्च ॥२॥

रजस्वला के द्वारा छुया हुआ, कौए के द्वारा जूटा किया हुआ, पांवों से ठुकराया हुआ, ब्रह्मघाती के द्वारा देखा हुआ, गाय के द्वारा सूंघा हुआ, विचारों से दूषित, केवल दही को छोड़कर खट्टा, दोबारा पकाया हुआ और शाक, खाद्यतेलों, मांस तथा मधु को छोड़कर बासी भोजन खाने के योग्य नहीं होता। परित्यक्त, व्यभिचारिणी स्त्री, निन्दित, जिसका नाम लेना भी अच्छा नही समझा जाता, जो राजा के द्वारा दण्ड के अधिकार में नियुक्त है। बढ़ई, कंजूस, जलर, चिकित्सक, शिकारी, शिल्पी, उच्छिष्ट भोजी, गणों से शत्रुता रखने वाला और जो ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठकर भोजन के योग्य नही है—इन सब का भोजन खाने के योग्य नहीं है। कुटुम्ब के दुर्बल व्यक्तियों से पूर्व न खाए। जो अन्न देवताओ को नहीं दिया गया और जो अन्न आचमन और उत्थान से रहित है, वे भी खाने के योग्य नही है। घटिया भोजन को बढ़िया भोजन के साथ और बढ़िया को घटिया के साथ मिलाकर न खाए। जिस भोजन को देवपूजा के अन्दर पूजा नही गया है उसे भी न खाए।

गोश्च क्षीरमनिर्दशाया. सूतके चाजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफञ्च स्यन्दिनीयमसूसन्धिनीनाञ्च याश्च व्यपेतवत्साः ॥३॥

गऊ का दूध, जब तक उसे प्रसूता हुए दस दिन न बीत जाएं, नहीं पीना चाहिये। इस प्रकार बकरी और भैंस के सूतक (प्रसव काल) में उनका दूध नही पीना चाहिये। भेड़, ऊंटनी और एक शफ वाले पशु का दूध नित्य ही अपेय है। थनों से चूते हुए दूध वाली, जोड़े को जन्म देने वाली और ऋतुमती तथा बछड़ों से हीन गऊओं का दूध पीने के योग्य नहीं होता।

पञ्चनखाश्चाशल्यकशशश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपा उभयतोदत्केयलोमैकशफकलविङ्कप्लवचक्रवाकहंसा काककङ्कगृध्रश्येना जलजा रक्तपादतुण्डा ग्राम्यकुक्कुटशूकरौ धेन्वनडुहौ चापन्नदावसन्नवृथामासानि किसलयक्याकुलशुननिर्यासलोहिता व्रश्चनाःनिचुदा रुवकवलाकटिट्टिभमान्धातृनक्तञ्चरा अभक्ष्याः ॥४॥

सेह, शशा, श्वाविद्, गोह, गेंडे और कछुए को छोड़कर अन्य पञ्चनख खाने के योग्य नहीं हैं। दोनो दन्त पंक्तियों वाले, केशों वाले लोम हीन एक शफ वाले, कलविङ्क नामक चिड़िया, एक प्रकार की बत्तख, चकवा और हंस पक्षी, कौआ, कङ्क, गीध और श्येन, जल में उत्पन्न होने वाले पक्षी, लाल पैरो और चोंचों वाले पक्षी, गाँव के मुरगे और सूअर, गाय और बैल, मरे हुए, अग्नि में जले हुए पशु और देवता को न चढ़ाए हुए मांस, शाखा के अग्र भाग के नए कोमल पत्ते, खुम्म, लहसन, गोंद, वृक्षों से निकलने वाले लाल रस, काठवढ़इया, सारस, बगला, टिट्टिभ, मान्धाता और रात को उड़ने वाले पक्षी अभक्ष्य है।

भक्ष्या प्रतुदा विष्किरा जालपादा मत्स्याश्चाविकृता वध्याश्च धर्मार्थेऽव्यालहता दृष्टदोषवाक्प्रशस्तान्यभ्युक्ष्योपयुञ्जीतोपयुञ्जीत ॥५॥

चोंच से तोड़ कर खाने वाले, नाखूनों से बिखेर कर खाने वाले, जाल के आकार के पांवो वाले, अविकृत मछलियां, जो धर्म के लिये वध के योग्य है, जो सर्प आदि विषैले जन्तुओं से नहीं मारे गए है भक्ष्य हैं। जिनमें कोई दोष दिखाई दे पर वाणी से जिनकी प्रशंसा की गई है (अर्थात् जिन्हे भक्ष्य बताया गया हो) उन्हें जल का छींटा देकर काम मे लावे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः।

अष्टादशोऽध्यायः।

अथ स्त्रीषु ऋतुकाले सहवासप्रकरणम्।

अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री नातिचरेद्भर्तारं वाक्चक्षुःकर्मसंयता पतिरपत्यलिप्सुर्देवराद्गुरुप्रसूतान्नर्त्तुमतीयात् पिण्डगोत्रऋषिसम्बन्धिभ्यो योनिमात्राद्वा नादेवरादित्येके नातिद्वितीयं जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्तस्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव ॥१॥

धर्म के विषय में स्त्री स्वतन्त्र नहीं है। वह पति का उल्लङ्घन न करे। वह वाणी चक्षु आदि इन्द्रियों और कर्म के विषय में संयम रखे। यदि पति नहीं है और सन्तान चाहती है तो श्वशुर आदि गुरुजनों से उत्पन्न देवर से सन्तान की कामना करे। अपने ऋतुकाल को व्यर्थ न गँवाए। देवर के अभाव में पिण्ड, गोत्र, प्रवर के सम्बन्धियों से अथवा योनिमात्र के सम्बन्धी से सन्तान उत्पन्न करे। कुछ का मत है कि देवर को छोड़कर किसी अन्य से न करे। वह एक के पश्चात् दूसरी बार ऐसा न करे (अर्थात् नियोग से केवल सन्तान उत्पन्न कर सकती है)। यदि कोई समय न किया गया हो तो सन्तान उत्पन्न करने वाले की ही है। यदि पति जीवित है तो वह क्षेत्री की है। यदि पत्नी से किसी अन्य ने सन्तान उत्पन्न की है तो वह उस जनक की ही है, अथवा दोनों की है। अथवा रक्षण (पालन-पोषण) के कारण वह पति की ही है।

नष्टे भर्त्तरि षाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽभिगमनं प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसङ्गात्तस्य द्वादशवर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासम्बन्धे भ्रातरि चैव ज्यायसि यवीयान् कन्याग्न्युपयमेषु षडित्येके ॥२॥

यदि पति भाग जाए तो छः वर्ष तक पत्नी संयम रखे। उसका पता चलने पर उसके पास चली जाए। यदि उसने सन्यास ले लिया है तो उसको सभी प्रसंगों से निवृत्त होकर अपने ऊपर संयम रखना चाहिये। विद्या के प्रयोजन से गए हुए ब्राह्मण के लिये यह कालावधि बारह वर्ष की है। बड़े भाई के इस प्रकार बाहर रह जाने पर छोटा भाई इस अवधि के बाद कन्यादान, अग्न्याधान और विवाह कर सकता है। कुछ का मत है कि यह कालावधि छः वर्ष की है।

त्रीन् कुमार्य्यृतूनतीत्य स्वयं युज्येतानिन्दितेनोत्सृज्य पित्र्यानलङ्कारान् प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन् दोषी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके ॥३॥

कन्या तीन रजोदर्शन के पश्चात् पिता द्वारा दिये अलंकारों को उसे लौटाकर स्वयं किसी अनिन्दित पति को प्राप्त कर ले। कन्या का विवाह कन्या के रजस्वला होने से पहले होना चाहिये। जो इससे पूर्व कन्यादान नहीं करता वह दोषी होता है। कुछ का मत है कि वस्त्रों को धारण करने के ज्ञान से पूर्व कन्या का जो विवाह नहीं करता वह दोष का भागी होता है।

द्रव्यादान विवाहसिद्ध्यर्थं धर्मतन्त्रसंयोगे च शूद्रादन्यत्रापि शूद्राद्बहुपशोर्हीनकर्मण. शतगोरनाहिताग्नेः सहस्रगोश्चा सोमपात् सप्तमीञ्चाभुक्त्वा निचयायाप्यहीनकर्मभ्य आचक्षीत राज्ञा पृष्टस्तेन हि भर्तव्यः श्रुतशीलसम्पन्नश्चेद्ध-र्मतन्त्रपीडायां तस्याकरणे दोषो दोष. ॥

विवाह की सिद्धि के लिये और धार्मिक कृत्यों के संयोजन मे शूद्र से और शूद्र के अतिरिक्त अन्य जनो से द्रव्य का आदान करे। बहुत पशुओं वाले कर्म से हीन जन से, सौ गऊओं के स्वामी किन्तु अग्नि का आधान न करने वाले से, सोमपान न करने वाले हजार गउओं के स्वामी से दिन की सातवीं घड़ी तक भोजन किये बिना द्रव्य का आदान करे। उत्तम कर्म वालों से संचय के लिये भी धन का प्रतिग्रह करे। राजा के द्वारा पूछे जाने पर वह सब कुछ सच-सच उसे बता दे। यदि वह ज्ञान और शील से सम्पन्न है तो उस राजा के द्वारा ही भरण-पोषण के योग्य है। ब्राह्मण के धर्मकार्यों मे बाधा उत्पन्न होने पर यदि राजा उसका निराकरण नही करता तो वह दोष का भागी होता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः।

एकोनविंशोऽध्यायः।

अथ प्रतिषिद्धसेवने प्रायश्चितमीमांसावर्णनम्।

उक्तो वर्णधर्मश्चाश्रमधर्मश्चाथ खल्वयं पुरुषो येन कर्मणा लिप्यतेऽथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवद्यवदनं शिष्ट-स्याक्रिया प्रतिषिद्धसेवनमिति च तत्र प्रायश्चित्तं कुर्य्यान्न कुर्य्यादिति मीमासन्ते। न कुर्य्यादित्याहुर्नहि कर्म क्षीयत इति कुर्य्यादित्यपरे पुनस्तोमेनेष्ट्वा पुनः सवनमायातीति विज्ञायते व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा तरति सर्व पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजतेग्निष्टुताभिशस्यमान याजयेदिति च ॥१॥

वर्णधर्म का प्रवचन हो गया और आश्रम धर्म का प्रवचन भी हो गया। अब निश्चय यह पुरुष जिस कर्म से लिप्त होता है—जैसे यह यजन के अयोग्य जन को यज्ञ कराना, अभक्ष्य का भक्षण, अकथनीय वचनों का कथन करना, उत्तम क्रियाओ को न करना, प्रतिषिद्ध कर्मों का सेवन करना इत्यादि—इन के विषय में प्रायश्चित्त करे या न करे, इसकी स्मृतिकार मीमांसा करते हैं। कुछ कहते हैं कि प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिये, क्योंकि कर्म का क्षय नहीं

होता। अन्य कहते है कि प्रायश्चित्त करना चाहिये क्योंकि पुनः स्तोम यज्ञ के द्वारा यजन करके पुनः सवन का अधिकारी हो जाता है, ऐसा माना जाता है। व्रात्यस्तोम से यजन करके सब पापों को तर जाता है। जो अश्वमेध से यजन करता है, वह ब्रह्महत्या को तर जाता है। और जिसे शाप लगा हो उसे अग्निष्टुत् यज्ञ कराए।

तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुपनिषदो वेदान्ताः सर्वच्छन्दःसु संहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजतरौहिणे सामनो बृहद्रथन्तरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्य ज्येष्ठसाम्नामन्यतमद्बहिष्पवमानं कूष्माण्डानि पावमान्यः सावित्री चेति पावमानानि ॥२॥

उस पापी मनुष्य के पापकर्म के बदले में किये जाने वाले कर्म ये हैं— जप, तप, होम, उपवास, दान, उपनिषदें, वेदान्त, सब वेदों की संहिताएं, मधु ऋचाएं, अघमर्षण, अथर्वशिर, शतरुद्रिय, पुरुषसूक्त, राजत और रौहिण साम, बृहत् और रथन्तर साम, पुरुषगति, महानाम्नी, महावैराज, महादिवाकीर्त्य, ज्येष्ठ सामों में से कोई सी एक, बहिष्पवमान, कूष्माण्ड, पावमान्य मन्त्र, और सावित्री, ये सब पवित्र करने वाली हैं।

पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति च मेध्यानि। सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थानि ऋषिनिवासगोष्ठपरिस्कन्धा इति देशाः। ब्रह्मचर्य्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताधःशायिताऽनाशक इति तपांसि ॥३॥

दूध से व्रत करना, साग खाकर रहना, फलाहार करना, प्रसृति भर जौ से निर्वाह करना, सोना चाटकर रहना, घी खाकर निर्वाह करना, और सोम का पान करना—ये पाप-नाशक कर्म हैं। सभी पर्वत, सारी नदियां, पवित्र ताल, तीर्थ, ऋषियों के निवास, गउओं के ठहरने के स्थान और देवालय—ये सब पापनाशक स्थान हैं। ब्रह्मचर्य, सच बोलना, सवनों में स्नान, गीले वस्त्रों को धारण करना, धरती पर शयन करना, भोजन का लंघन करना—ये तप हैं।

हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिला घृतमन्नमिति देयानि। संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो

द्वादशाहः षडहस्त्र्यहोरात्र इति कालाः । एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन् । एनःसु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तं सर्वप्रायश्चित्तम् ॥४॥

सुवर्ण, गऊ, वस्त्र, घोड़ा, भूमि, तिल, घी, और अन्न—ये दान के योग्य पदार्थ है । वर्ष, छः मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, चौबीस दिन, बारह दिन, छः दिन, तीन दिन और एक दिन-रात—ये प्रायश्चित, व्रत आदि के समय है। शास्त्र का आदेश न होने पर भी लोग इन को विकल्प से करें। बड़े पापों में बड़े प्रायश्चित्तो को, छोटों में छोटों को कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, चान्द्रायण इत्यादि सब प्रकार के प्रायश्चितो को करें ।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ।

विंशतितमोऽध्यायः ।

अथ विविधपापानां कर्मविपाकवर्णनम् ।

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि लक्षणानि भवन्ति ब्रह्महार्द्रकुष्ठी सुरापः श्यावदोन्तो गुरुतल्पगः पङ्गुः स्वर्णहारी कुनखी श्वित्री वस्त्रापहारी हिरण्यहारी दर्दुरी तेजोऽपहारी मण्डली स्नेहापहारी क्षयी तथाजीर्णवानन्नापहारी ज्ञानापहारी मूकः ॥१॥

चौसठ यातनाओ के स्थानों में यातनाओं को भोगकर पापी मनुष्य इन लक्षणों के साथ उत्पन्न होता है—ब्राह्मण का हत्यारा अगले जन्म मे आर्द्र-कुष्ठी बनता है, सुरापान करने वाला काले दांतों वाला, गुरुपत्नी से सभोग करने वाला लंगड़ा, सोना चुराने वाला भद्दे नाखूनों वाला, वस्त्रों की चोरी करने वाला श्वेतकुष्ठी, सुवर्ण चुराने वाला शरीर पर उभरे मेंढ़क के चिह्नों वाला, अग्नि चुराने वाला शरीर पर बने गोल चकत्तो (दादों) वाला, चिकने पदार्थ चुराने वाला क्षयरोगी, अन्न चुराने वाला अपच का रोगी, ज्ञान चुराने वाला गूंगा ।

प्रतिहन्ता गुरोरपस्मारी गोघ्नो जात्यन्धः पिशुनः पूतिनासः पूतिवक्त्रस्तु सूचकः शूद्रोपाध्यायः श्वपाकस्त्रपुसीसचामरविक्रयी मद्यप एकशफविक्रयी मृगव्याधः कुण्डाशी भृतकश्चैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिको रङ्गोपजीव्यभक्ष्यभक्षी

गण्डरी ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः पिण्डित. षण्डो महा-
पथिको गण्डिकश्चण्डालीपुक्कसीगोष्ववकीर्णी मध्वामेही
॥२॥

गुरु की हत्या करने वाला मिरगी का रोगी, गऊ की हत्या करने वाला जन्म से अन्धा, चुगलखोर नाक से दुर्गन्ध छोड़ने वाला, सूचक मुख से दुर्गन्ध छोड़ने वाला, शूद्रों को पढ़ाने वाला चाण्डाल, त्रपु सीसा और चँवर बेचने वाला मद्य का सेवन करने वाला, एक शफ वाले पशुओं को बेचने वाला शिकारी, पति के जीते जार से उत्पन्न के अन्न को खाने वाला दास अथवा भिक्षु, ज्योतिषी फोड़ों का रोगी, नास्तिक नट की आजीविका करने वाला, अभक्ष्य का भक्षण करने वाला गण्ड-माला रोगी, वेद और मनुष्यो के चोरों का मार्गदर्शक नितान्त नपुंसक, लम्बी यात्राएं करने वाला गण्डमाला रोगी और चण्डाली, पुक्कसी और गउओं में अपने वीर्य को नष्ट करने वाला मधु-मेह का रोगी बनता है।

धर्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्तकः खल्वाटः सगोत्रासमयस्त्र्यभि-
गामी श्लीपदी पितृमातृभगिनीस्त्र्यभिगाम्यवीजितस्तेषां
कुब्जकुण्ठमन्दव्याधितव्यङ्गदरिद्राल्पायुषोऽल्पबुद्धयश्चण्डषण्ड-
शैलूषतस्करपरपुरुषप्रेष्यपरकर्मकराः खल्वाटचक्राङ्गसङ्कीर्णाः
क्रूरकर्माणः क्रमशश्चान्त्याश्चोपपद्यन्ते तस्मात् कर्तव्यमेवेह
प्रायश्चित्त विशुद्धैर्लक्षणैर्जायन्ते धर्मस्य धारणादिति धर्मस्य
धारणादिति ॥३॥

अपनी धर्मपत्नियों के साथ दूसरो से मैथुन कराने वाला अगले जन्म में गंजा होता है। अपने गोत्र की स्त्री और असमय में अपनी स्त्री से संभोग करने वाला हाथी जैसे पाँव वाला तथा बुआ, मासी और अन्य स्त्रियों से संभोग करने वाला निर्वीर्य हो जाता है। उनका अगला जन्म कुबड़े, मूर्ख, मन्द, रोगी, विकलाङ्ग, दरिद्र, अल्पायु, अल्पबुद्धि जनो के रूप में होता है। क्रोधी, हीजड़े, नट, चोर, दूसरों मनुष्यों के दास, दूसरों के सेवक, गंजे, चकवे, वर्णसकर से युक्त, क्रूरकर्मी और क्रमशः नीच जाति में उत्पन्न होते हैं। इस लिये इस लोक में प्रायश्चित्त करना ही चाहिये। प्रायश्चित्त करने वाले धर्म को धारण करने के कारण विशुद्ध लक्षणों के साथ उत्पन्न होते हैं।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः।

एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथ सर्वपातकेषु शान्तिवर्णनम् ।

त्यजेत् पितरं राजघातकं शूद्रयाजकं वेदविप्लावकं भ्रूणहनं यश्चान्त्यावसायिभिः सह संवसेदन्त्यावसायिन्या वा तस्य विद्यागुरून् योनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युः पात्रञ्चास्य विपर्य्यस्येयुः । दासः कर्मकरो वावकरादमेध्यपात्रमानीय दासीघटात्पूरयित्वा दक्षिणामुख. पदा विपर्य्यस्येदमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिसम्बन्धाश्च वीक्षेरन्नप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशन्ति । अत ऊर्द्ध्वं तेन सम्भाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन् सावित्रीमज्ञानपूर्व ज्ञानपूर्वञ्चेत्त्रिरात्रम् ॥१॥

राजा के हत्यारे, शूद्र को यज्ञ कराने वाले, वेद-निन्दक और ब्रह्मघातक पिता को छोड़ दे। जो मनुष्य नीच जाति के मनुष्यों के साथ अथवा नीच जाति की स्त्री के साथ वास करे, उसके विद्या देने वाले गुरुओं और सगे-सम्बन्धियों को इकट्ठा करके सब जल आदि प्रेत-क्रियाओं को करें और उसके लिये जल-पात्र को उलट दें। दास अथवा सेवक कूड़े के स्थान से अपवित्र पात्र को लाए, दासी के घड़े के जल से भरकर और दक्षिण की ओर मुँह करके अमुम् अनुदकं करोमि (अमुक को जल से हीन करता हूं)—यह मन्त्र पढ़कर नाम लेकर उसे पांव से उलट दे। प्राचीनावीती होकर और चोटियां खोलकर सब उसका हाथ से स्पर्श करें। विद्यागुरु और सगे-सम्बन्धी उसे देखें। तत्पश्चात् जलों से आचमन करके ग्राम में प्रवेश करते हैं। उसके पश्चात् अगर कोई उससे अनजाने में बोले तो वह एक रात भर गायत्री का जप करता हुआ खड़ा रहे, और अगर कोई जान-बूझ कर बोले तो तीन रात तक।

यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्ध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यतमाद्ध्रदात् पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा त एनमप उपस्पर्शयेयुः । अथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत् सम्प्रतिगृह्य जपेच्छान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं शिवमन्तरीक्षं

यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभिस्तर-त्समन्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्याद् गामाचार्य्याय ॥२॥

और जो प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध हो जाए, उसके शुद्ध हो जाने पर सुवर्णमय पात्र को अत्यन्त पवित्र जलाशय से अथवा नदियों से भरकर लाएं और उसे उस जल से स्नान कराएं। तत्पश्चात् उसको वह पात्र देवें। उसे लेकर वह—शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं शिवमन्तरीक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामि, तथा पावमानी, तरत्समन्दी और कूष्माण्ड आदि यजु मन्त्रों से जप करे। घी की आहुतियां दे, अथवा ब्राह्मण को सोना दान करे, आचार्य को गऊ दे।

यस्य तु प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्ध्येत्तस्य सर्वाण्यु-दकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्य्युरेतदेव शान्त्युदक सर्वेषूपपातकेषु सर्वेषूपपातकेषु ॥३॥

जिसका आजीवन चलने वाला प्रायश्चित्त है वह मरकर ही शुद्ध होता है। उसके लिये जलदान आदि सब प्रेतक्रियाओं को करें। सभी उपपातकों में यही जल-क्रिया शान्ति के लिये है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकविंशतितमोऽध्यायः।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

अथ निषिद्धकर्मणां जन्मान्तरे विपाकवर्णनम्

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसम्बन्धगस्तेन नास्तिक-निन्दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः पातक-संयोजकाश्च तैश्चाब्दं समाचरन्। द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेके नरकं त्रीणि प्रथमान्यनिर्दे-श्यानि मनुर्न स्त्रीष्वगुरुतल्पगः पततीत्येके भ्रूणहनि ॥१॥

ब्राह्मण-घातक, सुरापान करने वाले, गुरु की पत्नी से संभोग करने वाले, माता और पिता के पक्ष की स्त्रियों से सभोग करने वाले, चोर, नास्तिक, निन्दित कर्मों को बार-बार करने वाले, पतित का त्याग न करने वाले, अपतित का त्याग करने वाले और जो दूसरों को पातकों में लगाने वाले होते हैं, वे पतित होते है। जो मनुष्य उनके साथ एक वर्ष तक आचरण करता है वह भी पतित हो जाता है। द्विज-कर्मों की हानि और परलोक की असिद्धि ही पतन है। कुछ के मत में यही नरक है। पहले तीन कर्मों (ब्रह्म-हत्या, सुरापान,

गुरु-पत्नी से संभोग) के लिये प्रायश्चित्त का निर्देश नहीं है, यह मनु का मत है। परस्त्री-गमन आदि के विषय में ऐसा नहीं है। कुछ का मत है कि गुरु-पत्नी से संभोग न करने वाला मनुष्य भी भ्रूण-हत्या करने पर पतित हो जाता है।

हीनवर्णसेवायाञ्च स्त्री पतति कौटसाक्ष्यं राजगामिपैशुनं गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि अपाङ्क्त्यानां प्राग्दुर्बलात् ॥२॥

हीन वर्ण की सेवा करने पर स्त्री पतित हो जाती है। झूठी साक्षी, राजा के विषय मे चुगलखोरी और गुरु की झूठी निन्दा ये दुष्कर्म भी महापातकों के समान हैं। पंक्ति के अयोग्य ब्राह्मणों को दुर्बल असहाय जनों से पूर्व भोजन देना भी महापातकों के समान है।

गोहन्तृब्रह्मोज्झतन्मन्त्रकृदवकीर्णिपतितसावित्रीकेषूपपातकं याजनाध्यापनादृत्विगाचार्यौ पतनीयसेवायाञ्च हेयावन्यत्र हानात् पतति तस्य च प्रतिग्रहीतेत्येके न कर्हिचिन्माता-पित्रोरवृत्तिर्दायन्तु न भजेरन् ॥३॥

गोहत्यारे, वेद का त्याग करने वाले, ऐसे जन से विचार-विमर्श करने वाले, वीर्य को नष्ट करने वाले और पतित हुई सावित्री वाले मनुष्यों को उपपातक लगता है। ऐसे उपपातकी को यज्ञ कराने वाले और पढ़ाने वाले तथा पतन के योग्य मनुष्य की सेवा में रत ऋत्विज और आचार्य परित्याग के योग्य हैं। जो परित्याग नहीं करता वह स्वयं पतित हो जाता है। कुछ का मत है कि ऐसे मनुष्य का प्रतिग्रह करने वाला भी पतित हो जाता है। परन्तु ऐसे पुत्रों से माता-पिता की आजीविका का निषेध नहीं है, पर ऐसे पुत्र उनकी सम्पत्ति के भागी नहीं हो सकते।

ब्राह्मणाभिशंसने दोषस्तावान् द्विरनेनसि दुर्बलहिंसायामपि मोचने शक्तश्चेत्। अभिक्रुद्ध्यावगोरणं ब्राह्मणस्य वर्षशत-मस्वर्ग्यं निर्घाते सहस्रं लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कन्द्य पांशून् संगृह्णीयात् संगृह्णीयात् ॥४॥

ब्राह्मण की निन्दा करने में समान दोष है। यदि ब्राह्मण निर्दोष है तो उससे दुगना पाप लगता है। यदि कोई दुर्बल की हिंसा करे और छुड़ाने की शक्ति रखते हुए भी वह उसे न छुड़ाए, तो भी दुगना पाप लगता है। क्रोध में

आकर ब्राह्मण पर डंडा उठाने से एक सौ वर्ष के नरक की प्राप्ति होती है, चोट करने पर एक हजार वर्ष के नरक की प्राप्ति होती है। यदि खून निकल आए तो वह धरती पर गिरकर जितने धूलि कणों को इकट्ठा कर लेता है, उतने ही वर्षों तक के लिये नरक की प्राप्ति होती है।

इति गौतमीयेधर्मशास्त्रे द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

अथ प्रायश्चितवर्णनम्।

प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरनाच्छादितस्य लक्ष्यं वा स्याज्जन्ये शस्त्रभृताम्। खट्वाङ्गकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भैक्षाय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्माचक्षाणः पथोपक्रामेत् संदर्शनादार्यस्य स्थानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्शी शुध्येत् प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये वा त्र्यवरं प्रति राज्ञोऽश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञेऽप्यग्निष्टुदन्तश्चोत्सृष्टश्चेद् ब्राह्मणवधे। हत्वापि आत्रेय्याश्चैवं गर्भे चाविज्ञाते वा ॥१॥

ब्राह्मण के हत्यारे का प्रायश्चित्त अपने शरीर को आच्छादित किये बिना अग्नि में तीन बार प्रवेश है। अथवा वह युद्ध में शस्त्रधारियों का लक्ष्य बने। अथवा वह खाट की बाही और कपाल को हाथ में लेकर बारह वर्षों तक ब्रह्मचारी बना हुआ अपने पाप-कर्म की घोषणा करता हुआ भिक्षा के लिये ग्राम में प्रवेश करे। सज्जन पुरुष की दृष्टि से बचने के लिये मार्ग से हट जाए। इस प्रकार सवनों में जल का स्पर्श करने वाला वह विहार करता हुआ स्नान आसन आदि के द्वारा शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण का धन छीने जाने पर यदि वह धनापहारक नीच व्यक्ति का तीन बार प्रतिरोध करे, भले ही धन न लौटा सके, अथवा प्रतिरोध करने पर एक ही बार में धन वापस दिला दे, अथवा धन वापस न दिला सकने की स्थिति में अपने पास से जीवन निर्वाह के निमित्त उसे धन दे दे और इस प्रकार उस ब्राह्मण के प्राण बचा दे, तो वह ब्रह्महत्या के पाप से छूटजाता है। राजा के अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान करके अथवा अग्निष्टुत् आदि किसी अन्य यज्ञ से यजन करके ब्राह्मणवध से प्राप्त पाप से छूट जाता है। रजस्वला स्त्री की हत्या करके और इसी प्रकार से जाने अथवा अनजाने में गर्भ की हत्या करके इसी विधि से पाप से मुक्त हो जाता है।

ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं ऋषभैक-सहस्राश्च गा दद्यात्। वैश्ये त्रैवार्षिकं ऋषभैकशताश्च गा दद्यादनात्रेय्याञ्चैवं गाञ्च। वैश्यवन्मण्डूकनकुलकाक-विवरचरमूषिकाश्च। हिंसासु चास्थिमतां सहस्रं हत्वान-स्थिमतामनडुद्भारे च। अपि वास्थिमतामेकैकस्मिन् किञ्चित् किञ्चिद्दद्यात् ॥२॥

क्षत्रिय का वध करने पर ब्राह्मण के लिये छः वर्ष का साधारण ब्रह्मचर्य कहा गया है। वह एक वृषभ के साथ एक हजार गउए दान में दे। वैश्य का वध होने पर तीन वर्ष का ब्रह्मचर्य, और एक वृषभ के साथ सौ गउएं दान मे दे। शूद्र-वध होने पर एक वर्ष का ब्रह्मचर्य, और एक वृषभ के साथ दस गउएं दान में दे। जो स्त्री रजस्वला नहीं है उसकी हत्या हो जाने पर इसी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करे और गउएं दान में दे। वैश्य की हत्या पर जो प्रायश्चित्त बताया गया है, मेंडक, नेवले, कौए, बिलो में रहने वाले जीवों और चूहों की हत्या होने पर भी वही करे। हड्डी वाले जीवों की हिंसा होने पर, बिना हड्डी वाले एक हजार जीवों को मारकर या एक छकड़ा भर जीवों की हत्या करके यही प्रायश्चित्त करे। अथवा हड्डी वाले जीवो की हत्या करने पर एक-एक हत्या के लिये कुछ-कुछ दान करे।

षण्ढे च पलालभारः सीसमाषश्च वराहे घृत घटः सर्पे लोहदण्डो ब्रह्मबन्ध्वाञ्च ललनायां जीवो वैशिके न किञ्चित्तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गो यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमन्त्रसंयोगे सहस्रवाकश्चेदग्न्युत्सादि-निराकृत्युपपातकेषु चैव स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिण्डं तु लभेत अमानुषीषु गोवर्जं स्त्रीकृते कूष्माण्डैर्घृतहोमो घृतहोमः ॥३॥

नपुंसक को मारकर पुआल का एक भार और माशाभर सीसा, सुअर को मारकर घी का घड़ा, सर्प को मारकर लोहे का डंडा, नीच ब्राह्मण-स्त्री को मारकर कोई जानवर दान में दिया जाता है। वेश्या के भड़वे को मारकर कुछ भी दान में नहीं दिया जाता। शय्या, अन्न और धन के लाभ के लिये की गई हत्याओं में अलग-अलग वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।

पराई स्त्री से सम्बन्ध रखने वाले को मारकर दो वर्ष तक। श्रोत्रिय की स्त्री के साथ सम्बन्ध रखने वाले को मारकर तीन वर्ष तक। यदि उसका धन मिल जाए, तो उस का त्याग करदे, अथवा उसे उचित स्थान पर पहुंचा दे। प्रतिषिद्ध मन्त्र वालों के विषय में यदि कोई मन्त्र के एक हजार पदों का उच्चारण करे तो यज्ञाग्नि को बुझाने वाले और पढ़ी हुई विद्या को भुलाने वाले के उपपातकों में जो प्रायश्चित्त होता है उसी को करे। व्यभिचारिणी स्त्री को बन्द रखा जाए, पर उसे भोजन मिलता रहे। गऊ को छोड़कर अमानुषी स्त्रियों में स्त्री-सम्बन्ध से जो पाप लगता है, उसके प्रायश्चित्त के लिये कूष्माण्ड नामक मन्त्रों से घृतहोम करे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।

अथ प्रायश्चित्तवर्णनम्।

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिञ्चेयुः सुरामास्ये मृतः शुध्येदमत्या पाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रति त्र्यहं तप्तानि स कृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः ॥१॥

सुरापान करने वाले ब्राह्मण के मुँह में गर्म शराब डालें, वह मरकर शुद्ध हो जाता है। अनजाने में सुरापान करने पर वह तीन-तीन दिन के लिये गर्म दूध, घी, जल और वायु का सेवन करे। यही तप्तकृच्छ्र व्रत है। तत्पश्चात् उसका उपनयन संस्कार कर दिया जाए।

मूत्रपुरीषरेतसाञ्च प्राशने श्वापदोष्ट्रखराणाञ्चाङ्गस्य ग्राम्यकुक्कुटशूकरयोश्च गन्धाघ्राणे सुरापस्य प्राणायामा घृतप्राशनञ्च पूर्वैश्च दष्टस्य ॥२॥

मूत्र, मल, वीर्य के खा लेने पर, जंगली शिकारी जानवर, ऊँट, गधे के शरीर का मांस अथवा ग्राम्य मुर्गे और सूअर का मांस खा लेने पर और शराबी के मुँह से गन्ध को सूंघ लेने पर तीन प्राणायाम करे और घी खाए। पूर्वोक्त पशुओं के द्वारा काट खाने पर भी यही प्रायश्चित्त करे।

तप्ते लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत सूर्मीं वा ज्वलन्तीं श्लिष्येल्लिङ्गं वा सवृषणमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीचीं व्रजेदजिह्ममाशरीरनिपातान्मृतः शुध्येत् ॥३॥

गुरु की पत्नी से संभोग करने वाला तपाई हुई लोहे की शय्या पर शयन करे, अथवा आग से लाल की हुई लोह-निर्मित स्त्री की प्रतिमा का आलिंगन करे, अथवा अण्डकोशों सहित लिङ्ग को काटकर और हाथ में लेकर दक्षिण-पश्चिम दिशा में चला जाए, शरीर के नष्ट होने तक निश्छल व्यवहार करता रहे, तत्पश्चात् मरकर शुद्ध होता है।

सखीसयोनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च तल्पसमोऽवकर इत्येके श्वभिरादयेद्राजा हीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशं पुमांसं खादयेद्यथोक्तं वा गर्दभेनावकीर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत् तस्याजिनमूर्ध्वबालं परिधाय लोहितपात्रः सप्त गृहान् भैक्षञ्चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुध्येत् ॥४॥

सखी, सगी बहन, समान गोत्र की स्त्री, शिष्य की पत्नी, पुत्रवधू और गऊ से संभोग करके गुरु पत्नी से संभोग करने पर किये जाने वाले प्रायश्चित्त के समान प्रायश्चित्त करे। कुछ का मत है कि ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग करने पर जो प्रायश्चित्त किया जाता है, उसे करे। यदि स्त्री हीन वर्ण के पुरुष से संभोग कराए तो राजा उसे सबके सामने कुत्तों से खिलवाए, अथवा पुरुष को यथोक्त प्रकार से कुत्तों से खिलवाए। वीर्य को नष्ट करने वाला मनुष्य चौराहे पर गधे से निर्ऋति की पूजा करे। ऊपर खड़े बालों वाली उसकी खाल को ओढ़कर लाल पात्र हाथ मे लेकर सात घरों से अपने दुष्कर्म की घोषणा करता हुआ भिक्षा माँगे। इस प्रकार वर्ष भर करने पर पाप के मुक्त हो जाता है।

रेतःस्कन्दने भये रोगे स्वप्नेऽग्नीन्धनभैक्षचरणानि सप्तरात्रं कृत्वाज्यहोमः साभिसन्धेर्वा रेतस्याभ्यां सूर्याभ्युदिते ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुञ्जानोऽभ्यस्तमिते च रात्रिं जपन् सावित्रीमशुचि दृष्ट्वादित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वाऽभोज्यभोजनेऽमेध्यप्राशने वा निष्पुरीषीभावस्त्रिरात्रावरमभोजनं सप्तरात्रं वा स्वयं शीर्णान्युपभुञ्जानः फलान्यनतिक्रामन् प्राक्पञ्चनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनञ्च ॥५॥

भय के कारण अथवा बीमारी के कारण स्वप्न में वीर्य स्खलित हो जाने पर अग्नि-प्रज्वालन, भिक्षाटन आदि कर्मों को सात दिनों तक करके घी से होम करे। जान-बूझ कर वीर्य स्खलित करने पर इन दो प्रकारों से शुद्धि

होती है। सूर्य के उदित होने पर दिन भर बिना कुछ खाए ब्रह्मचारी खड़ा रहे, और दिन छुप जाने पर रातभर गायत्री का जप करते हुए समय बिताए। किसी भी अपवित्र वस्तु को देखकर प्राणायाम करके सूर्य के दर्शन करे। भोजन के अयोग्य वस्तु को खाकर अथवा अपवित्र वस्तु को खाकर वस्त लेकर पेट साफ करे। कम से कम तीन दिन तक भोजन न करे। अथवा पककर स्वयं गिरे हुए फलों को लेता हुआ सात दिन तक निर्वाह करे। पचनख पशुओं से पूर्व वर्णित अभोज्य का भोजन करने वाले को वमन कराए और घी खिलाए।

आक्रोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परमन्तपः सत्यवाक्ये चेद्वारुणीपावमानीभिर्होमो विवाहमैथुननर्मार्तसंयोगेष्वदोष-मेकेऽनृतं न तु खलु गुर्वर्थेषु यतः सप्त पुरुषानितश्च परतश्च हन्ति मनसापि गुरोरनृत वदन्नल्पेष्वप्यर्थे वन्त्यावसायि-नीगमने कृच्छ्राब्दोऽमत्या द्वादशरात्रमुदक्यागमने त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥६॥

किसी के प्रति चिल्लाने, झूठ बोलने और हिंसा करने में तीन दिन तक कठोर तपस्या करे। यदि ये क्रियाए किसी सत्यभाषी के प्रति की गई हों तो वारुणी और पावमानी ऋचाओं से होम करे। कुछ के मत में विवाह, मैथुन, उपहास और रोगी के लिये झूठ में दोष नहीं है। किन्तु गुरुजनों के कार्यों में कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि छोटे-छोटे कार्यों में भी गुरु से झूठ बोलने से पहली और पिछली सात पीढ़ियां नष्ट हो जाती हैं। नीच जाति की स्त्री से संभोग करने पर एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे। अनजाने में कर लेने पर बारह दिन तक यह व्रत करे। रजस्वला से गमन करने पर तीन दिन तक कृच्छ्र व्रत करे।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

अथ रहस्यप्रायश्चित्तवर्णनम्।

रहस्यं प्राश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ऋचं तरत्समन्दी-त्यप्सु जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वाऽभोज्यं बुभुक्षमाणः पृथिवीमावपेदृत्वन्तरारमण उदकोपस्पर्शनाच्छु-द्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमद्भि-स्तृतीयं दिवादिष्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासा लोमानि नखानि

त्वचं मांसं शोणित स्नाय्वस्थिमज्जानमिति होम आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमीत्यन्ततः। सर्वेषामेतत् प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्यायाः ॥१॥

अविज्ञात दोष वाले जन के लिये रहस्य प्रायश्चित्त का विधान है। वह तरत्स मन्दी इत्यादि चार ऋचाओं को जल के अन्दर खड़ा होकर जपे। जो वस्तु आदान के योग्य नहीं है, उसके आदान की इच्छा करता हुआ अथवा उसे लेकर और भोजन के अयोग्य वस्तु को खाना चाहता हुआ, भूमि का दान करे। कुछ का मत है कि पत्नियों के विषय में ऋतुकाल के अतिरिक्त भोग करने पर आचमन मात्र करने से शुद्धि हो जाती है। (भ्रूणहत्या का प्रायश्चित्त करने वाला) दस दिन तक दूध पीकर व्रत करे, दूसरे दस दिन तक घी से और तीसरे दस दिन तक जल से व्रत करे। दिन के समय आदि भागों में एक बार भोजन करे। जल से गीले कपड़ों वाला होकर लोमानि, नखानि, त्वच, मांसं, शोणित, स्नायु, अस्थि, मज्जान—इन पदों में से प्रत्येक के अन्त में आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि स्वाहा कहकर यह आठ आहुतियां देकर होम करे। सब स्मृतिकारों के मत में भ्रूणहत्या का यही प्रायश्चित्त है।

अथान्य उक्तो नियमोऽग्ने त्व पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात् कूष्माण्डैश्चाज्य तद्व्रत एव वा ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नातोऽघमर्षण जपेत् सममश्वमेधावभृथेन सावित्री वा सहस्रकृत्व आवर्त्तयन् पुनीते हैवात्मानमन्तर्जले वाघमर्षणं त्रिरावर्त्तयन् पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥२॥

और एक अन्य नियम बताया गया है 'अग्ने त्वं पारय' इस मन्त्र से महाव्याहृतियों के साथ हवन करे। अथवा उसी व्रत में कूष्माण्ड मन्त्रों के साथ घी से होम करे। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी से संभोग आदि पापों के प्रायश्चित्त में प्राणायामों के साथ स्नान करके अघमर्षण मन्त्र का जप करे। यह अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ के समान होता है। अथवा एक हजार बार गायत्री की आवृत्ति करता हुआ पवित्र होता है। अथवा अपने आप को जल के अन्दर खड़ा करके तीन बार अघमर्षण मन्त्र को दोहराता हुआ पापों से मुक्त हो जाता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

षड्विंशतितमोऽध्यायः ।
अथ प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

तदाहुः कतिधावकीर्णी प्रविशतीति मरुतः प्राणेनेन्द्रं बलेन बृहस्पतिं ब्रह्मवर्च्चसेनाग्निमेवेतरेण सर्वेणेति सोऽमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा कामाभिदुग्धोस्म्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति समिधमाधायानु पर्यूक्ष्य यज्ञवास्तु कृत्वोपस्थाय सम्मासिञ्चत्विस्येतया त्रिरुप तिष्ठेत त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्या अभिक्रान्त्या इत्येतदेवैकेषां कर्माधिकृत्ययोः पूत इव स्यात् स इत्थं जुहुयादित्थमनुमन्त्रयेद्वरोदक्षिणेति ॥१॥

कुछ लोग यह पूछते हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत को नष्ट करने वाला मनुष्य कितने भागों में विभक्त होकर प्रवेश करता है अर्थात् उसकी शक्तियां कहां-कहां चली जाती हैं। वह प्राणों से मरुतों में प्रवेश करता है, बल से इन्द्र में, ब्रह्मतेज से बृहस्पति में और शेष सब से अग्नि में प्रवेश कर जाता है, (अर्थात् उसकी प्राण-शक्ति वायु में, बल इन्द्र में ब्रह्मतेज बृहस्पति में और शेष सब कुछ अग्नि में चला जाता है)। इसलिये वह अमावस्या को रात्रि के समय अग्नि का आधान कर प्रायश्चित्त के लिये घी की इन दो आहुतियों से होम करता है- 'कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा'। 'कामाभिदुग्धोऽस्म्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहा'। समिधा का आधान करके, चारों ओर जल छिड़क कर, यज्ञशाला बनाकर, निकट में खड़े होकर 'सं मा सिञ्चतु' इस ऋचा से तीन बार पूजा करे। कुछ के विचार से 'त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्या अभिक्रान्त्या' इस ऋचा के पवित्र होकर अपने कर्म और अधिकार में स्थित होवे। वह इसी प्रकार से होम करे और इसी प्रकार से मन्त्र-पाठ करे। सब से बढ़िया वस्तु दक्षिणा में दे।

प्रायश्चित्तमविशेषादनार्जवपैशुनप्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राशनेषु। शूद्रायाञ्च रेतः सिक्त्वा योनौ च दोषवति कर्मण्यभिसन्धि पूर्वेष्वब्लिङ्गाभिरप उपस्पृशेद्वारुणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः प्रतिषिद्धवाङ्मनसयोरपचारे व्याहृतयः

संख्याताः पञ्च सर्वास्वपो वाचा मे देहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहेति प्राता रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायमष्टौ वा समिधमादध्याद्देवकृतस्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥२॥

कुटिलता, चुगलखोरी, प्रतिषिद्ध आचार और अभक्ष्य-भक्षण के विषय मे भी सम्पूर्ण रूप से यही प्रायश्चित्त है। शूद्रा के अन्दर उसकी योनि में वीर्य को सींचकर और जान-बूझकर दोषयुक्त कर्मों को कर के जल के लिङ्ग वाली वरुण देवता की ऋचाओं अथवा अन्य पवित्र मन्त्रों से आचमन करे। वाणी और मन से किए हुए प्रतिषिद्ध दुष्टकर्म के प्रायश्चित में पांच व्याहृतियों की गणना की गई है। इन के साथ 'सर्वास्वपो वाचा मे देहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहा' इस मन्त्र से प्रातःकाल और 'रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनातु' इस मन्त्र से सायंकाल आठ समिधाओं का आधान करे और 'देवकृतस्य' इस मन्त्र से होम करके सब प्रकार के पाप से मुक्त हो जाता है।

इति गौतमीये धर्नशास्त्रे षड्विंशतितमोऽध्यायः।

सप्तविंशतितमोऽध्यायः।

अथ कृच्छ्रव्रतविधिवर्णनम्।

अथात. कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामो हविष्यान् प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयादथापर त्र्यहं नक्त भुञ्जीत अथापरं त्र्यहं न कञ्चन याचेताथापरं त्र्यहमुपवसेत्तिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेदनार्यैर्न सम्भाषेत रौरव-गोधाजिने नित्यं प्रयुञ्जीतानुसवनमुदकोपस्पर्शनमापोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत् हिरण्यवर्णा शुचयः पावका इत्यष्टाभिः ॥१॥

अब यहां से आरम्भ करके कृच्छ्रों की व्याख्या करेंगे। हविष्यों को प्रात-राश के रूप में खाकर तीन दिन तक न खाए। उसके पश्चात् तीन दिन तक रात को खाए। उसके पश्चात् तीन दिन तक खाने के लिये किसी से कुछ न मांगे (अर्थात् बिना मांगे जो मिले उसे ही खाकर निर्वाह करे)। उससे अगले तीन दिन तक उपवास करे। व्रत की इस सारी प्रक्रिया में दिन में खड़ा रहे और रात को बैठा रहे। शीघ्र फल का इच्छुक सत्य

बोले। वृष्टों के साथ सम्भाषण न करे। रुरु और गोह की खाल का नित्य प्रयोग करे। स्नान के पश्चात् 'आपो हिष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्रों से आचमन करे। 'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः' इत्यादि आठ मन्त्रों से मार्जन करे।

अथोदकतर्पण ॐनमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते तापसायपुनर्वसवे नमो नमो मौञ्ज्यायौर्व्याय वसुविन्दाय सर्वविन्दाय नमो नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यम्बकायैकचराधिपतये हराय शर्वायेशानायोग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्द्दिने नमो नमः सूर्यायादित्याय नमो नमो नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय नमो नमः कृष्णाय पिङ्गलाय नमो नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेन्द्राय हरिकेशायोर्ध्वरेतसे नमो नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णरूपिणे नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमो नम इति ॥२॥

उसके पश्चात् जल से तर्पण इस प्रकार किया जाता है—ओं अहकारी मोहयुक्त, पापनाशक तापस, पुनर्वसु को नमस्कार, बार-बार नमस्कार, मौञ्ज्य, और्व्य वसुविन्द, सर्वविन्द को बार-बार नमस्कार, पार, सुपार, महापार, पारयिष्णु को बार-बार नमस्कार; रुद्र, पशुपति, महत्, देव, त्र्यम्बक, एकचर, अधिपति, हर, शर्व, ईशान, उग्र, वज्री, घृणी, कपर्द्दी को बार-बार नमस्कार; सूर्य, आदित्य को बार-बार नमस्कार, नीलग्रीव, शितिकण्ठ को बार-बार नमस्कार; कृष्ण, पिङ्गल को बार-बार नमस्कार; ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वृद्ध, इन्द्र, हरिकेश, ऊर्ध्वरेता को बार बार नमस्कार, सत्य, पावक, पावकवर्ण, काम, कामरूपी को बार-बार नमस्कार; दीप्त, दीप्तरूपी को बार-बार नमस्कार; तीक्ष्णरूपी को बार बार नमस्कार, सौम्य, सुपुरुष, महापुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष, ब्रह्मचारी को बार बार नमस्कार; चन्द्रललाट, कृत्तिवास, पिनाकहस्त को बार-बार नमस्कार।

एतदेवादित्योपस्थानमेता एवाज्याहुतयो द्वादशरात्रस्यान्ते चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयादग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो

देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतये अग्नये स्विष्टकृत इति। ततो ब्राह्मणतर्पणम् ॥३॥

यही सूर्य की पूजा है और यही घृत की आहुतियाँ हैं। (अर्थात् इन्हीं मन्त्रों से सूर्य की पूजा की जा सकती है और घी की आहुतियां भी जा सकती हैं)। बारहवीं रात के पश्चात् चरु को पकवाकर इन देवताओं के लिये होम करे—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्य: स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इसके पश्चात ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करे।

एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातो यावत् सकृदाददीत तावदश्नीयादब्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः। प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति द्वितीयं चरित्वा यत्किञ्चिदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात् प्रमुच्यते तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते अथैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु वेदेषु स्नातो भवति सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥४॥

इसी से अतिकृच्छ्र (और कृच्छ्रातिकृच्छ्र) की व्याख्या भी हो गई। जितना भोजन एक बार में (मुंह में) लिया जा सकता है उतना ही खाए (अर्थात् अतिकृच्छ्र व्रत में एक ग्रास भर खाए)। तीसरा व्रत जो जल मात्र पीकर किया जाता है वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र कहलाता है। प्रथम (कृच्छ्र) व्रत को करके शुद्ध, पवित्र और कर्म के योग्य हो जाता है। दूसरे (अतिकृच्छ्र) व्रत को करके मनुष्य महापातकों के अतिरिक्त जित भी पाप को करता है उससे मुक्त हो जाताहै। तीसरे (कृच्छ्रातिकृच्छ्र) व्रत को करके सब प्रकार के पाप से छूट जाता है। और इन तीनों प्रकार के कृच्छ्रों को करके सब वेदों में स्नात हो जाता है और वह सब देवों के द्वारा जान लिया जाता है, और जो इस प्रकार जानता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशतितमोऽध्यायः।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः।

अथ चान्द्रायणव्रतविधिवर्णनम्।

अथातश्चान्द्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतञ्चरेत् श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेदाप्यायस्व सन्ते पयांसि

नवो नव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हविषश्चानुमन्त्रणमुपस्थानं चन्द्रमसो यद्देवा देवहेलनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयाद्देवकृतस्येति चान्ते समिद्भिरों भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीर्र्गिडौजस्तेजः पुरुषो धर्मः शिवः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रणं प्रतिमन्त्रं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वग्रासप्रमाणमास्याविकारेण ॥१॥

अब यहां से प्रारम्भ करके चान्द्रायण का प्रवचन करते हैं। इसकी विधि कृच्छ्र में ही कहदी गई है। विशेष यह है कि मुण्डन कराए और व्रत का पालन करे। अगले दिन आनेवाली पूर्णिमा को उपवास रखे। आप्यायस्व समेतु ते (ऋ० १।९१।१६) सं ते पयांसि (ऋ० १।९१।१८) और नवो नवो भवति (ऋ० १०।८५।१९)—इन ऋचाओं से तर्पण, आज्यहोम, हवि का अनुमन्त्रण और चन्द्रमा की पूजा करे। यद् देवा देवहेडनम् इत्यादि चार ऋचाओं (वा० सं० ३०।१४-१७) से घी की आहुतियां दे। देवकृतस्यैनसो (वा० सं० ८।१३) इस मन्त्र से अन्त में समिधाओं के साथ आहुति दे। ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं तपः, ओ सत्यम्, ओं यशः, ओ श्रीः, ओं ऊर्क्, ओं इडाः, ओं ओजः, ओं तेजः, ओं पुरुषः, ओं धर्मः, ओं शिवः, ओं शिवः—इन १५ मन्त्रों से ग्रासों का अनुमन्त्रण करे, अथवा प्रत्येक मन्त्र के साथ मन में नमः स्वाहा का उच्चारण करे। सब ग्रासों का प्रमाण इतना होना चाहिये, जितने से मुख विकृत न हो।

चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासान् भुक्त्वैकापचयेन परपक्षमश्नीयादमावास्यायामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं विपरीतमेकेषाम् ॥२॥

चरु, भिक्षा का अन्न, सत्तू, कण, जौ का भोजन, साग, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल इनकी हवियां उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। पूर्णिमा को इनकी आहुतियां डालने के पश्चात् पन्द्रह ग्रासों को खाए और फिर प्रतिदिन एक-एक ग्रास कम करता हुआ कृष्णपक्ष भर खाता रहे। अमावस्या को उपवास करके फिर प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता हुआ शुक्लपक्ष भर खाता रहे। कुछ का मत है कि इसके विपरीत करे, अर्थात् कृष्णपक्ष में एक-एक ग्रास बढ़ाता जाए और शुक्लपक्ष में घटाता जाए।

एष चान्द्रायणो मासो मासमेतमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हन्ति द्वितीयमाप्त्वा दशपूर्वान् दश वरानात्मानञ्चैकविशं पङ्क्तीश्च पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चन्द्रमसः सलोकतामाप्नोति सलोकतामाप्नोति ।

यह एक मास का चान्द्रायण व्रत है। इसे महीने भर करके निष्पाप और निर्दोष होकर मनुष्य प्रत्येक पाप को नष्ट कर देता है। दूसरे मास के चान्द्रायण व्रत को करके दस पूर्व की ओर दस बाद की पीढ़ियों को, स्वयं को—कुल मिलाकर इन इक्कीस को और जिन ब्राह्मण-पंक्तियों में बैठकर भोजन करता है उन पंक्तियों को पवित्र कर देता है। और वर्ष भर इस व्रत का पालन करके चन्द्रलोक को प्राप्त हो जाता है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ पुत्राणां सम्पत्तिविभागवर्णनम् ।

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्थं भजेरन्निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति चेच्छति सर्वं वा पूर्वजस्येतरान् बिभृयात् । पूर्ववद्विभागे तु धर्मवृद्धिः विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोदद्युक्तो रथोगोवृषः काणखोटकूटषण्डा मध्यमस्यानेकश्चेदविर्धान्यायसी गृहमनोयुक्तं चतुष्पदाञ्चैकैकं यवीयसः समञ्चेतरत् सर्वं द्व्यंशी वा पूर्वजः स्यादेकैकमितरेषामेकैकं वा धनरूपं काम्यं पूर्वः पूर्वो लभेत दशतः पशूना नैकशफः नैकशफानां वृषभोऽधिको ज्येष्ठस्य वृषभषोडशा ज्यैष्ठिनेयस्य समं वा ज्यैष्ठिनेयेन यवीयसां प्रतिमातृ वा स्ववर्गे भागविशेषः ॥१॥

पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र पैतृक सम्पत्ति का बटवारा करें। यदि पिता चाहे तो अपने जीवित रहते हुए भी पुत्रों की माता के रजोनिवृत्त हो जाने पर बटवारा कर सकता है। वह अपनी सारी सम्पत्ति ज्येष्ठ पुत्र को दे दे, यदि वह अन्य पुत्रों के पालन-पोषण का दायित्व अपने ऊपर ले ले। पहले प्रकार से विभाग करने में धर्म की वृद्धि होती है। सम्पत्ति का बीसवां भाग, दास और दासी का एक जोड़ा, दोनों जबड़ों वाले पशुओं से जुता हुआ रथ और एक सांड़—ये ज्येष्ठ भाई को अधिक मिले। काने, लंगड़े, शिथिल

और वध्रि बैल मंझले भाई का भाग हैं यदि पिता के पास सम्पत्ति अधिक है तो। एक भेड़, अन्न, एक कवच, रसोई से युक्त घर और पशुओं में से एक-एक छोटे भाई को अतिरिक्त मिले। शेष सब धन सब भाईयों को बराबर-बराबर मिले। अथवा बड़े भाई को दो भाग मिले और शेष सब भाइयों को एक-एक भाग मिले। अथवा प्रत्येक बड़ा भाई अपनी इच्छानुसार एक-एक धनका चुनाव कर ले। यज्ञ पशुओं में से एक अनेक शफों वाला पशु हो। अनेक शफों वाले पशुओं में से ज्येष्ठ पुत्र को एक वृषभ अधिक मिले। जेठानी के पुत्र को वृषभ के साथ पन्द्रह गाएं मिले। छोटे भाइयों का भाग भी जेठानी के पुत्र के बराबर हो सकता है। अथवा प्रत्येक माता की स्थिति के अनुसार अपने वर्ग में भागविशेष हो सकता है।

पितोत्सृजेत् पुत्रिकामनपत्योऽग्निं प्रजापतिञ्चेष्ट्वा-स्मदर्थमपत्यमिति संवाद्याभिसन्धिमात्रात् पुत्रिकेत्येकेषा तत्संशयान्नोपयच्छेदभ्रातृकाम् ॥२॥

पुत्रहीन पिता अग्नि और प्रजापति के लिये यजन करके अपनी पुत्री को यह कहकर विवाह में देवे कि इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरे लिये होगा। कुछ स्मृतिकारों का मत है कि मन में सकल्प मात्र से भी अपनी पुत्री को पुत्रिका के रूप में दिया जा सकता है। इस संशय के कारण बिना भाई वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिये।

पिण्डगोत्रऋषिसम्बन्धा ऋक्थ भजेरन् स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेत देवरवत्यन्यतो जातमभागम् ॥३॥

मनुष्य के मरजाने के पश्चात् पिण्ड, गोत्र और ऋषि के सम्बन्ध के सम्बन्धी उसकी सम्पत्ति के भागीदार होते हैं। ऐसे पुरुष की पत्नी यदि उसका कोई देवर है, तो उससे बीज प्राप्ति की इच्छा करे (अर्थात् उसके वीर्य से सन्तान उत्पन्न करे)। यदि वह देवर को छोड़कर किसी अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न करती है, तो वह(पुत्र) अपनी माता के मृत पति की सम्पत्ति में भागीदार नहीं हो सकता।

स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानाञ्च भगिनी-शुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः पूर्वञ्चैके ॥४॥

मृत माता का स्त्रीधन इसकी अविवाहित पुत्रियों का होता है, अथवा उन विवाहित पुत्रियों का होता है जिनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ न हो। बहिन का शुल्क माता की मृत्यु के पश्चात् उसके सगे भाइयों का होता है। कुछ का मत है कि मृत्यु से पूर्व भी भाइयों का ही होता है।

संसृष्टिविभागः प्रेतानां ज्येष्ठस्य संसृष्टिनि प्रेते असंसृष्टी ऋक्थभाग् विभक्तजः पित्र्यमेव। स्वयमर्जितं वैद्योऽवैद्येभ्यो न दद्यात् अवैद्याः समं विभजेरन् ॥५॥

यदि भाई अलग होकर फिर से साझा व्यापार आरम्भ करें और उन में कुछ मर जाएं तो उनका भाग साझेदारी सहित उनके ज्येष्ठ पुत्र को जाता है। यदि साझेदारी के धन को प्राप्त करने वाला वह ज्येष्ठ पुत्र मर जाए तो वह सम्पत्ति उस पुत्र को मिलती है जो साझेदारी मे नहीं है। जो पुत्र साझेदारी के धन के बटवारे के पश्चात् उत्पन्न होता है, उसे केवल पैतृक धन ही मिलता है, वह साझेदारी के धन का भागी नहीं होता। पिता का विद्वान् पुत्र अपने द्वारा कमाए हुए धन का स्वयं भागी होता है, उसके अनपढ़ भाई उसे नहीं बटवा सकते। अनपढ़ भाई अपने द्वारा कमाए हुए धन को बराबर-बराबर बाँट सकते हैं।

पुत्रा औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धा रिक्थभाजः कानीनसहोढपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयन्दत्तक्रीता गोत्रभाजश्चतुर्थांशभागिनश्चौरसाद्यभावे ॥६॥

औरस (धर्म से ब्याही हुई का पुत्र), क्षेत्रज (देवर आदि के द्वारा उत्पन्न किया, दत्त (माता-पिता के द्वारा स्वय दिया हुआ), कृत्रिम (स्वय पुत्र बनाया हुआ) गूढोत्पन्न (पति के घर में ही किसी अज्ञातकुल पुरुष के द्वारा उत्पन्न किया हुआ), और अपविद्ध (माता-पिता के द्वारा छोड़ देने पर मिला हुआ)—ये छः प्रकार के पुत्र पिता की सम्पत्ति मे भागीदार होते हैं। कानीन (कँवारी का पुत्र), सहोढ (जो विवाह के समय गर्भ में हो), पौनर्भव (दूसरी बार ब्याही हुई अक्षतयोनि अथवा क्षतयोनि स्त्री से उत्पन्न), पुत्रिका-पुत्र, स्वयदत्त (जो पुत्र बनने के लिये स्वयं अपने आप को प्रस्तुत करे) और क्रीत (खरीदा हुआ)— ये छः प्रकार के पुत्र पिता के गोत्र में भागीदार हैं और औरस आदि पुत्रों के अभाव में चौथे हिस्से के भागीदार होते हैं।

ब्राह्मणस्य राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसम्पन्नस्तुल्यांशभाग् ज्येष्ठांशहीनमन्यत् राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण क्षत्रियाच्चेत् शूद्रापुत्रोऽप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमन्तेवासिविधिना सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तो न लभेतैकेषां श्रोत्रिया ब्राह्मणस्यानपत्यस्य रिक्थं भजेरन्

राजेतरेषां जडक्लीबौ भर्त्तव्यावपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रा-
पुत्रवत् प्रतिलोमास्तूदकयोगक्षेमकृतान्नेष्वविभागः स्त्रीषु च
संयुक्तासु ।।७।।

ब्राह्मण का क्षत्रिया स्त्री में उत्पन्न पुत्र, यदि वह ज्येष्ठ है और गुण-सम्पन्न है तो ब्राह्मण-पत्नी से उत्पन्न पुत्रों के समान हो सम्पत्ति में भागीदार होगा। यदि वह उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न नहीं है तो उसे ज्येष्ठता के आधार पर मिलने वाला अतिरिक्त अंश प्राप्त नहीं होगा। यदि ब्राह्मण के क्षत्रिया और वैश्या स्त्रियों से ही पुत्र हों तो वह क्षत्रिया से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र के समान पिता की सम्पत्ति मे भागीदार होगा। क्षत्रिय के द्वारा शूद्रा स्त्री में उत्पन्न और पिता की सेवा करने वाला पुत्र, यदि पिता की अन्य कोई सन्तान न हो, तो पिता से पास में रहने वाले की विधि से आजीविका मात्र का अधिकारी है। कुछ का मत है, कि सवर्णा का पुत्र भी यदि वह अन्याय की वृत्ति वाला है तो पिता की सम्पत्ति में भाग प्राप्त न करे। सन्तानहीन ब्राह्मण की सम्पत्ति वेदपाठी ब्राह्मणों को मिले। दूसरों की सम्पत्ति राजा को मिले। पिता जड़ और नपुंसक पुत्रों का भरण-पोषण करे। जड की सन्तान भी भागीदार है। प्रतिलोम पुत्र शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र की तरह भाग के योग्य है। जल, योग और क्षेम की वस्तुओं, पके हुए अन्न और इकट्ठी रहने वाली (संयुक्त परिवार की) स्त्रियों का विभाग नहीं होता।

अनाज्ञाते दशावरैः शिष्टैरूहवद्भिरलुब्धैः प्रशस्तं कार्यम् ।
चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमात्त्रय आश्रमिणः
पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिषदित्याचक्षते ।
असम्भवे त्वेतेषां श्रोत्रियो वेदविच्छिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह
यतोऽयमप्रभवो भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु धर्मिणां विशेषेण स्वर्गं
लोकं धर्मविदाप्नोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्मः।।८।।

जिस विषय का विधान ज्ञात न हो तो कम से कम दस विचारशील निर्लोभ शिष्ट जन उसका निर्णय करें। इन में चारों वेदों के चार श्रेष्ठ पारगत विद्वान्, तीनों आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ से एक-एक विद्वान् और पृथक्-पृथक् धर्मों को जानने वाले तीन विद्वान् होने चाहिये। ये कम से कम दस मिलकर परिषद् कहलाती है। इनका योग असम्भव होने पर श्रोत्रिय, वेदविद्, शिष्ट जन सन्देहास्पद विषय में जो कुछ कहे वही प्रमाण है, क्योंकि इस लोक में हिंसा, अनुग्रह आदि के विषय में विशेषरूप से धर्म को जानने वाले प्राणी न के बराबर ही उत्पन्न होते हैं। धर्म को जानने वाला मनुष्य ही अपने ज्ञान और तत्परता के कारण स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। यही धर्म है।

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

समाप्ता चेयं गौतमस्मृतिः ।

॥ अथ ॥

॥ शातातपस्मृतिः ॥

प्रायश्चित्तविहीनानां महापातकिनां नृणाम् ।
नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नाङ्कितशरीरिणाम् ॥१॥

प्रायश्चित्त न करने वाले महापातकी मनुष्य का जन्म नरक के भोग के अन्त में (पातकों के) चिह्नों से अङ्कित शरीरों के साथ (फिर से इस लोक में) होता है ।

प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम् ।
प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्तापवतां पुनः ॥२॥

प्रत्येक जन्म में उस पाप का सूचक चिह्न उनके शरीर पर होता है, पर पश्चात्ताप करने वालों का वह चिह्न प्रायश्चित्त करने के पश्चात् चला जाता है ।

महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मनि जायते ।
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥३॥

महापातक से उत्पन्न होने वाला चिह्न सात जन्मों तक उत्पन्न होता है, उपपातक से उत्पन्न होने वाला पाँच जन्मों तक और अन्य पापों से उत्पन्न होने वाला चिह्न तीन जन्मों तक उत्पन्न होता है ।

दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमैः शमम् ।
जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥४॥

मनुष्यों के दुष्कर्मों से उत्पन्न होने वाले रोग उपायों से शान्त होते हैं। उनकी शान्ति (गायत्री के) जपों से, देवों की अर्चना से, होमों से और दानों से होती है ।

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये ।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥५॥

पूर्व जन्म में किया हुआ पाप नरक का क्षय होने पर रोग के रूप में मनुष्य को बाधित करता है। उसकी शान्ति जप आदियों के द्वारा ही होती है ।

कुष्टञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतीसारभगन्दरौ ॥६॥
दुष्टव्रण गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ।
इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥७॥

कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्ररोध, पथरी, खाँसी, अतीसार भगन्दर, दुष्टव्रण गण्डमाला, पक्षाघात और अन्धापन इत्यादि रोग महापापों से उत्पन्न हुए माने गए हैं।

जलोदरं यकृत् प्लीहा शूलरोगव्रणानि च ।
श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः ॥८॥
रक्तार्बुद विसर्पाद्या उपपापोद्भवा गदाः ।
दण्डापतानकश्चित्रवपुः कम्पविर्चीचकाः ॥९॥
वल्मीकपुण्डरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः ।
अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति हि ॥१०॥
अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते पापसङ्करात् ।
उच्यन्ते च निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥११॥

जलोदर, जिगर, तिल्ली, शूल रोग, फोड़े, श्वास, अजीर्ण, ज्वर, वमन, सिर में चक्कर, मूर्च्छा, गलघोटू, रक्त-शोथ, और खारिश आदि रोग उपपातकों से उत्पन्न होते हैं। दण्डापतानक (tetanus), शरीर पर अनेक रंगो के गोल चकत्ते बनना, कम्पन, खाज, हाथी रोग, और पुण्डरीक (एक प्रकार का कुष्ठ) आदि रोग अन्य पापों से उत्पन्न होने वाले हैं। मनुष्यों के बवासीर आदि रोग अतिपाप से उत्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त और बहुत से रोग पापों के संकर से उत्पन्न होते हैं। इनके निदान और प्रायश्चित्त क्रम से बताए जा रहे हैं।

महापापेषु सर्वं स्यात्तदर्द्धमुपपातके ।
दद्यात् पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिबलाबलम् ॥१२॥

महापापों में सारे का सारा करना होता है, उपपातक में आधा। अन्य पापों में छठा भाग करना होता है। इस विषय में रोग की तीव्रता और दुर्बलता का भी विचार करना चाहिए।

अथ साधारणं तेषु गोदानादिषु कथ्यते ।
गोदाने वत्सयुक्ता गौः सुशीला च पयस्विनी ॥१३॥

अब गऊ-दान आदि के विषय मे साधारण बात का कथन किया जाता है। गोदान के विषय में यह स्मरणीय है कि गऊ बछड़े वाली; शुशील और दुधारू हो ।

वृषदाने शुभोऽनड्वान् शुक्लाम्बरसकाञ्चनः ।
निवर्तनानि भूदाने दश दद्याद् द्विजातये ॥१४॥

बैल के दान में शुभ लक्षणों वाला, श्वेत-वस्त्र और सुवर्ण से अलंकृत बैल दिया जाना चाहिये। भूमि-दान में ब्राह्मण को दस निवर्तन की मात्रा में भूमि दी जानी चाहिये।

दशहस्तेन दण्डेन त्रिशद्दण्डं निवर्तनम् ।
दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥१५॥

दस हाथ का डंडा हो। ऐसे तीस डंडों की मात्रा वाली भूमि एक निवर्तन कहलाती है। ऐसी दस निवर्तन मात्रा वाली भूमि एक गोचर्म कहलाती है। इतनी भूमि को दान में देकर मनुष्य स्वर्ग-लोक में महानता को प्राप्त होता है।

सुवर्णशतनिष्कन्तु तदर्द्धार्द्धप्रमाणतः ।
अश्वदाने मृदु श्लक्ष्णमश्व सोपस्करं दिशेत् ॥१६॥

सोने के दान मे सौ निष्क (सुवर्ण मुद्राएं) उससे आधे (पचास निष्क) अथवा उस से भी आधे (पच्चीस) निष्क दिये जाने चाहियें। घोड़े के दान में कोमल, चिकना घोड़ा पल्याण सहित दान करे।

महिषी माहिषे दाने दद्यात् स्वर्णायुधान्विताम् ।
दद्याद् गजं महादाने सुवर्णफलसंयुतम् ॥१७॥

महिषी-दान में सोने के हथियार से युक्त भैंस दान में दे और महादान में सोने के फल से युक्त हाथी को दान मे दे।

लक्षसंख्यार्हण पुष्पं प्रदद्याद्देवताच्चर्चने ।
दद्याद् द्विजसहस्राय मिष्टान्न द्विजभोजने ॥१८॥

देवता की अर्चना में एक लाख की संख्या मे पूजा के योग्य पुष्पों को दे। ब्राह्मण-भोजन में एक हजार ब्राह्मणों को मीठा भोजन प्रदान करे।

रुद्र जपेल्लक्षपुष्पैः पूजयित्वा च त्र्यम्बकम् ।
एकादश जपेद्रुद्रान् दशांशं गुग्गुलैर्घृतैः ॥१९॥
हुत्वाभिषेचनं कुर्य्यान्मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ।
शान्तिके गणशान्तिञ्च ग्रहशान्तिपूर्वकम् ॥२०॥

त्र्यम्बक शिव की पूजा करके एक लाख पुष्पों से रुद्र का जप करे। ग्यारह रुद्रों का जप करे। गुग्गुल से युक्त घी से दसवाँ भाग होम करके वरुण देवता के मन्त्रों से अभिषेचन करे । शान्तिकर्म में पहले ग्रहशान्ति करके तत्पश्चात् गणशान्ति करे।

धान्यदाने शुभं धान्यं खारीषष्टिमितं स्मृतम् ।
वस्त्रदाने पट्टवस्त्रद्वयं कर्पूरसंयुतम् ॥२१॥

अनाज के दान में सुन्दर अनाज साठ खारी भर माना गया है। वस्त्रदान में कपूर सहित दो रेशमी कपड़े कहे गए हैं।

दशपञ्चाष्टचतुर उपवेश्य द्विजान् शुभान् ।
विधाय वैष्णवीं पूजां सङ्कल्प्य निजकाम्यया ॥२२॥
धेनुं दद्याद् द्विजातिभ्यो दक्षिणाञ्चापि शक्तितः ।
अलङ्कृत्य यथाशक्ति वस्त्रालङ्करणैर्द्विजान् ॥२३॥

दस, पाच, आठ अथवा चार उत्तम ब्राह्मणों को बिठाकर, विष्णु की पूजा करके और अपनी इच्छानुसार सकल्प करके उनको यथाशक्ति वस्त्रों और अलकरणो से अलंकृत करके गऊ दान मे दे और अपने सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा भी दे।

याचेद्दण्डप्रमाणेन प्रायश्चित्तं यथोदितम् ।
तेषामनुज्ञया कृत्वा प्रायश्चित्त यथाविधि ॥२४॥
पुनस्तान् परिपूर्णार्थानर्चयेद्विधिवद् द्विजान् ।
सन्तुष्टा ब्राह्मणा दद्युरनुज्ञां व्रतकारिणे ॥२५॥

शास्त्रों में बताए हुए दण्ड के प्रमाण के अनुसार उनसे प्रायश्चित्त की याचना करे। उनकी अनुज्ञा से विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके धन में परिपूर्ण उन द्विजों की पुन विधिवत् पूजा करे। और प्रसन्न हुए ब्राह्मण व्रत करने वाले को अनुज्ञा प्रदान करे।

जपच्छिद्र तपश्छिद्र यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ।
सर्व भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥२६॥

ब्राह्मण जिसका चाहे उसके जप का दोष, तप का दोष, और यज्ञकर्म में जो दोष हो सकता है, वह सारे का सारा दोषहीन हो जाता है।

ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ।
सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥२७॥

ब्राह्मण जिन बातो को कहते हैं, देवता उनको मानते हैं। ब्राह्मण सब देवों के स्वरूप वाले है। उनका वचन अन्यथा नही हो सकता।

उपवासो व्रतञ्चैव स्नानं तीर्थफल तपः।
विप्रैः सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥२८॥

उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ का फल और तप— ये सब के सब जिसके लिये ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराए गए हैं, उसके लिये ही उनका फल सम्पन्न होता है।

सम्पन्नमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः।
प्रणम्य शिरसा धार्य्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥२९॥

भू-देवता (ब्राह्मण) जिस बात को कहें कि "यह ठीक है", उसे प्रणाम करके सम्मान स्वीकार करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।

ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम्।
तेषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति मलिना जनाः ॥३०॥

ब्राह्मण सब कामनाओं को पूरा करने वाले चलते-फिरते बिना जल के तीर्थ है। (पाप के मूल से) मलिन लोग उनके वचन-मात्र से ही शुद्ध हो जाते हैं।

तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रगृह्य च तथाशिषः।
भोजयित्वा द्विजान् शक्त्या भुञ्जीत सह बन्धुभिः॥३१॥

उनसे आज्ञा पाकर तथा आशीर्वचनों को प्राप्त करके, ब्राह्मणों को सामर्थ्यानुसार भोजन खिलाकर तत्पश्चात् बन्धुजनों के साथ भोजन करे।

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ कुष्ठनिवारणप्रयोगवर्णनम्।

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पाण्डुकुष्ठी प्रजायते।
प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्पातकशान्तये ॥१॥

ब्राह्मण की हत्या करने वाला नरक भोग के पश्चात् श्वेतकुष्ठी के रूप में उत्पन्न होता है। वह उसके पाप की शान्ति के लिये प्रायश्चित्त करे।

चत्वारः कलशाः कार्य्याः पञ्चरत्नसमन्विताः।
पञ्चपल्लवसंयुक्ताः सितवस्त्रेण संयुताः ॥२॥

अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तीर्थोदकसुपूरिताः ।
कषायपञ्चकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥३॥
सर्वौषधिसमायुक्ताः स्थाप्याः प्रतिदिशं द्विजैः ।
रौप्यमष्टदलं पद्म मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥४॥
तस्योपरि न्यसेद् देव ब्रह्माणञ्च चतुर्मुखम् ।
पलार्द्धार्द्धप्रमाणेन सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥५॥

पञ्चरत्न (सुवर्ण, हीरा, नीलमणि, लाल, मुक्ता) से समन्वित, पञ्च-पल्लव (आम, जामुन, कपित्थ, बीजपूरक और बिल्व) से युक्त, श्वेत वस्त्र से ढके हुए, अश्वशाला आदि की मिट्टी से युक्त, तीर्थों के जलों से भरे हुए, पञ्च-कषाय (जम्बू, शाल्मलि, वाट्याल, वकुल और बदर के फलों) से युक्त, अनेक प्रकार के फलों से युक्त और सब प्रकार की जड़ी-बूटियो से युक्त चार कलश तैय्यार करने चाहिये और वे ब्राह्मणों के द्वारा प्रत्येक दिशा में स्थापित किये जाने चाहिये । मध्य के घड़े के ऊपर चाँदी से बना हुआ आठ पंखुड़ियों वाला कमल रखे । उसके ऊपर चतुर्मुख देव ब्रह्मा को स्थापित करे, जो कि एक चौथाई पल सोने से बना हो ।

अर्चेत् पुरुषसूक्तेन त्रिकालं प्रतिवासरम् ।
यजमानः शुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥६॥

यजमान प्रति-दिन तीनो काल शुभ गन्धों, पुष्पों और धूपों से पुरुष-सूक्त के साथ विधिपूर्वक उसकी अर्चना करे ।

पूर्वादिकुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ।
पठेयुः स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रभृतीन् शनैः ॥७॥

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ब्राह्मण पूर्वा आदि दिशाओं में रखे घड़ों पर ऋग्वेद आदि अपने-अपने वेदों का धीरे-धीरे पाठ करें ।

दशांशेन ततो होमो ग्रहशान्तिपुरःसरः ।
मध्यकुम्भे विधातव्यो घृताक्तैस्तिलहेमभिः ॥८॥

पहले ग्रह-शान्ति को करके तत्पश्चात् बीच के कुण्डों में घी में भिगोए हुए तिलो और सोने से दसवें अंश के साथ होम करना चाहिये ।

द्वादशाहमिदं कर्म समाप्य द्विजपुङ्गवः ।
तत्र पीठे यजमानमभिषिञ्चेद्यथाविधि ॥९॥

बारह दिन तक उस कर्म को पूरा करके श्रेष्ठ ब्राह्मण उस चौकी पर बैठे हुए यजमान को विधिपूर्वक जलसे अभिषिक्त करे।

ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम्।
ब्राह्मणेभ्यस्तथा देवमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥१०॥

उसके पश्चात् यजमान सामर्थ्य के अनुसार गऊ, धरती, सुवर्ण, तिल आदि ब्राह्मणों को दान करे, और देवता (की प्रतिमा) को आचार्य को समर्पित करदे।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वे देवा मरुद्गणाः।
प्रीताः सर्वे व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥११॥

आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, सब के सब प्रसन्न होकर मेरे भयङ्कर पाप का विनाश करें।

इत्युदीर्य्य मुहुर्भक्त्या तमाचार्य्यं क्षमापयेत्।
एवं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विशुध्यति ॥१२॥

ऐसा कहकर पुनः भक्ति के साथ उस आचार्य से क्षमा मांगे। इस प्रकार विधान किये जाने पर श्वेत-कुष्ठी शुद्ध हो जाता है।

कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः।
स्थापयेद् घटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्यसंयुतम् ॥१३॥

गऊ का हत्यारा नरक के अन्त में कुष्ठी होता है। इसका प्रायश्चित्त इस प्रकार है कि वह पूर्वोक्त द्रव्यों से युक्त एक घड़े को स्थापित करे।

रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पाम्बरान्वितम्।
रक्तकुम्भन्तु तं कृत्वा स्थापयेद्दक्षिणां दिशम् ॥१४॥

रक्त-चन्दन से लिपे हुए अङ्ग वाले, लाल पुष्पों और वस्त्र से युक्त उस घड़े को लाल करके दक्षिण दिशा की ओर स्थापित करे।

ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरितम्।
तस्योपरि न्यसेद्देवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥१५॥

उसपर पिसे हुए तिलों से भरे हुए एक ताम्र-पात्र को रखे, और उसके ऊपर निष्कभर सोने से बनी हुई यमदेव की प्रतिमा को स्थापित करे।

यजेत् पुरुषसूक्तेन पापं मे शाम्यतामिति।
सामपारायणं कुर्य्यात् कलशे तत्र सामवित् ॥१६॥

"मेरा पाप शान्त हो" ऐसा कहकर पुरुष-सूक्त के साथ यजन करे, और सामवेद का ज्ञाता इस कलश पर साम का पारायण करे।

दशांशं सर्षपैर्हुत्वा पावमान्यभिषेचने ।
विहिते धर्मराजानमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥१७॥

सरसों से दशांस होम करके पावमानी ऋचा से अभिषेक करने पर धर्मराज (=यम की प्रतिमा) को आचार्य को समर्पित करदे ।

यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ।
दक्षिणाशापतिर्देवो मम पाप व्यपोहतु ॥१८॥

"महिष पर आरूढ, दण्ड को हाथ में लिये हुए, दक्षिण दिशा का स्वामी, भयङ्कर, देव यम मेरे पाप का विनाश करे ।"

इत्युच्चार्य्यं विसृज्यैनं मास मद्भक्तिमाचरेत् ।
ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥१९॥

इस प्रकार उच्चारण करके और उस (यम) का विसर्जन करके एक मास तक उत्तम भक्ति करे। प्रायश्चित्त के द्वारा ब्रह्म-हत्या और गोवध की यही निष्कृति है ।

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते ।
नरकान्ते प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥२०॥

पिता की हत्या करने वाला चेतना से हीन और माता की हत्या करने वाला अन्धा उत्पन्न होता है। ऐसा मनुष्य नरकभोग के अन्त में विधि के अनुसार प्रायश्चित्त करे।

प्राजापत्यानि कुर्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः ।
व्रतान्ते कारयेन्नाव सौवर्णपलसम्मिताम् ॥२१॥

वह विधान के अनुसार तीस प्राजापत्य व्रत करे, और व्रतों के अन्त में पल भर सोने की नाव बनवाए ।

कुम्भं रौप्यमयञ्चैव ताम्रपात्राणि पूर्ववत् ।
निष्कहेम्ना तु कर्त्तव्यो देवः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥२२॥

पूर्ववत् चाँदी से बने हुए घड़े और ताम्र-पात्र आदि का विधान करके निष्कभर सोने से श्रीवत्स के चिह्न से युक्त देव विष्णु का निर्माण कराए ।

पट्टवस्त्रेण संवेष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः ।
नावं द्विजाय ता दद्यात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥२३॥

उसे रेशमी वस्त्र से लपेट कर उसकी विधि से पूजा करे, और समस्त सामग्री सहित उस नाव को ब्राह्मण को दे दे ।

वासुदेव ! जगन्नाथ ! सर्वभूताशयस्थित ! ।
पातकार्णवमग्नं मां तारय प्रणतार्त्तिहृत् ! ।।२४।।

"हे वासुदेव, हे जगत् के स्वामी, हे सब भूतों के हृदय में स्थित, हे चरणों में झुके हुओं के दुःखों को दूर करने वाले, पापों के समुद्र में डूबे हुए मुझ को पार कर दे।"

इत्युदीर्य्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत् ।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ।।२५।।

—ऐसा कहकर और प्रणाम करके तत्पश्चात् उसे ब्राह्मण को दे दे, और अन्य ब्राह्मणों को भी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा प्रदान करे।

स्वसृघाती तु बधिरो नरकान्ते प्रजायते ।
मूको भ्रातृवधे चैव तस्येयं निष्कृतिः स्मृता ।।२६।।

बहिन की हत्या करने वाला नरक के अन्त में बहिरा होकर जन्म लेता है। और भाई का वध करने पर गूंगा उत्पन्न होता है। उसकी यह निष्कृति बताई गई है।

सोऽपि पापविशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ।
व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात् सुवर्णफलसंयुतम् ।।२७।।

ऐसा मनुष्य भी पाप की शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करे। और व्रत के अन्त में सोने के फल से युक्त पुस्तक दान में दे।

इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य ब्राह्मणीं तां विसर्जयेत् ।
सरस्वति ! जगन्मातः ! शब्दब्रह्माधिदेवते ! ।।२८।।
दुष्कर्मकरणात् पापात् पाहि मां परमेश्वरि ! ।
बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ।।२९।।

इस (अधोलिखित) मन्त्र का उच्चारण करके ब्रह्मा की पत्नी उस सरस्वती को विसर्जित करे—"हे सरस्वती, हे जगत् की माता, हे शब्द-ब्रह्म की अधिष्ठात्री देवी, हे परमेश्वरी, दुष्कर्म से उत्पन्न होने वाले पाप से मेरी रक्षा कर।" बालक की हत्या करने वाला पुरुष मरे हुए बालकों के पिता के रूप में जन्म लेता है। अर्थात् उसके बच्चे नहीं जीते।

ब्राह्मणोद्वाहनञ्चैव कर्त्तव्यं तेन शुद्धये ।
श्रवणं हरिवंशस्य कर्त्तव्यञ्च यथाविधि ।।३०।।

उसे पाप की शुद्धि के लिये ब्राह्मण का विवाह कराना चाहिये, और हरिवंश पुराण का श्रवण विधि के अनुसार करना चाहिये ।

महारुद्रजपं चैव कारयेच्च यथाविधि ।
षडङ्गैकादशै रुद्रै रुद्रः समभिधीयते ॥३१॥
रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रः प्रकीर्त्तितः ।
एकादशभिरेतैस्तु अतिरुद्रश्च कथ्यते ॥३२॥

और महारुद्र जप विधि के अनुसार कराना चाहिये । छः अंगों से युक्त ग्यारह रुद्रों से युक्त एक रुद्र कहा जाता है । उसी प्रकार इन ग्यारह रुद्रों से एक महारुद्र कहा जाता है । और इन ग्यारह महारुद्रों से एक अतिरुद्र कहा जाता है ।

जुहुयाच्च दशांशेन दूर्वयायुतसंख्यया ।
एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्याः सदक्षिणाः ॥३३॥

दस हजार की संख्या वाली दूर्वा घास से दशांश होम करे । और दक्षिणा के साथ ग्यारह सुवर्ण निष्क दिये जाने चाहियें ।

पलान्येकादश तथा दद्याद् द्विजानुसारतः ।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥३४॥

तथा ग्यारह पल सोना ब्राह्मणों की अर्हता के अनुसार दिया जाना चाहिये । अन्य द्विजों को भी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा प्रदान करे ।

स्नापयेद्दम्पती पश्चान्मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ।
आचार्य्याय प्रदेयानि वस्त्रालङ्करणानि च ॥३५॥

तत्पश्चात् पुरोहित वरुण देवता के मन्त्रों से पति और पत्नी को स्नान कराए, और आचार्य को वस्त्र और अलङ्करण प्रदान किये जाने चाहियें ।

गोत्रहा पुरुषः कुष्ठी निर्वंशश्चोपजायते ।
स च पापविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतञ्चरेत् ॥३६॥

गोत्र का हत्यारा पुरुष कुष्ठी और वंशहीन हो जाता है, और वह पाप की शुद्धि के लिये सौ प्राजापत्य व्रत करे ।

व्रतान्ते मेदिनीं दत्त्वा शृणुयादथ भारतम् ।
स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थान् रोपयेद्दश ॥३७॥

व्रतों के अन्त में भूमिदान करके महाभारत का श्रवण करे । स्त्री का हनन

करने वाला अतिसार रोग से पीडित हो जाता है। वह पाप की शुद्धि के लिये पीपल के दश वृक्षों का आरोपण करे।

दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान्।
राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥३८॥

वह शक्कर की गऊ दान करे और सौ ब्राह्मणों को भोजन खिलाए। राजा का हत्यारा क्षयरोगी हो जाता है और उसकी निष्कृति इस प्रकार है।

गोभूहिरण्यमिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः।
घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः।
इत्यादिना क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥३९॥

गऊ, भूमि, सोना, मिष्टान्न, जल और वस्त्रों का दान करने से, घी की गऊ के दान से और तिलों की गऊ के दान से उसकी निष्कृति होती है। इत्यादि क्रम से ही क्षयरोग शान्त होता है।

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः।
प्राजापत्यानि चत्वारि सप्त धान्यानि चोत्सृजेत् ॥४०॥

वैश्य की हत्या करने वाला मनुष्य रक्तशोथ रोगी के रूप में उत्पन्न होता है। वह चार प्राजापत्य व्रत करे और सात अनाज मिलाकर (सतनजा) दान करे।

दण्डापतानकयुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः।
प्राजापत्य सकृच्चैव दद्याद् धेनुं सदक्षिणाम् ॥४१॥

शूद्र की हत्या करने वाला मनुष्य दण्डापातनक (tetanus) रोग से युक्त हो जाता है। वह एक बार प्राजापत्य व्रत करे और दक्षिणा के साथ गऊ देवे।

कारूणाञ्च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते।
तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥४२॥

शिल्पियों के वध में रूक्षता रोग उत्पन्न हो जाता है। इस लिये उस पाप की शुद्धि के लिये सफेद वृषभ दान में दिया जाना चाहिये।

सर्वकार्य्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः।
प्रासादं कारयित्वा तु गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥४३॥
गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत्।
कुलत्थशाकैः पूपैश्च गणशान्तिपुरःसरम् ॥४४॥

हाथी की हत्या करने वाला मनुष्य अपने सभी कार्यों में निष्फल प्रयोजन वाला हो जाता है। वह मन्दिर बनवाकर उसमें गणेश की प्रतिमा की स्थापना करे। कुलत्थ के शाक और पूओं से पहले गण-शान्ति करवा कर मन्त्र का ज्ञाता गणेश के मन्त्र का एक लाख जप करे।

उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः।
स तत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात् कर्पूरकं फलम् ॥४५॥

ऊँट के मार देने से मनुष्य विकृत स्वर वाला होकर उत्पन्न होता है। वह उस पाप के विशोधन के लिये कपूर के फल का दान करे।

अश्वे विनिहते चैव वक्रतुण्डः प्रजायते।
शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्यघनुत्तये ॥४६॥

घोड़े के मार दिये जाने पर टेढ़े मुख वाला होकर उत्पन्न होता है। वह पाप के अपनोदन के लिये सौ पल चन्दन का दान करे।

महिषीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते।
खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते।
निष्कत्रयस्य प्रकृतिं सम्प्रदद्याद्धिरण्मयीम् ॥४७॥

भैंस की हत्या करने पर मनुष्य कृष्ण-गुल्म का रोगी उत्पन्न होता है, और गधे का हनन करने पर कठोर रोमों वाला होकर उत्पन्न होता है। वह तीन निष्क भर सोने की प्रतिमा का दान करे।

तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः।
दद्याद्रत्नमयीं धेनुं स तत्पातकशान्तये ॥४८॥

लकड़भग्गे के मारे जाने पर मनुष्य कैरी आँखों वाला उत्पन्न होता है। वह उस पाप की शान्ति के लिये रत्नों से बनी हुई गऊ का दान करे।

शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः।
स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुम्भं सदक्षिणम् ॥४९॥

सूअर के मारे जाने पर मनुष्य लम्बे और टेढ़े दाँतों वाला उत्पन्न होता है। वह पाप की शुद्धि के लिये दक्षिणा के साथ घी से भरे घड़े का दान करे।

हरिणे निहते खञ्जः शृगाले तु विपादकः।
अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्मितः ॥५०॥

हिरण के मारे जाने पर मनुष्य लंगड़ा और गीदड़ के मारे जाने पर

पाँव से हीन उत्पन्न होता है। ऐसे मनुष्य को पल भर सोने से बने घोड़े का दान करना चाहिये।

अजाभिघातने चैव अधिकाङ्गः प्रजायते ।
अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥५१॥

बकरी को मारने पर मनुष्य अधिक अंग के साथ उत्पन्न होता है। उसे रंग-बिरंगे वस्त्रों से युक्त बकरी दान करनी चाहिये।

उरभ्रे निहते चैव पाण्डुरोगः प्रजायते ।
कस्तूरिकापलं दद्याद् ब्राह्मणाय विशुद्धये ॥५२॥

मेमने के मारे जाने पर पाण्डु रोग उत्पन्न हो जाता है। उसके पाप की शुद्धि के लिये पल भर कस्तूरी ब्राह्मण को दान मे देनी चाहिये।

मार्जारे निहते चैव पीतपाणिः प्रजायते ।
पारावतं स सौवर्ण प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥५३॥

बिलाव के मारे जाने पर मनुष्य पीतवर्ण के हाथों के साथ उत्पन्न होता है। वह निष्क भर से बने सोने के कबूतर का दान करे।

शुकशारिकयोर्घाते नरः स्खलितवाग्भवेत् ।
सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यात् स विप्राय सदक्षिणम् ॥५४॥

तोता और मैना के मारे जाने पर मनुष्य लड़खड़ाती वाणी वाला होकर उत्पन्न होता है। वह ब्राह्मण को दक्षिणा के साथ उत्तम शास्त्र-ग्रन्थ दान करे।

वकघाती दीर्घनसो दद्याद् गां धवलप्रभाम् ।
काकघाती कर्णहीनो दद्याद् गामसितप्रभाम् ॥५५॥

बगले को मारने वाला लम्बी नासिका वाला उत्पन्न होता है। वह श्वेत-वर्ण गऊ का दान करे। कौए को मारने वाला कान से हीन उत्पन्न होता है। वह काले वर्ण की गऊ का दान करे।

हिंसायां निष्कृतिरियं ब्राह्मणे समुदाहृता ।
तदर्द्धार्द्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमात् ॥५६॥

हिंसा होने पर ब्राह्मण के लिये यह निष्कृति बताई गई है। क्षत्रिय आदि वर्णों के लिये क्रमशः इससे आधी, इससे भी आधी और इससे भी आधी मात्रा में निष्कृति समझनी चाहिये।

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ प्रकीर्णरोगाणां प्रायश्चित्तम् ।

सुरापः श्यावदन्तः स्यात् प्राजापत्यन्तरन्तथा ।
शर्करायास्तुलाः सप्त दद्यात् पापविशुद्धये ॥१॥

सुरा-पान करने वाला मनुष्य अगले जन्म में काले दाँतों वाला होता है । वह पाप की शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत के पश्चात सात तुला (७०० पल) शक्कर दान करे ।

जपित्वा तु महारुद्रं दशांश जुहुयात्तिलैः ।
ततोऽभिषेकः कर्त्तव्यो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥२॥

महारुद्र का जप करके तिलों से दशांश होम करे । तत्पश्चात् वरुण देवता के मन्त्रों से स्नान करना चाहिये ।

मद्यपो रक्तपित्ती स्यात्स दद्यात् सर्पिषो घटम् ।
मधुनोऽर्द्धघटञ्चैव सहिरण्य विशुद्धये ॥३॥

मद्यपान करने वाला रक्तपित्त (जिसमें मुँह और नाक से रक्त बहता है) का रोगी होता है । वह शुद्धि के लिये घी से भरा घड़ा दान करे । अथवा सोने के साथ मधु का आधा घड़ा दान में दे ।

अभक्ष्यभक्षणे चैव जायते कृमिकोदरः ।
तथावतेन शुद्ध्यर्थमुपोष्यं भीष्मपञ्चकम् ॥४॥

अभक्ष्य का भक्षण करने पर मनुष्य पेट में कीड़ों के साथ उत्पन्न होता है । उसे शुद्धि के लिये भीष्म-पञ्चक (कार्त्तिक मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी से पूर्णिमा तक, पांच दिन) में शास्त्रोक्त विधि से उपवास करना चाहिये ।

उदक्यावीक्षितं भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः ।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥५॥

रजस्वला के द्वारा देखे हुए अन्न को खाकर भी मनुष्य पेट में कीड़ों के साथ जन्म लेता है । वह गोमूत्र और यावक के आहार वाला होकर तीन दिनों में ही शुद्ध हो जाता है ।

भुक्त्वा चास्पृश्यसस्पृष्टं जायते कृमिलोदरः ।
त्रिरात्रं समुपोष्याथ स तत्पापात् प्रमुच्यते ॥६॥

अस्पृश्य के द्वारा स्पर्श किये हुए भोजन को खाकर भी मनुष्य पेट में कीड़ों के साथ उत्पन्न होता है । तीन रात तक उपवास करके तत्पश्चात् वह उस पाप से छूट जाता है ।

परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ।
लक्षहोमं स कुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥७॥

दूसरों के भोजन में विघ्न उत्पन्न करने से मनुष्य को अजीर्ण हो जाता है। वह लक्षहोम नामक प्रायश्चित्त को विधिपूर्वक करे ।

मन्दोदराग्निर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः ।
प्राजापत्यत्रयं कुर्य्याद्भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥८॥

द्रव्य होते हुए भी जो मनुष्य घटिया भोजन देता है, उसके पेट की अग्नि मन्द हो जाती है। वह प्राजापत्य व्रत करे और सौ ब्राह्मणों को भोजन खिलाए ।

विषदः स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दश पयस्विनीः ।
मार्गहा पादरोगी स्यात् सोऽश्वदानं समाचरेत् ॥९॥

विष देने वाला वमन का रोगी हो जाता है। वह दस दुधारु गउएं दान करे। मार्ग को नष्ट करने वाला पांव का रोगी हो जाता है । वह घोड़े का दान करे ।

पिशुनो नरकस्यान्ते जायते श्वासकासवान् ।
घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥१०॥

चुगलखोर नरक-भोग के पश्चात् सांस और खाँसी का रोगी हो जाता है। उसे एक हजार पल मात्रा घी दान करना चाहिये ।

धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात् स तत्पापविशुद्धये ।
ब्रह्मकूर्चमयी धेनुं दद्याद् गाञ्च सदक्षिणाम् ॥११॥

धूर्त्त मिरगी का रोगी हो जाता है। वह उस के पाप की शुद्धि के लिये ब्रह्मकूर्च से निर्मित धेनु और दक्षिणा सहित गऊ का दान करे ।

शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने ।
सोऽन्नदान प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः ॥१२॥

दूसरों को कष्ट देने वाला मनुष्य शूल का रोगी हो जाता है। वह उससे छूटने के लिये भोजन का दान करे तथा रुद्र का जप करे।

दावाग्निदायकश्चैव रक्तातिसारवान् भवेत् ।
तेनोदपानं कर्त्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ॥१३॥

जंगल में आग लगाने वाला मनुष्य रक्तातिसार का रोगी होता है। वह कूआँ बनवाए तथा बड़ का वृक्ष लगाए ।

सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः।
गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥१४॥

देवमन्दिर में अथवा जल में जो मनुष्य मल और मूत्र का त्याग करता है, उसे पाप रूप भयङ्कर गुदारोग उत्पन्न हो जाता है।

मासं सुरार्च्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु।
प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥१५॥

महीने भर तक देव पूजा से दो गऊओं के दान से और एक प्राजापत्य व्रत से गुदा में उत्पन्न होने वाले रोग शान्त हो जाते है।

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः।
तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥१६॥

जिगर, तिल्ली और जलोदर गर्भपात कराने से उत्पन्न होने वाले रोग हैं। उनके प्रशमन के लिये यह प्रायश्चित्त माना गया है।

एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विधानतः।
सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥१७॥

इन रोगों में विप्र को विधिपूर्वक तीन पल भर सोने, चाँदी अथवा ताँबे के साथ जलधेनु दे।

प्रतिमाभङ्गकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते।
संवत्सरत्रयं सिञ्चेदश्वत्थं प्रतिवासरम् ॥१८॥

प्रतिमा को भंग करने वाला प्रतिष्ठा से हीन उत्पन्न होता है। वह तीन वर्ष तक हररोज पीपल के वृक्ष को सींचे।

उद्वाहयेत्तमश्वत्थ स्वगृह्योक्तविधानतः।
तत्र संस्थापयेद्देवं विघ्नराज सुपूजितम् ॥१९॥

अपने पारिवारिक विधान के अनुसार उस पीपल का विवाह करे। और उसके नीचे सुपूजित देव गणेश की स्थापना करे।

दुष्टवादी खण्डितः स्यात् स वै दद्याद् द्विजातये।
रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥२०॥

बुरे वचन बोलने वाला मनुष्य खण्डित अंग वाला पैदा होता है। वह ब्राह्मण को दो घड़े भर दूध के साथ दो पल भर चाँदी दान में दे।

खल्लीटः परनिन्दावान् धेनुं दद्यात् सकाञ्चनम्।
परोपहासकृत् काणः स गां दद्यात् समौक्तिकाम् ॥२१

दूसरों की निन्दा करने वाला गंजा उत्पन्न होता है। वह सोने के साथ गऊ दान में दे। दूसरों का उपहास करने वाला काना उत्पन्न होता है। वह मोतियों के साथ गाय का दान करे।

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्।
निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात् सत्यवर्त्तिनाम् ॥२२॥

जो सभा में बैठकर पक्षपात करता है, वह पक्षघात का रोगी हो जाता है। वह सत्य पर आरूढ़ रहने वालों को तीन निष्क मात्र सुवर्ण दान में दे।

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ स्तेयप्रायश्चित्तम्।

कुलघ्नो नरकस्यान्ते जायते विप्रहेमहृत्।
स तु स्वर्णशतं दद्यात् कृत्वा चान्द्रायणत्रयम् ॥१॥

ब्राह्मण के सोने को चुराने वाला नरक के अन्त में कुलघाती के रूप में उत्पन्न होता है। वह तीन चान्द्रायण व्रत करके सौ सुवर्ण मुद्राएं दान करे।

औदुम्बरी ताम्रचौरो नरकान्ते प्रजायते।
प्राजापत्यं स कृत्वात्र ताम्रं पलशतं दिशेत् ॥२॥

तांबे की चोरी करने वाला नरक-भोग के पश्चात् ताम्रकुष्ठी के रूप में उत्पन्न होता है। वह प्राजापत्य व्रत करके सौ पल तांबा दान करे।

कांस्यहारी च भवति पुण्डरीकसमन्वितः।
कांस्यं पलशतं दद्यादलङ्कृत्य द्विजातये ॥३॥

कांसे की चोरी करने वाला पुण्डरीक कुष्ठ से युक्त हो जाता है। वह ब्राह्मण को अलंकृत करके उसे सौ पल कांसा दान में दे।

रीतिहृत् पिङ्गलाक्षः स्यादुपोष्य हरिवासरम्।
रीतिं पलशतं दद्यादलङ्कृत्य द्विजं शुभम् ॥४॥

पीतल की चोरी करने वाला पिङ्गल वर्ण की आंखों वाला हो जाता है। वह विष्णु के दिन (एकादशी को) उपवास करके उत्तम ब्राह्मण को अलंकृत करके उसे सौ पल पीतल दान मे दे।

मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिङ्गमूर्द्धजः।
मुक्ताफलशतं दद्यादुपोष्य स विधानतः ॥५॥

मोतियों की चोरी करने वाला पुरुष पिङ्गल वर्ण के केशों वाला उत्पन्न होता है। वह विधिपूर्वक उपवास करके सौ मोती दान करे।

त्रपुहारी च पुरुषो जायते नेत्ररोगवान्।
उपोष्य दिवसं सोऽपि दद्यात् पलशतन्त्रपु ॥६॥

टीन की चोरी करने वाला मनुष्य आँखों का रोगी उत्पन्न होता है। वह दिन भर उपवास करके सौ पल टीन दान में दे।

सीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान्।
उपोष्य दिवसं दद्याद् घृतधेनुं विधानतः ॥७॥

सीसे की चोरी करने वाला मनुष्य सिर के रोगों के साथ जन्म लेता है। वह दिन भर उपवास करके विधिपूर्वक घृत-धेनु दान में दे।

दुग्धहारी च पुरुषो जायते बहुमूत्रकः।
स दद्याद् दुग्धधेनुञ्च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥८॥

दूध की चोरी करने वाला मनुष्य बहुमूत्र रोगी उत्पन्न होता है। वह विधिपूर्वक ब्राह्मण को दुग्धधेनु दान करे।

दधिचौर्य्येण पुरुषो जायते मेदवान् यतः।
दधिधेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये ॥९॥

चूंकि दही की चोरी से मनुष्य चरबी का रोगी उत्पन्न होता है, इसलिये उसके पाप की शुद्धि के लिये उसे ब्राह्मण को दधिधेनु दान करनी चाहिये।

मधुचौरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान्।
स दद्यान्मधुधेनुञ्च समुपोष्य द्विजातये ॥१०॥

मधु की चोरी करने वाला मनुष्य आँखों का रोगी उत्पन्न होता है। वह उपवास करके ब्राह्मण को मधुधेनु दान करे।

इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान्।
गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्दोषशान्तये ॥११॥

ईख के रस, गुड़ आदि विकारों की चोरी करने वाला मनुष्य पेट के गुल्म रोग वाला उत्पन्न होता है। उस दोष की शान्ति के लिये उसे गुड़ की गऊ दान करनी चाहिये।

लोहहारी च पुरुषः कर्बूराङ्गः प्रजायते।
लोहं पलशत दद्यादुपोष्य स तु वासरम् ॥१२॥

लोहा चुराने वाला मनुष्य कबरे रंग के अंगों वाला उत्पन्न होता है। वह दिन भर उपवास करके सौ पल लोहा दान करे।

तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत् कण्ड्वादिपीडित ।
उपोष्य स तु विप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥१३॥

तेल की चोरी करने वाला मनुष्य खुजली आदि से पीड़ित उत्पन्न होता है। वह उपवास करके ब्राह्मण को तेल के दो घड़े दान में दे।

आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनः प्रजायते ।
स दद्यादश्विनौ हेमनिष्कद्वयविनिर्मितौ ॥१४॥

कच्चे भोजन को चुराने से मनुष्य दाँतों से हीन उत्पन्न होता है, वह दो निष्क भर सोने से बने हुए अश्वियों को दान में दे।

पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोग. प्रजायते ।
गायत्र्या. स जपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥१५॥

पके हुए भोजन को चुराने से जिह्वा का रोग उत्पन्न हो जाता है। वह एक लाख गायत्री का जप करे और तिलों से दशांश होम करे।

फलहारो च पुरुषो जायते व्रणिताङ्गुलिः ।
नानाफलानामयुतं स दद्याच्च द्विजन्मने ॥१६॥

फलों की चोरी करने वाले मनुष्य की उंगली पर घाव हो जाता है। वह ब्राह्मण को नाना प्रकार के दस हजार फल दान में दे।

ताम्बूलहरणाच्चैव श्वेतौष्ठः सम्प्रजायते ।
सदक्षिण प्रदद्याच्च विद्रुमस्य द्वयं वरम् ॥१७॥

पान की चोरी करने से मनुष्य सफेद होठों वाला उपत्न होता है। वह दक्षिणा के साथ दो उत्तम मूंगे ब्राह्मण को दान में दे।

शाकहारी च पुरुषो जातते नीललोचनः ।
ब्राह्मणाय प्रदद्याद्वै महानीलमणिद्वयम् ॥१८॥

साग की चोरी करने वाला मनुष्य नीली आंखों वाला उत्पन्न होता है। वह ब्राह्मण को दो महानील मणियां प्रदान करे।

कन्दमूलस्य हरणाद्ध्रस्वपाणिः प्रजायते ।
देवतायतन कार्य्यमुद्यानं तेन शक्तितः ॥१९॥

कन्द और मूल की चोरी से मनुष्य छोटे हाथों वाला उत्पन्न होता है। वह सामर्थ्य के अनुसार देवमन्दिर बनवाए और बाग लगवाए।

सौगन्धिकस्य हरणाद् दुर्गन्धाङ्गः प्रजायते ।
स लक्षमेकं पद्मानां जुहुयाज्जातवेदसि ॥२०॥

सुगन्ध वाले पदार्थों की चोरी से मनुष्य दुर्गन्ध वाले अंगों के साथ उत्पन्न होता है । वह अग्नि में एक लाख कमलों का होम करे ।

दारुहारी च पुरुषः स्विन्नपाणि. प्रजायते ।
स दद्याद्विदुषे शुद्धौ काश्मीरजपलद्वयम् ॥२१॥

काठ की चोरी करने वाला मनुष्य पसीने से युक्त हाथों वाला उत्पन्न होता है वह शुद्धि के निमित्त विद्वान् ब्राह्मण को दो पल केसर दान करे ।

विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ।
न्यायेतिहासं दद्यात् स ब्राह्मणाय सदक्षिणाम् २२॥

विद्या और पुस्तकों की चोरी करने वाला मनुष्य निश्चय से गूँगा उत्पन्न होता है । वह दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को न्याय और इतिहास ग्रन्थ दान करे ।

वस्त्रहारी भवेत् कुष्ठी सम्प्रदद्यात्प्रजापतिम् ।
हेमनिष्कमितञ्चैव वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥२३॥

वस्त्र की चोरी करने वाला कुष्ठी उत्पन्न होता है । वह एक निष्क भर सोने से बनी प्रजापति की मूर्ति और वस्त्रों का एक जोडा ब्राह्मण को दे ।

ऊर्णाहारी लोमशः स्यात् स दद्यात् कम्बलान्वितम् ।
स्वर्णनिष्कमितं हेम वह्निं दद्याद् द्विजातये ॥२४॥

ऊन की चोरी करने वाला मनुष्य लोमश (शरीर पर लम्बे बालों वाला) उत्पन्न होता है । वह कम्बल सहित निष्क भर सोने से निर्मित अग्नि की सुवर्ण प्रतिमा ब्राह्मण को दान में दे ।

पट्टसूत्रस्य हरणान्निर्लोमा जायते नरः ।
तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्ध्यर्थं द्विजन्मने ॥२५॥

रेशम के सूत की चोरी से मनुष्य शरीर पर बालों के बिना उत्पन्न होता है । उसे अपने पाप की शुद्धि के लिये ब्राह्मण को गऊ दान में देनी चाहिये ।

औषधस्यापहरणे सूर्य्यावर्तः प्रजायते ।
सूर्य्यायार्घः प्रदातव्यो माषं देयञ्च काञ्चनम् ॥२६॥

औषध की चोरी करने पर सूर्यावर्त रोग (सूर्य की गति के साथ बढ़ने

और घटने वाला सिरदर्द) उत्पन्न होता है। वह सूर्य को अर्घ दे और एक माषा सोना दान करे।

रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्याद्रक्तवातवान् ।
सवस्त्रां महिषीं दद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥२७॥

लाल वस्त्र और मूंगे आदि की चोरी करने वाला रक्तवात का रोगी बनता है। वह मणिराग के साथ वस्त्राच्छादित भैंस दान करे।

विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते ।
तेन कार्य्यं विशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥२८॥

ब्राह्मण के रत्नों की चोरी करने वाला मनुष्य सन्तानहीन उत्पन्न होता है। उसे अपने पाप की शुद्धि के लिये महारुद्र जप आदि कर्म करने चाहिये।

मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते ।
दशांशहोमः कर्तव्यः पलाशेन यथाविधि ॥२९॥

मरे हुए बच्चे वाले मनुष्य के विषय में जो विधि कही गई है। वह सारी की सारी इस (सन्तानहीन)के लिये भी विधान की गई है। ढाक की समिधाओं के साथ विधिपूर्वक दशांश होम करना चाहिये।

देवस्य हरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः ।
ज्वरो महाज्वरश्चैव रौद्रो वैष्णव एव च ॥३०॥
ज्वरे रौद्रं जपेत् कर्णे महारुद्रं महाज्वरे ।
अतिरौद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद् द्वयं जपेत् ॥३१॥

देवता की चोरी करने से विविध प्रकार का ज्वर उत्पन्न हो जाता है— जैसे ज्वर, महाज्वर, रौद्र ज्वर और वैष्णव ज्वर। ज्वर होने पर कान में रौद्र जप करे। महाज्वर होने पर महारौद्र जप करे। रौद्र ज्वर होने पर अतिरौद्र जप करे और वैष्णव ज्वर होने पर उन दोनों (महारौद्र और अतिरौद्र) जपों को करे।

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहणीयुतः ।
तेनान्नोदकवस्त्राणि हेम देयञ्च शक्तितः ॥३२॥

नाना प्रकार के द्रव्यों की चोरी करने वाला मनुष्य ग्रहणी रोग (पेचिश) से ग्रस्त हो जाता है। उसे यथाशक्ति भोजन, जल, वस्त्रों और सोने का दान करना चाहिये।

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

।। पञ्चमोऽध्यायः ।।

अथ अगम्यागमनप्रायश्चित्तम् ।

मातृगामी भवेद्यस्तु लिङ्गं तस्य विनश्यति ।
चाण्डालीगमने चैव हीनकोषः प्रजायते ।।१।।

जो मनुष्य अपनी माता से सभोग करता है, उसका जननेन्द्रिय नष्ट हो जाता है। और चाण्डाली से संभोग करने पर मनुष्य अण्डकोष से हीन उत्पन्न होता है।

तस्य प्रतिक्रियां कर्त्तुं कुम्भमुत्तरतो न्यसेत् ।
कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ।।२।।

उसकी निष्कृति के लिये काले वस्त्र से ढके हुए और काली मालाओ से विभूषित कुम्भ को उत्तर की ओर स्थापित करे।

तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्वरम् ।
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं नरवाहनम् ।।३।।

उसके ऊपर छः निष्क सोने से बने हुए, मनुष्यों पर सवारी करने वाले देव कुबेर को कांसे के पात्र में रखे।

यजेत् पुरुषसूक्तेन धनदं विश्वरूपिणम् ।
अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणं समाचरेत् ।।४।।

पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०।९०) के द्वारा विश्वरूपी कुबेर की पूजा करे। अथर्ववेद का ज्ञाता ब्राह्मण अथर्ववेद का पाठ करे।

सुवर्णपुत्रिकां कृत्वा निष्कविंशतिसङ्ख्यया ।
दद्याद्विप्राय सम्पूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ।।५।।

बीस निष्क सोने की प्रतिमा बनवाकर, उसकी पूजा करके, यह कहता हुआ—"मैं पाप से मुक्त हुआ" उसे ब्राह्मण को दे दे।

निधीनामधिपो देवः शङ्करस्य प्रियः सखा ।
सौम्याशाधिपतिः श्रीमान् मम पापं व्यपोहतु ।।६।।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य आचार्य्याय यथाविधि ।
दद्याद्देवं हीनकोषे लिङ्गनाशे विशुद्धये ।।७।।

"निधियों का स्वामी, शंकर का प्रिय सखा, सोम की दिशा के अधिपति, श्रीमान्, देव कुबेर मेरे पाप को दूर करें"—इस मन्त्र का उच्चारण करके

हीनकोष और लिङ्गनाश के विषय में शुद्धि के लिये देव (की प्रतिमा) को विधिपूर्वक आचार्य को दे।

गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्र: प्रजायते।
तेनापि निष्कृतिः कार्य्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥८॥

गुरु की पत्नी से सभोग करने पर मूत्रकृच्छ्र रोग वाला उत्पन्न होता है। उसे भी शास्त्रदृष्ट कर्म के द्वारा पश्चात्ताप करना चाहिये।

स्थापयेत् कुम्भमेकन्तु पश्चिमायां शुभे दिने।
नीलवस्त्रसमाच्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥९॥

वह किसी शुभ दिन नीले वस्त्र से ढके हुए और नीली मालाओं से विभूषित एक घड़े को पश्चिम दिशा मे स्थापित करे।

तस्योपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रे प्रचेतसम्।
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मित यादसाम्पतिम् ॥१०॥

उसके ऊपर छः निष्क सोने से बने हुए, जलजन्तुओं के स्वामी, देव वरुण को ताँबे के पात्र में रखे।

यजेत् पुरुषसूक्तेन वरुण विश्वरूपिणम्।
सामविद् ब्राह्मणस्तत्र सामवेदं समाचरेत् ॥११॥

पुरुष-सूक्त से विश्वरूपी वरुण की पूजा करे। और वहां सामवेद का ज्ञाता ब्राह्मण सामवेद का पाठ करे।

सुवर्णपुत्रिकां कृत्वा निष्कविंशतिसङ्ख्यया।
दद्याद्विप्राय सम्पूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥१२॥

बीस निष्क सोने की प्रतिमा बनवा कर उसकी पूजा करके, यह कहता हुआ "मैं पाप से मुक्त हुआ" उसे ब्राह्मण को दे दे।

यादसामधिपो देवो विश्वेषामपि पावनः।
संसाराब्धौ कर्णधारो वरुणा पावनोऽस्तु मे ॥१३॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य आचार्य्याय यथाविधि।
दद्याद्देवमलङ्कृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥१४॥

"जल-जन्तुओं का स्वामी, संसार-सागर में कर्णधारभूत, सभी को पवित्र करने वाला देव वरुण मुझे पवित्र करे।"—इस मन्त्र का उच्चारण करके देव (वरुण) को अलङ्कृत करके मूत्रकृच्छ्र की शान्ति के लिये विधि के अनुसार आचार्य को दे दे।

स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठं प्रजायते ।
भगिनीगमने चैव पीतकुष्ठं प्रजायते ॥१५॥

अपनी पुत्री से सभोग करने पर रक्तकुष्ठ उत्पन्न हो जाता है और बहन के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पर पीतकुष्ठ हो जाता है।

तस्य प्रतिक्रियां कर्त्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत् ।
पीतवस्त्रसमाछन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥१६॥

उसके प्रतिकार के लिये पीले वस्त्र से ढके हुए, पीत वर्ण की माला से विभूषित कलश को पूर्व दिशा में स्थापित करे।

तस्योपरि न्यसेत् स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् ।
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥१७॥

उसके ऊपर छः निष्क सोने से बने हुए, वज्र को धारण करने वाले इन्द्र देव को सोने के पात्र में रखे।

यजेत् पुरुषसूक्तेन वासवं विश्वरूपिणम् ।
यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदञ्च समाचरेत् ॥१८॥

पुरुषसूक्त से विश्वरूपी इन्द्र की पूजा करे। और वहां यजुर्वेद, सामवेद और ऋग्वेद का पाठ करे।

सुवर्णपुत्रिकां कृत्या सुवर्णदशकेन तु ।
दद्याद्विप्राय सम्पूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥१९॥

दस सुवर्णों से सोने की प्रतिमा बनवाकर, उसकी पूजा करके—"मैं पाप से मुक्त हुआ" ऐसा कहते हुए उसे ब्राह्मण को दे दे।

देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः ।
शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निकृन्ततु ॥२०॥
इमं मन्त्र समुच्चार्य्य आचार्य्याय यथाविधि ।
दद्याद्देवं सहस्राक्षं स्वपापस्यापनुत्तये ॥२१॥

"देवों का स्वामी, सौ यज्ञों वाला, सौ आखों वाला, विष्णु का निवास भूत, वज्र को धारण करने वाला देव इन्द्र मेरे पाप को काट डाले"—इस मन्त्र का उच्चारण करके इन्द्रदेव (की प्रतिमा) को अपने पाप के निवारण के लिये विधि के अनुसार आचार्य को दे दे।

भ्रातृभार्य्याभिगमनाद् गलत्कुष्ठ प्रजायते ।
स्ववधूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायते ॥२२॥

भाई की पत्नी के साथ सम्बन्ध स्थापित करने से बहने वाला कुष्ठ हो जाता है। और अपनी (पुत्र)वधू के सम्बन्ध स्थापित करने से कृष्ण-कुष्ठ हो जाता है।

तेन कार्य्यं विशुद्ध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेव हि ।
दशांशहोमः सर्वत्र घृताक्तैः क्रियते तिलैः ।।२३।।

उसे उस पाप की शुद्धि के लिये पूर्वोक्त अनुष्ठान का आधा ही करना चाहिये। और सभी स्थितियों में घी में भिगोए हुए तिलों से दशांश होम किया जाता है।

यदगम्याभिगमनाज्जायते ध्रुवमण्डलम् ।
कृत्वा लोहमयीं धेनुं पलषष्टिप्रमाणतः ।।२४।।
कार्पासभाण्डसंयुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् ।
दद्याद्विप्राय विधिवदिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
सुरभिर्वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु ।।२५।।

अगम्या से गमन करने पर जो ध्रुवमण्डल रोग उत्पन्न होता है, उसके पाप के प्रायश्चित्त के लिये साठ पल के वजन की लोहे का गऊ बनवाकर कपास के भार, कांसे की दोहनी और (लोहे के) बछड़े वाली उस गऊ को विधि के अनुसार ब्राह्मण को दे दे। और इस मन्त्र का उच्चारण करे "विष्णु की पुत्री, माता सुरभि मेरे पाप को दूर करे।"

मातुः स पत्नी सङ्गमने जायते चाश्मरीगदः ।
स तु पापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।।२६।।

माता की सौतिन से सभोग करने पर पथरी का रोग उत्पन्न हो जाता है। वह उसके पाप की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करे।

दद्याद्विप्राय विदुषे मधुधेनुं यथोदितम् ।
तिलद्रोणशतञ्चैव हिरण्येन समन्वितम् ।।२७।।

विद्वान् ब्राह्मण को शास्त्रोक्त विधि के अनुसार मधु की गऊ दान में दे और सोने के साथ सौ द्रोण तिल दान करे।

पितृष्वस्त्रभिगमनाद्दक्षिणां सव्रणी भवेत् ।
तेनापि निष्कृतिः कार्य्या अजादानेन शक्तितः ।।२८।।

बुआ के साथ संभोग करने से मनुष्य के शरीर के दाहिने कन्धे पर व्रण वाला हो जाता है। उसे शक्ति के अनुसार बकरी के दान से उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

मातुलान्यान्तु गमने पृष्ठकुब्जः प्रजायते ।
कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।।२९।।

मामी के साथ संभोग करने पर पीठ से कुबड़ा हो जाता है । काले मृग की खाल का दान करने से उसका प्रायश्चित्त करे ।

मातृष्वस्त्रभिगमने वामाङ्गे व्रणवान् भवेत् ।
तेनापि निष्कृतिः कार्य्या सम्यग्दानप्रदानतः ।।३०।।

मासी के साथ संभोग करने पर मनुष्य शरीर के बाएं अंग पर व्रण वाला हो जाता है । उसे भली प्रकार दान देकर उसका प्रतिकार करना चाहिये ।

मृतभार्य्याभिगमने मृतभार्य्यः प्रजायते ।
तत्पातकविशुद्ध्यर्थं द्विजमेकं विवाहयेत् ।।३१।।

मरी हुई भार्या से संभोग करने पर अगले जन्म में उसकी पत्नी मर जाती है। उसके पाप की शुद्धि के लिये वह एक ब्राह्मण का विवाह कराए ।

सगोत्रस्त्रीप्रसङ्गेन जायते च भगन्दरः ।
तेनापि निष्कृतिः कार्य्या महिषीदानयत्नतः ।।३२।।

अपने गोत्र की स्त्री से संभोग करने पर भगन्दर रोग हो जाता है । यत्न-पूर्वक भैंस का दान करने से उसे उस की निष्कृति करनी चाहिये ।

तपस्विनीप्रसङ्गेन प्रमेही जायते नरः ।
मासं रुद्रजपः कार्य्यो दद्याच्छक्त्या च काञ्चनम् ।।३३।।

तपस्विनी के प्रसङ्ग से मनुष्य प्रमेह के रोग से ग्रस्त हो जाता है । उसके प्रायश्चित्त के लिये एक मास तक रुद्र का जप करे और शक्ति के अनुसार सोना दान करे ।

दीक्षितस्त्रीप्रसङ्गेन जायते दुष्टरक्तदृक् ।
स पातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयञ्चरेत् ।।३४।।

दीक्षा ग्रहण करने वाले की स्त्री से संभोग करके मनुष्य गन्दे खून से युक्त आंखों वाला हो जाता है । वह पाप की शुद्धि के लिये दो प्राजापत्य व्रत करे ।

स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी ।
तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयञ्चरेत् ।।३५।।

अपनी जाति की स्त्री से संभोग करने पर मनुष्य हृदय पर व्रण वाला हो जाता है । उस पाप की शुद्धि के लिये वह दो प्राजापत्य व्रत करे ।

पशुयोनौ च गमने मूत्राघातः प्रजायते ।
तिलपात्रद्वयञ्चैव दद्यादात्मविशुद्धये ॥३६॥

पशु की योनि में गमन करने से मूत्राघात रोग उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य अपनी शुद्धि के लिये दो पात्र भर तिल दान करे।

अश्वयोनौ च गमनाद्गुदस्तम्भः प्रजायते ।
सहस्रकमलस्नानं मासं कुर्य्यात् शिवस्य च ॥३७॥

घोड़ी की योनि में गमन करने से गुदस्तम्भ नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। वह एक मास तक एक हजार कमलों से शिव को स्नान कराए।

एते दोषा नराणां स्युर्नरकान्ते न संशयः ।
स्त्रीणामपि भवन्त्येते तत्तत्पुरुषसङ्गमात् ॥३८॥

नरक भोग के पश्चात् जन्म लेने पर ये दोष पुरुषों में उत्पन्न हो जाते हैं, इस में सशय नहीं है। ये उस-उस प्रकार के पुरुष के साथ संभोग करने से स्त्रियों में भी उत्पन्न हो जाते हैं।

इति शातातपीये धर्म शास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अनुचितव्यवहारफलम् ।

अश्वशूकरशृङ्ग्याद्रिद्रुमादिशकटेन च ।
भृग्वग्निदारुशस्त्राश्मविषोद्बन्धनजैर्मृताः ॥१॥
व्याघ्राहिगजभूपालचौरवैरिवृकाहताः ।
काष्ठशल्यमृता ये च शौचसंस्कारवर्जिताः ॥२॥
विषूचिकाग्निकवलदवाती सार तो मृताः ।
शाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्च ये ॥३॥
अस्पृश्या ह्यपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः ।
पञ्चत्रिंशत्प्रकारैश्च नाप्नुवन्ति गतिं मृताः ॥४॥

इन पैतीस प्रकार से मरे हुए मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त नहीं होते— घोड़ा, सूअर, सींग वाला पशु, पर्वत, वृक्ष, गाड़ी, ऊँचे स्थान से पतन, अग्नि, लकड़ी, शस्त्र, पत्थर, विष, फांसी लगाने से मरे हुए, व्याघ्र, सर्प, हाथी, राजा,

चोर, शत्रु, और भेड़िये आदि से मारे हुए, काठ, कांटे आदि से मरे हुए, जो शौच हीन और संस्कार रहित है, जो हैजे से भोजन का कवल गले में अटक जाने से और अतीसार रोग से मरे हुए हैं, जो शाकिनी आदि से ग्रस्त और ग्रहों से ग्रस्त है, जो बिजली के गिरने से मरे हुए है, जो अस्पृश्य हैं, अपवित्र हैं, पतित है, और पुत्रहीन है।

पित्राद्याः पिण्डभाजः स्युस्त्रयो लेपभुजस्तथा ।
ततो नान्दीमुखाः प्रोक्तास्त्रयोऽप्यश्रमुखास्त्रयः ॥५॥

पिता आदि तीन पितर पिण्ड के भागी होते हैं। उसी प्रकार तीन पितर लेप (पिण्ड देने के पश्चात् हाथ पर लिप्त गीले आटे) के भागी होते हैं। तत्पश्चात् तीन पितर नान्दीमुख कहलाते हैं, और तीन अश्रुमुख कहलाते है।

द्वादशैते पितृगणास्तर्पिता. सन्ततिप्रदाः ।
गतिर्हीनाः सुतादीनां सन्तति नाशयन्ति ते ॥६॥

ये बारह पितर तृप्त किये हुए सन्तान देने वाले होते है। यही गति से हीन हुए पुत्र आदि की सन्तान को नष्ट कर डालते हैं।

दश व्याघ्रादिनिहता गर्भं निघ्नन्त्यमी क्रमात् ।
द्वादशास्त्रादिनिहता आकर्षन्ति च बालकम् ॥७॥

बाघ आदि के द्वारा मारे हुए ये क्रमशः दस पितर गर्भ को नष्ट कर देते है। और अस्त्र आदि से मारे हुए बारह पितर (गर्भस्थ) बालक को खींच ले जाते है।

विषादिनिहता घ्नन्ति दशसु द्वादशस्वपि ।
वर्षैकबालकं कुर्य्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥८॥

दस या बारह की संख्या में विष आदि से मारे हुए ये पितर एक वर्ष के बालक को मार डालते हैं। सन्तानहीन पितर सन्तानहीनता उत्पन्न कर देता है।

व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च ।
विषदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुःखकृत् ॥९॥

अविवाहित कन्या के साथ सभोग करने से मनुष्य बाघ के द्वारा मारा जाता है। विष देने वाला सर्प के द्वारा मारा जाता है, और राजा का बुरा करने वाला हाथी के द्वारा मारा जाता है।

राज्ञा राजकुमारघ्नश्चौरेण पशुहिंसकः ।
वैरिणा मित्रभेदी च वकवृत्तिर्वृकेण तु ॥१०॥

राज कुमार की हत्या करने वाला राजा के द्वारा, पशु का हिंसक चोर के द्वारा, मित्रों में फूट डालने वाला शत्रु के द्वारा और बगले के चरित्र वाला भेड़िये के द्वारा मारा जाता है ।

गुरुघाती च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः ।
द्रोही संस्काररहितः शुना निक्षेपहारकः ॥११॥

शय्या पर गुरु से घात करने वाला दूसरे की उन्नति सहन न करने वाला, शौच से हीन, द्रोह करने वाला, संस्कार से हीन और धरोहर को हड़पने वाला कुत्ते के द्वारा मारा जाता है ।

नरो विहन्यते रण्ये शूकरेण च पाशिकः ।
कृमिभिः कृत्तवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥१२॥

जाल बिछाकर पशुओं को पकड़ने वाला मनुष्य जंगल में सूअर के द्वारा मारा जाता है। जीवों को काट डालने वाला कीड़ों से कटे हुए वस्त्रों वाला होकर कीड़े के द्वारा ही मारा जाता है ।

शृङ्गिणा शङ्करद्रोही शकटेन च सूचकः ।
भृगुणा मेदिनीचौरो वह्निना यज्ञहानिकृत् ॥१३॥

शिव का द्रोही सींग वाले पशु के द्वारा, चुगलखोर गाड़ी से, भूमि का चोर ऊँचे स्थान से गिरने से और यज्ञ का विनाश करने वाला अग्नि के द्वारा मारा जाता है ।

दवेन दक्षिणाचौरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः ।
अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥१४॥

दक्षिणा की चोरी करने वाला जंगल की अग्नि से, वेद की निन्दा करने वाला शस्त्र से, द्विज की निन्दा करने वाला पत्थर से, और कुमति प्रदान करने वाला विष से मारा जाता है ।

उद्बन्धनेन हिंस्रः स्यात् सेतुभेदी जलेन तु ।
द्रुमेण राजदन्तिहृदतीसारेण लौहहृत् ॥१५॥

हिंसा की वृत्ति वाला फांसी लगाकर, तालाब के बांध को तोड़ने वाला जल से, राजा के हाथी को चुराने वाला वृक्ष से और लोहा चुराने वाला अतीसार रोग से मरता है ।

शाकिन्याद्यैश्च म्रियते सदर्पकार्य्यकारकः ।
अनध्यायेऽप्यधीयानो म्रियते विद्युता तथा ॥१६॥

दर्प से युक्त कार्यों को करने वाला शाकिनी आदि के द्वारा, और अनध्याय काल में अध्ययन करने वाला बिजली से मरता है।

अस्पृश्यस्पर्शसङ्गी च वान्तमाश्रित्य शास्त्रहृत् ।
पतितो मदविक्रेतानपत्यो द्विजवस्त्रहृत् ॥१७॥

स्पर्श के अयोग्य का स्पर्श करने वाला और शास्त्र की चोरी करने वाला वमन के कारण मरता है। मद बेचने वाला पतित हो जाता है और ब्राह्मण के वस्त्रों को चुराने वाला सन्तानहीन हो जाता है।

अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ।
कारयेन्निष्कमात्रन्तु पुरुषं प्रेतरूपिणम् ॥१८॥
चतुर्भुजं दण्डहस्तं महिषासनसंस्थितम् ।
पिष्टैः कृष्णतिलैः कुर्यात् पिण्ड प्रस्थप्रमाणतः ॥१९॥
मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुण्डलसंयुतम् ।
अकालमूलं कलशं पञ्चपल्लवसंयुतम् ॥२०॥
कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधिसमन्वितम् ।
तस्योपरिन्यसेदेवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥२१॥
सप्तधान्यन्तु सफलं तत्र तत् सफल न्यसेत् ।
कुम्भोपरि च विन्यस्य पूजयेत् प्रेतरूपिणम् ॥२२॥

इसके पश्चात् क्रम से उनके प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है। एक निष्क भर सोने से एक प्रेत रूपी पुरुष बनवाया जाए, जिसकी चार भुजाएं हों, जिसके हाथ में दण्ड हो और जिसने भैंसे पर आसन ग्रहण किया हुआ हो। पिसे हुए काले तिलों से एक प्रस्थ प्रमाण का पिण्ड बनाए, जिसमें मधु घी और शक्कर मिले हों और जो सोने के कुण्डल से युक्त हो। एक ऐसा कलश ले जिस का पेंदा काला न हो, जो पांच पल्लवों से युक्त हो, काले वस्त्र से ढका हुआ हो और सब प्रकार जड़ी-बूटियो से भरा हो। अनाज और फलों से युक्त पात्र को उसके ऊपर इस प्रकार रखे कि वह अनाज सात अनाजों और फलों से युक्त हो और उसे फलों सहित ही वहां रखा जाए। इस प्रकार उसे घड़े के ऊपर रखकर प्रेत रूपी पुरुष की पूजा करे।

कुर्यात् पुरुषसूक्तेन प्रत्यह दुग्धतर्पणम् ।
षडङ्गञ्च जपेद्रुद कलशे तत्र वेदवित् ॥२३॥

प्रतिदिन पुरुष सूक्त के मन्त्रों से उसका दूध से तर्पण करे। और वेद का ज्ञाता ब्राह्मण उस कलश पर षडङ्ग रुद्र का जप करे।

यमसूक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा।
गायत्र्याश्चैव कर्त्तव्यो जपः स्वात्मविशुद्धये ॥२४॥

यम सूक्त से यम की पूजा आदि करे। और अपनी शुद्धि के लिये गायत्री का जप करना चाहिये।

ग्रहशान्तिकपूर्वञ्च दशांश जुहुयात्तिलैः।
अज्ञातनामगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम्।
प्रदद्यात् पितृतीर्थेन पिण्डं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२५॥

ग्रहों की शान्ति करने के पश्चात तिलों से दशांश होम करे। अज्ञात नाम और गोत्र वाले प्रेत को तिलों और जल के साथ पितृतीर्थ से पिण्ड दे, और इस मन्त्र का उच्चारण करे।

इमं तिलमयं पिण्डं मधुसर्पिसमन्वितम्।
ददामि तस्मै प्रेताय: य पीडा कुरुते मम ॥२६॥

"मधु और घी से मिश्रित तिलों से बने इस पिण्ड को मैं उस प्रेत को देता हूं, जो मुझे पीड़ा दे रहा है।"

सजलान् कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान्।
द्वादश प्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकञ्च विष्णवे ॥२७॥

तिल के पात्रों के युक्त, जलों से भरे हुए काले वर्ण के बारह घड़ों को प्रेत के उद्देश्य से दे और एक विष्णु को भी दे।

ततोऽभिषिञ्चेदाचार्य्यो दम्पती कलशोदकैः।
शुचिर्वरायुधधरो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥२८॥

उसके पश्चात् पवित्र हुआ, उत्तम शस्त्र को धारण करने वाला आचार्य वरुण देवता के मन्त्रों के द्वारा कलश के जलों से पति और पत्नी पर जल छिड़के।

यजमानस्ततोदद्यादाचार्य्याय स दक्षिणाम्।
ततो नारायणबलिः कर्त्तव्य. शास्त्रनिश्चयात् ॥२९॥

उसके पश्चात् वह यजमान आचार्य को दक्षिणा दे। उसके उपरान्त शास्त्र के निश्चय से नारायण को बलि दे।

एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ।
विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनिहतेष्वपि ॥३०॥

यह गतिहीनों के विषय में साधारण विधि बताई गई है। बाघ आदि के द्वारा मारे हुओं के विषय में और कुछ विशेष बातें जानने के योग्य हैं।

व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ।
सर्पदंशे नागबलिर्देयः सर्वेषु काञ्चनम् ॥३१॥

यदि कोई मनुष्य बाघ के मारने से मरे तो उसकी शान्ति के लिये किसी अन्य पुरुष की कन्या का विवाह करे। सर्प के द्वारा डसे जाने से मृत्यु होने पर नाग को बलि दे, और सभी स्थितियों में सोना दान करे।

चतुर्निष्कमितं हेमगजं दद्याद् गजैर्हते ।
राज्ञा विनिहते दद्यात् पुरुषन्तु हिरण्मयम् ॥३२॥

हाथियों से मारे जाने पर चार निष्क भर सोने का हाथी दान करे। राजा द्वारा मारे जाने पर सोने से बना मनुष्य दान में दे।

चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम् ।
वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्ति च काञ्चनम् ॥३३॥

चोर के द्वारा मारे जाने पर गऊ, शत्रु के द्वारा मारे जाने पर वृषभ और भेड़िये के द्वारा मारे जाने पर यथाशक्ति सोना दान करे।

शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तुलीसमन्विता ।
निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥३४॥

शय्या के ऊपर मर जाने पर तुलाई (रुई के गद्दे) सहित ऐसी शय्या दान करे जिसपर निष्कमात्र सोने से बनी हुई विष्णु की मूर्ति रखी हो।

शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ।
संस्कारहीने च मृते कुमारञ्च विवाहयेत् ॥३५॥

यदि शौच से हीन मरे तो दो निष्क भर सोने से बनी विष्णु की मूर्त्ति दान करे। संस्कार से हीन मरे तो किसी कुमार का विवाह कराए।

शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्निजशक्तितः ।
शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥३६॥

कुत्ते के काटे से मरने पर अपने सामर्थ्य के अनुसार कुछ धन भविष्य में पुण्य-दान की दृष्टि से रख छोड़े, सूअर के द्वारा मारे जाने पर दक्षिणा सहित भैंसा दान करे।

कृमिभिश्च मृते दद्याद् गोधूमान्नं द्विजातये ।
शृङ्गिणा च हते दद्याद् वृषभ वस्त्रसयुतम् ॥३७॥

कीड़ों से मारे जाने पर ब्राह्मण को गेहूं से बना भोजन दे। सींग वाले पशु से मारे जाने पर वस्त्र सहित वृषभ दे।

शकटेन मृते दद्यादश्वं सोपस्करान्वितम् ।
भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥३८॥

गाड़ी से मरने पर पल्यान (काठी) सहित घोड़ा दान करे। ऊँचे स्थान से गिरकर मरने पर अनाज का ढेर दान में दे।

अग्निना निहते दद्यादुपानह स्वशक्तितः ।
दवेन निहते चैव कर्त्तव्या सदने सभा ॥३९॥

अग्नि से जलने से मरने पर अपने सामर्थ्य के अनुसार जूते दान करे और दावाग्नि में मरने पर अपने घर में सभा करनी चाहिये।

शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषी दक्षिणान्विताम् ।
अश्मना निहते दद्यात् सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥४०॥

शस्त्र से मारे जाने पर दक्षिणा के साथ भैंस दान करे और पत्थर से मारे जाने पर बछड़े वाली दुधारू गऊ का दान करे।

विषेण च मृते दद्यान्मेदिनी क्षेत्रसंयुताम् ।
उद्बन्धनमृते चापि प्रदद्याद् गां पयस्विनीम् ॥४१॥

विष से मरने पर खेतों वाली भूमि का दान करे। फांसी लगाकर मरने पर भी दुधारू गऊ को दान में दे।

मृते जलेन वरुण हैम दद्यात्त्रिनिष्ककम् ।
वृक्ष वृक्षहते दद्यात् सौवर्ण स्वर्णसंयुतम् ॥४२॥

जल में डूबकर मरने पर तीन निष्क भर सोने से बनी वरुण की मूर्ति दान करे। वृक्ष से गिरकर मरने पर सोने के साथ सोने का वृक्ष दान में दे।

अतीसारमृते लक्षं सावित्र्या सयतो जपेत् ।
शाकिन्यादिमृते चैव जपेद्रुद्रं यथोचितम् ॥४३॥

अतीसार से मृत्यु होने पर सयम के साथ एक लाख गायत्री का जप करे। शाकिनी आदि के द्वारा मृत्यु होने पर विधिपूर्वक रुद्र का जप करे।

विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ।
अस्पर्शे च मृते कार्य्यं वेदपारायणं तथा ॥४४॥

बिजली गिरने से मरने पर विद्या का दान करे। अस्पृश्य का स्पर्श करने से यदि मृत्यु हो तो वेद का पारायण कराना चाहिये।

सच्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्वान्तमाश्रित्य संस्थिते ।
पातित्येन मृते कुर्य्यात् प्राजापत्यानि षोडश ॥४५॥

वमन के कारण मरने पर उत्तम शास्त्र-ग्रन्थ दान करे। पतित होकर मरने पर सोलह प्राजापत्य व्रत करे।

मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिञ्चरेत् ।
निष्कत्रयमितस्वर्णं दद्यादश्व हयाहते ॥४६॥

जो सन्तानहीन मरे उसके निमित्त नब्बे कृच्छ्रव्रत करे। घोड़े के द्वारा मारे जाने पर तीन निष्क भर सोने से बना घोड़ा दान करे।

कपिना निहते दद्यात् कपिं कनकनिर्मितम् ।
विशूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥४७॥

बन्दर से मारे जाने पर सोने का बन्दर दान करे। हैजे से मरने पर सौ ब्राह्मणों को मीठा भोजन खिलाए।

तिलधेनुः प्रदातव्या कण्ठेऽन्नकवले मृते ।
केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान् समाचरेत् ॥४८॥

यदि गले में अन्न का ग्रास फंसने से मृत्यु हो तो तिलों की गऊ का दान करना चाहिये। केशों के रोग से मृत्यु होने पर आठ कृच्छ्र व्रत करे।

एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्ध्वदैहिकम् ।
ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ।
दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसम्पदः ॥४९॥

इस प्रकार विधान के साथ करने पर और्ध्वदैहिक कर्म को सम्पन्न करे। उसके पश्चात् ही प्रेतभाव से मुक्त और तृप्त हुए पितर पुत्रों, पौत्रों, आयु, आरोग्य और धन-धान्य प्रदान करते हैं।

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ।
शिष्याय शरभङ्गाय विनयात् परिपृच्छते ॥५०॥

विनयपूर्वक प्रश्न करने वाले अपने शिष्य शरभङ्ग को शातातप ऋषि के द्वारा उपदेश किया हुआ कर्मों के विपाक का यह वर्णन समाप्त हुआ।

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥
समाप्ता चेयं शातातपस्मृतिः

।। अथ ।।

।। बुधस्मृतिः ।।

चातुर्वर्ण्यधर्मवर्णनम्

श्रेयोऽभ्युदयसाधनो धर्मः ।।१।।

पारलौकिक कल्याण और इहलौकिक उन्नति को सिद्ध करने वाला कर्म धर्म कहलाता है ।

गर्भाष्टमे ब्राह्मणो वसंत आत्मानमुपनयेत् ।।२।।

ब्राह्मण (ब्रह्मचारी) गर्भ से प्रारम्भ करके आठवें वर्ष मे वसन्त ऋतु में अपना उपनयन कराए ।

एकादशे क्षत्रियो ग्रीष्मे ।।३।।

क्षत्रिय (ब्रह्मचारी) ग्यारहवें वर्ष में ग्रीष्म ऋतु में ।

द्वादशे वैश्यो वर्षासु ।।४।।

वैश्य (ब्रह्मचारी) बारहवें वर्ष में वर्षाकाल में ।

मेखलाजिनदण्डकमण्डलूपवीतानि धारयेत् ।।५।।

ब्रह्मचारी मेखला, अजिन, दण्ड, कमण्डलु और उपवीत को धारण करे ।

वेदानधीत्य गुरु-शुश्रूषां कुर्वन् दृष्टार्थं तनुयात् ।।६।।

वेदों को पढ़कर गुरु की सेवा करता हुआ उद्दिष्ट प्रयोजन को सिद्ध करे ।

सावित्रीवेदव्रतिकोपनिषद्गो दानत्रिसुपर्णिकव्रतानि चरेत्।।७।।

गायत्री, वेद के व्रत, उपनिषद्, गोदान, त्रिसु पर्णिक आदि व्रतों को करे ।

गुरुणानुज्ञातः स्नायात् ।।८।।

(विद्या की प्राप्ति पर)गुरु की आज्ञा से स्नान करे (विद्यास्नात हो जाए ।

सवर्णा भार्यामुद्वहेत् ।।९।।

अपने वर्ण की पत्नी को प्राप्त करे ।

मातृतः पितृतः पञ्चगी सप्तमीं दशमीमन्यगोत्रजां ।।१०।।

वह माता के कुल में पांचवीं पिता के कुल में सातवीं और यदि अन्य गोत्र में उत्पन्न हुई हो तो दसवीं पीढ़ी से परे की हो ।

ब्राह्मदैवार्षप्राजापत्यगान्धर्वाऽऽसुर पैशाचराक्षसाः।।११।।

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस ये आठ प्रकार के विवाह है ।

ऋतावुपेयात् ।।१२।।

ऋतुकाल (मासिक धर्म के पश्चात् शुद्ध होने पर) पत्नी के पास जाए ।

युग्मासु पुत्रमुत्पादयेत् ।।१३।।

युग्म रात्रियों में पत्नी के पास जाकर पुत्र की उत्पत्ति करे ।

गर्भाधानं पुंसवन सीमन्तोन्नयनं जातकर्म
नामकरणं निष्क्रमणान्नप्राशनचूड़ाकरणोपनयनं
यावदग्न्याधानं ।।१४।

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न-प्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन आदि संस्कारों को करके समावर्तन, विवाह आदि के पश्चात् अग्नि का आधान करे ।

तस्मिन् गृह्याणि देव-पितृ-मनुष्य-
व्रत-यज्ञ-कर्माणि कुर्यात् ।।१५।।

उस अग्नि में देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ और अन्य व्रत यज्ञ आदि गृह्य कर्मों को करे ।

अतिथीन् पूजयेत् ।।१६।।

अतिथियों की पूजा करे ।

भृत्यान् बन्धून् पोष्यवर्गाश्च ।।१७।।

आश्रितों, बन्धुजनों और पोष्य वर्गों का भरण-पोषण करे ।

श्ववायसादिभ्यो भूमौ दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत् ।।१८।।

कुत्ते, कौए, आदि जन्तुओं को भूमि पर बलि देकर ब्राह्मणों को भोजन कराए ।

पित्रन्वष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणी
चैत्र्याश्वयुजी च पाकयज्ञान् कुर्यात् ।।१९।।

पितृ, अन्वष्टका, पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी नामक पाकयज्ञों को करे ।

अग्नीनाधायाग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ चातुर्मास्यानि
निरूढ़पशुरनुबन्धसौत्रामणीति हविर्यज्ञान् कुर्यात्।।२०।।

अग्नियों का आधान करके अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, निरूढ-पशु, अनुबन्ध और सौत्रामणी—इन हविर्यज्ञों को करे ।

अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमः उक्थ्यषोडशीवाजपेयोऽति
रात्रोऽप्तोर्याम इति सोमयागाननुतिष्ठेत् ।।२१।।

अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम—इन सोमयागों का अनुष्ठान करे।

दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासेन
मङ्गलमपकार्पण्यमस्पृहेति कुर्यात् ॥२२॥

सब प्राणियों पर दया, क्षमा, अनसूया, शौच, बिना आयास के मङ्गलकारिता, अदीनता और अस्पृहा—इन गुणों को धारण करे।

न्यायागतधनेन कर्माणि ॥२३॥

न्याय से प्राप्त धन से सब कर्मों को करे।

अध्यापनं याजनं प्रतिग्रहः सर्व-क्रय-विक्रय-संविभाग
प्रात्यधिगमशिलोञ्छान्नमायाचितकर्षणेत्यादि वृत्तयः॥२४॥

पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना, सब प्रकार का क्रय-विक्रय, पैतृक सम्पत्ति के बटवारे से प्राप्त धन, शिल (लावनी के पश्चात् खेत में पड़ी बल्लरियों को बटोरना) और उञ्छ (खेत में पड़े अन्न-कणों को बटोरना) से प्राप्त अन्न, भिक्षा और कृषि इत्यादि ब्राह्मण की आजीविकाएं हैं।

तदसंभवे क्षत्रियवृत्त्या ॥२५॥

इनके संभव न होने पर क्षत्रिय की वृत्ति से निर्वाह करे।

आपत्काले आसाधुभ्यः प्रतिगृह्णीयात् ॥२६॥

आपत्काल मे दुर्जनों से भी धन ले ले।

वृत्तिसंकरं न कुर्यात् ॥२७॥

आजीविका में संकर न करे।

कर्मवृत्तिसंकरौ रक्षेत् कुलशुद्ध्यर्थम् ॥२८॥

कुल की शुद्धि के लिये कर्मसंकर और वृत्तिसंकर से बचे।

कृषिः पाशुपाल्यं वाणिज्यं वैश्यकर्म ॥२९॥

खेती, पशुपालन और व्यापार वैश्य का कर्म है।

शूद्रस्य विहितं कर्म ब्राह्मणादीना त्रयाणां भर्तृशु-
श्रूषानाभिचरस्तस्य गुरुभक्तिः प्रणामश्चेति ॥३०॥

शूद्र का कर्म ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की स्वामी के रूप में सेवा विधान की गई है। उसे मन्त्र के द्वारा यज्ञानुष्ठान आदि का अधिकार नहीं है। उस के लिये गुरुभक्ति और प्रणाम का ही विधान है।

कृतकृत्यस्य वानप्रस्थ्यं ॥३१॥

जो गृहस्थ धर्म में कृतकृत्य हो जाए वह वानप्रस्थ हो जाए।

विरक्तस्य पारिव्राज्यं ॥३२॥

विरक्त के लिये संन्यास का विधान है।

स्वधर्माननुष्ठाने वर्णानामाश्रमाणाञ्च
हिताकरणे प्रतिषिद्धसेवने यावत्तदकुर्वत. ॥३३॥

अपने धर्म का अनुष्ठान न करने पर, वर्णों और आश्रमों का हित न करने पर, प्रतिषिद्ध का सेवन करने पर मनुष्य का उतना ही दोष है, जितना कि विधान किये हुए को न करने वाले का।

विहितमकुर्वन्तो राज्ञा कारयितव्याः ॥३४॥

जो विधान किये हुए को नहीं करते राजा उसे उनसे कराए।

कण्टकान् शोधयेत् ॥३५॥

चोर, साहसिक आदि कण्टक-सदृश दुष्ट जनों का सफाया करे।

व्यवहारानेकार्थान्निर्णयेत् ॥३६॥

अनेक प्रकार के व्यवहारो का निर्णय करे।

बलवतश्चैतान् स्वधर्मे स्थापयेत् ॥३७॥

जो बलवान् हैं, उन्हें उनके धर्म में स्थापित करे।

तेषु परस्वदण्डयान् दण्डं दापयेत् ॥३८॥

उनमें से दूसरों का धन हरने वालो को दण्ड दिलाए।

तथा कुर्वतः कारय तश्चोभयोर्धर्मसिद्धिः ॥३९॥

इस प्रकार करनेवाले और कराने वाले, दोनों को धर्म की प्राप्ति होती है।

तस्य धर्मो विनीतोऽव्यसनी ॥४०॥

उस (राजा) का धर्म है विनीत होना और व्यसनहीन होना।

निरूपितमण्डलाध्यक्षःसंधिविग्रहासनयान-
संश्रयद्वैधोभावात् सामर्थ्य कारयेत् ॥४१॥

राज्यमण्डल का अध्यक्ष निरूपित करके उससे सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और द्वैधी भाव—नीति के इन छः गुणों द्वारा अपने सामर्थ्य को बढ़वाए।

अनिच्छति पलायानमुपरुध्य परदुर्गं गृह्णीयात् ॥४२॥

यदि शत्रु पलायन करना न चाहे तो उसे उसी के दुर्ग में घेर कर पकड़ ले।

मन्त्रौषधिप्रयोगेण निस्सर्गं राज्यं(राष्ट्रं)गृह्णीयात् ॥४३॥

मन्त्रों और औषधि के प्रयोग से नैसर्गिक राज्य को प्रा रे।

गृहीत्वा देवब्राह्मणपूजनम् ॥४४॥

राज्य प्राप्त करके देवताओ और ब्राह्मणों की पूजा करे।

एवं कुर्वन् दृष्टमदृष्ट च (फलं) लभेतेति ।-४५॥

ऐसा करता हुआ राजा दृष्ट और अदृष्ट मैनों प्रकार के फलों को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीबुधप्रोक्ता बुधस्मृति समाप्ता ॥